अर्थ–जिस कन्याके पदतल (पैरोंका तलवा) रक्तपद्मके समान अथ च भूमिलग्न हो इसप्रकारकी चरणयुक्त कन्या प्रशंसाके योग्य है ॥ ४ ॥

नोद्वहेत्कपिलां कन्यां नाधिकाङ्गीं न रोगिणीम् ।
नालोमिकां नातिलोम्नीं न वाचालां न पिङ्गलाम् ॥ ५ ॥
नर्क्षवृक्षनदीनाम्नीं नान्त्यपर्वतनामिकाम् ।
न पक्ष्यहिप्रैष्यनाम्नीं नच भीषणनामिकाम् ॥ ६ ॥

इति मनुः ।

अर्थ–जो कन्या कपिलवर्ण, अधिकाङ्गी, रोगिणी, लोमहीना, अधिकलोमयुक्ता, वाचाला, पिङ्गलवर्णा ॥ ५ ॥ और नक्षत्र, वृक्ष, नदी, अन्त्यज, पर्वत, पक्षी, सर्प, दूती और भीषणनामिका हो उसका विवाह न करना चाहिये ॥ ५ ॥ ६ ॥

अथ प्रतिप्रसवमाह ।

गङ्गा च यमुना चैव गोमती च सरस्वती ।
नदीष्वासां नाम वृक्षे मालतीतुलसी अपि ।
रेवती चाश्विनी भेषु रोहिणी शुभदा भवेत् ॥ ७ ॥

इति मत्स्यसूक्ते ।

अर्थ–पूर्व वचनमे जो नक्षत्र, वृक्ष और नदीनामिका कन्याको वर्जित कियाहै, अब उसके प्रतिप्रसव कहतेहैं यथा,–नदीके मध्यमें गङ्गा, यमुना, गोमती और सरस्वती, वृक्षके मध्यमें मालती और तुलसी और नक्षत्रके मध्यमें रेवती, अश्विनी और रोहिणी नामकी कन्या विवाहमे शुभदायिका होतीहै ॥ ७ ॥

नेत्रे यस्याः केकरे पिङ्गले वा
स्याद्दुःशीला श्यावलोलेक्षणा च ।
कूपौ यस्या गण्डयोः सस्मितायां
निःसन्दिग्धां बन्धकीं तां वदन्ति ॥ ८ ॥

इति कृत्यचिन्तामणौ ।

अर्थ–जिस कन्याके दोनो नेत्र केकर वा पिङ्गलवर्ण अथवा चञ्चल हो जिसके हँसते समय दोनो गालोमे कूप (कुआं) के समान आकारका चिह्न दिखाई देवे, वह कन्या निश्चयही बन्धकी अर्थात व्यभिचारिणी इसप्रकार आचार्य पंडितगणोंने कहाहै ॥ ८ ॥

श्यामा सुकेशी तनुलोमराजी सुभ्रूः सुशीला सुगतिःसुदन्ता ॥
वेदीविमध्या यदि पङ्कजाक्षी कुलेन हीनापि विवाहनीया ॥ ९ ॥

इति नन्दिकेश्वरपुराणम् ।

अर्थ–श्यामा (१) सुकेशधारिणी, जिसके सूक्ष्म लोम हों, दोनों भ्रुकुटीमें शोभनीय हो, जो कन्या सुशीलवती हो, जिसकी चाल हंसके समान हो. दाँत जिसके अत्यन्त सुन्दर हों. कटिदेश जिसका अतिक्षीण हो, पङ्कजके समान जिसके दोनों नेत्र हो इस प्रकारकी कन्या यदि हीनकुलमें भी उत्पन्न हुई हो तौभी बुद्धिमान् मनुष्यको उसका विवाह करनाचाहिये ॥ ९ ॥

धृष्टा कुदन्ता यदि पिङ्गलाक्षी लोम्ना समाकीर्णसमाङ्गयष्टिः ॥

मध्ये च पुष्टा यदि राजकन्या कुलेऽपि योग्या न विवाहनीया ॥१०॥

अर्थ–जो कन्या लज्जाहीन हो, कुत्सित जिसके दाँत हो, पिङ्गलवर्ण दोनों नेत्र हों अत्यन्त लोम जिसके शरीरमें हों. अङ्गयष्टि जिसकी समान हो और जिसकी मध्यदेश स्थूल हो इस प्रकारकी कन्या यदि उत्तम कुलमेंभी उत्पन्न हुईहो तोभी उसका विवाह न करनाचाहिये ॥ १० ॥

रोमहीने समे स्निग्धे जङ्घे च क्रमवर्त्तुले ।
सा राजपत्नी भवति विशिरे सुमनोहरे ॥ ११ ॥

अर्थ–जिस कन्याकी दोनो जाँघे लोमशून्य. समान, स्निग्ध, गोलाकार और सुन्दर हों तो वह अवश्यही राजभार्या (रानी) होतीहै ॥ ११ ॥

गम्भीरा दक्षिणावर्त्ता नाभिः स्यात्सुखसम्पदे ।
वामावर्त्ता समुत्ताना व्यक्तग्रन्थी न शोभना ॥ १२ ॥

अर्थ–जिस स्त्रीकी नाभि गम्भीर और दक्षिणावर्त्त हो तो वह सम्पात्तिकी मालिक होकर सुखभोग करतीहै और जिसकी नाभि वामावर्त्त, उन्नत, (उठीहुई) अथवा ग्रन्थी स्पष्ट दिखाईदे वह चिरकाल दुःखसे जीवन व्यतीतकरतीहै ॥ १२ ॥

स्निग्धाः समुन्नतास्ताम्रा वृत्ताः पादनखाः शुभाः ।
राज्ञीत्वसूचकं स्त्रीणां पादपृष्ठं समुन्नतम् ॥ १३ ॥

---

(१) "स्तनौ च कठिनौ यस्या नितम्बे च विशालता । मध्यक्षीणा च या नारी सा श्यामा परिकीर्तिता ॥"

अर्थ–जिस स्त्रीके पैरोंके नाखून स्निग्ध, उन्नत, ताम्रवर्ण, वर्त्तुलाकार और सुन्दर हों और जिसके पैरोंके ऊपरका भाग उठा हो वह स्त्री राजभार्य्या (रानी) होतीहै ॥ १३ ॥

यस्याः पादतले रेखा सा भवेत्क्षितिपाङ्गना ।
भवेदखण्डभोगा च या मध्यांगुलिसङ्गता ॥ १४ ॥

अर्थ–जिस कन्याके चरणतलमें शुभचिह्न हो तो वह रानी होतीहै । और जिसकी मध्यमाङ्गुली दूसरी अङ्गुलीसे मिलीहुईहो तो वह चिरकालपर्य्यन्त सुख भोगतीहै ॥ १४ ॥

उन्नतो मांसलोऽङ्गुष्ठो वर्त्तुलोऽतुलभोगदः ।
वक्रो ह्रस्वश्च चिपिटः सुखसौभाग्यभञ्जकः ॥ १५ ॥

अर्थ–जिस वराङ्गनाका अँगूठा मांसल, वर्त्तुलाकार और उठा हो तो वह अत्यन्त सौभाग्यशालिनी होतीहै, जिसका अँगूठा वक्र, ह्रस्व और चपटा हो तो उसको सुख नहीं होताहै ॥ १५ ॥

दीर्घाङ्गुलीभिः कुलटा कृशाभिरतिनिर्द्धना ।
ह्रस्वाभिः स्याच्च ह्रस्वायुर्भग्नाभिर्भग्नवर्त्तिनी ।
चिपिटाभिर्भवेद्दासी विरलाभिर्दरिद्रिणी ॥ १६ ॥

अर्थ–जिस स्त्रीकी अङ्गुली दीर्घाकार हो, वह कुलटा होतीहै । अङ्गुली कृश होनेसे निर्द्धनी होतीहै और जो ह्रस्व हो तो उस स्त्रीकी आयु (उमर) कम होतीहै । अङ्गुली भग्नके समान होनेसे वह स्त्री भग्नदशामें अविवाहित रहकर जीवन व्यतीत करतीहै, चपटी अँगुली होनेसे वह दासी होतीहै और परस्पर मिलकी सब अंगुली विरल हो तो वह दरिद्रा होतीहै ॥ १६ ॥

परस्परं पदांगुल्यः समारूढा भवन्ति हि ।
हत्वा बहूनपि पतीन्परप्रेष्या तदा भवेत ॥ १७ ॥

अर्थ–जिस स्त्रीकी समस्त अंगुली परस्पर संयुक्त हों वह अनेकपति नष्ट करके दूसरेकी दासी होतीहै ॥ १७ ॥

समपार्ष्णी शुभा नारी मृदुपार्ष्णी सुदुर्भगा ।
कुलटोन्नतपार्ष्णी स्याद्दीर्घपार्ष्णी च दुःखभाक् ॥ १८ ॥

अर्थ-जिस वराङ्गनाकी पीठ समान हो तो उसके शुभ लक्षण होतेहैं, जिसकी पीठ स्थूल हो वह दुर्भगा होतीहै, जिसकी पीठ उठी हो वह कुलटा होतीहै और जिसकी पीठ दीर्घ हो वह स्त्री दुःखभागिनी होतीहै ॥ १८ ॥

वृत्तं पिशितसंलग्नं जानुयुग्मं प्रशस्यते ।
निर्म्मांसं स्वैरचारिण्या दरिद्रायाश्च विश्लथम् ॥ १९ ॥

अर्थ-जिस स्त्रीकी दोनों जांघे गोलाकार और मांसल हों वह सौभाग्यवती होतीहै जिसकी दोनो जांघोंमे मांस न हो और जिसकी दोनों जांघे श्लथ हो वह दरिद्रा और दुश्चारिणी होतीहै ॥ १९ ॥

विशिरैः करभाकारैरूरुभिर्मसृणैर्घनैः ।
सुवृत्तै रोमरहितैर्भवेयुर्भूपवल्लभाः ॥ २० ॥

अर्थ-जिस वराङ्गनाकी दोनो जॉघे शिराशून्य, करिशावकके शुण्डकी समान सुगाठित, घन, मसृण, गोलाकार और रोमशून्य हो तो वह स्त्री राजाको प्रिय (प्यारी) लगतीहै ॥ २० ॥

चतुर्भिरंगुलैः शस्ता कटिर्विंशतिसंयुतैः ।
समुन्नतनितंबाढ्या चतुरस्रा मृगीदृशाम् ॥ २१ ॥

अर्थ-जिस स्त्रीके चूतर उठे हुए हो, मोटे और स्थूल हों, वह अत्यन्त विभवशालिनी होतीहै. किन्तु इसके विपरीत होनेसे दुःखभागिनी होतीहै ॥ २१ ॥

उदरेणातितुच्छेन विशिरेण मृदुत्वचा ।
योषिद्भवति भोगाढ्या नित्यमिष्टान्नसेविनी ॥ २२ ॥

अर्थ-जिस स्त्रीके जठर (पेट) का चर्म्म मुलायम हो. उदर कृश और रोमशून्य हो तो वह अत्यन्त सुख भोगतीहै और सर्वदा मिष्टान्नभोजन करतीहै ॥ २२ ॥

कुम्भाकारं दरिद्राया जठरञ्च मृदङ्गवत् ।
कूष्माण्डाभं यवाभञ्च दुष्पूरं जायते स्त्रियाः ॥ २३ ॥

अर्थ-जिस स्त्रीका जठर (पेट) कुम्भाकार वा मृदङ्गके समान हो तो वह दरिद्रा होतीहै, जिसका जठर कूष्माण्ड (कुंभडे) के तुल्य हो वा यवके समान हो तो उसके उदरको कोई भी परिपूर्ण नहीं करसकताहै ॥ २३ ॥

निर्लोम हृदयं यस्याः समं निम्नत्ववर्जितम् ।

ऐश्वर्य्यं चाप्यवैधव्यं प्रियप्रेमा च सा भवेत् ॥ २४ ॥

अर्थ–जिस वराङ्गनाका हृदय निर्लोम हो और वक्षस्थल जिसका निम्न नहीं है वह ऐश्वर्य्यशालिनी और चिरकाल सौभाग्यवती रहतीहै और पतिकी अत्यन्त प्यारी होकर सर्वदा सुखभोग करतीहै ॥ २४ ॥

घनौ वृत्तौ पृथुदृढौ पीनौ शस्तौ पयोधरौ ।
स्थूलाग्रौ विरलौ सूक्ष्मौ वामोरूणां न शर्मदौ ॥ २५ ॥

अर्थ–जिस स्त्रीके दोनों स्तन वर्तुल, उच्च, कठिन और स्थूल हों तो वह स्त्री प्रशंसाकरनेके योग्य है और दोनों स्तन सूक्ष्म और विरल हों तो अमङ्गलदायक होतीहै ॥ २५ ॥

दक्षिणोन्नतवक्षोजा पुत्रिणीष्वग्रणीर्मता ।
वामोन्नतकुचा सूते कन्यां सौभाग्यसुन्दरीम् ॥ २६ ॥

अर्थ-जिस स्त्रीका दहना स्तन उठा हो तो वह पुत्रवती और गृह (घर) की कर्त्री होकर सुखसे जीवन व्यतीत करतीहै और जिसका बायाँ स्तन उठाहो तो वह सौभाग्यशालिनी होकर सुन्दरी कन्याको (उत्पन्न करतीहै ॥ २६ ॥

मूले स्थूलौ क्रमकृशावग्रेतीक्ष्णौ पयोधरौ ।
सुखदौ बाल्यकाले तु पश्चादत्यन्तदुःखदौ ॥ २७ ॥

अर्थ–स्त्रीके स्तनोंका मूलभाग स्थूल होवै ऊपरका भाग क्रमसे कृश होकर और अग्रभाग अत्यन्त सूक्ष्म हो तो वह स्त्री प्रथम अवस्थामें सुखभोगकर अनन्तर बहुत कष्ट भोगतीहै ॥ २७ ॥

अम्भोजमुकुलाकारमंगुष्टांगुलिसम्मुखम् ।
हस्तद्वयं मृगाक्षीणां वहुभोगाय जायते ॥ २८ ॥

अर्थ–जिस स्त्रीके दोनों अँगूठोंका अग्रभाग पद्मके समान हो तो वह सुखोंको भोगतीहै ॥ २८ ॥

मृदुमध्योन्नतं रक्तं तलं पाण्योररन्ध्रकम् ।
प्रशस्तं शस्तरेखाढ्यमल्परेखं शुभप्रदम् ॥ २९ ॥

अर्थ–स्त्रीगणके करतल यदि शोणितवर्ण हो, छिद्रशून्य हों, कोमल हो, अल्परेखायुक्त हों और शुभरेखाविशिष्ट हो और मध्यस्थल उठा हो तब वह सौभाग्यशालिनी होतीहै ॥ २९ ॥

विधवा बहुरेखेण विरेखेण दरिद्रिणी ।
भिक्षुकी सुशिराढ्येन नारी करतलेन वै ॥ ३० ॥

अर्थ-स्त्रियोके करतलमे बहुत रेखा होनेसे वह विधवा होजातीहैं नियमित रेखा न रहनेसे वे दरिद्रा होतीहै और यदि करतलमे शिरा हों तो वे स्त्रीगण भिक्षाद्वारा अपने जीवनका निर्वाह करतीहै ॥ ३० ॥

मत्स्येन सुभगा नारी स्वस्तिकेन तु सुप्रजाः ।
पद्मेन भूपतेः पत्नी जनयेद्भूपतिं सुतम् ॥ ३१ ॥

अर्थ-स्त्रियोके करतलमे मत्स्यरेखा होनेसे वे सौभाग्यशालिनी होतीहैं, स्वस्तिकाकार चिह्न होनेसे वे उत्तम पुत्रको प्रसव (उत्पन्न) करतीहैं और पद्मका चिह्न होनेसे राजपत्नी (रानी) होतीहै और उनके पुत्रभी राजा होतेहैं ॥ २१ ॥

अथ वैवाहिकनक्षत्रादिकथनम् ।

रेवत्युत्तररोहिणीमृगशिरोमूलानुराधामघा-
हस्तास्वातिषु तौलिषष्ठमिथुनेषूद्यत्सु पाणिग्रहः ॥
सप्त (आ) ष्टान्त्यबहिःशुभैरुडुपतावेकादशे द्वित्रिगे
क्रूरैस्त्र्यायषडष्टगैर्न तु भृगौ षष्ठे कुजे चाष्टमे ॥ ३२ ॥ (इ)

अर्थ-अब विवाहके विहित नक्षत्रादि कीर्त्तनकरतेहैं यथा-रेवती, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, रोहिणी, मृगशिरा, मूल, अनुराधा, मघा, हस्त और स्वातिनक्षत्रमे, तुला, कन्या और मिथुन लग्नमे विवाह प्रशस्त है। यदि लग्नके सप्तम, अष्टम और द्वादश स्थानमें शुभग्रह न हो और लग्नसे चन्द्र यदि एकादश, द्वितीय अथवा तृतीय स्थानमे स्थित हो और पापग्रहगण तृतीय, एकादश, षष्ठ और अष्टम स्थानमे हो तब शुभदायक होताहै, किन्तु लग्नके षष्ठस्थानमें शुक्र और अष्टम स्थानमें मङ्गल रहनेसे निषिद्ध होताहै ॥ ३२ ॥

दंपत्योर्द्विनवाष्टराशिरहिते दारानुकूले रवौ

(आ) लग्नादित्यनेन सप्तादिना सम्बन्ध इत्यर्थः ।

(इ) वैवाहिकनक्षत्रादीन्याह-रेवतीत्यादि । रेवत्युत्तरादिनक्षत्रेषु कन्यातुलामिथुनेषु । उद्यत्सु लग्नेषु पाणिग्रहो विवाहः कार्य्यः । तथा लग्नात्सप्ताष्टान्त्यबहि स्थितै सप्ताष्टद्वादशस्थानानि वर्जयित्वा अन्यत्र स्थितै शुभग्रहै तथा लग्नादेकादशद्वितीयतृतीयगते चन्द्रे तथा लग्नात् त्र्यायषडष्टगै. पापै पाणिग्रह कार्य्य इत्यन्वयः । अत्र च शुक्रस्य षष्ठस्थाने शुभफलदत्वे प्राप्ते कुजस्य चाष्टमे शुभफलदत्वे प्राप्ते निषेधमाह-न तु भृगौ षष्ठे कुजे चाष्टम इति ॥

चन्द्रे चार्ककुजार्किशुक्रवियुते मध्येऽथवा पापयोः ।
हित्वा च व्यतिपातवैधृतिदिनं विष्टिञ्च रिक्तां तिथिं
क्रूराहायणचैत्रपौषरहिते लग्नांशके मानुषे ॥ ३३ ॥ (ई)

(ई) संक्षेपेण दम्पत्योर्योटकादीन्याह—दम्पत्योरिति । दम्पत्योरन्योऽन्ये द्विनवाष्टराशिरहितं रहितमिति भावे क्तः । द्विद्वादशनवपञ्चकषडष्टकराशियोटकत्यागे सति पाणिग्रहः कार्य्य इति पूर्वश्लोकेनान्वयः । रवौ दारस्य वरस्य अनुकूले सति तथा तिग्मकिरणश्च पुंस इत्युक्तमेव। तथा चाभिधानं स्याद्दारको माणवक इति । चन्द्रे च शनिकुजरविशुक्रयोगरहिते सति केचित्तु सर्वग्रहायुक्त इत्याहुः । यथा राजमार्त्तण्डे—"दारिद्र्यं रविणा कुजे च मरणं सौम्येन नष्टप्रजा दौर्भाग्यं गुरुणा सितेन सहिते चन्द्रे च सापत्न्यकम्। प्रव्रज्यार्कसुतेन सेन्दुजगुरौ वाञ्छन्ति केचिच्छुभं द्व्याद्यैर्मृत्युरसद्भिः शुभयुतैर्दीर्घप्रवासोऽपि वा " । तथा राहुयुक्तश्चन्द्रोऽपि न शुभः । यथा राजमार्त्तण्डे—"राहुसमेते चन्द्रे प्राप्ता पाणिग्रहन्तु या कन्या । परपुरुषासक्तहृदया नीचैरपि प्रयाति संसर्गम्" इति । अथवा शब्दसमुच्चये । चन्द्रे च पापयोर्मध्ये स्थिते सति विवाहो न कार्य्य इत्यर्थः । यथा, तत्रैव "सक्रूरे वा शशिनि क्रूरद्वयमध्यगे विलग्ने वा। शुभकर्म्माणि स्तम्भेच्छुर्नैवोपदिशेन्नरेन्द्राणाम्" तथा व्यतीपातवैधृतियोगयुक्तदिनं त्यक्त्वा विष्टिकरणं रिक्ता तिथिश्च त्यक्त्वा पाणिग्रहः कार्य्य इत्यन्वयः । अत्र च "नन्दायां भार्गवदिने त्रयोदश्यां त्रिजन्मनि । तत्र श्राद्धं न कुर्वीत पुत्रदारधनक्षयात्" इति सावकाशश्राद्धनिषेधात् नन्दातिथौ त्रयोदश्याञ्च श्राद्धासम्भवे विवाहो निषिद्ध इत्यर्थः । 'क्रूराहायणचैत्रपौषरहिते' इति । क्रूराहायणचैत्रपौषाणां रहिते त्यागे सतीत्यर्थः । क्रूराहाः पापग्रहवाराः एतेन सोमबुधगुरुशुक्रवाराः प्रशस्ता इत्यर्थः । अत्र च नन्दाया भार्गवदिने इत्यादिना सावकाशश्राद्धनिषेधेऽपि शुक्रवारे विवाहः कार्य्यः शुक्रवारस्य शब्दोपात्तत्वे तत्तद्विधिवैयर्थ्यापत्तेः । यथा पशुपतिदीपिकायां "पौष्णानुराधमघरोहिणिमूलहस्ताः स्वात्युत्तरामृगशिरश्च शुभा विवाहे । वारास्तथा बुधबृहस्पतिशुक्रचन्द्रा रिक्तेतराश्च तिथयः खलु विष्टिहीनाः "॥ एतेन यत्र सामान्यविधिस्तत्र सावकाशश्राद्धनिषेधः । यत्र च शब्दो विशेषविधिस्तत्र कर्त्तव्यमेवेति निर्गलितोऽर्थः । तथा क्रूरग्रहस्थापनं सञ्चारदिनम् केचित्तु क्रूरायणं दक्षिणायनमित्याहुः । तन्न। पौषनिषेधस्य व्यर्थत्वादिति तथा पौषचैत्रमासयोस्त्यागे सतीत्यर्थः । राजमार्त्तण्डे—"माङ्गल्येषु विवाहेषु कन्यासंवरणेषु च । दशमासाः प्रशस्यन्ते चैत्रपौषविवर्जिताः "॥ केचित्तु याम्यायने निषेधमाहुः । यथा तत्रैव "ऊढा दक्षिणमार्गगे दिनकृतौ नव प्रतिष्ठा वर्जनकन्येत्याह समस्तशास्त्रकुशलो वेद्यो मुनीनां मतम् । साध्वीत्युत्तरमार्गगे सुतधनोपेता विहायापरं चैत्रं पौषयुतं हरेश्च शयनं शेषं जगुः शोभनम् ॥" इति । अत्रच मुनिमतद्वैधे वैकल्पिक एव शास्त्रार्थं षोडशिग्रहणाग्रहणवदिति अत्र च कन्याया वत्सरशुद्धिमाह । राजमार्त्तण्डे "मासत्रयात् मयुग्मके" इत्यादि । "अष्टवर्षा भवेद्गौरी नववर्षा तु रोहिणी । दशवर्षा भवेत्कन्या परतस्तु रजस्वला ॥" (नववर्षातुकन्यका । संप्राप्ते द्वादशे वर्षे इति तु पाठः) 'माता चैव पिता चैव ज्येष्ठभ्राता तथैव च । त्रयस्ते नरकं यान्ति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम् । यस्तां विवाहयेत्कन्यां ब्राह्मणो मदमोहितः । असम्भाष्यो ह्यपाङ्क्तेयोऽयं स विप्रो वृषलीपतिः ।" अतिप्रौढायान्तु कालनियममाह । "अतिप्रौढा तु या कन्या नानुकूलं प्रतीक्षते" इति । लग्नांशके मानुषे इति कन्यातुलामिथुनलग्ने तन्नवांशे च पाणिग्रहः कार्य्य इत्यर्थः । सौभाग्येण तु कुम्भधनुषोरप्युक्तं तदशुद्धं 'कन्यातुलामिथुनेन साध्वी शेषेष्वसाध्वी धनवर्जिता च' इति वक्ष्यमाणत्वात् । उक्तञ्च तौलिमृगमिथुनपुत्रान्विति ॥

अर्थ-दम्पतीके अर्थात् वर और कन्याके द्विद्वादश, नवमपञ्चम और षडष्टकादि न रहनेसे वरके सूर्य्य और कन्याके चन्द्र शुद्ध रहनेसे और सूर्य्य, मङ्गल, शनि और शुक्रके साथ अथवा पापद्वयके मध्यमे चन्द्रकी स्थिति न होनेसे और व्यतीपात, वैधृति, विष्टिकरण, रिक्ता तिथि, पापग्रहके वार दक्षिणायन चैत्र और पौषमास त्यागकरके द्विपद लग्नके नवांशमें विवाह प्रशस्त है ॥ ३२ ॥

अथ निषिद्धमासकथनम् ।

आषाढे धनधान्यभोगरहिता नष्टप्रजा श्रावणे
वेश्या भाद्रपदे इषे च मरणं रोगान्विता कार्त्तिके ।
पौषे प्रेतवती वियोगबहुला चैत्रे मदोन्मादिनी
अन्येष्वेव विवाहिता पतिरता नारी समृद्धा भवेत् ॥ ३४ ॥

अर्थ-अब विवाहके निषिद्ध मास कहतेहैं यथा-आषाढमासमें कन्याका विवाह होनेसे धनधान्यभोगसे रहित होतीहै, श्रावणमासमे विवाह होनेसे सन्तानका नाश होजाताहै इसीप्रकार भाद्रपदमें वेश्या, आश्विनमे मृत्यु, कार्तिकमें रोगवती, पौषमें प्रेतगा और वियोगान्विता और चैत्रमासमे विवाह होनेसे वह कन्या मदोन्मत्ता होती है । वैशाख, ज्येष्ठ, मार्गशिर, माघ और फाल्गुन मासमे कन्याका विवाह होनेसे पतिपरायण और समृद्धिशालिनी होतीहै ॥ ३४ ॥

अथ प्रशस्तमासाः ।

माघफाल्गुनवैशाखज्यैष्ठमार्गाःशुभावहाः ।
उक्तस्तथैव चाषाढः कथितः शुभदो बुधैः ॥ ३५ ॥

अर्थ-मतान्तरमें कहाहै कि, माघ, फाल्गुन, वैशाख, ज्येष्ठ, अगहन और आषाढ मास विवाहमें शुभदायक है ॥ ३५ ॥

माङ्गल्येषु विवाहेषु कन्यासंवरणेषु च ।
दश मासाः प्रशस्यन्ते चैत्रपौषविवर्जिताः ॥ ३६ ॥
राजमार्त्तण्डे ।

अर्थ-राजमार्त्तण्डमे लिखा है कि, कन्याके शुभ विवाहमे चैत्र और पौषमासको छोडकर और दशमासही प्रशस्त है ॥ ३६ ॥

अथ प्रशस्ताप्रशस्तवारकथनम् ।

गुरुशुक्रबुधेन्दूनां दिनेषु सुभगा भवेत् । ❀

❀ "गुरुशुक्रबुधाहेषु विवाह: शुभद: सदा" इति ।

सूर्य्यार्किभूमिपुत्राणां दिनेषु कुलटा मता ॥ ३७ ॥

अर्थ-अब विवाहके शुभाशुभ वार कहते हैं । बृहस्पति, शुक्र, बुध और सोमवारमें विवाह होनेसे कन्या सौभाग्यशालिनी होतीहै और रवि, शनि और मङ्गलवारमें विवाहिता कन्या कुलटा होजातीहै ॥ ३७ ॥

अपरञ्च ।

अङ्गारकदिने चैव या कन्या परिणीयते ।
न तृप्तिं पुरुषैर्याति काष्ठैरिव हुताशनः ॥ ३८ ॥

अर्थ-वचनान्तरमें कहाहै कि, मङ्गलवारमें यदि कन्याका विवाह हो तो काष्ठदाहसे अग्निकी जिसप्रकार तृप्ति नही होतीहै उसी प्रकार विवाहिता कन्याभी पुरुष द्वारा तृप्तिलाभ नही करसक्तीहै ॥ ३८ ॥

अन्यच्च ।

अर्कार्किभूमिपुत्राणां दिनेषु कलहप्रिया ।
सापत्न्यं समवाप्नोति तुषारकरवासरे ॥ ३९ ॥ (उ)

अर्थ-ग्रन्थान्तरमें कहाहै कि, रवि, शनि और मङ्गल वारमें विवाह होनेसे कन्या कलहकारिणी होतीहै और सोमवारमें विवाहिता कन्या सपत्नीके साथ कलहकारिणी होतीहै ॥ ३९ ॥

अथ तिथिकथनम् ।

[illegible] विप्रिसंज्ञके ।

रिक्तासु विधवा कन्या दर्शेऽपि स्याद्विवाहिता ।
शनैश्चरदिने चैव यदि रिक्ता तिथिर्भवेत् ।
तस्यां विवाहिता कन्या पतिसन्तानवर्द्धिनी ॥ ४१ ॥

इति सत्कृत्यमुक्तावल्याम् ।

अर्थ-रिक्ता और अमावस्या तिथिमे विवाहिता कन्या विधवा होतीहै, किन्तु शनिवारमे यदि रिक्ता तिथि हो तब उसमें कन्याका विवाह होनेसे वह कन्या पतिके संसर्गसे बहु संतान प्रसव (उत्पन्न) करती है ॥ ४१ ॥ (क)

तिथिश्चतुर्थी नवमी चतुर्दशी तथाष्टमी देवकुहूदिनञ्च ।
विष्टिर्व्यतीपातदिवाविवाहे वैधव्यमाप्नोत्यपि देवकन्या ॥ ४२ ॥

इति कृत्यचिन्तामणौ ।

अर्थ-कृत्यचिन्तामणिमे लिखाहै कि, चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस्या, विष्टि भद्रा तिथिमें, व्यतीपातयोगमें और दिनमें विवाह होनेसे नारी देवकन्या होनेसेभी उसको वैधव्य प्राप्तहोताहै ॥ ४२ ॥

अथ नक्षत्रकथनम् । (ख)

पूर्वात्रये विशाखायां शिवाद्यभचतुष्टये ।
ऊढा चाण्डे भवेत्कन्या विधवातो विवर्जयेत् ॥ ४३ ॥

इति भीमपराक्रमे ।

अर्थ- पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा, विशाखा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य और आश्लेषा नक्षत्रमें विवाहिता कन्या शीघ्रही विधवा होतीहै अतएव यह सब नक्षत्रोंमें विवाहनिषिद्ध है ॥ ४३ ॥

विष्णुभाद्ये त्रिके चित्रे ज्येष्ठायां ज्वलने त्रिके । *
एभिर्विवाहिता कन्या भवत्येव सुदुःखिता ॥ ४४ ॥

अर्थ-श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, चित्रा, ज्येष्ठा, अश्विनी, भरणी और कृत्तिका नक्षत्रमे विवाहिता कन्या अत्यन्त दुःखभागिनी होतीहै ॥ ४४ ॥

(क) मङ्गलवारमे जया (त्रयोदशी, अष्टमी और तृतीया तिथि) होनेसे अष्टमीतिथिका दोष ग्राह्य नहीं होताहै ॥

(ख) "मूला मघानुराधा च रोहिण्युत्तररेवती । हस्ता मृगशिरा, स्वातिर्विवाहे च सुशोभनाः" । इति प्रशस्तनक्षत्रम् ।

(*) ज्वलने त्रिके ज्वलनान्तत्रिके इत्यर्थः इति माधवाचार्य्यः । ज्वलने यमे इत्यपि क्वचित्पाठः ।

कन्यायाः पाणिं गृह्णीयात्रिषु त्रिषूत्तरादिषु
स्वातौ मृगशिरोरोहिण्यां वा ॥ ४५ ॥ (ऌ)

इति पारस्करः ।

अर्थ–पारस्करने कहाहै कि, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, उत्तराषाढा, श्रवण, धनिष्ठा, उत्तराभाद्रपदा, रेवती, अश्विनी, स्वाति मृगशिर और रोहिणी इन नक्षत्रोंमे कन्याका विवाह करै । चित्रा, श्रवण, धनिष्ठा और अश्विनी नक्षत्रमें यजुर्वेदियोंका विवाह होताहै । कोई २ यजुर्वेदी आपत्कालमें इन चार नक्षत्रोंका व्यवहार कहतेहै ॥ ४५ ॥

आद्ये मघाचतुर्भागे नैर्ऋतस्याद्य एव च ।
रेवत्यन्तचतुर्भागे विवाहः प्राणनाशकः ॥ ४६ ॥ (ॡ)

इति गण्डपादवर्जनम् । ※

अर्थ–विवाहमें विहित नक्षत्र मघा, मूल और रेवतीको विशेष कहते हैं यथा मघा और मूलनक्षत्रके प्रथम पादमे और रेवती नक्षत्रके शेष पादमे विवाह होनेसे प्राणनाश होताहै अतएव मघा और मूलनक्षत्रके प्रथमपाद और रेवती नक्षत्रका शेष पाद इनको त्याग करके विवाह करै ॥ ४६ ॥

अथ त्याज्ययोगकथनम् ।

व्याघातशूले परिघातिगण्डे गण्डे व्यतीपातपुरन्दरान्ते ॥
पाणिग्रहं यो विदधाति शीघ्रं यमालयं याति सवैधृतौ च ॥ ४७ ॥ (ए)

इति ज्योतिषतत्त्वे ।

अर्थ–विवाहमें नित्य योगोमेसे कौन योग त्याज्य होताहै अब उसको कहतेहै । व्याघात, शूल, परिघ, अतिगण्ड, गण्ड, व्यतीपात इंद्र और वैधृतियोगमें विवाह होनेसे शीघ्रही यमालयको जाताहै, अतएव उक्त समस्त योगमे विवाह न करना चाहिये ॥ ४७ ॥

(ऌ) चित्राश्रवणधनिष्ठाश्विनिनक्षत्रं यजुर्वेदिविषयमापद्विषयं वेति । सत्कृत्यमुक्तावल्याम् ।

(ॡ) गण्डपादवर्जनमाह । आद्यइति । मघाया आद्ये चतुर्थभागे प्रथमपादे नैर्ऋतस्य मूलायाश्च प्रथमे पादे रेवत्या अन्तपादे विवाहः प्राणनाशकः अन्येषान्तु गण्डानामैवाश्विकनक्षत्रान्तेन [illegible] निषेध इति ।

※ "मासान्ते म्रियते कन्या तिथ्यन्ते स्यादपुत्रिणी । नक्षत्रान्ते च वैधव्य वर्षान्ते वंशनाशनम् " इति ॥

(ए) "वैधृतिकैः परिणीता विकलेन्द्रिया व्यतीपाते । विशूला मरण [illegible] सुभगा [illegible] करणेषु । ध्रुवगणैः शकुनाद्यैः परिगृहाद्ध्रुवं मृत्युम् ॥"

अन्यच्च ।

कुलच्छेदो व्यतीपाते परिघे स्वामिघातिनी ।
वैधृतौ विधवा नारी विषदाहोऽतिगण्डके ॥ ४८ ॥
व्याघाते व्याधिसंघातः शोकार्त्ता हर्षणे तथा ।
शूले च व्रणशूलं स्याद्गण्डे रोगभयं तथा ॥ ४९ ॥
विष्कम्भेऽप्यहिदंशः स्याद्वज्रके मरणं भवेत् ।
एते वै दारुणाः सर्वे दश योगाः प्रकीर्त्तिताः ॥ ५० ॥

इति रत्नमालायाम् ।

अर्थ-रत्नमालानामक ग्रन्थमे लिखाहै कि, व्यतीपातयोगमे विवाह होनेसे कुलच्छेद होताहै, इसीप्रकार परिघयोगमे स्वामीका नाश, वैधृतिमें विधवा, अतिगण्डमे विषदाह, व्याघातमे समस्त रोग, हर्षणमें शोक, शूलमें व्रण और शूलरोग, गण्डमें रोगभय विष्कम्भमें सर्पदंशन और वज्रयोगमे विवाह होनेसे मृत्यु होतीहै, यह दशयोग अतिभयानक हैं अतएव इनमे कदापि विवाह न करै ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥

अथ लग्नकथनम् ।

कन्यातुलाभून्मिथुनेषु साध्वी शेषेष्वसाध्वी धनवर्जिता च ।
निन्द्येऽपि लग्ने द्विपदांशइष्टःकन्यादिलग्नेष्वपि नान्यभागः॥५१॥(ऐ)

अर्थ-कन्या तुला और मिथुन लग्नमें विवाहिता कन्या साध्वी होतीहै, वृश्चिक, धन, मकर, कुम्भ, मीन, मेष, वृष, कर्क और सिंह लग्नमें विवाहिता नारी असाध्वी होती है, किन्तु इनके बीचमें विशेष यही है कि, कन्या, तुला और मिथुन लग्नके द्विपदांश (१) इष्टफलदायक होकर साध्वीत्व प्रदान करतीहै और अन्यभागमें केवल साध्वीत्व प्रदानकरतीहै । और निन्द्य लग्नके मध्यमेंभी द्विपदांश इष्ट फल दानकरतीहै, किन्तु कन्यादि लग्नके सद्भाव होनेसे और लग्नके द्विपदांश शुभ नही होताहै ॥ ५१ ॥

अपरञ्च ।

व्यूढा धनुषि कुलटा तत्पूर्वार्द्धे सतीत्यपरे जगुः ॥ ५२ ॥

(ऐ) विहितलग्ननवांशानाह । कन्येति । निन्द्ये लग्ने कन्यादिव्यतिरिक्तलग्ने द्विपदाना कन्यादीना नवांश इष्ट कन्यादिलग्नादिभावे तन्नवांशे वा कर्त्तव्यमित्यर्थः । तथा कन्यादिलग्नेष्वपि अन्यनवांशे न कार्य्य किन्तु तेषा नवांश एव इति ।

(१) मिथुन, तुला, कुम्भ, कन्या और धनके पूर्वार्द्धका नाम द्विपद है और इनके नवांशोंको द्विपदांश कहते है ॥

अर्थ—धन लग्नके परार्द्धमें विवाहिता कन्या कुलटा होतीहै. किन्तु पूर्वार्द्धमें विवाह होनेसे सती होतीहै ॥ ५२ ॥

अन्यच्च ।

कन्यातुलामन्मथांशे भवेत्पाणिग्रहो यदि ।
तद्द्रेक्काणे च कन्याया वैधव्यं मरणं भवेत् ॥ ५३ ॥

अर्थ—ग्रन्थान्तरमें लिखाहै कि, कन्या, तुला और मिथुनके अपने २ नवांशमें और अपने २ द्रेक्काणमें कन्या परिणीता होनेसे उसको वैधव्य और मृत्यु प्राप्त होताहै. अतएव कन्यादि लग्नके अपने२ नवांशमें और द्रेक्काणमें विवाह निषिद्ध है॥५३॥

अथ युतयामित्रवेधादिवर्जनकथनम् ।

पञ्चपाणिग्रहे दोषा वर्जनीयाः प्रयत्नतः ।
वैधव्यं कुलटामृत्युर्दारिद्यमनपत्यता ॥ ५४ ॥
युतयामित्रवेधौ च तथा सप्तशलाकजः ।
इन्द्वष्टमगतः पापः खर्ज्जुरश्चापि पञ्चमः ॥ ५५ ॥

अर्थ—विवाहमें युतवेध, यामित्रवेध, सप्तशलाका, इन्द्वष्टमगत पाप और खर्जुरवेध यह पांच योग अवश्यही वर्जनीय हैं. क्योंकि युतवेधसे वैधव्य प्राप्त होताहै. इसी प्रकार यामित्रवेधसे कुलटादोष, सप्तशलाकासे मृत्यु, इन्द्वष्टमगतपापसे दारिद्रता और खर्जुरवेधसे वन्ध्यत्व प्राप्तहोताहै ॥ ५४ ॥ ५५ ॥

अथ यामित्रवेध ।

रविमन्दकुजाक्रान्तं मृगाङ्कात्सप्तमं त्यजेत् ।
चूडाविवाहयात्रासु गृहकर्म्मप्रवेशने ॥ ५६ ॥ (ओ)

अर्थ—चन्द्रमा जिस राशिमे हो उस स्थानसे सप्तमराशिमें यदि रवि, शनि अथवा मङ्गलका वास हो तब यामित्रवेध होताहै. इसमे चूडा, विवाह, गृहारम्भ और गृहप्रवेश न करना चाहिये ॥ ५६ ॥

(ओ) सप्तमस्थे पापे चन्द्रवेधमाह–रवीति । यस्य चन्द्रस्य सप्तमे रविः शनिः कुजो वा तिष्ठति तं चन्द्रं विवाहादिषु वर्जयेदिति तात्पर्य्यम्। तथाच राजमार्त्तण्डे 'पापे स्मरगत [illegible]' इत्यादि। मित्रगृहादौ दोषाभावमाह राजमार्त्तण्डे. । "मित्राश्रमे मित्रसमाश्रितो वा मित्रांशके मित्रसमाश्रितो वा । क्रूरग्रहादस्तगतोऽपि सोम समीहितार्थं वितनोति [illegible] " तथा । [illegible] सुहृदीक्षितो वा भास्वन्मयूखविमलीकृतदिङ्मुखो वा । यामित्रदोषमपहत्य [illegible] करोति सोमः समीहितफलं खलु मानवानाम्" इति ।

यामित्रसंस्थे म्रियते महीजे प्रजाविहीना कुलटा च सूर्य्ये ॥
सुरारिपूज्ये रजनीकरे वा कन्यान्यरक्ता परिघातिनी च ॥ ५७ ॥

इति सारसंग्रहधृतवचनम् (औ)

अर्थ–यामित्र स्थानमें (चन्द्रके सप्तम) मङ्गल होनेसे मृत्यु होतीहै, इसी प्रकार सूर्य्य रहनेसे सन्तानहीना और व्यभिचारिणी होतीहै और चन्द्र शुक्रके साथ युक्त होनेसे नारी परपुरुषके वशमे होकर अपने पतिका वध करती है । यह वचन दीपिकामे विवाहप्रश्नसम्बन्धमें लिखाहै ॥ ५७ ॥

अथ यामित्रवेधप्रतिप्रसवमाह ।

यस्मिन्नृक्षे वसेच्चन्द्रस्तस्माहृक्षे चतुर्दशे ।
पापग्रहे स्थिते चैव यामित्रवेध इष्यते ॥ ५८ ॥

इति सारसंग्रहे ।

अर्थ–अत्र यामित्रवेधके प्रतिप्रसव कहतेहैं । जिस नक्षत्रमे चन्द्र स्थित हो उस नक्षत्रसे चौदहवें नक्षत्रमे यदि पापग्रह हो तोभी यामित्रवेध होताहै ॥ ५८ ॥

मूलत्रिकोणनिजमन्दिरगोऽथ पूर्णो
मित्रर्क्षसौम्यगृहगोऽथ तदीक्षितो वा ।
यामित्रवेधविहितानपहृत्य दोषा–
न्दोषाकरः सुखमनेकविधं विधत्ते ॥ ५९ ॥

अर्थ–चन्द्रमा यदि मूलत्रिकोण (×) मे वा अपने घरमें (कर्कमें) स्थित हो, पूर्ण अवस्थाको प्राप्त हो मित्र (सूर्य्य वा बुध) के घरमे हो, अथवा शुभग्रहके क्षेत्रमे स्थित हो वा शुभग्रहकी दृष्टि हो तब यामित्रवेधका दोष नष्ट होकर शुभफल होताहै ॥ ५९ ॥

अथ यामित्रयुतवेधः ।

पापात्सप्तमगः शशी यदि भवेत्पापेन युक्तोऽथवा

(औ) योगान्तरमाह–यामित्रेति । सप्तमस्थे मङ्गले कन्या म्रियते सूर्य्ये सप्तमस्थे पुत्रविहीना कुलटा च स्यात् कुलटात्वश्च लग्ने सूर्य्ये चेति बोद्धव्यम् । तथाच ' दिवसमणि सप्तमगो लग्नात्कन्यां मृतप्रजां कुर्य्यात् । कुलटामुदयोपेत कुरुते नैवात्र सन्देह " ॥ रजनीकरे वेति वाशब्द. समुच्चये शुक्रे चन्द्रे मिलित्वा सप्तमस्थे परपुरुषगामिनी पतिघातिनी च स्यात्तथा च दैवज्ञवल्लभायाम् । "सक्रूरौ कुरुतोऽमृतांशुशशिजौ षष्ठे स्त्रियं दुर्भगा कुर्वाते शशिभार्गवौ च कुलटामाये च जायास्थितौ " इति ॥

× चन्द्रकी मूलत्रिकोण वृषराशि है ।

यत्नेनाशु विवर्जयेन्मुनिमतो दोषोऽप्ययं कथ्यते ।
यात्रायां विपदो गृहे सुतवधः क्षौरे च रोगोद्भव-
श्चोद्वाहे विधवा व्रते च मरणं शूलञ्च पुंकर्म्मणि ॥ ६० ॥

इति सारसंग्रहे ।

अर्थ–अब यामित्रयुतवेध कहतेहैं । पापग्रहसे सप्तम स्थानमें यदि चन्द्र स्थित हो तब यामित्रवेध होताहै और पापग्रहके साथ युक्त होनेसे युत वेध होताहै । युतवेधमे यात्रा करनेसे अनिष्ट होताहै. इसीप्रकार गृहारम्भमें पुत्रनाश, चूडाकर्म्ममें रोग, विवाहमें वैधव्य, उपनयन (यज्ञोपवीत) में मरण और पुंसवन करनेसे शूलरोग उत्पन्न होताहै । अतएव उक्त सब कार्य्य युतवेधमें न करना चाहिये ॥ ६० ॥

अन्यच्च ।

यत्र राशौ भवेच्चन्द्रोऽशुभग्रहो यदा भवेत् ।
युतिदोषस्तदा ज्ञेयो विना शुक्रं शुभे शुभम् ॥ ६१ ॥

इति ज्योतिषसारे ।

अर्थ–ज्योतिःसारनामक ग्रन्थमें लिखाहै कि, जिस राशिमें चन्द्र स्थित हो उसी स्थानमें अशुभ ग्रहके स्थित होनेसे युतिवेध होताहै और शुक्रभिन्न शुभ ग्रह चन्द्रके साथ होनेसे शुभप्रद होताहै ॥ ६१ ॥

फलम् ।

रविणा संयुते हानिर्भौमेन निधनं शशी ।
करोति मूलनाशं च राहुकेतुशनैश्चरैः ॥ ६२ ॥

इति ज्योतिःसारे ।

अर्थ–अब युतिवेधका फल कहतेहैं । चन्द्र रवियुक्त होनेसे हानि होतीहै–इसी प्रकार मङ्गलयुक्त होनेसे मृत्यु और राहु, केतु वा शनैश्चर युक्त होनेसे मूलनाश होजाताहै ॥ ६२ ॥

अथ युतियामित्रादीनां प्रतिप्रसवः ।

वृषाजालिधनुःकर्किसिंहहीने च चन्द्रमाः ।
न दोषः पापयोर्मध्ये युतियामित्रयोरपि ॥ ६३ ॥ (अं)

(अं) " स्वक्षेत्रगः स्वोच्चगो वा मित्रक्षेत्रगतोऽपि ।
युतिर्दोषाय न भवेद्दम्पत्योः श्रेयसे सदा ॥ " इति ग्रन्थान्तरे युतिवेधप्रतिप्रसवः ।

अर्थ--वृष, मेष, वृश्चिक, धन, कर्क, सिह वा मीन राशिमें चन्द्रमा होनेसे यदि युतिवेध वा यामित्रवेध हो तब उसका दोष नही होताहै और पापद्वयमध्यगत चन्द्र यदि उक्त सब राशिमे स्थित होय तबभी दोष नही होताहै ॥ ६३ ॥

अथ सप्तशलाकवेधः ।

कृत्तिकादिचतुःसप्तरेखाराशौ परिभ्रमन् ।
ग्रहश्चेदेकरेखस्थो वेधः सप्तशलाकजः ॥ ६४ ॥ (अः)

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ–कृत्तिकादि अट्ठाईस रेखामें चन्द्र नित्यही भ्रमण करताहै किन्तु चन्द्रातिरिक्त ग्रह यदि वेधराशि वा उसके वेधनक्षत्रमे स्थित हो तब सप्तशलाकावेध होताहै । पाठकगणके हितार्थ आगे सप्तशलाकाचक्र निर्माणकियाहै ॥ ६४ ॥

अथ सप्तशलाकाचक्रम् ।

सप्तसप्तविलिखेत्तुरेखिकास्तिर्य्यगूर्द्धमथ कृत्तिकादिकम् ।
लेखयेदभिजिता समन्वितं चैकरेखगखगेन विध्यते ॥ ६५ ॥

इति राजमार्त्तण्डः ।

अर्थ–ऊर्द्धभावसे सात और तिर्य्यग्भावसे सात रेखा खींचे ऊर्द्ध रेखासे क्रमानुसार कृत्तिकादि नक्षत्र लिखै अभिजित् नक्षत्रके साथ गणना करनेसेही रेखा पूर्ण होतींहैं एक रेखामे ग्रह स्थित होनेसे वेध होताहै ॥ ६५ ॥

कृ. रो. मृ. आ पु. पु अ.
म. हि म.
अ. पू.
रे. उ.
उ. ह.
पू. चि.
श. स्वा.
ध. वि.
श्र. अ. उ. पू मू ज्ये अ.

अश्विनीपूर्वफाल्गुन्या रेवत्योत्तरफाल्गुनी ।
हस्तेनोत्तरभाद्रश्च पूर्वभाद्रश्च चित्रके ॥ ६६ ॥

(अ) सप्तशलाकवेधमाह–कृत्तिकादीति । कृत्तिकादिंकृत्वा अभिजिन्नक्षत्रेण सार्द्धं चतुःसप्तरेखाराशौ अष्टाविंशतिरेखास्तम्भे ऊर्द्धाध क्रमेण परिभ्रमन् ग्रहो यद्येकरेखास्थः स्यात्तदा सप्तशलाको वेधः स्यात् ।

स्वात्याशतभिषा विद्धा विशाखा च धनिष्ठया ।
कृत्तिका श्रवणाविद्धा रोहिण्यभिजिता तथा ॥ ६७ ॥
मृगशीर्षोत्तरापाढे पूर्वाषाढे तथार्द्रया ।
पुनर्वसौ च मूले च तथा पुष्यं च ज्येष्ठया ॥ ६८ ॥
आश्लेषयानुराधा च मघया भरणी तथा ।
विद्धान्येतानि राजेन्द्र अश्विन्यादिभतःक्रमात् ॥ ६९ ॥

अर्थ-किस नक्षत्रके साथ किस नक्षत्रका वेध होताहै अब उसको वर्णन करतेहै यथा--अश्विनीके साथ पूर्वाफाल्गुनीका वेध होताहै इसीप्रकार रेवतीके साथ उत्तराफाल्गुनीका, हस्तके साथ उत्तराभाद्रपदका, चित्राके साथ पूर्वाभाद्रपदका, स्वातिके साथ शतभिषाका, विशाखाके साथ धनिष्ठाका, कृत्तिकाके साथ श्रवणका, रोहिणीके साथ अभिजित्का, मृगशिरके साथ उत्तरापाढका, आर्द्राके साथ पूर्वापाढका, पुनर्वसुके साथ मूलका, पुष्यके साथ ज्येष्ठाका, आश्लेषाके साथ अनुराधाका और मघाके साथ भरणीनक्षत्रका वेध होताहै । इस वेधको अश्विन्यादिक्रमसे जानना चाहिये ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ ६९ ॥

अन्यच्च ।

हर्य्यंघ्री अभिजिद्विधी मृगशिरोवि[illegible] कबन्धेश्वरौ
रक्षोऽद्री गुरुवज्रिणावथ च मित्राही मघासूर्जौ ॥
योन्यश्वावथ चार्य्यमान्तगतभे हस्ताहिबुध्नावज-
त्वष्टारौ वरुणानिलौ वसुविशाखे भप्रभिन्ने इमे ॥ ७० ॥

इति ज्योतिःसार ।

अर्थ-अब ज्योतिषसारके अनुसार सप्तशलाकाचक्रमें किस नक्षत्रके साथ किस [illegible]त्रका वेध होताहै उसको कीर्तनकरतेहै । श्रवणनक्षत्रके साथ कृत्तिकानक्षत्रका वेध इसीप्रकार अभिजित्के साथ रोहिणीका, उत्तरापाढके साथ मृगशिरका, [illegible] साथ आर्द्राका, मूलके साथ पुनर्वसुका, ज्येष्ठाके साथ पुष्यका, अनुराधाके [illegible] न [illegible]का, मघाके साथ भरणीका, पूर्वाफाल्गुनीके साथ अश्विनीका, उत्तराफाल्गु[illegible] हस्तके साथ उत्तराभाद्रपदका, चित्राके साथ पूर्वाभाद्रपदका, [illegible] शतभिषाका और विशाखानक्षत्रके साथ धनिष्ठानक्षत्रका वेध होता है ॥ ७० ॥

(अं) " स्वक्षेत्र[illegible] यतिर्दोषाय [illegible]

अथाभिजिन्नक्षत्रकथनम्।

वैश्वस्य चतुर्थांशे श्रवणादौ लिप्तिकाचतुष्के च।
अभिजित्तत्स्थे खचरे विज्ञेया सा रोहिणीविद्धा ॥ ७१ ॥ (क)

अर्थ–उत्तराषाढनक्षत्रका शेष चतुर्थांश (चौथापाद) और श्रवणनक्षत्रके आदिके चारदण्डका नाम अभिजित् है इस अभिजिन्नक्षत्रमे ग्रह रहनेसे रोहिणीके साथ वेध होताहै ॥ ७१ ॥

अथ सप्तशलाकवेधफलम्।

यस्याः शशी सप्तशलाकभिन्नः पापैरपापैरथवा विवाहे ॥
रक्तांशुकेनैव रुरोदमाना श्मशानभूमिं प्रमदा प्रयाति ॥ ७२ ॥ (ख)

अर्थ–जिसके विवाहसमय सप्तशलाकाचक्रमे चन्द्रके साथ पापग्रहका वा शुभग्रहका वेध हो तव वह कन्या विवाहके रक्तवस्त्रपरिधानपूर्वक रोदनकरतीहुई श्मशानभूमिमें अग्निमे प्रवेशकर गमनकरतीहै ॥ ७२ ॥

अन्यच्च।

चन्द्रातिरिक्तखचरैर्यद्यत्र वधसम्भवः।
चिताभूमिं विशेन्नारी भर्त्ता च प्रविशेद्वनम् ॥ ७३ ॥

इति सप्तशलाकावेधफलम्।

अर्थ–विवाहसमय सप्तशलाकाचक्रमे चन्द्र भिन्न ग्रहके साथ यदि वेध हो तव वह कन्या चिताभूमिमें प्रवेशकरतीहै अर्थात् उसकी मृत्यु होतीहै और उक्त कन्याका स्वामीभी वनको निकलजाताहै ॥ ७३ ॥

अथ इन्द्वष्टमगतपापकथनम्।

इन्द्वष्टमगान्पापान्वर्जयेन्निधनं विलग्नञ्च।
चन्द्रञ्च निधनसंस्थं सर्वारम्भप्रयोगेषु ॥ ७४ ॥ (ग)

(क) अभिजिन्नक्षत्रस्थानमाह–वैश्वस्येति। वैश्वस्य उत्तराषाढाया. चतुर्थे पादे श्रवणाया आदिलिप्तिकाचतुष्के प्रथमचतुर्दण्डे अभिजिन्नक्षत्रं तत्रस्थे ग्रहे रोहिणी विद्धा ज्ञेया इति।

(ख) विवाहे सप्तशलाकदोषमाह–यस्याइति। सुगममिति।

(ग) सर्वकर्म्मसु चन्द्रलग्नयोर्वर्जनमाह–इन्द्वष्टेति। इन्दो. लग्नादष्टमस्थाने च गतान् चन्द्रस्थ तान् लग्नाष्टमगतांश्च पापान् वर्जयेत्। पापानिति। वहुवचनमविवक्षितम्। यथा राजमार्त्तण्डे–'निधनं निधनविलग्ने वित्तनाशो विनाशगे हिमगौ। पापग्रहे निधनगे चन्द्रगतेऽप्यनेकवैधुर्य्यम् ॥'तथा 'सक्रूरे वा शशिनि क्रूरद्वन्द्वमध्यगे विलग्ने वा। शुभकर्म्माणि शुभेच्छुर्नैवोपदिशेन्नरेन्द्राणाम् ॥ यस्य

अर्थ—अब इन्द्वष्टमगत पाप कहतेहैं । चन्द्रके अष्टमस्थानमे पापग्रह होनेसे उसको इन्द्वष्टमगत पाप कहतेहैं, इस इन्द्वष्टम गत पापको, लग्नाष्टमगत पापको और अष्टमस्थ चन्द्रको समस्त कार्य्योंमें परित्याग करनाचाहिये ॥ ७४ ॥

अन्यच्च ।

जन्मर्क्षान्निधने शशी यदि भवेल्लग्नाच्च पापोऽष्टमः
पापात्सप्तमगोऽथवा हिमकरः पापेन वा संयुतः ॥
लग्नश्चाष्टमगं नृणां यदि भवेत्स्वाज्जन्मलग्नात्तदा
यात्रापुंसवनव्रतादिषु महान्दोषो विवाहे ध्रुवम् ॥ ७५ ॥

इति भोजदेवः ।

अर्थ—मनुष्यकी जन्मराशिसे अष्टमस्थानमे चन्द्रमा हो. लग्नके आठवे पापग्रह हो वा पापग्रहके सातवें चन्द्रमा हो या पापग्रहयुक्त चन्द्रमा हो अथवा जन्मलग्नसे अष्टम लग्नमें यात्रा, पुंसवन उपनयन और विवाहादि शुभकार्य्य करनेसे अत्यन्त अमङ्गल होताहै ॥ ७५ ॥

इन्द्वष्टमगतफलम् ।

अष्टमस्थः कुजश्चैव नेत्ररोगं ददाति हि ।
मृत्युं मार्त्तण्डजो दद्यान्मार्त्तण्डो बुद्धिनाशनम् ॥ ७६ ॥
सैंहिकेयो महाव्याधिं चन्द्रान्निधनगो यदा ।
चन्द्रान्निधनगाः पापा लग्नाद्वा निधनोपगाः ॥
कर्त्तुर्मृत्युप्रदा नित्यं सर्वदा शान्तिकर्म्मसु ॥ ७७ ॥

अर्थ—ग्रन्थान्तरमे लिखाहै कि, विवाहादि शुभकर्ममें चन्द्रमे आठमे मङ्गल होनेसे नेत्ररोगको प्रदान करतेहै. शनैश्चर चन्द्रके आठवें होनेसे मृत्युदान करतेहै, इसीप्रकार अष्टम सूर्य्यसे बुद्धिका नाश, अष्टम राहु होनेसे महाव्याधिरोगसे युक्त होताहै और शुभकर्ममें लग्नके आठवे पापग्रह होनेसे कर्त्ताकी मृत्यु होतीहै ॥ ७६ ॥ ७७ ॥

व्रतोपनयनादिशुभक्रियासु क्रूरोऽष्टमो भवति वाथ शशी विलग्नात् । " इत्यादिविलिख्यमाणवचनैः । इन्दोरष्टमगतान् पापान् वर्जयेदिति तथा जन्मराशेरष्टम लग्न वर्जयेत्तथा जन्मलग्नस्याष्टमलग्नं चन्द्रञ्च वर्जयेत् । अत्र सौभरि. जन्मराशेरष्टमस्थमिति वदति तत्र तस्य गोचरशुद्ध्यैव प्राप्त पर निवृत्त- त्वात् पुनर्निषेधोऽनर्थकः स्यादिति । तथाच रत्नमार्त्तण्डे "यस्य व्रतोपनयनादिशुभक्रियासु क्रूरा ऽष्टमो भवति वाथ शशी विलग्नात् । तस्याचिरेण मरणं परिकीर्तयन्ति सन्तः सुरेन्द्रसचिवोऽपि न कण्टकस्थे " इति ।

मृत्युस्थाने शशाङ्काज्जनयति च भयं तिग्मरोचिर्नराणां
बन्धूनां शोकमुग्रं विविधगदभयं भूमिजो भूमिनाशम् ॥
मार्त्तण्डिर्वज्रपातं जठरगदभयं सर्वदा शान्तिकर्म
तस्मात्पीयूषभानोर्निपतनभवने नैव पापाः प्रशस्ताः ॥ ७८ ॥

इति कृत्यचिन्तामणौ।

अर्थ–कृत्यचिन्तामणि ग्रन्थमें लिखाहै कि, शुभकार्य्यमें चन्द्रके अष्टमस्थानमें सूर्य्य होनेसे अतिशोक और अनेक प्रकारका रोगभय होताहै. मङ्गलचन्द्रके आठवे होनेसे भूमिका नाश होताहै. शनैश्चर चन्द्रके आठवें होनेसे मनुष्यके मस्तकमें वज्रपात और उदरपीडा होतीहै अतएव चन्द्रके अष्टमस्थानमे पापग्रह होनेसे शुभकार्य्य न करना चाहिये ॥ ७८ ॥

चन्द्रान्निधनगे पापे निधनं परिकीर्त्तितम् ॥ ७९ ॥

इति भैरवभट्टः।

अर्थ–चन्द्रके अष्टमस्थानमें पापग्रह होनेसे कर्त्ताकी मृत्यु होतीहै. इसप्रकार भैरवभट्टने कहाहै ॥ ७९ ॥

इन्द्वष्टमप्रतिप्रसवमाह।

चन्द्रस्थितर्क्षाद्यदि षोडशर्क्षे सूर्य्यारमन्दाः समुपावहन्ति।
तदा विवाहं व्रतवन्धचूडं सर्वं न कार्य्यं मुनयो वदन्ति ॥८०॥

अर्थ–अब इन्द्वष्टमगत पापके प्रतिप्रसव कहतेहैं–कर्मकालमे चन्द्र जिस स्थानमे हो उस नक्षत्रसे षोडश (१६) नक्षत्रमे यदि सूर्य्य. मङ्गल वा शनि स्थित हों तभी दोष होताहै। इसमे विवाह. उपनयन और चूडादि शुभकर्म न करना चाहिये, किन्तु षोड़श नक्षत्र गत न होनेसे विवाहादिकर्ममे कुछ बाधा नही होतीहै ॥ ८० ॥

अथ खर्जूरवेधः।

तिथ्यङ्गवेदैकदशोनविंशभैकादशाष्टादशविंशसंख्याः।
इष्टोडुना सूर्य्ययुतोडुना च योगादमूश्चेद्दशयोगभङ्गः ॥ ८१ ॥ (घ)

(घ) विद्धनक्षत्रमाह–तिथ्यङ्गेति। इष्टनक्षत्र-. सूर्य्याक्रान्तनक्षत्रेण च योगात् यदि तिथ्यङ्गादयोऽमूर्दशसंख्या भवन्ति तदा दशयोगभङ्ग स्यात्सप्त-ंशाधिके तु सप्तविंश वर्जयित्वा शेषेण दशयोगभङ्गो विचार्य्य.। यथा राजमार्त्तण्डे "साध्यर्क्षमिन्दुयुतमर्कसमान्वितश्च भाग प्रदेय उडुभिर्दशयोगचक्रम्" इति।

अर्थ-अब खर्जूरवेधका कीर्त्तन करतेहैं। चन्द्रनक्षत्रके साथ सूर्य्यका नक्षत्र योगकरनेसे यदि पन्द्रह, छह, चार, एक, दश, उन्नीस, सत्ताईस, ग्यारह, अठारह अथवा बीस इन संख्यामेंसे जो कोई अङ्क हो तभी खर्जूरवेध होताहै खर्जूरवेधका नामान्तर दशयोगभङ्ग है और इसको विद्धनक्षत्रभी कहतेहैं ॥ ८१ ॥

ऊर्द्ध्वमेका तथा रेखा तिर्य्यग्रेखास्त्रयोदश।
आश्लेषां मस्तके दत्वा दक्षिणाक्रमयोगतः ॥ ८२ ॥
मघादीन्यपि देयानि चेत्थं खर्जूरवेधतः।
इष्टनक्षत्ररेखायां यदि तिष्ठति भास्करः।
वेधस्तदा स्यान्नोद्वाहः कार्य्यस्तत्र कदाचन ॥ ८३ ॥

इति ज्योतिःसारे।

अर्थ- अब खर्जूरवेध देखनेकी प्रणाली (रीति) लिखतेहै। ऊर्द्ध्वदिशामें एक रेखा खींचकर तिर्य्यग्भावमें तेरह रेखा खीचना चाहिये। अनन्तर ऊर्द्ध्वरेखाके ऊपरमें आश्लेषानक्षत्र रखकर दक्षिणावर्त्तमे मघादिनक्षत्रको स्थापनकरै. उसकोही खर्जूरवेध कहतेहैं। कर्मकालीन नक्षत्र और सूर्य्यभोग्य नक्षत्र एक रेखामे पडनेसे खर्जूरवेध होताहै. इसमें विवाह कदापि न करनाचाहिये ॥ ८२ ॥ ८३ ॥

पाठकवर्गके सुभीतार्थ नीचे खर्जूरवेधका चक्र लिखाहै-

श्ले

पु.	म.
पु.	पू.
आ	उ.
मृ.	.
रो.	चि.
कृ	स्वा
भ.	वि
अ.	अ.
.	ज्ये.
रे.	मू.
पू.	पू.
श.	उ.
.	.

श्र.

कर्णवेधे विवाहे च व्रते पुंसवने तथा ।
प्राशने चाद्यचूडायां विद्धमृक्षं विवर्जयेत् ॥ ८४ ॥ (ङ)

अर्थ-कर्णवेधमे, विवाहमें, उपनयनमें, पुंसवनमें, अन्नप्राशनमें और चूडाकर्ममें विद्धनक्षत्रोंको परित्यागकरै ॥ ८४ ॥

अथ खर्जूरवेधप्रतिप्रसवः ।

आद्यपादे स्थिते सूर्य्ये तुरीयांशं प्रदुष्यति ।
द्वितीयस्थे तृतीयन्तु विपरीतमतोऽन्यथा ॥ ८५ ॥ (च)

अर्थ-खर्जूरवेध वा दशयोगभङ्गके प्रतिप्रसव वर्णनकरतेहैं-सूर्य्य यदि नक्षत्रके प्रथमपादमे स्थित हो तब कर्मकालीन नक्षत्रके चतुर्थपाद और द्वितीयपादमे रहनेसे तृतीयपाद दूषित होताहै और चतुर्थपादमे सूर्य्य स्थित हों तब प्रथमपादमे और तृतीयपादमें रहनेसे द्वितीय पाद दूषणीय होताहै ॥ ८५ ॥

स्पष्टमाह ।

आद्यांशेन चतुर्थांशं चतुर्थांशेन चादिमम् ।
द्वितीयेन तृतीयन्तु तृतीयेन द्वितीयकम् ॥ ८६ ॥

इति स्वरोदये ।

अर्थ-वचनान्तरमे लिखाहै कि, प्रथमपादमें सूर्य्य स्थित होनेसे चतुर्थांश त्याज्य है, चतुर्थांशमें रहनेसे प्रथमपाद दूषणीय है और द्वितीयपादमें रहनेसे तृतीयपाद दूषित है और तृतीयपादमे रहनेसे द्वितीयपाद दूषणीय होताहै ॥ ८६ ॥

अथ सुतहिबुकयोगः ।

सुतहिबुकवियद्विलग्नधर्म्मेऽष्वमरगुरुर्दानवार्च्चितो वा ।
यदशुभमुपयाति तच्छुभत्वं

(ङ) विद्धनक्षत्रवर्जनमाह-कर्णवेध इति । प्राशने अन्नप्राशने आद्यचूडाया प्रथमक्षौर इत्यर्थः । विद्धं दशयोगवेधविद्धमित्यर्थ । यथा राजमार्त्तण्डे-" विवाहेऽर्घप्रतिष्ठायां व्रते पुंसवनं तथा कर्णवेधादिचूडायां विद्धमृक्ष विवर्जयेत् " इति ॥

(च) विद्धनक्षत्रस्य विशेषमाह-आद्य इति । आक्रान्तनक्षत्रस्य प्रथमपादस्थिते सूर्य्ये इष्टनक्षत्रस्य चतुर्थपादो दुष्यति । अन्यतपादत्रयमदुष्टमिति तात्पर्य्यम् । एवं द्वितीयपादस्थे सूर्य्ये तृतीयपादो दुष्यति ततोऽन्यथा विपरीतं चतुर्थपादस्थे सूर्य्ये आद्यपाद । तथाच तृतीयस्थे द्वितीयपादो दुष्यतीत्यर्थः । तथाच स्वरोदये "आद्यांशेन चतुर्थांशं चतुर्थांशेन" इत्यादि-इति ॥

ऋक्षाणि नैव जनयन्ति कदापि विघ्नम् ।
अव्याहतः सततमेव विवाहकाले
यात्रासु चायमुदितो भृगुजेन योगः ॥ ९४ ॥ (अ)

अर्थ--गोधूलिकालमें विवाह होनेसे ग्रहशुद्धि, तिथिशुद्धि, विष्टि भद्रा दोष वा नक्षत्रशुद्धि इनका कुछभी विचार न करना चाहिये, जिसप्रकार गोधूलिकामे ग्रहनक्षत्रादि विघ्नकारक नहीं होतेहैं, विवाहकालमेंभी गोधूलियोग प्रशस्त है और यात्रामेभी गोधूलियोग ग्राह्य है इसप्रकार भृगुमुनिने कहाहै ॥ ९४ ॥

अथ गोधूलिनिन्दा ।

मार्गशीर्षे तथा माघे गोधूलिः प्राणनाशिनी ॥ ९५ ॥

अर्थ--किस २ मासमें गोधूलियोग निषिद्ध है अब उसको कीर्त्तनकरतेहै । अग्रहायणमास और माघमासमे गोधूलियोग प्राणनाशक होताहै अतएव उक्त दोनो मासोंके गोधूलियोगमें विवाह न करना चाहिये ॥ ९५ ॥

अन्यच्च ।

मार्गे गोधुलिके सुता च विधवा स्यान्माघमासे तथा
पुत्रायुर्धनयौवनेन सहिता कुम्भे स्थिते भास्करे ।
वैशाखे सुखदा प्रजा धनवती ज्येष्टे पतेर्मानदा
आषाढे धनधान्यपुत्रबहुला पाणिग्रहे कन्यका ॥ ९६ ॥

अर्थ--ग्रन्थान्तरमें लिखाहै कि, अग्रहायण और माघमासमे गोधूलियोगमें विवाह होनेसे कन्या विधवा होतीहै और फाल्गुनमासमें गोधूलियोगमे विवाह होनेसे धन, पुत्रादिकी वृद्धि होतीहै इसीप्रकार वैशाखमे सुख, सन्तान और धनवती होतीहै, ज्येष्ठमें पतिकी मानदात्री और आषाढमें गोधूलियोगके समय विवाह होनेसे व- कन्या धन, धान्य और बहुपुत्रान्विता होतीहै ॥ ९६ ॥

विवाहोहीनवर्णस्यगोधूलौतुप्रशस्यते ॥ ९७ ॥

इति भैरवाचार्यधृतवचनम् ।

अर्थ--भैरवाचार्य्य धृतवचनमें लिखाहै कि, उत्तम वर्णका विवाह विशुद्धलग्नमेंही करना चाहिये, हीनवर्णका विवाह गोधूलियोगमें प्रशस्त है ॥ ९७ ॥

इति गोधूलियोगकथनम्

(अ) गोधूलिप्रशंसामाह—नास्मिन्निति । [illegible] स्फुटतमात्र [illegible] गोधूलिकोऽर्कि शुभा- शुभं सर्वमेव विचार्यम् । तथा राजमार्त्तण्डे ‘ [illegible] गोधूलिमाह [illegible] ” इति ।

अथ योटकविचारः।

तत्रादौ गणकथनम्।

हस्तस्वातिमृगोऽश्विनीहरिगुरूपौष्यानुराधेऽदिति-
श्चार्द्रारोहिणि चोत्तराणि भरणी पूर्वाह्वयं भत्रयम्।
ज्येष्ठासर्पविशाखमूलवरुणावस्वग्निचित्रामघाः
कथ्यन्ते मुनिभिर्यथाक्रमवशाद्देवा नरा राक्षसाः॥ ९८॥

इति सारसंग्रहे।

अर्थ–किस नक्षत्रमे जन्म होनेसे कौन गण होताहै अब उसको वर्णन करते हैं। हस्त, स्वाति, मृगाशिर, अश्विनी, श्रवण, पुष्य, रेवती, अनुराधा और पुनर्वसु इन नक्षत्रमें जन्म होनेवाले मनुष्यका देवगण होताहै॥ इसीप्रकार आर्द्रा, रोहिणी, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ, उत्तराभाद्रपद, भरणी, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ, और पूर्वभाद्रपद नक्षत्रोमे जन्म होनेसे मनुष्यका नरगण होताहै। और ज्येष्ठा, आश्लेषा, विशाखा, मूल, शतभिषा, धनिष्ठा, कृत्तिका, चित्रा और मघा इन नक्षत्रोमे जन्म होनेसे मनुष्यका राक्षसगण होताहै॥ ९८॥

अन्यच्च।

हस्तास्वातिश्रुतिमृगाशिरःपुष्यमैत्राश्विभानि
पौष्णादित्ये जगुरिह बुधा देवसंज्ञानि भानि॥ ९९॥

इति कृत्यचिन्तामणौ।

अर्थ–कृत्यचिन्तामणि ग्रन्थमेंभी लिखाहै कि, हस्त, स्वाति, श्रवण, मृगाशिर, पुष्य, अनुराधा, अश्विनी, रेवती और पुनर्वसु नक्षत्रको पण्डितगणने देवसंज्ञक कहा है॥९९॥

अपरश्च।

पूर्वास्तिस्रः शिवभभरणीरोहिणी चोत्तराश्च।
प्राहुर्मर्त्याह्वयमुडुगणं नूनमेतं मुनीन्द्राः॥ १००॥

इति कृत्यचिन्तामणौ।

अर्थ–पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ, पूर्वाभाद्रपद, आर्द्रा, भरणी, रोहिणी, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ, उत्तराभाद्रपद, इन नक्षत्रोको मुनिगणने मनुष्य(नर)संज्ञक कहाहै॥ १००॥

प्रकारान्तरश्च।

चित्राश्लेषानिर्ऋतिपितृभे वासवं वासवर्क्षं।

शक्राग्न्योर्भं वरुणदहनर्क्षं च रक्षोगणोऽयम् ॥ १ ॥

इति कृत्यचिन्तामणौ ।

अर्थ-चित्रा, आश्लेषा, मूल, मघा, धनिष्ठा, ज्येष्ठा, विशाखा, शतभिषा और कृत्तिका इन नक्षत्रोंको राक्षसगणसंज्ञक कहतेहैं ॥ १ ॥

अथ गणफलम् ।

स्वकुले चोत्तमा प्रीतिर्मध्यमा देवमानुषे ॥
देवासुरे वैरिता च मृत्युर्मानुपराक्षसे ॥ २ ॥

इति गणफलकथनम् ।

अर्थ-अब गणफलको वर्णन करतेहैं । वर और कन्याका यदि एकगण हो, तब दोनोंमे अत्यन्त प्रीति होतीहै । देवगण और मनुष्यगणमे विवाह होनेसे मध्यम प्रीति होतीहै । देवगण और राक्षसगणमे विवाह होनेसे वैरिता अर्थात सर्वदा कलह (लडाई) होतीहै और मनुष्यगणके साथ राक्षसगणका विवाह होनेसे मनुष्यगणकी मृत्यु होतीहै ॥ २ ॥

अथ नाडीवेधः ।

अश्विन्यादि लिखेच्चक्रं सर्पाकारं त्रिनाडिकम् ।
तत्र वेधवशाज्ज्ञेयं विवाहादौ शुभाशुभम् ॥ ३ ॥ (ट)

अर्थ-सर्पाकार तीन नाडीविशिष्ट एकचक्र अङ्कित (खींच) कर उसमे अश्विन्यादि नक्षत्रोंको तीन भागमे स्थापनकरै । अनन्तर वरके नक्षत्रके साथ कन्याके नक्षत्रका वेधहै वा नही उसको देखै, विवाहमें वेध होनेसे शुभ और वेध न होनेसे अशुभ होताहै ॥ ३ ॥

एकनाडीस्थधिष्ण्यानि यदि स्युर्वरकन्ययोः ।
तदा वेधं विजानीयाद्गुर्वादिषु तथैव च ॥ ४ ॥

अर्थ-यदि वर और कन्याका नक्षत्र एकनाडीमें स्थित होनेसे वेध होताहै, मन्त्रके ग्रहणकरने समय गुरु और शिष्यकोभी उक्त प्रकारसे नाडीवेध देखना चाहिये ॥ ४ ॥

प्रकटं यस्य जन्मर्क्षं तस्य जन्मर्क्षतो व्यधः।
प्रनष्टं जन्मभं यस्य तस्य नामर्क्षतो भवेत् ॥ ५ ॥
द्वयोर्जन्मभयोर्वेधे न कर्त्तव्यः कदाचन।
द्वयोर्जन्मभयोर्वेधो द्वयोर्नामभयोस्तथा।
नामजन्मर्क्षयोर्वेधो न कर्त्तव्यः कदाचन ॥ ६ ॥

अर्थ—जो मनुष्य अपने जन्मनक्षत्रको जानताहै उस मनुष्यके जन्मनक्षत्रद्वाराही वेध देखै, जन्मनक्षत्र न जाननेसे नामऋक्षद्वारा वेध देखना चाहिये। दोनोंके जन्मनक्षत्रका वेध होनेसे कदापि विवाह न करै, कन्या और वरके जन्मनक्षत्रका वेध निषिद्ध है आर दोनोका नामऋक्षवेध होनेसेभी उसमे विवाह न करना चाहिये। किन्तु एकका नामऋक्ष दूसरेका जन्मऋक्षद्वारा वेधको न देखनाचाहिये ॥ ५ ॥ ६ ॥

एका नाडी स्थिता चेत्स्याद्भर्तुर्नाशाय चाङ्गना ॥
तस्मान्नाडीव्यधो वीक्ष्यो विवाहे शुभमिच्छता ॥ ७ ॥

अर्थ—एक नाड़ीमें दोनोका जन्मनक्षत्र होनेसे अङ्गना (स्त्री) पतिके नाशका कारण होतीहै अतएव मङ्गलकी इच्छा करनेवाले मनुष्यको अवश्यही वेध देखलेना चाहिये॥७॥

अथ नाड़ीविधफलम्।

प्राङ्नाड्या वेधतो भर्त्ता मध्यनाड्योभयं तथा।
पृष्ठनाडीव्यधे कन्या म्रियते नात्र संशयः ॥ ८ ॥

अर्थ—मथम नाडीमे वेध होनेसे विवाहित पुरुषकी मृत्यु होतीहै। मध्यम नाड़ीमे वेध होनेसे स्त्री और पुरुष दोनोकीही मृत्यु होतीहै। और पृष्ठ (अन्त्य) नाडीमे वेध होनेसे विवाहिता कन्याकी मृत्यु होतीहै ॥ ८ ॥

एकराश्यादियोगे तु नाड़ीदोषो न विद्यते।
अन्यत्र तु विचार्यैषा स्वभावाच्छोभनाश्च ते ॥ १०९ ॥

इति ज्योतिःसारे।

अर्थ—स्त्रीपुरुषके एकराश्यादि योग होनेसे पूर्वोक्त नाड़ीका दोष नही होताहै, जिस थानमे एक राश्यादि योग नही उसकाही नाडीवेधमें दोष होताहै ॥ १०९ ॥

समसप्तमादिफलम्।

एकराशौ च दम्पत्योः शुभं स्यात्समसप्तके। (ठ)

(ठ) नमयरणाद्विषमसप्तके दोष.।

चतुर्थे दशमे चैव तृतीयैकादशे तथा ॥ ११० ॥ (ड)

अर्थ–नाडी गिननेमें स्त्रीपुरुषकी एकराशि (१) होनेसे शुभ होताहै, और वरकी राशिसे कन्याकी राशि वा कन्याकी राशिसे वरकी राशि यदि सम सातमे अर्थात् समराशि होकर सातवें हो तब शुभप्रद होतीहै, दोनोंकी राशि परस्पर गिननेमे यदि चतुर्थ, दशम, तृतीय अथवा एकादश हो, तौभी शुभ होताहै. इस वचनमें समसप्तक लिखाहै विषमसप्तक होनेसे अमङ्गल होताहै ॥ ११० ॥

विषमसप्तमादिफलम् ।

योटके सप्तके मेषे तुले युग्महयौ तथा ।
सिंहघटौ सदा वर्ज्यौ मृतिं तत्राब्रवीच्छिवः ॥ १११ ॥

अर्थ--मेष, तुला, मिथुन, धन, सिंह अथवा कुम्भ इन्हीं छःको विषमराशि कहतेहैं, योटक (नाड़ी) गिननेमें विषमराशि सप्तम होनेसे मृत्यु होतीहै, अतएव विषमसप्तमको अवश्यही त्याग करना चाहिये इसप्रकार शिवजीने कहाहै ॥ १११ ॥

राजमार्त्तण्डे ।

न राजयोगे ग्रहवैरिता च न तारशुद्धिर्न गणत्रयं स्यात् ।
न नाडिदोषो नच वर्णदुष्टिर्गर्गादयस्ते मुनयो वदन्ति ॥ ११२

इति राजयोटकप्रशंसा ।

अर्थ–राजयोग होनेसे ग्रहशुद्धि, ताराशुद्धि, गणशुद्धि, नाडीदोष अथवा वर्णदो इनका कुछभी विचार नहीं होताहै ॥ १२ ॥

अरिषडष्टकम ।

मकरः करिकुलरिपुणा कन्या मेषेण सह झषस्तुलया ।
कर्किघटौ वृषधनुषी वृश्चिकमिथुनौ चारिविधौ ॥ ११३ ॥

अर्थ- मकर, सिंह, कन्या, मेष, मिथुन, तुला, कर्क, कुम्भ, वृष और धन इन्हीं को राशिके षडष्टक अरिषडष्टक कहतेहैं ॥ ११३ ॥

अथ मित्रषडष्टकम् ।

मकरसमेतं मिथुनं कन्याकलशौ मृगेन्द्रमीनौ च ।
वृषभतुलेऽलिमेषौ कर्कटधनुषी च मित्रविधौ ॥ १४ ॥

अर्थ-मकर, मिथुन, कन्या, कुम्भ, सिंह, मीन, वृष, तुला, वृश्चिक, मेष और कर्क धन इन षडष्टकका नाम मित्रषड्ष्टक है ॥ १४ ॥

यदि कन्याष्टमे भर्त्ता भर्त्तुः षष्ठे च कन्यका ।
षडष्टकं विजानीयाद्वर्जितं त्रिदशैरपि ॥ १५ ॥

अर्थ-यदि कन्याके अष्टमस्थानमे वरकी राशि और वरके षष्ठ स्थानमें कन्याकी राशि हो तब यह षड्ष्टक अत्यंत गर्हणीय (दूषणीय) होताहै अर्थात् देवतागणभी इस षडष्टकको परित्याग करदेतेहैं ॥ १५ ॥

मित्रादियोगेऽपि षड्ष्टकादौ ताराविपत्प्रत्यरिनैधनाख्याः ॥
वर्ज्या विवाहे पुरुषोडुतो हि प्रीतिः परा जन्मसु तारकासु ॥ १६॥

अर्थ-षडष्टकयोगमें यदि वर और कन्याकी राशिके अधिपति (स्वामी) के बीचमें परस्पर मित्रता हो तौभी वरके नक्षत्रसे गिननेमे कन्याका जन्मनक्षत्र यदि विपत, प्रत्यरि वा वधतारा होय तब विवाह नही होसकताहै, किन्तु जन्मतारा होनेसे वह विवाह अत्यन्त प्रीतिदायक होताहै ॥ १६ ॥

अथ षडष्टकादिफलम् ।

मरणं नाडीयोगे कलहः षट्काष्टके विपत्तिर्वा ।
अनपत्यता त्रिकोणे द्विद्वादशे च दारिद्र्यम् ॥ १७ ॥

अर्थ-वर और कन्याकी नाडीवेध होनेसे मृत्यु होतीहै, षडष्टकमें सर्वदा कलह होताहै. नवपञ्चकमे अनपत्यता दोष होताहै और द्विद्वादशमे दरिद्रता होतीहै ॥ १७ ॥

नवपञ्चकादौ विशेषफलम् ।

पुंसो गृहात्सुतगृहे सुतहा च कन्या
धर्म्मे स्थिता सुतवती पतिवल्लभा च ।
पुंसो गृहाद्धनगृहे धनहा च कन्या
रिःफे स्थिता धनवती पतिवल्लभा च ॥ १८ ॥ (ढ)

(ढ) नवपञ्चमद्विद्वादशयोरपवादमाह-पुंस इति। सुगमम् । षट्काष्टकेऽपि विशेषमाहु: केचित् । "...ष्टमे भागे कन्या तिष्ठति वै यदा । कन्यायाः षट्सु स्थानेषु न दोषो वै प्रजायते । यदि ...ष्टमे भर्त्ता भर्त्तु: षष्ठे च कन्यका " इत्यादि इति ।

अर्थ–यदि वरकी राशिसे कन्याकी राशि पञ्चम हो तो उस कन्याके मृत पु होताहै. और वरकी राशिसे कन्याकी राशि नवम हो तो पुत्रवती पतिप्रिया होती द्विद्वादश गिननेमें पुरुषकी राशिसे कन्याकी राशि द्वितीय होनेसे वह कन्या ध नाशिनी होतीहै और वरकी राशिसे कन्याकी राशी द्वादश होनेसे वह विवाहित कन्या धनवती और पतिके अत्यन्त प्यारी होतीहै ॥ १८ ॥

अथ वर्णकथनम् ।

कर्किमीनालयो विप्राः क्षत्राः सिंहतुलाहयाः ।
वैश्या युग्माजकुम्भाख्याः शूद्रा वृषमृगाङ्गनाः ॥ १९ ॥

अर्थ–अब राशिगणके वर्ण कहे जातेहैं यथा–कर्क, मीन और वृश्चिक राशिका ब्राह्मणवर्ण है, सिंह, तुला, और धन राशिका क्षत्रियवर्ण है, मिथुन, मेष और कुम्भ राशिका वैश्यवर्ण है और वृष मकर और कन्या राशिका शूद्रवर्ण है ॥ १९ ॥

अथ वर्णफलम् ।

वर्णश्रेष्ठा च या नारी वर्णहीनश्च यः पुमान् ।
तयोर्विवाहे मृत्युः स्यात्षण्मासान्नात्र संशयः ॥ १२० ॥

अर्थ–यदि वरके वर्णसे कन्याका वर्ण श्रेष्ठ हो और वरका वर्ण हीन होय तब उस वर कन्याके विवाह होनेसे विवाहकालसे छःमहीनेके बीचमे दोनोकी मृत्यु होतीहै इसमे कुछ संदेह नही है ॥ १२० ॥

अथ योटकापवादः ।

एकराश्यादियोगे तु नाडीदोषो न विद्यते ॥ २१ ॥

अर्थ–वर और कन्याकी एक राशि होनेसे नाडीवेधका दोष नही होताहै ॥ २१ ॥

नक्षत्रमेकं यदि भिन्नराशिर्नदम्पती तत्र सुखं लभेताम् ॥
विभिन्नमृक्षं यदि चैकराशिस्तदा विवाहः सुतसौख्यदायी ॥ २२ ॥

अर्थ–वर और कन्याके यदि एक नक्षत्र होकर भिन्न २ राशि होय तब उस विवाहमें वर और कन्याको कभी सुख नही होताहै और भिन्न २ नक्षत्र होकर यदि दोनोंकी एकराशि हो तो वह विवाह पुत्र और सुखके देनेवाला होताहै ॥ २२ ॥

अन्यच्च ।

एकर्क्षा न यदा कन्या गइयेका च यदा भवेत ।
धनपुत्रवती नारी भर्त्ता च चिरंजीवकः ॥ २३ ॥

अर्थ—वचनान्तरमे लिखा है कि, वर और कन्याका एक नक्षत्र होकर यदि एक ही राशि होय तो वह कन्या धनशालिनी और पुत्रवती होतीहै और उसका पति दीर्घजीवी होता है ॥ २३ ॥

सुहृदेकाधिपे योगे ताराबले वश्यराशौ वा ।
अपि नाड्यादिविरोधे भवति विवाहो हितार्थाय ॥ २४ ॥

अर्थ—वर और कन्याकी राशिके स्वामीकी यदि परस्पर मित्रता हो वा अन्यतरके नक्षत्र गिननेमें ताराशुद्ध हो अथवा अन्यतर राशिके वश्यता (×) हो तब नाडी-वेधादि होनेसेभी विवाहमे दोष नही होता है और उस . विवाहमें शुभ फल प्राप्त होताहै ॥ २४ ॥

अपरञ्च ।

सौहृद्ये ह्युभयोर्द्वयोरपि तयोरेकाधिपत्येऽपि च
ताराषष्ठसुमित्रमित्रभवने क्षेमाख्यसम्पद्यदि ।
षट्काष्टे नवपञ्चके व्ययधने योगेऽपि पुंयोषितोः
प्रीत्यायुःसुखवृद्धिपुष्टिजनकः कार्य्यो विवाहस्तदा ॥ २५ ॥

अर्थ—वचनान्तरमे कहाहै कि, वर और कन्याकी राशिके स्वामीकी परस्पर यदि मित्रता हो वा दोनोंकी राशिका स्वामी एक ग्रह होय अथवा अन्यतर नक्षत्र गिननेमे यदि षष्ठ (साधक) सुमित्र मित्र क्षेम सम्पत् हो तब षडष्टक, नवपञ्चक और द्विद्वादशादि योगमे भी विवाह होसक्ताहै, अधिकतर वह विवाह प्रायः आयु सुखकी वृद्धि करता है और पुष्टिजनक होताहै ॥ २५ ॥

द्विद्वादशादौ विशेषमाह ।

ऐकाधिपत्यं भवनेशमैत्रं वश्यं यदि स्यादुभयोरुशुद्धौ ॥
द्विद्वादशे वा नवपञ्चके वा कार्य्यो विवाहो न षडष्टके तु॥२६॥(ण)

(×) "अश्वेभाजफणिद्वयश्व वृषभुङ्मेषोन्दुरौ मूषिकश्चाखुगौ-क्रमशस्ततोपि महिषी व्याघ्रः पुनः सौरभी । व्याघ्रैणौ मृगकुक्कुरौ कपिरथोरभ्रद्वयं वानरः सिंहोऽश्वो मृगराट्पशुश्च करटी योनिश्च भानामियम् ॥गोव्याघ्रं गजसिंहमश्वमहिषं श्वैणश्च बभ्रूरगं वैरं वानरमेषकञ्च सुमहत्तत्तद्विडालोन्दुरम् । लोकाना व्यवहारतोऽन्यदपि च ज्ञात्वा प्रयत्नादिदं दम्पत्योर्नृपभृत्ययोरपि सदा वर्ज्यं शुभस्यार्थिभि " इति रत्नमालायाम् ।

(ण) द्विद्वादशनवपञ्चकयोरपवादान्तरमाह—ऐकाधिपत्यमिति । उभयो राश्योरेकोधिपतिर्यदि स्यात्तदा द्विद्वादशे नवपञ्चके च न दोष इति ।तथा उभयो राश्यधिपयोर्मित्रत्वं वा स्यात् यदि वा

अर्थ–द्विद्वादशादि योगमें जो विशेष है अब उसको कहतेहैं। यदि वर और कन्याकी राशिका स्वामी एक ग्रह हो वा उनकी परस्पर मित्रता हो अथवा दोनो राशिके बीचमें एक राशि अन्यके वशमें हो वा एकके नक्षत्रसे गिननेमे दूसरेका नक्षत्र शुद्ध होय तो द्विद्वादश वा नवपञ्चक होनेसेभी विवाह होसक्ताहै । किन्तु षडष्टकमें विवाह निषिद्ध है ॥ २६ ॥

अथ भ्रमप्रमादोत्पन्नषडष्टकादिप्रतीकारः ।

षडष्टके गोमिथुनं प्रदेयं कांस्यं सरूप्यं नवपञ्चके तु ॥
द्विद्वादशाख्ये कनकान्नताम्रं विप्रार्चनं हेम च नाडिदोषे ॥ २७ ॥ (त)

अर्थ–भ्रमसे वा प्रमादके वशसे यदि कदाचित् षडष्टकादियोगमे विवाह होवे, तब उस दोषके शान्तिके अर्थ दान करदेना चाहिये षडष्टकमे विवाह होनेसे दो गौवे बछडो करके युक्त दानकरै, इसीप्रकार नवपञ्चकमें सरूप्य कांस्यपात्र और द्विद्वादशमे सुवर्ण, तण्डुल और ताम्र दान करनेसे दोषकी शान्ति होतीहै । षडष्टकमे विप्रार्चन और सुवर्ण दान करनेसे दोषकी शान्ति होतीहै ॥ २७ ॥

अथ कन्यायाः ग्रहादिशुद्धिकथनम् ।

ग्रहशुद्धिमब्दशुद्धिं शुद्धिं मासायनर्त्तुदिवसानाम् ।
अर्वाग्दशवर्षेभ्यो मुनयः कथयन्ति कन्यकानाम् ॥ २८ ॥

अर्थ–विवाहमें कन्याके ग्रहादिशुद्धि कहतेहैं । दशवर्षकी आयुके मध्यमें कन्याका विवाह होनेसे ग्रहोकी गोचरशुद्धि, अब्दशुद्धि (युग्मायुग्मवर्षका विचार) मासशुद्धि, अयनशुद्धि, ऋतुशुद्धि, और दिवस (वार) शुद्धि देखना चाहिये. मुनिगणने कन्याके विवाहसम्बन्धमें इसप्रकार कहाहै ॥ २८ ॥

अयुग्मे दुर्भगा नारी युग्मे च विधवा भवेत् ।
तस्माद्गर्भान्विते युग्मे विवाहे सा पतिव्रता ॥ २९ ॥

अर्थ–कन्याके अयुग्मवर्षमें विवाह होनेसे दुर्भगा होतीहै और युग्मवर्षमें विवाह होनेसे विधवा होतीहै. अतएव गर्भान्वित (×) युग्मवर्ष गिनकर उसमे विवाह करना चाहिये. इसी प्रकार गर्भान्वित युग्मवर्षमे विवाह होनेसे वह कन्या पतिव्रता होतीहै॥२९॥

मासत्रयादूर्द्धमयुग्मवर्षे युग्मेऽपि मासत्रयमेव यावत् ॥
विवाहशुद्धिं प्रवदन्ति सर्वे वात्स्यादयो ज्योतिषि जन्ममासात्॥१३०॥

अर्थ–वात्स्यप्रभृति ज्योतिर्विद् पण्डितोने कहाहै कि, अयुग्मवर्षमे तीन मासके अनन्तर(बाद)और युग्मवर्ष में तीन मासके अन्तर्गत विवाहमें काल शुद्ध होताहै ॥१३०॥

प्रसूत्याधानतः शुद्धिर्विषमेऽब्दे समे क्रमात् ।
विवाहे योषितां चन्द्रार्केज्यशुद्धिर्नृयोषितोः ॥ ३१ ॥

अर्थ–कन्याके विवाहमे प्रसूतिके गर्भग्रहणसे विषम (अयुग्म) वर्षमे विचारना चाहिये और सम (युग्म) वर्षमे जन्मसेही विचार करना चाहिये । सूर्य्य, चन्द्र, और बृहस्पति शुद्धि यह स्त्री और पुरुष दोनोंकेही देखना चाहिये ॥ ३१ ॥

सभर्त्तृकक्रियारम्भे भर्त्तुर्गोचरशुद्धितः ।
यात्रोद्वाहे गर्भकृत्ये स्वशुद्ध्याप्नोति तत्फलम् ॥ ३२ ॥

अर्थ–स्त्रियोंको पतिके साथ जो कर्म्म करना चाहिये उसमें पतिकी गोचरशुद्धिका विचारकरै, किन्तु यात्रा, विवाह और गर्भकृत्यमें स्त्रियोंकीही गोचरशुद्धि होनेसेही उसमे शुभफल होताहै ॥ ३२ ॥

(×) जन्मसमयके पूर्वके नौमास ग्रहण करनेकोही गर्भान्वित कहतेहैं ।

प्रारभ्य जन्मसमयाद्युवतेर्विवाहं
ओजेऽब्दकेषु मुनयः शुभमादिशन्ति ।
आधानतः प्रभृतितः समवत्सरेषु
प्रोक्तस्तयोर्न शुभदस्तु विलोमवर्षे ॥ ३३ ॥

अर्थ-अयुग्मवर्षमें जन्मसमयसे वर्षको गिने, युग्मवर्षमें आधान (गर्भग्रहण) से वर्षको गिनना चाहिये । अयुग्मवर्षमें गर्भग्रहणसे गिनना और युग्मवर्षमें जन्मसे गिनना अशुभ है, विवाहविषय में मुनिगणने इसीप्रकार कहाहै ॥ ३३ ॥

युग्माब्दकेषु युवतेरपि जन्ममासा-
न्मासत्रयं विवहने परमब्दशुद्धिम् ।
प्राहुः समस्तमुनयो विषमे तु वर्षे
मासत्रयादुपरितः खलु जन्ममासात् ॥ ३४ ॥

अर्थ-कन्याके विवाहमे जन्ममाससे गिननेमे युग्म वर्षके तीन मासके मध्यमें वर्षशुद्धि होतीहै और अयुग्मवर्षमे तीन मासके अनन्तर (बाद) वर्षशुद्धि होतीहै, समस्त मुनिगणने इसीप्रकार कहाहै ॥ ३४ ॥

अथ विवाहे अयनादिशुद्धिः ।

आश्वलायनः ।

उदगयने आपूर्य्यमाणे पक्षे कल्याणनक्षत्रे चूडोपनयन-
गोदानविवाहाः विवाहः सार्वकालिक इत्येके ॥ ३५ ॥

अर्थ-आश्वलायनने कहाहै कि, उत्तरायणमें शुक्लपक्षमे और शुभ नक्षत्रमें चूडाकर्म्म उपनयन, गोदान और विवाह होताहै और किसी २ विद्वानने कहाहै कि, विवाह सब कालमेंही होसक्ताहै ॥ ३५ ॥

हरौ प्रसुप्ते नच दक्षिणायने तिथौ च रिक्ते शशिनि क्षयं गते॥३६॥

अर्थ-श्रीहरिकी शयनावस्थामें, दक्षिणायनमें, रिक्तातिथिमें और अमावास्यामें विवाह निषिद्ध है ॥ ३६ ॥

राजग्रस्ते तथा युद्धे पितॄणां प्राणसंशये ।
अतिप्रौढा च या कन्या नानुकूल्यं प्रतीक्षते ॥ ३७ ॥

अर्थ–राजासे ग्रसित होनेमे वा युद्धमें यदि पिताके प्राणोंका संशय होय तब प्रौढा (यौवनवती) कन्याके ग्रहगोचरशुद्धि वा अब्दादि शुद्धिको न विचारकर उसका विवाह करदेना चाहिये ॥ ३७ ॥

अतिप्रौढा च या कन्या कुलधर्मविरोधिनी ।
अविशुद्धापि सा देया चन्द्रलग्नबलेन तु ॥ ३८ ॥

अर्थ–अतिप्रौढा कन्या अविवाहिता रहनेसे कुलधर्मका नाश होताहै, अतएव कालादिशुद्धि न होनेसेभी चन्द्रबल (चन्द्रशुद्धि) और शुभ लग्न देखकर विवाह कर देना चाहिये ॥ ३८ ॥

कालात्यये च कन्यायाः कालदोषो न विद्यते ॥ ३९ ॥
इति दशमवर्षात्परम् ।

अर्थ–विवाहका समय व्यतीत होनेसे जो कालदोष ग्राह्य नही होताहै उसको दशवर्षके बाद जानना चाहिये ॥ ३९ ॥

मलमासादिकालानां विवाहादौ प्रयत्नतः ।
पुंसः प्रति सदा दोषात्सर्वदैव हि वर्ज्यता ॥ १४० ॥

अर्थ–विवाहादिशुभकर्ममें मलमास (अधिकमास लौंधमास) का निषेध है अतएव सर्वदाही उसका परित्याग करना चाहिये ॥ १४० ॥

अथ कालाशुद्धिकथनम् ।

गुर्वादित्ये गुरौ सिंहे नष्टे शुक्रे मलिम्लुचे ।
याम्यायने हरा सुप्ते सर्वकर्म्माणि वर्जयेत् ॥ ४१ ॥ (थ)

(थ) सर्वकर्मणि कालाशुद्धिमाह–गुर्वेति । गुर्वादित्यस्तु द्विप्रकारो भवति । रविजीवावेकराशिगतौ एकनक्षत्रगतौ च एकनक्षत्रगतत्वञ्च भिन्नराशिगतत्वे सतीति बोद्धव्यम् । तथा च काश्यप: "ऋक्षैकमन्दिरगतौ यदि जीवभानू शुक्रोऽस्तगः सुरवरैकगुरुश्च सिंहे । नारभ्यते व्रतविवाहगृहप्रतिष्ठा क्षौरादिकर्म गमनागमनञ्च धीरैः ॥" नारभ्यते इत्यनेनारब्धव्रतन्तु पूर्वसङ्कल्पितव्रतं कर्त्तव्यमिति तात्पर्य्यम् । तत्र सर्वकर्म्माणीत्यत्र कर्मशब्दः काम्यकर्मपरः देवार्चनन्तु नित्यकर्म कर्त्तव्यमेव एवं सर्वत्र । तथा सिंहराशिस्थे गुरौ सर्वकर्माणि वर्जयेत् । तथा राजमार्त्तण्डे–"यात्रां चूडां विवाहं व्रतिदिवविधि यागसद्मप्रवेशौ प्रासादोद्यानहर्म्यामरनरभवनारम्भविद्याप्रदानम् । मौञ्जीबन्धं प्रतिष्ठां मणिरदकनकाधारणं कुर्वते ये मृत्युस्तेषां हरीज्ये गुरुदिनकरयोरेकराशिस्थयोश्च" । अत्र च सिंहस्थवृहस्पतौ विवाहे विशेषमाह । राजमार्त्तण्डे–"गुरौ हरिस्थे न विवाहमाहुर्हारीतगर्गप्रमुखाः" इत्यादि तथा "मघाऋक्षं परित्यज्य यदा सिंहे गुरुर्भवेत् । विवाहस्तत्र कर्त्तव्यो मुनिभिः परिकीर्त्तितः" । अत्र च वक्रातिचारेण राश्यन्तरगमने सिंहस्थबृहस्पतिदोषो नास्ति किन्तर्हि वक्रातिचारोक्तदोष-

अर्थ–अब अशुद्ध (निन्दनीय– वर्जित) कालको कीर्त्तनकरतेहैं–बृहस्पति और सूर्य्य यदि एकनक्षत्रगत होकर एकराशिमें स्थित होय अथवा भिन्न २ नक्षत्रमें रहकर और एकराशिमें स्थित होवै तो गुर्वादित्ययोग होताहै. उक्तयोगमे बृहस्पति सिंहराशिमें होनेसे शुक्रास्तमे सायंकालमें अस्त वा उदय होनेमे मलमासमें दक्षिणायनमे और हरिशयनमे समस्तकार्य्योंको परित्याग करना चाहिये ॥ ४१ ॥

वापीकूपतडागयागगमनं क्षौरप्रतिष्ठा व्रतं
विद्यामंदिरकर्णवेधनमहादानं वनं सेवनम् ।
तीर्थस्नानविवाहदेवभवनं मन्त्रादिदेवेक्षणं
दूरेणैव जिजीविषुः परिहरेदस्तं गते भार्गवे ॥ ४२ ॥

इति कृत्यचिन्तामणौ ।

–मात्रमेवेत्यर्थः । तथा नष्टे शुक्रे सर्वकाम्यकर्म्माणि वर्जयेत् । विकारापत्तिनष्टत्व तच्चतुर्द्धा भवति वृद्धत्वसन्ध्यागतत्वास्तत्वबालत्वभेदेन । अत्रच अस्तात्पूर्वं वृद्धत्व सन्ध्यागतत्वं च अस्तात्परतो बालकता तथा राजमार्त्तण्डे–"भवेत्सन्ध्यागतं पश्चादस्तमेति दिनत्रयम् । दिनानि पञ्च पूर्वेण सर्वकर्म विवर्जयेत् ॥ बालो दिनचतुष्कं स्याद्वृद्धः पञ्चाहमुच्यते । त्र्यहं सन्ध्यागतः शुक्रस्त्रिधात्येवं विवर्जयेत् । बाले भृगौ परिणीता युवतिरसाध्वी भवेदवश्यमित्थम् । वृद्धे तस्मिन्वृद्धा सन्ध्यागते मृत्युमाप्नोति"। मलिम्लुच इति । मलमासे सर्वकाम्यकर्म्माणि वर्जयेत्।मलमासकारणमुक्त यथा–"दिनमणि हरत्यं

अर्थ—वापी (जलाशयविशेष बाउली) कूप (कूवा) तडाग (तालाब) यज्ञ, गमन, चूडाकर्म, प्रतिष्ठा, उपनयन, विद्यारम्भ, गृहारम्भ, कर्णवेध, महादान, वनसेवन, अनावृत्ता, तीर्थस्नान, विवाह, देवभवनारम्भ, मन्त्रादिग्रहण और अनावृत्त अनादिदेवतादर्शन इतने कार्य्य शुक्र अस्त होनेमें जीवनकी इच्छा करनेवाला मनुष्यः परित्याग करै अर्थात् शुक्रास्तादिके लिये अकाल होनेसे उक्त समस्त कार्य्य न करना चाहिये ॥ ४२ ॥

सर्वाणि शुभकर्म्माणि कुर्य्यादस्तं गते सिते ।
विवाहं मेखलाबन्धं यात्राञ्च (×) परिवर्जयेत् ॥ ४३ ॥

इति बृहद्राजमार्त्तण्डे ।

अर्थ—बृहद्राजमार्त्तण्डमे लिखाहै कि, सभी शुभकर्म शुक्रास्तमें करना चाहिये. परन्तु विवाह, उपनयन और यात्रादि (*) को परित्याग करे ॥ ४३ ॥

बाले शुक्रे वृद्धे शुक्रे नष्टे शुक्रे जीवे नष्टे ।
बाले जीवे वृद्धे जीवे सिंहादित्ये गुर्वादित्ये ॥ ४४ ॥
तथा मलिम्लुचे मासि सुराचार्येऽतिचारगे ।
वापीकूपतडागादिक्रियाः प्रागुदितास्त्यजेत् ॥ ४५ ॥

अर्थ—शुक्रके बाल्य, (उदय) वार्द्धक्य और अस्तसमयमे, बृहस्पतिके अस्त बाल्य और वार्द्धक्यकालमें सिंहादित्यमे, गुर्वादित्यमे, मलमासमे और बृहस्पतिके अतिचारी होनेमे पूर्वोक्त वापी, कूप और तडागादि कर्मको परित्याग करना चाहिये ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

अतिचारगते जीवे वक्रे चैव बृहस्पतौ ।
कामिनी विधवा प्रोक्ता तस्मात्तौ परिवर्जयेत् ॥ ४६ ॥

अर्थ—बृहस्पतिके अतिचारी वा वक्री होनेमे यदि विवाह हो तब विवाहिता कन्या विधवा होतीहै; अतएव बृहस्पतिके अतिचारी वा वक्री होनेमे विवाह निषिद्ध है ॥ ४६ ॥

अतिचारं गते जीवे वक्रे वास्तमुपागते ।

(×) यात्राश्चेति चकारो वचनान्तरोक्त प्रातिस्विकनिषिद्धकर्मान्तर समुच्चिनोति ।
(*) यात्रादि इस आदिशब्दमे अन्यान्यवचनोक्त प्रातिस्विकनिषिद्धकर्म जानना चाहिये ।

व्रतोद्वाहौ न कुर्वीत जायते मरणं ध्रुवम् ॥ ४७ ॥ (द)

अर्थ—बृहस्पतिके अतिचारी होनेमें वक्री होजानेमें अथवा अस्तादि होनेमें उपनय- न और विवाहादिकार्य्य न करना चाहिये, उक्त समयमें यदि कोई कार्य्य करे तो उसकी मृत्यु होती है ॥ ४७ ॥

अतिचारं गतो जीवःपूर्वभं नैव गच्छति ।
समचारेऽपि कर्माणि नैव तत्रैव संस्थिते ॥ ४८ ॥

अर्थ—बृहस्पति अतिचारी होकर यदि पूर्वराशिमें गमन न करें वा समाचार होकरभी यदि उसी राशिमें स्थित हो तब अकालजन्यकर्म निषिद्ध होताहै ॥ ४८ ॥

बाले वृद्धे तथैवास्ते कुरुते दैत्यमन्त्रिणि ।
उद्वाहितायां कन्यायां दम्पत्योरेकनाशनम् ॥ ४९ ॥

इति भैरवाचार्य्यः ।

अर्थ—भैरवाचार्य्यने कहाहै कि, शुक्रके बाल्य (उदय) वार्द्धक्य वा अस्तजन्य अकालमें यदि विवाह हो तो दोनोंमेंसे एकको मृत्यु होतीहै ॥ ४९ ॥

प्रागुद्यतः शिशुरहस्त्रितयं सितः स्या-
त्पश्चाद्दशाहमिति पञ्चदिनानि वृद्धः ।
प्राक्पक्षमेव कथितोऽत्रिवसिष्ठगर्गै-
र्जीवस्तु पक्षमपि वृद्धशिशुर्विवर्ज्यः ॥ १५० ॥

अर्थ-शुक्र पूर्व दिशामें उदित (शिशु) होनेसे तीन दिन अकाल होताहै, इसी प्रकार पश्चिम दिशामें बालक (उदित) होनेसे दश दिन अकाल होताहै पश्चिम दिशामे अस्त (वृद्ध) होनेसे पांच दिन (आपद्विषयमें) अकाल होताहै और पूर्व-दिशामें वृद्ध होनेसे पन्द्रह दिन अकाल होताहै और बृहस्पतिके बालक (उदय) वा वृद्ध (अस्त) होनेसे पन्द्रह दिन अकाल होताहै ॥ १५० ॥

पक्षं वृद्धस्तु पूर्वेण दशाहं पश्चिमेन तु।
प्रत्यग्बालो दशाहन्तु पूर्वेण तु दिनत्रयम् ॥ ५१ ॥

अर्थ-शुक्र पूर्वदिशामे स्थित होकर वृद्ध (अस्त) होनेसे पन्द्रह दिन अकाल होताहै। पश्चिमदिशामें वृद्ध होनेसे दशदिन अकाल होताहै पश्चिमदिशामें बालक होनेसे दशदिन अकाल होताहै और पूर्वदिशामें बालक (उदय) होनेसे तीनदिन अकाल होताहै ॥ ५१ ॥

अत्यन्ताशक्तौ।

बाले वृद्धे च सन्ध्यांशे चतुःपञ्चत्रिवासरान्।
जीवे च भार्गवे चैव विवाहादिषु वर्जयेत् ॥ ५२ ॥

इति राजमार्त्तण्डे।

अर्थ-राजमार्त्तंडमें अत्यन्त अशक्त विषयमें कहाहै कि, बृहस्पति वा शुक्रके बालक होनेसे चार दिन, वृद्ध होनेसे पांचदिन और सन्ध्यागत होनेसे तीन दिन परित्याग करके विवाहादि शुभ कार्य्यको करै ॥ ५२ ॥

वक्रे चैवातिचारे त्रिदशपतिगुरौ देवपूज्ये च सुप्ते
[१]गुर्वादित्येऽधिमासे दिवसकररिपौ वाक्पतौ चैत्रपौषे।
विष्ट्यां केतूद्गमे वा शरदि सुरगुरौ सिंहसंस्थे मनोज्ञे
वर्षादाप्नोति प्रौढाप्यनियतमरणं देवकन्यापि भर्तुः ॥ ५३ ॥

अर्थ-बृहस्पतिके वक्री वा अतिचारी होनेसे हरिशयनमे, गुर्वादित्ययोगमें, अधिमासमें, राहुके साथ बृहस्पति होनेसे, चैत्रमासमें और पौषमासमे, विष्टिभद्रातिथिमे, शरत्कालमे, केतूद्गम होनेसे और बृहस्पति सिंहराशिमे स्थित होनेसे यदि कन्याका विवाह होय तब वह देवकन्या होनेसेभी उसके पतिकी संवत्सरके मध्यमेंही मृत्यु होतीहै॥५३॥

एकराशिस्थितौ स्यातां यदि राहुबृहस्पती।
विवाहव्रतयज्ञादि तदा सर्वत्र वर्जयेत् ॥ ५४ ॥

(१) 'एकराशौ यदि स्यातामेकत्रैविषये यदि।
गुर्वादित्यौ तदा त्याज्या यज्ञोद्वाहादिकक्रिया'॥

व्रतोद्वाहौ न कुर्वीत जायते मरणं ध्रुवम् ॥ ४७ ॥ (द)

अर्थ–बृहस्पतिके अतिचारी होनेमें वक्री होजानेमें अथवा अस्तादि होनेमें उपनयन और विवाहादिकार्य्य न करना चाहिये, उक्त समयमें यदि कोई कार्य्य करै तो उसकी मृत्यु होती है ॥ ४७ ॥

अतिचारं गतो जीवःपूर्वभं नैव गच्छति ।
समचारेऽपि कर्माणि नैव तत्रैव संस्थिते ॥ ४८ ॥

अर्थ–बृहस्पति आतिचारी होकर यदि पूर्वराशिमें गमन न करैं वा समाचार होकरभी यदि उसी राशिमें स्थित हो तब अकालजन्यकर्म निषिद्ध होताहै ॥ ४८ ॥

बाले वृद्धे तथैवास्ते कुरुते दैत्यमन्त्रिणि ।
उद्वाहितायां कन्यायां दम्पत्योरेकनाशनम् ॥ ४९ ॥

इति भैरवाचार्य्य ।

अथ–भैरवाचार्य्यने कहाहै कि, शुक्रके बाल्य (उदय) वार्द्धक्य वा अस्तजन्य अकालमें यदि विवाह हो तो दोनोमेंसे एककी मृत्यु होतीहै ॥ ४९ ॥

प्रागुद्यतः शिशुरहस्त्रितयं सितः स्या-
त्पश्चाद्दशाहमिति पञ्चदिनानि वृद्धः ।
प्राक्पक्षमेव कथितोऽत्रिवसिष्टगर्गै--
र्जीवस्तु पक्षमपि वृद्धशिशुर्विवर्ज्यः ॥ १५० ॥

(द) वक्रातिचारे दोषमाह–अतिचार इति । वक्रातिचारगे गुरौ व्रतोद्वाहौ न कुर्य्यात् । व्रतमुपनयनम् । एतच्चोपलक्षणम् यथा राजमार्त्तण्डे–"अतिचार गते जीवे वर्जयेत्तदनन्तरम । व्रतोद्वाहादिक्रिडायामष्टाविंशतिवासरान् ।" अष्टाविंशतिदिनमात्रवर्जनन्तु कार्य्यवशेनानुपेक्षणीयत्वादिति । अत्र च राश्यन्तरसञ्चारे सत्येव वक्रातिचारदोषो नान्यथेति । अत्र च वक्रातिचारगो गुरुर्यस्मिन राशौ याति तस्यैव फलं ददाति । यथा–राजमार्त्तण्डे–"वराहमाण्डव्यपराशराद्या गर्गाङ्गिराद्या मुनयो वदन्ति । वक्रातिचारे सुरराजमन्त्री यत्रागतस्तत्र फल ददाति " ॥ एवं महातिचारे संवत्सरमेव मङ्गल न कर्त्तव्यम् । तथाच " अतीचारं गतो जीवस्तत्रैव कुरुते स्थितम । तथा महातिचार स्यात्कुत-संवत्सरक्रिय. ।" तथा अस्तं गते जीवे व्रतोद्वाहौ न कुर्य्यात् अत्राप्युपलक्षण यथा राजमार्त्तण्डे–" अस्तं प्रयाते च भृगौ गुरौ वा सूर्य्ये निरंशे हिमगौ प्रनष्टे । न कूपवाप्यादिकमन्दिराणि शुभ प्रदिष्टं धनकीर्त्तिनाशात् । अस्तमिते भृगुपुत्रे कन्या म्रियते बृहस्पतौ पुरुष । उभयोरपि मरण स्यात्तेनो पाणिग्रहेऽप्युदिते " ॥ तथा अस्तगतत्वमुपलक्षण संध्याबाल्यवृद्धत्वेऽपि शुभकर्म न कर्त्तव्यम । यथा राजमार्त्तण्डे–"बाले वृद्धे च मन्त्याशे चतु पञ्चत्रिवासरान । जीवे च भार्गवे चैव विवाहादिक वर्जयेत् " इति ।

अर्थ-शुक्र पूर्व दिशामें उदित (शिशु) होनेसे तीन दिन अकाल होताहै, इसी प्रकार पश्चम दिशामें बालक (उदित) होनेसे दश दिन अकाल होताहै पश्चिम दिशामे अस्त (वृद्ध) होनेसे पांच दिन (आपद्विषयमें) अकाल होताहै और पूर्व-दिशामें वृद्ध होनेसे पन्द्रह दिन अकाल होताहै और बृहस्पतिके बालक (उदय) वा वृद्ध (अस्त) होनेसे पन्द्रह दिन अकाल होताहै ॥ १५० ॥

पक्षं वृद्धस्तु पूर्वेण दशाहं पश्चिमेन तु ।
प्रत्यग्बालो दशाहन्तु पूर्वेण तु दिनत्रयम् ॥ ५१ ॥

अर्थ-शुक्र पूर्वदिशामें स्थित होकर वृद्ध (अस्त) होनेसे पन्द्रह दिन अकाल होताहै । पश्चिमदिशामें वृद्ध होनेसे दशदिन अकाल होताहै पश्चिमदिशामें बालक होनेसे दशदिन अकाल होताहै और पूर्वदिशामें बालक (उदय) होनेसे तीनदिन अकाल होताहै ॥ ५१ ॥

अत्यन्ताशक्तौ ।

बाले वृद्धे च सन्ध्यांशे चतुःपञ्चत्रिवासरान् ।
जीवे च भार्गवे चैव विवाहादिषु वर्जयेत् ॥ ५२ ॥

इति राजमार्त्तण्डे ।

अर्थ-राजमार्त्तडमें अत्यन्त अशक्त विषयमें कहाहै कि, बृहस्पति वा शुक्रके बालक होनेसे चार दिन, वृद्ध होनेसे पांचदिन और सन्ध्यागत होनेसे तीन दिन परित्याग करके विवाहादि शुभ कार्य्यको करै ॥ ५२ ॥

वक्रे चैवातिचारे त्रिदशपतिगुरौ देवपूज्ये च सुप्ते
गुर्वादित्येऽधिमासे दिवसकररिपौ वाक्पतौ चैत्रपौषे ।
विष्टयां केतूद्गमे वा शरदि सुरगुरौ सिंहसंस्थे मनोज्ञे
वर्षादाप्नोति प्रौढाऽप्यनियतमरणं देवकन्यापि भर्तुः ॥ ५३ ॥

अर्थ-बृहस्पतिके वक्री वा अतिचारी होनेसे हरिशयनमे, गुर्वादित्ययोगमें, अधिमासमे, राहुके साथ बृहस्पति होनेसे, चैत्रमासमे और पौषमासमे. विष्टिभद्रातिथिमे, शरत्कालमे. केतूद्गम होनेसे और बृहस्पति सिंहराशिमे स्थित होनेसे यदि कन्याका विवाह होय तब वह देवकन्या होनेसेभी उसके पतिकी सवत्सरके मध्यमेही मृत्यु होतीहै॥५३॥

एकराशिस्थितौ स्यातां यदि राहुबृहस्पती ।
विवाहव्रतयज्ञादि तदा सर्वत्र वर्जयेत् ॥ ५४ ॥

---

(१) 'एकराशौ यदि स्यातामेकलेविषये यदि ।
गुर्वादित्यौ तदा त्याज्या यज्ञोद्वाहादिकक्रिया'॥

अर्थ—वचनान्तरमें लिखाहै कि, राहु और बृहस्पति यदि एकराशिमें स्थित होय तो विवाह व्रत और यज्ञादिकार्य्यको परित्याग करै ॥ ५४ ॥

बाले च दुर्भगा नारी वृद्धे नष्टप्रजा भवेत् ।
नष्टे च मृत्युमाप्नोति सर्वमेतद्गुरावपि ॥ ५५ ॥

इति राजमार्तण्डे ।

अर्थ—राजमार्त्तण्डमें लिखाहै कि, शुक्र वा बृहस्पतिके उदयकालमें विवाहिता नारी दुर्भगा होतीहै, इसीप्रकार शुक्र वा बृहस्पतिके अस्तसमय विवाहिता नारी मृतवत्सा होतीहै और अस्तभावमें होनेसे विवाहिता कन्याकी मृत्यु होतीहै ॥ ५५ ॥

सिंहगुरौ परिणीता पतिमात्मानमात्मजान्हन्ति ।
क्रमशस्त्रिषु पित्रादिषु वसिष्ठगर्गादयः प्राहुः ॥ ५६ ॥

अर्थ—वसिष्ठ और गर्गादिमुनिगणने कहाहै कि, सिंहराशिमें स्थित बृहस्पति मघा नक्षत्रमें होनेसे विवाहिता कन्याके पतिका नाश होताहै, पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्रमे स्थित होनेसे विवाहिता कन्याकी मृत्यु होतीहै और यदि उत्तराफल्गुनीनक्षत्रमें बृहस्पति होय तब विवाहिता कन्याकी सन्तानकी मृत्यु होतीहै ॥ ५६ ॥

गुरौ हरिस्थे न विवाहमाहुर्हारीतगर्गप्रमुखा मुनीन्द्राः ।
यदा न माघी मघसंयुता स्यात्तदा तु कन्योद्वहनं वदन्ति॥५७॥

अर्थ—बृहस्पति सिंह राशिमे स्थित होनेसे विवाह निषिद्ध होताहै, हारीत गर्गप्रभृति श्रेष्ठ मुनिगणने इसीप्रकार कहाहै, परन्तु उनके मध्यमें विशेष यही है कि, यदि मघानक्षत्र माघीपूर्णिमामें होय तब सिंहराशिमें स्थित गुरुजन्य अकाल होताहै और यदि माघी पूर्णिमाके दिन मघानक्षत्र न होय तो सिंहराशिमे स्थित बृहस्पति समानकालीन विवाहिता कन्याके शुभ होताहै ॥ ५७ ॥

अत्रैव माण्डव्यः ।

मघाऋक्षं परित्यज्य यदा सिंहे गुरुर्भवेत् ।
तत्राब्दे कन्यका चोढा सुभगा सुप्रिया भवेत ॥ ५८ ॥

अर्थ—मघानक्षत्रभिन्न अन्य नक्षत्रमें स्थित होकर यदि सिंहराशिमे बृहस्पति होय तब उसमें विवाहिता कन्या सुभगा होतीहै ॥ ५८ ॥

अतिचारं गते जीवे वृषे वृश्चिककुम्भयोः ।
यज्ञोद्वाहादिकं कुर्य्यात्तत्र कालो न लुप्यते ॥ ५९ ॥

इति हारीत ।

अर्थ-हारीतने कहाहै कि, बृहस्पति अतिचारी होकर यदि वृष, वृश्चिक वा कुम्भ-राशिमे गमनकरै तब उसमें अकाल नही होताहै, प्रत्युत यज्ञ और विवाहादि सर्व कार्य्य करना चाहिये ॥ ५९ ॥

अतिचारंगते जीवे वृषे वृश्चिककुम्भयोः।
तत्र विवाहिता कन्या संप्रीणीयात्कुलद्वयम् ॥ १६० ॥

इति कृत्यचिन्तामणौ।

अर्थ-कृत्यचिन्तामणि ग्रन्थमें लिखाहै कि, बृहस्पति अतिचारी होकर यदि वृष, वृश्चिक वा कुम्भराशिमे गमनकरै तब उसमें विवाहिता कन्या दोनों कुलोंको सुख देतीहै ॥ १६० ॥

यदातिचारं सुरराजमन्त्री करोति गोमन्मथमीनसंस्थः ॥
न याति चेद्यद्यपि पूर्वराशिं शुभाय पाणिग्रहणं वसिष्ठः ॥ ६१ ॥

इति भीमपराक्रमे।

अर्थ-भीमपराक्रममे वसिष्ठ मुनिने कहाहै कि, बृहस्पति यादि अतिचारी होकर वृष, मिथुन वा मीनराशिमे स्थित होय और पूर्व राशि न गमन करै, तब उसमें विवाह शुभ होताहै ॥ ६१ ॥

अतिचारं गते जीवे स्थिरराशौ च संस्थिते।
तत्र न लुप्यते कालो वदत्येवं पराशरः ॥ ६२ ॥

अर्थ-पराशरने कहाहै कि, बृहस्पति यादि अतिचारी होकर स्थिरराशिमे स्थित होय तो बृहस्पतिअतिचारजन्य अकाल नही होताहै ॥ ६२ ॥

वापीकूपतडागादि निषिद्धं सिंहगे गुरौ।
मकरस्थे तु तत्कार्य्यं न दोषः काललोपजः ॥ ६३ ॥

अर्थ-बृहस्पतिके सिंहराशिमें होनेसे वापी, कूप और तड़ागप्रभृतिका बनवाना निषिद्ध है, किन्तु मकर राशिमें बृहस्पति स्थित होनेसे वापी, कूप और तड़ागादि सभी बनवाना चाहिये अर्थात् अकाल नही होता है ॥ ६३ ॥

कन्यावृश्चिकमेषेषु मिथुने च झषे वृषे।
अतिचारेऽपि कर्त्तव्यं विवाहादि बुधैः सदा ॥ ६४ ॥ (+)

अर्थ-कन्या, वृश्चिक, मेष, मिथुन, मीन और वृषराशिमें बृहस्पति अतिचारी

(+) इत्येतदमूल द्वैतनिर्णयेऽप्युक्तम्।

होकर गमन करनेसे अकाल नही होताहै अर्थात् विवाहादि कर्म होसक्ताहै इसी प्रकार पण्डितोंने कहाहै ॥ ६४ ॥

त्रिकोणजायाधनलाभराशौ वक्रातिचारेण गुरुः प्रयातः ॥
यदा तदा प्राह शुभे विलग्ने हिताय पाणिग्रहणं वसिष्ठः॥६५॥(×)

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ–बृहस्पति वक्री वा अतिचारी होकर यदि कर्म करनेवालेके नवम, पञ्चम, सप्तम, द्वितीय वा एकादश राशिमें स्थित होय तो शुभलग्नमें विवाह होसक्ताहै, और वह विवाह मङ्गलदायक होताहै इसप्रकार वासिष्ठने कहाहै ॥ ६५ ॥

मकरस्थो यदा जीवो वर्जयेत्पञ्चमांशकम् ।
शेषेष्वपि च भागेषु विवाहः शोभनो मतः ॥ ६६ ॥

इति देवीपुराणम् ।

अर्थ–देवीपुराणमें लिखाहै कि, पहिले मकर राशिमें स्थित होनेसे बृहस्पतिमे विवाहका निषेध कियाहै उसको पञ्चमांशमें जानना चाहिये. अन्य भागमें विवाह शुभदायक होताहै ॥ ६६ ॥

गण्डक्या उत्तरे तीरे गिरिराजस्य दक्षिणे ।
सिंहस्थं मकरस्थञ्च गुरुं यत्नेन वर्जयेत् ॥ ६७ ॥

अर्थ–गण्डकी नदीके उत्तरमें और हिमालयके दक्षिणमे स्थित जो देश है उनमेही सिंहराशिमें और मकरराशिमें स्थित बृहस्पतिको यत्नसे परित्याग करे ॥ ६७ ॥

अथ प्रसङ्गादनादिदेवदर्शनादिनिषेधकथनम् ।

अनादिदेवतां दृष्ट्वा शुचः स्युर्नष्टभार्गवे ।
मलमासेऽप्यनावृत्तं तीर्थस्नानमपि त्यजेत् ॥ ६८ ॥ (ध)

इति भृगुकौशिकादय ।

अर्थ–नष्ट शुक्रमें और मलमास (अधिमास) में अनावृत्त अनादि देवताओंका दर्शन

(×) वक्रातिचारे विवाहे विशेषमाह–त्रिकोणेति । जन्मराशेः सकाशात नवमपञ्चमसप्तमद्वितीयैकादशराशौ वक्रातिचारेण यदि गुरुः प्रयातो गत तदा शुभे लग्ने पाणिग्रहणं हिताय वसिष्ठः प्राह अन्यथा न कुर्य्यादित्यर्थ. ।

(ध) "आवृत्ते तीर्थगमने प्रतिज्ञाते च कर्मणि । कालात्यये च कन्याया कालदोषो न विद्यते॥" इत्याङ्गिराः । शुच. शोकाः नष्टभार्गव इति अशुद्धकालमात्रोपलक्षणम एवं मलमासेपीत्यपि । शुच. शोका दुःखानीति यावत् । नष्टभार्गव इति अशुद्धकालान्तरोपलक्षणम इदञ्च मरणभय मुमुक्षुणा अकालेऽप्यनादिदेवतादर्शनं कर्त्तुमर्हति शान्तिकर्मादिति चिन्त्यम। अनावृत्तञ्च प्राथमिकमिति ।

करनेसे शोक प्राप्त होताहै और मलमासादिरूप अधिमासमें अनावृत्त तीर्थमेंभी स्नान न करना चाहिये ॥ ६८ ॥

बाले वा यदि वा वृद्धे शुक्रे चास्तमुपागते।
मलमास इवैतानि वर्जयेद्देवदर्शनम् ॥ ६९ ॥ (न)

इति वृद्धमनुप्रभृतयः।

अर्थ–मलमासमे जिसप्रकार अनावृत्त अनादि देवताओंका दर्शन करना मनेहै तिसी प्रकार शुक्रके बाल्य (उदय) मे, वृद्धिमे (अस्तमें) भी अनावृत्त अनादि देवताओंका दर्शन न करना चाहिये ॥ ६९ ॥

अनादिदेवता (x) च्चांसु कालदोषो न विद्यते।
नित्यास्वभ्यासयोगेन तथैवैकादशीव्रते ॥ १७० ॥ (प)

अर्थ–आवृत्त अनादि देवताके पूजनमें कालदोष नही होताहै और जिस प्रतिमाकी नित्यपूजा होय उसमेंभी कालदोष नहीं होताहै और एकादशीके व्रतमेंभी कालदोष नही होताहै ॥ १७० ॥

गयायां प्रतिप्रसवमाह।

गयायां सर्वकालं तु पिण्डं दद्याद्विचक्षणः।
अधिमासे जन्मदिने अस्ते च गुरुशुक्रयोः।
न त्यक्तव्यं गयाश्राद्धं सिंहस्थे च बृहस्पतौ ॥ ७१ ॥

इति तीर्थचिन्तामणौ–वायुपुराणम्।

अर्थ–गयाक्षेत्रमें पण्डितगण सर्वदाही पिण्डदान करतेहैं अधिमास (मलमास) मे जन्मदिनमें, बृहस्पति और शुक्रके अस्तसमयमे वा बृहस्पतिके सिंहराशिमें स्थित होनेसेभी गयाश्राद्धको परित्याग न करना चाहिये ॥ ७१ ॥

अथाकालवृष्टिकथनम्।

चतुर्मासे निवृत्ते तु चक्रपाणौ समुत्थिते।

(न) यथा मलमासे अनावृत्तमेव अनादिदेवतादर्शनं वर्जनीयं तथा बाल्शुक्रादावप्यनावृत्तमेव अनादिदेवतादर्शनं वर्जयेत्। न तु आवृत्तमपि। शुक्रास्त इति एतच्चोपलक्षणम् इति ॥

(x) अनादिदेवतात्वञ्च पुराणभारतादिप्रसिद्धं श्रीपुरुषोत्तमविश्वेश्वरप्रभृतित्वं तनानावृत्तादिदेवतादर्शनं तीर्थस्नानञ्च शुक्रास्ते मलमासे च त्यजेत्। इति मलमासतत्त्वे स्मार्त्तेनोक्तम्।

(प) यासु अर्चासु नित्यं पूजा क्रियतेतास्वित्यर्थः। अभ्यासेति प्रत्यहं पूजयेदित्यर्थः।

अकालवृष्टिं जानीयाद्यावन्न सुप्यते हरिः ॥ ७२ (फ)

अर्थ—चतुर्मासके अन्तमें श्रीहरिके उत्थान (उठने) से शयनके पूर्वकालपर्य्यन्त जो समय है उसमें वृष्टि होनेसे अकालवृष्टि कही जातीहै। जीमूत (मेघ) वाहन "यावन्न सुप्यते हरिः" इस स्थलमें "यावद्विष्णुमहोत्सवः" इस प्रकार पाठ करके फाल्गुनीपूर्णिमापर्य्यन्त अकालवृष्टिका समय कहागयाहै ॥ ७२ ॥

पौषादिचतुरो मासाञ्ज्ञेया वृष्टिरकालजा ।
व्रतयज्ञादिकं तत्र वर्जयेत्सप्तवासरान् ॥ ७३ ॥

इति भोजदेव. ।

अर्थ—सौर पौषसे चैत्रपर्य्यन्त वर्षनेसे अकालवृष्टि जानना चाहिये तीन दिन क्रमसे चरणाङ्कित वर्षनेसे शेष दिनसे सप्ताहपर्य्यन्त अकाल होताहै, इसमे व्रतयज्ञादि काम्य कर्मका आरम्भ न करना चाहिये ॥ ७३ ॥

मार्गा (×) न्मासात्प्रभृति मुनयो व्यासवाल्मीकिगर्गा-
श्चैत्रं यावत्प्रवर्षणविधौ नेति कालं वदन्ति ।
नाडीजङ्घः सुरगुरुमुनिर्वक्ति वृष्टेरकालौ
मासावेतावशुभफलदौ पौषमाघौ न शेषाः ॥ ७४ ॥

अर्थ--पौषमाससे चैत्रमासपर्य्यन्त वृष्टिका अकाल होताहै, व्यास, वाल्मीकि और गर्गमुनिने इस प्रकार कहाहै, किन्तु नाड़ीजङ्घ और बृहस्पतिके मतसे पौष और माघमें वृष्टिसे अकालवर्षण होताहै, एतद्भिन्नमासमें वृष्टि होनेसे कालवर्षण होताहै ॥ ७४ ॥

वृष्टिः करोति दोषं तावन्नाकालसम्भवा राज्ञः ।
यावन्न भवति याने नरपशुचरणाङ्किता वसुधा ॥ ७५ ॥

अर्थ—जिस वर्षासे मनुष्य और पशुओंके चरणोका चिह्न पृथिवीमे अङ्कित न हों तो उस अकालवृष्टि होनेसे दोष नही होताहै ॥ ७५ ॥

प्रकृतमनुसरामः ।

अनिष्टे त्रिविधोत्पाते सिंहिकासूनुदर्शने ।

(फ) अत्र यावद्विष्णुमहोत्सव इति जीमूतवाहन पठति । महोत्सवं फाल्गुनपूर्णिमेति व्याचष्टे च ।

(×) मार्गादित्यत्रयौ पञ्चमी नाभिविधौ पौषादन्यत्रैनेन गतत्वात् ।

सप्तरात्रं न कुर्वीत यात्रोद्वाहादि मङ्गलम् ॥ ७६ ॥ (ब)

अर्थ-दिव्य, भौम और आन्तरिक्ष (×) इन तीन प्रकारके उत्पातोमे और ग्रहण पडनेसे सात दिनपर्यंत यात्रा और विवाहादि मङ्गल कार्य्य न करना चाहिये ॥ ७६ ॥

विशेषमाह।

एकरात्रं परित्यज्य कुर्य्यात्पाणिग्रहं ग्रहे।
प्रयाणे सप्तरात्रन्तु त्रिरात्रं व्रतबन्धने ॥ ७७ ॥

अर्थ-ग्रहणका एक दिन परित्याग करके विवाहकरै सातदिन परित्याग करके यात्रा करै और तीन दिन परित्याग करके उपनयन (यज्ञोपवीत) करै ॥ ७७ ॥

दिग्दाहे दिनमेकञ्च ग्रहे सप्तदिनानि च।
भूकम्पे च समुद्भूते त्र्यहाणि परिवर्जयेत् ॥ ७८ ॥

(ब) अस्य कालाशुद्धिमाह-अनिष्टइति। त्रिविधोत्पातो दिव्यभौमान्तरीक्षरूप। दिव्यो ग्रहयुद्धधूमकेतूदयादि.। भौमो भूकम्पनिर्घातादि.। आन्तरीक्षो दिग्दाहोल्कादि. एतेषाञ्चाग्न्यादिमण्डलपातेनानिष्टफलत्वमिष्टफलत्वञ्च एतत्सर्वं स्थानान्तरे विवृतम्। अत्र चानिष्टफले त्रिविधोत्पाते सप्तरात्र यात्रोद्वाहादि मङ्गलं कर्म न कुर्य्यात् इष्टफले तु कर्त्तव्यमेवेति तात्पर्य्यम्। तथा राहुदर्शनेऽपि सप्तरात्र मङ्गल न कुर्य्यात्। ननु दिव्यं ग्रहर्क्षवैकृत्यामित्यनेन राहुदर्शनस्यापि दिव्योत्पातत्वात् पुनरुक्ति सत्यं राहुदर्शने सत्येव निषेधः। यस्तु कदाचित् राहुं न पश्यति तेन मङ्गलं न कर्त्तव्यमेव। यथा राहुदर्शन एव स्नानादे' कर्त्तव्यता नादर्शने। अन्यथा मेघाच्छन्नतया दर्शनाभावेऽपि निषेध स्यादिति दर्शनपदन्तु चाक्षुषज्ञानपरं ज्ञानमात्रपरत्वे लक्षणाप्रसङ्गात् एतत्सर्वं समयप्रकाशे विस्तृतमिति अतो राहुदर्शने सत्येव निषेध। अन्योत्पाताना तु दर्शनेऽपि निषेध इत्यपुनरुक्तिः। निश्चात्र राहुदर्शने इष्टे अनिष्टे च सामान्यतो निषेध इति। तथा चानिष्टमुक्तं वराहसंहितायाम्। "जन्मसप्ताष्टरिष्फाङ्कदशमस्थे निशाकरे। दृष्टोऽरिष्टप्रदो राहुर्जन्मर्क्षे निधनेऽपि वा" ॥ जन्मर्क्षं त्रिजन्मनक्षत्रं निधन त्रयोविंशनक्षत्रम्। अत्रापि दृष्ट इति विशेषानर्थक्यभयादर्शनादेवारिष्टप्रदत्वं नादर्शनादिति। अत्र न राशौ यत्र विधुन्तुदेन तरणिरित्यादिवचनं पठन्ति। समूलमिति समूलत्वे च गोचरविशेषोऽयम्। एवञ्चाकालवृष्टावपि सप्तरात्रं मङ्गलं न कर्त्तव्यम्। तथा च राजमार्त्तण्डे-"पौषादिचतुरो मासाञ्ज्ञेया वृष्टिरकालजा। व्रतं यात्रादिकं तत्र वर्जयेत्सप्तवासरान् ॥ वृष्टिः करोति दोषं तावन्नाकालसम्भवा राज। यावन भवति गमने नरपशुचरणाङ्किता वसुधा" इति। यावत्कर्दमाक्ता पृथिवी न स्यादित्यर्थः।

(×) ग्रहयुद्ध और धूमकेतु उदयादि दिव्योत्पात, भूकम्पनिर्घातादि भौम उत्पात और दिग्दाह उल्कापातादि अन्तरिक्षोत्पन्न उत्पात है ॥

उल्कापाते च त्रिदिनं धूमे पञ्चदिनानि च ।
वज्रपाते दिनमेकं वर्जयेत्सर्वकर्मसु ॥ ७९ ॥

अर्थ–दिग्दाहमे एक दिन, ग्रहणमे सात दिन, भूकम्पमें तीन दिन, उल्कापातमें तीन दिन, धूमकेतुके दर्शनमें पांचदिन और वज्रपतन (गिरने) मे एक दिन परित्याग करके समस्त मङ्गलकार्य्य करना चाहिये ॥ ७८ ॥ ७९ ॥

अथ जन्ममासादौ विवाहादिनिषेधः ।

न जन्ममासे नच चैत्रपौषे क्षौरं विवाहो न च कर्णवेधः ॥
अर्थस्य हानिं बहुदुःखपीडां मूलस्य नाशं मुनयो वदन्ति ॥ १८० ॥

अर्थ–अब जन्ममासादिमें विवाहादिका निषेध कहतेहैं जन्मके मासमें, चैत्रमासमे वा पौषमे क्षौरकर्म्म विवाह और कर्ण वेध न करना चाहिये जो मनुष्य इन मासोंमें उक्त कार्य्यको करतेहैं उनके द्रव्यका नाश होताहै अनेकप्रकारके दुःख होतेहैं, रोग होताहै और मूलका विनाश होताहै इसप्रकार मुनिगणोंने कहाहै ॥ १८० ॥

अपि च भोजदेवः ।

यो जन्ममासे क्षुरकर्मयात्रां कर्णस्य वेधं कुरुते विवाहम् ॥ (भ)
नूनं स रोगं धनपुत्रनाशं प्राप्नोति मूढो वधबन्धनानि ॥ ८१ ॥

अर्थ–भोजराजने कहाहै कि, जो मनुष्य जन्ममासमें क्षौरकर्म्म, यात्रा, कर्णवेध और विवाह करताहै उसके धन और पुत्रका नाश होताहै और वह मनुष्य रोगी होताहै और वध बन्धन होताहै ॥ ८१ ॥

प्रतिप्रसवमाह ।

जातं दिनं दूषयते वसिष्ठश्चाष्टौ च गर्गो यवनो दशाहम् ॥
जन्माख्यमासं किल भागुरिश्च चौले विवाहे क्षुरकर्णवेधे ॥ ८२ ॥

अर्थ–वसिष्ठने कहाहै कि, जन्मदिन परित्याग करके चूडा, विवाह, क्षौरकर्म और कर्णवेध करना चाहिये । इसीप्रकार गर्गमुनिके मतमे आठदिन और यवनमुनिके मतसे दशदिन त्यागकरके उक्त कार्य्य करना चाहिये किन्तु भागुरिमुनिके मतसे जन्ममासकोही परित्याग करके उक्त कार्य्य करना चाहिये ॥ ८२ ॥

अपि च ।

स्नानं दानं तपो होमः सर्वमाङ्गल्यवर्द्धनम् ।
उद्वाहश्च कुमारीणां जन्ममासे प्रशस्यते ॥ ८३ ॥

इति श्रीपतिसमुच्चये ।

(भ) कुरुते च मोहादिति पाठान्तरम् ।

अर्थ-स्नान, दान, तपस्या, होम और समस्त मङ्गलके बढानेवाले कार्य्य और कन्याका विवाह जन्ममासमें प्रशस्त है ॥ ८३ ॥

अन्यच्च।

जन्ममासे च पुत्राढ्या धनाढ्या च धनोदये।
जन्मभे जन्मराशौ च कन्या हि ध्रुवसन्ततिः ॥ ८४ ॥

इति कृत्यचिन्तामणौ।

अर्थ-कृत्यचिन्तामणिग्रन्थमे लिखाहै कि, जन्ममासमें कन्याका विवाह होनेसे पुत्रवती होतीहै, जन्ममाससे द्वितीयमासमे विवाहिता कन्या धनशालिनी होतीहै और जन्मनक्षत्रमे वा जन्मराशिमे जिस कन्याका विवाह होय तो उसके शीघ्र ही सन्तति होतीहै ॥ ८४ ॥

अपरञ्च।

ज्येष्ठे मासि तथा मार्गे क्षौरं परिणयं व्रतम्।
ज्येष्ठपुत्रदुहित्रोश्च यत्नतः परिवर्जयेत् ॥ ८५ ॥

इति गर्गः।

अर्थ-प्रथम गर्भोत्पन्न पुत्र वा कन्याको ज्येष्ठ मासमें, वा अग्रहायण मासमे चूडाकरण, विवाह और पुत्रका उपनयन इनको यत्नके साथ परित्याग करना चाहिये। इसप्रकार गर्गमुनिने कहा है ॥ ८५ ॥

प्रकारान्तरञ्च।

न जन्ममासे न च जन्मभे तथा नैव जन्मदिवसेऽपि कारयेत्।
आद्यगर्भभवपुत्रकन्ययोर्ज्यैष्ठे मासि न च जातु मङ्गलम् ॥ ८६ ॥

अर्थ-जन्ममासमे, जन्मनक्षत्रमें और जन्मदिनमे पुरुषका माङ्गल्य कर्म न करे और ज्येष्ठ मासमें प्रथम गर्भके पुत्र वा कन्याका माङ्गल्य कर्म न करना चाहिये॥८६॥

अपिच।

कृत्तिकास्थरविं त्यक्त्वा ज्येष्ठे ज्येष्ठस्य कारयेत्।
उत्सवेषु च सर्वेषु दिग्दिनानि च वर्जयेत् ॥ ८७ ॥

अर्थ-कृत्तिका नक्षत्रमे स्थित सूर्य्य अर्थात् ज्येष्ठ मासके प्रथम कृष्ण पक्षके दश दिन परित्याग करके ज्येष्ठ पुत्र वा ज्येष्ठ कन्याका समस्त मङ्गलकार्य्य करना चाहिये ॥ ८७ ॥

अन्यच्च ।

कृषिवपनविवाहाः पट्टबद्धाभिषेकः
प्रथमयुवतिसेवा गन्धमाल्यानुलेपः ।
इति वदति समस्तं जन्मवारे प्रशस्तं
पथिगमनविरुद्धं क्षौरकर्म्मातिरुद्धम् ॥ ८८ ॥

अर्थ–सस्यरोपण (खेतमे बीज बोना) विवाह (*) पट्टबद्ध, अभिषेक, गर्भाधान, गन्ध, माल्य, (माला) और अनुलेपनकरण (उबटन करना) जन्मवारमें प्रशस्त है, यात्रा और क्षौरकर्म जन्मवारमें अत्यन्त निषिद्ध है. अतएव इन दोनों कार्य्योंको जन्मवारमें कभी न करना चाहिये ॥ ८८ ॥

अथ विवाहादौ ग्रहशुद्धिकथनम् ।

अष्टवर्गशुभैः श्रीमान्कर्म कुर्य्यान्नभश्चरैः ।
गोचरस्थैस्तदप्राप्तौतत्प्राप्तौ चैववेधगैः ॥ ८९ ॥

इति सत्कृत्यमुक्तावल्याम् ।

अर्थ–सत्कृत्यमुक्तावली ग्रन्थमें लिखा है कि, अष्टवर्गमे ग्रहशुद्धि देखकर कर्म करना चाहिये, अष्टवर्गमे ग्रहोंकी शुद्धि न होनेसे गोचर शुद्धि देखे, गोचरमेंभी यदि ग्रहगण शुद्ध न हो तो वामवेधमें वा दक्षिणवेधमे शुद्ध होनेसे कार्य्य करना चाहिये ॥ ८९ ॥

अथाष्टवर्ग कथनम् ।
तत्रादौ रवेरष्टवर्गः ।

स्वादिनकृच्छुभदः क्षितिपक्षसमुद्रनगादिकपञ्चगतो–१ । २ । ४ । ७ । ८ । ९ । १० । ११ अथ विभावरिभर्त्तुरुपयङ्गदशेशगतो, ३ । ६ । १० । ११ अथ कुजादिनकृद्वत १ । २ । ४ । ७ । ८ । ९ । १० । ११ बुधात्त्रिशरर्त्तुनवादिषु जातो. ३ । ५ । ६ । ९ । १० । ११ । १२ देवगुरोर्विषयर्त्तुनवेशगतो. ५ । ६ । ९ । ११ अथ सुरारिगुरोः समयाचलभास्करयात. ६ । ७ । १२ तीक्ष्णमरीचिसुतादपि भास्करवत् १ । २ । ४ । ७ । ८ । ९ । १० । ११ अथ लग्नगृहात्त्रिकृताङ्गदशादिषु यातः ३ । ४ । ६ । १० ।

(*) कन्याके विवाहमें जन्ममास, जन्मराशि, और जन्मनक्षत्र प्रशस्त है । अतएव जन्मवारभी कन्याके विवाहमें प्रशस्त है ।

११ । १२ ॥ (४) ॥ रविरेखाः (४८) तथाच । सूर्य्यात् १ । २ । ४ । ७ । ८ । ९ । १० । ११ चन्द्रात् ३ । ६ । १० । ११ कुजात् १ । २ । ४ । ७ । ८ । ९ । १० । ११ बुधात ३ । ५ । ६ । ९ । १० । ११ । १२ जीवात् ५ । ६ । ९ । ११ शुक्रात् ६ । ७ । १२ मन्दात् १ । २ । ४ । ७ । ८ । ९ । १० । ११ लग्नात् ३ । ४ । ६ । १० । ११ । १२–४८ ॥ १९० ॥

अर्थ–अब अष्टवर्ग कीर्त्तनकरतेहैं । जन्मसमयका राशिचक्र अर्थात् मनुष्यके जन्मकालमे जो ग्रह जिस राशिमें स्थित हो उन सब ग्रहोंको राशिचक्रमें स्थापनकर जो लग्न होय उनकोभी "ल" चिह्नद्वारा यथास्थानमे अङ्कितकरै । अनन्तर सूर्य्यके अष्टवर्ग करनेमें सूर्य्यग्रह जिस स्थानमें स्थित होय उसी स्थानसे प्रथम, द्वितीय, चतुर्थ, सप्तम, अष्टम, नवम, दशम और एकादश घरमें एक २ रेखापात करनी चाहिये । एवं चन्द्रसे तृतीय, षष्ठ, दशम और एकादश घरमें एक २ रेखापात करै इसीप्रकार मङ्गलसे प्रथम, द्वितीय, चतुर्थ, सप्तम, अष्टम, नवम, दशम, एकादश घरमें, बुधसे तृतीय, पञ्चम, षष्ठ, नवम, दशम, एकादश और द्वादश घरमें; बृहस्पतिसे पञ्चम, षष्ठ, नवम और एकादश घरमे, शुक्रसे षष्ठ, सप्तम और द्वादश घरमें, शनिसे प्रथम, द्वितीय, चतुर्थ, सप्तम, अष्टम, नवम, दशम और एकादश घरमे, और लग्नसे तृतीय, चतुर्थ, षष्ठ, दशम, एकादश और द्वादशवें घरमे एक २ रेखा अङ्कित करनी चाहिये । अष्टवर्गमे ग्रहगण शुद्ध है वा नहीं इसके देखनेकी रीति आगे लिखी गई है ॥ १९० ॥

इति रवेरष्टवर्गः ।

अथ चन्द्रस्याष्टवर्गः ।

चन्द्रः शुभोऽर्कात्त्रिकालाद्रिदन्तावलाशाशिवस्थः ३ । ६ । ७ । ८ । १० । ११–ततः स्वात्कुरामर्त्वगाशाशिवस्थः १ । ३ । ६ । ७ । १० । ११ क्ष्माजाद्विवह्नीषुषड्ङ्कदिगीशेष्वथ २ । ३ । ५ । ६ । ९ । १० । ११ । ज्ञात् कुरामाब्धिबाणागदन्तावलाशाशिवस्थो १ । २ । ३ । ४ । ५ । ७ । ८ । १० । ११ ऽथ जीवात्कुदृग्वेदशैलेभकाष्ठाशिवस्थो । १ । २ । ४ । ७ । ८ । १० । ११ ऽथ शुक्रात्त्रिवेदेषुशैलग्रहाशाशिवस्थः ३ । ४ । ५ । ७ । ९ । १० । ११ । तीक्ष्णांशुदेहोद्भवाद्रामबाणर्त्तुशंभुस्थितो ३ । ५ ।

(४) अष्टवर्गेण गोचरफलमाह–स्वादिनकृदिति । जन्मकाले यत्र ग्रहास्तिष्ठन्ति तस्माद्वक्ष्यमाणप्रकारेण शुभाशुभत्वं बोद्धव्यम् । तत्र च यस्मिन्स्थाने शुभत्वं वक्ष्यते तत्र रेखा दातव्या यत्र च नोक्तः तत्र बिन्दवो दातव्या इति प्रकारः । अत्र च रविः स्वादात्मनः क्षित्यादिषु शुभः विभावरीभर्तुश्चन्द्रात् त्र्यादिषु रविः शुभः विभावरीति यावारौ स्वीकृतौ ह्रस्वौ क्वचिदिति दीर्घस्य ह्रस्वता । कुजात्सूर्यवत् रविः शुभः । बुधात्त्रिशरादिषु रविः शुभः । गुरोर्विषयादिषु रविः शुभः । शुक्रात् षडादिषु रविः शुभः । शने सूर्यवत् रविः शुभः लग्नात् त्र्यादिषु रविः शुभः ॥ इति ।

। ६ । ११ । ऽथोदयाद्धव्यवाहर्त्तुकाष्ठाशिवस्थः ३ । ६ । १० । ११ ॥ (×) ॥ चन्द्ररेखाः (४९) तथाच सूर्य्यात् ३ । ६ । ७ । ८ । १० । ११ । चन्द्रात् १ । ३ । ६ । ७ । । १० । ११ कुजात् २ । ३ । ५ । ६ । ९ । १० । ११ बुधात । १ । ३ । ४ । ५ । । ७ । ८ । १० । ११ जीवात् १ । २ । ४ । ७ । ८ । १० । ११ शुक्रात् ३ । ४ । । ५ । ७ । ९ । १० । ११ मन्दात् ३ । ५ । ६ । ११ । लग्नात ३ । ६ । १० । ११ । ४९ ॥ ९१ ॥

इति चन्द्रस्याष्टवर्गः । (०)

अथ कुजस्याष्टवर्गः ।

कुजोऽर्काच्छुभो वह्निबाणर्त्तुदिक्छम्भुगो । ३ । ५ । ६ । १० । ११ ऽथेन्दुतो रामकालेशगः ३ । ६ । ११। ततः स्वात्कुदृग्वेदसप्ताष्टदिक्छम्भुगो १ । २ । ४ । ७ । ८ । । १० । ११ । ऽथ निशानाथपुत्राद्गुणेष्वङ्गरुद्रोपयातः ३ । ५ । ६ । ११ ततो जीवतः कालकाष्ठाशिवार्कोपयातो ६ । १० । ११ । १२ ऽथ देवारिपूज्यादनेहो (१) गजेशार्कसंस्थः ६ । ८ । ११ । १२ ततः सूर्य्यपुत्रात्कुवेदागनागग्रहाशाभवस्थो १ । ४ । । ७ । ८ । ९ । १० । ११ ऽथ लग्नात्कुरामाङ्गदिक्छम्भुयातः १ । ३ । ६ । १० । ११ । कुजरेखाः (३९) तथा च सूर्य्यात् ३ । ५ । ६ ।१०। ११ । चन्द्रात । ३ । ६ । ११ कुजात् १ । २ । ४ । ७ । ८ । १० । ११ । बुधात् ३ । ५ । ६ । ११ । जीवात ६ । १० । ११ । १२ शुक्रात् ६ । ८ । ११ । १२ मन्दात १ । ४ । ७ । ८ । ९ । । १० । ११ लग्नात १ । ३ । ६ । १० । ११ । ३९ ॥ ९२ ॥

इति कुजस्याष्टवर्गः ।

अथ बुधस्याष्टवर्गः ।

ज्ञः शुभाऽर्कतः शरर्त्तुगोशिवार्कगो ५ । ६ । ९ । ११ । १२ । ऽथ चन्द्रतो द्विवेदकालनागदिङ्महेश्वरेषु २ । ४ । ८ । १० । ११ भूमिजात् कुदृक्कृतागनागगोदिगीशगः १ । २ । ४ । ७ । ८ । ९ । १०।११। तत स्वात्कुवह्निपञ्चषण्णवादिगीशगः १ । ३ । ५ । ६ । ९ । १० । ११ । १२ वाक्पते रसाष्टशम्भुसूर्य्यगो ६ । ८ । ११ ।

× चन्द्रोऽर्कात्त्रिकालादिषु शुभदः । स्वादात्मनश्चन्द्रः कुरामादिषु शुभः । कुजाद्द्व्यादिषु चन्द्रः शुभः । बुधाच्चन्द्रः कुरामादिषु शुभः । गुरोः कुदृगादिषु चन्द्रः शुभः । शुक्राद्व्यादिषु चन्द्रः शुभः । शनेः रामादिषु चन्द्रः शुभः । लग्नादिषु चन्द्रः शुभः । एवमन्येषामपि ग्रहाणां कर्त्तव्यम् ।

(०) चन्द्रादि ग्रहोंके अष्टवर्गोंका अनुवाद करनेसे विशेष लाभ नहीं [illegible] अङ्क देनेसेही पाठकगण उक्त अङ्क देखकर अष्टवर्गचक्र [illegible] करेंगे ।

(१) कुजदृति । अनेकः पद्ध इति ।

१२ ऽथ शुक्रतः कुबाहुवह्निवेदपञ्चनागगोशिवेषु १ । २ । ३ । ४ । ५ । ८ । ९ । ११ पङ्गुतः कुदृक्कृतागनागपञ्चकस्थितो १ । २ । ४ । ७ । ८ । ९ । १० । ११ । १२ ऽथ लग्नतः क्षितिद्विवेदकालनागदिक्छिवेषु १ । २ । ४ । ६ । ८ । १० । ११ बुधरेखा. (५५) तथाच सूर्य्यात् ५ । ६ । ९ । ११ । १२ चन्द्रात् २ । ४ । ६ । । ८ । १० । ११ । कुजात् १ । २ । ४ । ७ । ८ । ९ । १० । ११ बुधात् १ । । ३ । ५ । ६ । ९ । १० । ११ १२। जीवात् ६ । ८ । ११ । १२ शुक्रात् १ । । २ । ३ । ४ । ५ । ८ । ९ । ११ मन्दात् १ । २ । ४ । ७ । ८ । ९ । १० । । ११ । १२ लग्नात् १ । २ । ४ । ६ । ८ । १० । ११–५५ । ॥ ९३ ॥

इति बुधस्याष्टवर्ग. ।

अथ बृहस्पतेरष्टवर्गः ।

सुरराजगुरुः शुभदो रवितः कुयमानलवेदनगादिकपञ्च (क) गतो- १ । २ । ३ । । ४ । ७ । ८ । १० । ११ ऽथ विधोर्द्विशराचलगोशिवगो । २ । ५ । ७ । ९ । ११ वसुधातनयात् कुयमाब्धिनगाष्टदशेशगतो- १ । २ । ४ । ७ । ८ । १० । ११ ऽथ बुधात् क्षितियुग्मकृतेषुरसग्रहदिग्गिरिशोपगतः १ । २ । ४ । ५ । ६ । ९ । १० । ११ तदनु स्वत एकयमानलवारिधिपर्वतनागदशेशगतो १। २ । ३ । ४ । ७ । ८। १० ११ ऽथ सितात् यमपञ्चरसग्रहदिक्छिवगः २ । ५ । ६।९।१० । ११ रविनन्दनतो दहनेषु-रसार्कगतो ३ । ५ । ६ । १२। ऽथ लग्नगृहात्कुयमाब्धिशरर्त्तुनगग्रहदिग्गिरिशोपगतः १। । २ । ४ । ५ । ६ । ७ । ९ । १० । ११ । गुरुरेखाः (५६) तथाच सूर्य्यात् १ । । २ । ३ । ४ । ७ । ८ । ९ । १० । ११ । चन्द्रात् २ । ५ । ७ । ९ । ११ कुजात् । १ । २ । ४ । ७ । ८ । १० । ११ । बुधात् १ । २ । ४ । ५ । ६ । ९ । १० । । ११ जीवात् १ । २ । ३ । ४ । ७ । ८ । १० । ११ शुक्रात् २ । ५ । ६ । ९ । । १० । ११ मन्दात् ३ । ५ । ६ । १२ । लग्नात् १ । २ । ४ । ५ । ६ । ७ । ९ । । १० । ११–५६ ॥ ९४ ॥

इति बृहस्पतेरष्टवर्गः ।

अथ शुक्रस्याष्टवर्गः ।

भृगुः शुभो रवेर्गजेशसूर्य्यगो ८ । ११ । १२ऽथ चन्द्रत. क्ष्मादि (ख) पञ्चकाष्टगोशिवार्कग. १ । २ । ३ । ४ । ५ । ८ । ९ । ११ । १२ कुजात्त्रिवेदका-लगोशिवार्कगो. ३ । ४ । ६ । ९ । ११ । १२ऽथ बोधनात्त्रिबाणकालरन्ध्रभद्रसंस्थि-

(क) नगादिकप.ञ्चगत. नगायेरादशपर्य्यन्तमित्यर्थ । गिरिश. शिव एकादश इत्यर्थ. ।
(ख) क्ष्मादिपञ्चकम् एकादिपञ्चपर्य्यन्तमित्यर्थ ।

तः ३ । ५ । ६ । ९ । ११ गुरोः शराष्टरन्ध्रदिङ्महेशगः५ । ८ । ९ । १० । ११ततः स्वात् कुपञ्चकाष्टरन्ध्रदिक्च्छिवोपगः १ । २ । ३ । ४ ।५।८ । ९ । १० । ११ शने- र्गुणाब्धिपञ्चनागगोदशेशगो. ३ । ४ । ५ । ८ । ९ । १० । ११ऽथ लग्नतः कुपञ्चका- ष्टगोशिवास्थितः १ । २ । ३ । ४ । ५ । ८ । ९ । ११ । शुक्ररेखाः (५२) तथाच सूर्य्यात् ८ । ११ । १२ । चन्द्रात् १ । २ । ३ । ४ । ५ । ८ । ९ । ११ । १२ कुजात् ३ । ४ । ६ । ९ । ११ । १२ बुधात् ३ । ५ । ४ । ९ । ११ जीवात् ५ । ८ । ९ । १० । ११ शुक्रात् १ । २ । ३ । ४ ।५ । ८ । ९ । १० । ११ मन्दात् ३। ४ । ५ । ८ ।९ । १० । ११ लग्नात् १ । २ ।३ । ४ । ५ ।८ ।९। ११—५२ ॥९५॥

इति शुक्रस्याष्टवर्गः ।

अथ शनेरष्टवर्गः ।

पङ्गुरर्काच्छुभः क्ष्मायमाम्भोधिशैलाष्टदिक्छम्भुगो—१ । २ । ४ । ७ । ८ । १० । ११ऽथेन्दुतो रामकालेशगः ३ । ६ । ११ क्ष्मासुताद्वह्निबाणर्त्तुकाष्ठाशिवार्कोपगो ३ । ५ । ६ । १० । ११ । १२ ऽथ ज्ञतः कालदन्तावला (ग) दिस्थितः ६ । ८ । ९ । १० । ११ । १२ अथ जीवतो बाणकालेशमार्त्तण्डगः ५ । ६ । ११ । १२ ततो दैत्य- पूज्यादनेहःशिवार्कोपगः ६ । ११ । १२ स्वाद्धुताशेषुकालेशयातः ३ । ५ । ६ । ११। ततो लग्नतः क्ष्मागुणाम्भोधिषड्दिङमहेशस्थितः १ । ३ । ४ । ६ । १० । ११ चन्द्रात् शनिरेखाः (४९) तथाच सूर्यात् १ । २ । ४ । ७ । ८ । १० । ११ । चन्द्रात् ३ । ६ । ११ कुजात् ३ । ५ । ६ । १० । ११ ।१२ बुधात ६ । ८ ।९। १० । ११ । १२ जीवात् ५ । ६ । ११ । १२ शुक्रात् ६ । ११ । १२ मन्दात ३ । ५ । ६ । ११ लग्नात् १ । ३ । ४ । ६ । १० । ११—३९ । ॥ ९६ ॥

इति शनेरष्टवर्गः ।

अथ लग्नाष्टवर्गः ।

सूर्य्यादेकद्विचतुःसप्ताष्टदशैकादशेषु १ । २ । ४ । ७ । ८ । १० । ११ सोमा- त्त्रिषडेकादशेषु ३ । ६। ११ भौमात्त्रिपञ्चषडेकादशेषु ३ । ५ । ६।११बुधात षडष्टनवद- शैकादशेषु ६ । ८ । ९ । १० । ११ गुरोः पञ्चषडेकादशद्वादशेषु ५ । ६ । ११ । १२ शुक्रात षडेकादशद्वादशेषु ६ । ११ । १२। शनेस्त्रिपञ्चाष्टदशैकादशेषु ३ । ५ । ८ । १० । ११ लग्नादेकत्रिचतुःषड्दशैकादशेषु १ । ३ । ४ । ६ । १० । ११ लग्नरेखा (३७) तथाच सूर्य्यात १ । २ । ४ । ७ । ८ । १० । ११ चन्द्रात ३ । ६ ।

(ग) दन्तावलो हस्ती तस्यादि द्वादशपर्य्यन्तमित्यर्थः । अत्राष्टवर्गे रविरेखा ४८ चन्द्रस्य ४९, कुजस्य ३९ बुधस्य ५४ गुरोः ५६ शुक्रस्य ५२ शनेः ३९ ॥

११ । कुजात् ३ । ५ । ६ । ११ बुधात् ८ । ९ । १० । ११ जीवात् ५ । ६ । ११ । १२ शुक्रात् ६ । ११ । १२ मन्दात् ३ । ५ । ८ । १० । ११ लग्नात् १ । ३ । ४ । ६ । १० । ११–३७ ॥ ९७ ॥

इति लग्नाष्टवर्गः ।

अथाष्टवर्गगणनक्रमः ।

यावती यावती रेखा ग्रहाणामष्टवर्गके ।
तावती द्विगुणीकृत्य चाष्टाभिः परिशोधयेत् ॥ ९८ ॥

अर्थ–अब अष्टवर्गके गिननेका क्रम लिखतेहैं । पूर्वोक्तरीतिसे रेखापात करनेमे जिस घरमे जितनी रेखा पतित हो उनको द्विगुणी (दूनी) करके आठसे भाग देवै ॥ ९८ ॥

अष्टोपरि भवेद्रेखा अष्टाभ्यन्तरबिन्दवः ।
अष्टभिश्च समो यत्र समस्तोऽत्र निगद्यते ॥ ९९ ॥

अर्थ–आठसे भाग देनेसे जो अङ्क शेष बचै उनको उसी घरमें रखना चाहिये दूनी करनेसे यदि आठसे कम हो तो जितने बिन्दुओंसे आठ होसकै उतने बिन्दु उस घरमे रखना चाहिये और दूनी करनेसे यदि आठ होवें तब उस घरमें सम लिखना चाहिये ॥ ९९ ॥

स्पष्टमाह ।

शून्ये तु बिन्दवश्चाष्टौ रेखैके रसबिन्दवः ।
चत्वारो बिन्दवो युग्मे द्विबिन्दू रामरेखके ॥ २०० ॥
समा रेखा चतुष्के तु पञ्चमे नेत्ररेखिका ।
षड्रेखासु चतूरेखा सप्तमे रसरेखिका ॥ १ ॥

इति जातकचन्द्रिकायाम् ।

अर्थ–अब आठो वर्गमे रेखा और शून्य लिखनेकी रीति कही जातीहै । जिस घरमे रेखा, रेखापात न हो, उस घरमे आठ शून्य लिखना चाहिये, इसी प्रकार जिस घरमे एक रेखापात हो, उसमे छः शून्य, जिस घरमे दो रेखा हों, उसमें चार शून्य, जिस घरमें तीन रेखा हो उसमे दो शून्य, लिखै और जिस घरमें चार रेखा हो उसमे सम लिखै, जिस घरमें पांच रेखा हो उसमें दो शून्य, जिस घरमें छः रेखा हों उसम चार शून्य और जिस घरमे सात रेखा पतित हों उस घरमें छः शून्य लिखना चाहिये ॥ २०० ॥ १ ॥

अथ रेखाबिन्द्वादीनां फलम् ।

श्रीरानन्दस्तथा श्रेयो योगो राज्यप्रदस्तथा ।
द्व्यादिद्विगुणरेखाणां फलमेतदनुक्रमात् ॥ २ ॥

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ—अब द्व्यादिद्विगुण रेखाका फल कीर्त्तन करतेहैं । दो रेखा होनेसे श्री (लक्ष्मी) प्राप्तहोतीहै, इसीप्रकार चार रेखामे आनन्दका अनुभव होताहै. छः रेखामे मङ्गल होताहै और आठ रेखा होनेसे राज्यप्राप्ति होतीहै ॥ २ ॥

अन्यच्च ।

रेखाद्वये शुभं कुर्य्याद्धनी रेखाचतुष्टये ।
रेखाषट्के प्रभुख्यातिरष्टरेखे महीपतिः ॥ ३ ॥

इति जातकचन्द्रिकायाम् ।

अर्थ—जातकचन्द्रिकामें लिखाहै कि, अष्टवर्गके घरमे दो रेखा होनेसे शुभ होताहै, चार रेखा होनेसे धनवान् होताहै, छः रेखा होनेसे प्रभुत्वलाभ होताहै और आठ रेखा होनेसे राजा होताहै ॥ ३ ॥

मलिनोऽथ विपद्धानिर्योगो मृत्युप्रदस्तथा ।
द्व्यादिद्विगुणबिन्दूनां फलमेतदनुक्रमात् ॥ ४ ॥

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ—द्व्यादिद्विगुणशून्यका फल वर्णन करतेहै । अष्टवर्गमें दो शून्य पडने से मलीनता होतीहै इसीप्रकार चार शून्यमे विपत् छः शून्यमे हानि और आठ शून्य पड़नेसे मृत्यु होतीहै ॥ ४ ॥

अपरञ्च ।

शून्यद्वये भवेन्मृत्युश्चतुःशून्ये प्रपीडनम् ।
षट्शून्ये रोगदारिद्र्यमष्टशून्ये मृतिर्भवेत् ॥ ५ ॥

इति जातकचन्द्रिकायाम् ।

अर्थ—जातकचन्द्रिकामे अष्टवर्गके शून्योंका फल इस प्रकारसे कहाहै कि, दो शून्य होनेसे मृत्युके समान फल होताहै, इसीप्रकार चार शून्य होनेसे पीडा होतीहै छः शून्य होनेसे रोग और दरिद्रता होतीहै और आठ शून्य होनेसे मनुष्यकी मृत्यु होतीहै ॥ ५ ॥

शुभा रेखाः समाख्याता बिन्दवश्चाशुभा मताः ।
यत्र रेखा न बिन्दुश्च तत्समं परिकीर्तितम् ॥ ६ ॥

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ-अष्टवर्गमें यदि रेखापात हो तब शुभ होताहै, बिन्दु पडनेसे अशुभ होताहै और जिस स्थानमे रेखा वा बिन्दु (शून्य) कुछभी न होवे उसको सम कहतेहैं. उस स्थानसेभी शुभ फल होताहै ॥ ६ ॥

अविशुद्धाष्टवर्गस्य फलमाह।

अष्टवर्गेषु ये शुद्धास्ते शुद्धाः सर्वकर्मसु।
अशुभाश्चाष्टवर्गेषु सर्वत्रैवाशुभा मताः ॥ ७ ॥

इति जातकचन्द्रिकायाम्।

अर्थ-ग्रहगण अष्टवर्गमें शुद्ध होनेसे समस्त कर्ममे शुभफल प्रदान करतेहै, यदि अष्टवर्गमे शुद्ध होवे तो समस्त कार्य्योमे अशुभ देतेहैं ॥ ७ ॥

व्रतारम्भे विवाहे च यात्रायां क्षुरकर्मणि।
अविशुद्धाष्टवर्गस्य समस्ता निष्फला भवेत् ॥ ८ ॥

इति ज्योतिःसारे।

अर्थ-ज्योतिषसारमें लिखाहै कि. व्रतारम्भमें. (उपनयनमें) विवाहमें. यात्रामें और चूडाकर्ममें इन समस्त कार्य्योमे यदि अष्टवर्गमे ग्रह शुद्ध होनेसे कर्म निष्फल होताहै। अतएव कर्म करनेके समयअष्टवर्गमे ग्रहोकी शुद्धि अवश्य देखना चाहिये ॥ ८ ॥

अथ ग्रहाणां गोचरशुद्धिः। (म)

केतूपप्लवभौममन्दगतयः षष्ठात्रिसंस्थाः शुभा-
श्चन्द्रार्कावपि ते च तौ च दशमौ चन्द्रः पुनः सप्तमः।
जीवः सप्तनवद्विपञ्चमगतो युग्मेषु सोमात्मजः
शुक्रःषड्दशसप्तवर्जमितरे सर्वेऽप्युपान्ते शुभाः ॥ ९ ॥

इति माण्डव्य.।

(म) केतूपप्लवेत्याद्युक्तगोचरस्याष्टवर्गगोचरस्य च द्वयोरेव फले अतीव शुभफलं द्वयोर्विरोधे मध्यफल द्वयोरशुभेऽतीवाशुभफलमिति युक्ति.। अत्र सौभरिणा इत्यष्टवर्गगोचरं यन्निगदितं तदिष्टम् अन्यत्केतूपप्लवेत्यादिना यदुक्तं तन्नेष्टं न सम्यक्फलदायकमिति प्रलपितं तद्धेयमेव। "स्थानेष्वेतेषु हिता. शेषेष्वहिता भवन्ति चाष्टानाम्। अशुभशुभविशेषफलं ग्रहा प्रयच्छन्ति चरगता ॥" इति लघुजातकवचनविरोधात्। श्लोकस्यानन्वयापत्तेश्च बृहज्जातके केतूपप्लवेत्यादिगोचरस्यानुरक्तत्वेनाष्टवर्गगोचरस्यानन्तरमस्य वचनस्य पाठादस्या कल्पाख्याया अघटनाच्चेत्यल बहुना।

(य) गोचरशुभाशुभमाह-केतूपप्लवेति। उपप्लवो राहु केतुराहुभौममन्दा. जन्मकालीनचन्द्राध्युषितराशे. षष्ठस्थास्तृतीयस्थाश्च शुभदा। चन्द्रार्कावपि षष्ठस्थौ तृतीयस्थौ च शुभदौ ते च केतूपप्लवभौममन्दगतय दशमस्था शुभदा तौ च चन्द्रार्कौ दशमौ शुभदौ दशमाविति। सर्वोपन्यस्तं-

अर्थ—अब माण्डव्योक्त गोचरशुद्धि कहीजातीहै जन्मराशिसे तृतीय, षष्ठ और दशमस्थानमें स्थित केतु, राहु ; मङ्गल, शनि और सूर्य्य ग्रह होनेसे शुभफल प्रदान करतेहैं. तृतीय, षष्ठ, दशम और सप्तम स्थानमें चन्द्रग्रह स्थित होनेसे शुभफल प्रदान करताहै बृहस्पति जन्मराशिसे सप्तम, नवम, द्वितीय और पञ्चम स्थानमें स्थित होनेसे शुभफल होताहै. बुध द्वितीय, चतुर्थ, षष्ठ, अष्टम, दशम और द्वादशवें स्थानमें स्थित होनेसे शुभफलको देताहै शुक्र षष्ठ. दशम और सप्तम भिन्न स्थानमें शुभ होता और जन्मराशिसे एकादश स्थानमें समस्तग्रहही शुभफल प्रदान करतेहैं ॥ ९ ॥

सूर्य्यः षट्त्रिदशस्थितस्त्रिदशषट्सप्ताद्यगश्चन्द्रमा
जीवः सप्तनवद्विपञ्चमगतो वक्रार्कजौ षट्त्रिगौ ।
सौम्यः षड्द्विचतुर्दशाष्टमगतः सर्वेऽप्युपान्ते शुभाः
शुक्रः षड्दशसप्तमर्क्षसहितः शार्दूलवत्त्रासकृत् ॥ २१० ॥ (२)

इति वराह ।

अर्थ—अब वराहोक्त गोचरशुद्धि कही जातीहै जन्मराशिसे छठे, तीसरे और दशवें स्थानमें स्थित सूर्य्यग्रह शुभ होताहै. तीसरे, दशवें, छठे सातवें और जन्मराशिमें स्थित चन्द्र शुभ होताहै. सातवें, नवमें, दूसरे और पाचवें स्थानमें स्थित बृहस्पति शुभ होताहै. मङ्गल और शनि छठे और तीसरे स्थानमे स्थित होनेसे शुभ होताहै छठे दूसरे चौथे, दशवे और आठवें स्थानमें स्थित बुध शुभ होताहै. जन्मराशिसे ग्यारहवें स्थानमें समस्तग्रह स्थित होनेसे शुभप्रद होतेहैं और छठे, दशवे और सातवें स्थानमे स्थित शुक्र होनेसे व्याघ्रके समान त्रास उत्पन्न करताहै ॥ २१० ॥

—ख्यागृहीतौ वक्रस्तु सप्तमस्थोऽपि शुभदः । एते च राहुकेतुकुजमन्दसूर्य्याः तृतीयषष्ठदशमगाः शुभदाः । चन्द्रः तृतीयषष्ठदशमसप्तमगः शुभ इत्यर्थः । जन्मराशेः सकाशात् गुरु सप्तनवपञ्चमगत शुभदः । बुधस्तु युग्मेषु द्वितीयचतुर्थषष्ठाष्टमदशमद्वादशेषु स्थित. शुभद । शुक्रस्तु षष्ठदशमसप्तमराशीस्त्यक्त्वा इतरे अन्यस्थाने एकद्वित्रिचतुपञ्चाष्टमनवमैकादशद्वादशेषु शुभद । उतरीति माण्डव्यमुनिनोक्तत्वात् सर्वनामकार्य्यभाव इति केचित् । कश्चित्तु षड्दशसप्तमर्क्षमहित इति पाठ करोति । वस्तुतस्तु इतरे इति पदेन मह्रान्वय. तत्रेय व्याख्या । शुक्र. षड्दशमसप्तमर्क्षसहितोऽपि जन्मद्वित्रिचतु.पञ्चाष्टमनवमैकादशद्वादशेषु शुभद । एतेन शुक्रस्यैकादशस्थाने शुभत्वमायातम् इतरेऽन्येऽपि सर्वे एकादशे शुभा. । अत एवापिशब्दोऽपि सार्थक. इति अन्तस्य समीपमुपान्तमेकादश सर्वे ग्रहाः एकादशस्था शुभा इत्यर्थ ।

(२) एतन्माण्डव्योक्तमेव वराहोक्तगोचरेण प्रवादयति—सूर्य्य इति । अत्र जन्मराशिगत चन्द्र शुभद इति विशेष । वक्रार्कजौ षट्त्रिगावित्यत्र दशमगावित्यप्यूह्यम । बुधश्च द्वादशस्थ शुभ इत्यप्यूह्यम ॥

रविशुद्धौ गृहकरणं रविगुरुशुद्धौ व्रतोद्वाहौ ।
क्षौरं तारकशुद्ध्या शेषं चन्द्राश्रितं कर्म्म ।
सर्वदा सर्वकार्य्येषु चित्तशुद्धिर्विशेषतः ॥ ११ ॥

इति ज्योतिःसारे ।

अर्थ–अब गृहारम्भमें सूर्य्यशुद्धिको कहतेहै, उपनयन और विवाहमे सूर्य्य और बृहस्पति शुद्ध होना चाहिये चूडाकर्ममे नक्षत्रशुद्धिका प्रयोजन है और अन्यान्य कार्य्यमें चन्द्रशुद्धिको विचारना चाहिये किन्तु सर्वदा समस्त कार्य्यमेही चित्त शुद्ध रखना चाहिये अर्थात् चित्तशुद्धि न होनेसे कोई कार्य्य न करना चाहिये ॥ ११ ॥

पुंसामर्कःस्मृतो योनिर्योषितामसृतद्युतिः ।
अतः पुंयोषितोः शस्तं बलमर्कशशाङ्कजम् ॥ १२ ॥

इति विद्याधरीविलासे ।

अर्थ–पुरुषको सूर्य्यका बल और स्त्रीको चन्द्रका बल विचारकरके पुरुष और स्त्रीका कार्य्य करना चाहिये ॥ १२ ॥

गोचरशुद्धाविन्दुं कन्याया यत्नतः शुभं वीक्ष्य ।
तिग्मकिरणञ्च पुंसः शेषैर्बलैरपि विवाहः ॥ १३ ॥ (+)

अर्थ–विवाहके समय कन्याके गोचरमें चन्द्रशुद्धि होनेसे और पुरुषके गोचरमें सूर्य्यशुद्धि होनेसे औरअन्य समस्त ग्रह शुद्ध न होनेसे भी विवाह करनाचाहिये ॥ १३ ॥

+ चन्द्रशुद्धिं रविशुद्धिञ्चाह–गोचरशुद्धाविति । सप्तमोपचयइत्यादिना गोचरशुद्धौ कन्याया यत्नेन शुभं चन्द्रं दृष्ट्वा विवाहः कार्य्य इत्यर्थः । एतेनैतदुक्तं भवति । उभयोरेव चन्द्रशुद्धिः कार्य्या किन्त्वत्र कन्याया यत्नेनावश्यं चन्द्रशुद्धिः कार्य्या वरस्य तु कदाचित् कार्य्यवशात् प्रतीकारेणापि विवाहः कार्य्यो न तु कन्याया इत्यर्थः । अत एव वामवेधादिशुद्धियेस्य सर्वत्र कल्पनीयेत्यर्थः । यथा राजमार्त्तण्डे–"तारानुरूपफलदः स्वगृहे स्ववर्गे स्वोच्चेऽपि शीतकिरणः सुहृदस्त्रिभागे । शस्तोऽष्टवर्गपरिशोधितगोचरेण पक्षादिशुद्धिविपरीतविशुद्धिशुद्धः" इति । यथा जन्मराशेः शुभः सूर्य्य इत्यादिना शुद्धौ सूर्य्यं च पुंसः शुभं वीक्ष्य विवाहः कार्य्यः । अत्राप्युभयोरेव विशुद्धिः कार्य्या । किन्तु पुंसो यत्नेनावश्यं रविशुद्धिः कार्य्या कन्यायाः कदाचित्कार्य्यवशात् प्रतीकारेण रविशुद्ध्यभावेऽपि विवाहः न तु वरस्येत्यर्थः । अतः कन्याया अपि रविशुद्धिः । यथा राजमार्त्तण्डे 'जन्मनि भानौ विधवा पतिसुतयुक्ता भवत्युपचयर्क्षे । शेषगृहस्थे कन्या नानारोगातुरा नूनम् ॥" इति । अत्र च गुरुशुद्धिरपि चिन्त्या यथा तत्रैव । 'रविशुद्धौ गृहकरणं रविगुरुशुद्धौ व्रतोद्वाहौ । क्षौरं तारकशुद्धौ शेषं कर्म चन्द्राश्रितम् ॥" इति । गुरुशुद्धिस्तु 'जीवे नमनवास्तपञ्चमगते" इत्यादिना बोध्या । तथा "जन्माष्टमद्वादशगाः सुरेज्यो वैधव्यदः स्त्रीसुखदस्त्रिषष्ठे । दौर्भाग्यदाता दशमश्चतुर्थे शेषेषु सौभाग्यमनुत्तमायच्छ-

अथ रविशुद्धिः ।

जन्मराशेः शुभः सूर्य्यस्त्रिषट्दशलाभगः ।
द्विपञ्चनवमोऽपीष्टस्त्रयोदशदिनात्परम् ॥ १४ ॥

अर्थ—अब सूर्य्यशुद्धिको कीर्त्तन करतेहैं । मनुष्यकी जन्मराशिसे तीसरे, छठे, दशवे और ग्यारहवे घरमें स्थित होनेसे सूर्य्य सर्वदा शुभ होताहै और जन्मराशिसे दूसरे, पांचवे वा नवमें घरमे स्थित होनेसे सूर्य्य तेरह दिनके बाद शुभ होताहै ॥ १४ ॥

फलम् ।

त्रिषड्दशैकादशगोदिनेशःसुतार्थसौभाग्यसुतप्रदःस्यात् ॥
वैधव्यदाताष्टमराशिसंस्थःशेषेषुरुग्दुःखशुचःकरोति ॥ १५ ॥

इति भोजराज ।

अर्थ—जन्मराशिसे तीसरे, छठे, दशवें और ग्यारहवें घरमे स्थित होनेसे सूर्य्य, पुत्र, अर्थ, सौभाग्य और मङ्गलदायक होताहै, आठवें घरमें रहनेसे स्त्रीको विधवा कर देताहै । और जन्मराशिमें स्थित हो वा दूसरे, चौथे, पांचवें, सातवे, नवमे और बारहवे घरमें स्थित होनेसे सूर्य्य, रोग दुःख और अनेक प्रकारके शोक प्रदान करताहै ॥ १५ ॥

अन्यच्च शुद्धिमाह ।

द्विपञ्चनवमस्थोपि भवेच्छुभकरो रविः ।
उभौ यदि शुभौ स्यातां हरिणाङ्कबृहस्पतौ ॥ १६ ॥

इति मार्गप्रदे ।

अर्थ—यदि चन्द्र और बृहस्पति गोचरमे शुद्ध होवे तो दूसरे, पांचवें, वा नवमे स्थानमें स्थित सूर्य्यभी तेरह दिनके मध्यहीमे शुभ होजाताहै ॥ १६ ॥

—स्यात ।" शेषारिति एतच्चेदैर्मङ्गलादिभिरवलगोचरशुद्धिरपि विवाह कार्य्य इत्यर्थ । एतच गौड देशीयानां यथा ।" यद्यपि सुरगुरुसूर्य्यौ शस्तौ कथितौ विवाहयोगे ऽपि । सकलगुणोदयदात्री नार्या शुद्धि परा गौडै ।" तथा राजमार्त्तण्डे ' बृहस्पतौ गोचरशोभनस्थे विवाहमिच्छन्ति हि गौडका-त्या. । रवौ विशुद्धे प्रवदन्ति गौडा न गोचरे माणवके प्रमाणम । भौमे विशुद्धे यमुनातटोत्था हिमालयोत्थाः शशिजे शुभप्रदे । कैलासदेशप्रभवा शनैश्चरे द्वीपान्तगास्तथा भृगुजे नराः शुभम । अत्रच ग्रहा मित्रादिगृहे स्थिता अनिष्टा अपि शुभदा । यथा [illegible] 'स्वक्षेत्र-स्वोच्चगतोऽपि वा स्यान्मित्रेक्षितो वा स्वगृहे गतो वा । चानिष्टसंस्थोऽपि ग्रह नराणां सो [illegible] फलं ददन्ते " इति ।

अपरञ्च।

द्वितीयपुत्राङ्कगतः प्रभाकरस्त्रयोदशाहात्परतः शुभप्रदः ॥
न जन्मसप्तव्ययरन्ध्रगस्तथा करोति पुंसामपि तादृशं फलम् ॥ १७ ॥

इति ग्रन्थान्तरे।

अर्थ–ग्रन्थान्तरमे कहाहै कि, जन्मराशिसे दूसरे, पांचवें और नवमे स्थानमें सूर्य्य स्थित होनेसे मासके तेरह दिनके अनन्तर (बाद) शुभप्रद होतेहैं; किन्तु जन्मराशिमे स्थित वा सातवे, बारहवे और आठवें घरमे सूर्य्य स्थित होनेसे किसी समयभी शुभ फल प्रदान नही करतेहै ॥ १७ ॥

अथ निषिद्धरविफलम्।

जन्मन्यर्के भवति विधवा बन्धुहीना द्वितीये
निःस्वा पातालसंस्थे सुतगृहधनहा सप्तमे नष्टकामा ॥
मृत्यौ प्राप्नोति मृत्युं व्ययनवमगते रोगशोकाभिभूता
शेषे राशौ विवाहे विपुलधनवती धर्मकामार्थयुक्ता ॥ १८ ॥

अर्थ–जन्मके सूर्य्यमे विवाहिता कन्या विधवा होतीहै, इसीप्रकार दूसरे सूर्य्यमे बन्धुहीना, चौथेमे धनहीना, पांचवेमें धननाशिनी, सातवेंमे कामनाभ्रष्टा और आठवे सूर्य्यमे मरण होताहै, बारहमे और नवमे सूर्य्यमे विवाह होनेसे रोगशोकादिसे ग्रसित होतीहै। तीसरे, छठे, दशवे और ग्यारहवें सूर्य्यमें विवाहिता नारी विपुलधनशालिनी और धर्मकामार्थयुक्ता होतीहै ॥ १८ ॥

अन्यच्च।

चतुर्थे चाष्टमे चैव द्वादशे च दिवाकरे ॥
कन्या वैधव्यमाप्नोति नियतं पाणिपीडने ॥ १९ ॥

अर्थ–वचनान्तरमे कहाहै कि, विवाहसमय जन्मराशिसे चौथे, आठवें और बारहवें घरमे सूर्य्य होनेसे विवाहिता कन्या शीघ्रही विधवा होजातीहै ॥ १९ ॥

अथ बृहस्पतिशुद्धिः।

चतुर्थे चाष्टमे चैव द्वादशे च बृहस्पतौ।
विवाहितो नरो मृत्युं प्राप्नोत्यत्र न संशयः ॥ २० ॥

इति सारसंग्रहे।

अर्थ–जन्मराशिसे चौथे आठवें वा बारहवें घरमें बृहस्पति होनेसे विवाहित पुरुषको निःसंदेह मृत्यु होतीहै. अतएव उक्त स्थानोंको छोड़कर अन्य स्थानोंमें रहनेसे बृहस्पति विवाहमें शुभ होताहै ॥ २२० ॥

अथ चन्द्रशुद्धिः ।

सप्तमोपचया (×) द्यस्थश्चन्द्रः सर्वत्रशोभनः ।
शुक्लपक्षे द्वितीयस्तु पञ्चमो नवमस्तथा ॥ २१ ॥

अर्थ–जन्मचन्द्रसे सातवें, ग्यारहवें और छठे स्थानमें स्थित चन्द्र सर्वदाही शुभप्रद होता है, शुक्लपक्षमें दूसरे. पांचवें वा नवमे स्थानमें स्थित चन्द्रमाभी शुभप्रद होताहै ॥ २१ ॥

अपिच ।

दशषष्ठतृतीयैकादशसप्तमगः शुभः ।
चन्द्रमा जन्मचन्द्रोऽपि जन्मर्क्षपरिवर्जितः ॥ २२ ॥

इति ग्रन्थान्तरे ।

अर्थ–मनुष्यकी जन्मराशिसे दशवें, छठे, तीसरे और ग्यारहवें स्थानमे चन्द्र शुभप्रद होताहै और जन्मनक्षत्रगत न होनेसे जन्मचन्द्रमाभी शुभ होताहै ॥ २२ ॥

अन्यच्च ।

जन्मनक्षत्रगश्चन्द्रः प्रशस्तः सर्वकर्मसु ।
क्षौरभेषजवादाध्वकर्त्तनेषु च तं त्यजेत् ॥ २३ ॥

इति सत्कृत्यमुक्तावल्याम् ।

अर्थ–सत्कृत्यमुक्तावली ग्रन्थमे लिखाहै कि, जन्मनक्षत्रगत जन्मचन्द्र सभी कार्य्यमे प्रशस्त है, केवल क्षौरकर्ममें, औषधप्रयोगमे, विवादमे. यात्रामे और छेदनकर्ममें जन्मनक्षत्रगत जन्मचन्द्र परित्याग करना चाहिये ॥ २३ ॥

अथ चन्द्रताराशुद्धिप्रशंसा ।

ताराचन्द्रबले प्राप्ते दोषाश्चान्ये भवन्ति ये ।
ते सर्वे विलयं यान्ति सिंहं दृष्ट्वा गजा इव ॥ २४ ॥

इति ग्रन्थान्तरे ।

अर्थ–अब चन्द्र और ताराशुद्धिकी उत्कर्षता प्रतिपादन करतेहैं । ग्रन्थान्तरमें लिखाहै कि, जिसप्रकार सिंहको देखकर हाथी भाग जातेहैं तिसीप्रकार तारा और चन्द्रशुद्धिके होनेसे समस्त दोष दूर होजातेहैं ॥ २४ ॥

(×) " अथोपचयसंज्ञा स्यात्त्रिलाभरिपुकर्म्मणाम् । "

अपिच ।

सर्वकर्मण्युपादेया विशुद्धिश्चन्द्रतारयोः ।
तच्छुद्धावेव सर्वेषां ग्रहाणां फलदातृता ॥ २५ ॥ (क)

अर्थ-चन्द्रशुद्धि और ताराशुद्धिकी प्रशंसा करतेहैं । समस्त कर्ममेही चन्द्रतारा शुद्धिकी उत्कर्षता कहीहै, अतएव चन्द्र और ताराकी शुद्धि होनेसेही समस्त ग्रह शुभफल प्रदान करतेहैं ॥ २५ ॥

अन्यच्च-

तिथिरेकगुणा प्रोक्ता वारश्चैव चतुर्दश । (+)
ऋक्षं षोडशमित्याहुर्योगश्चापि शताधिकः ॥ २६ ॥
सहस्रादधिकः सूर्य्यश्चन्द्रो लक्षगुणःस्थितः ।
वर्जयित्वा बलं सर्वं तस्माच्चन्द्रबलं बलम् ॥ २७ ॥

इति राजमार्त्तण्डे ।

अर्थ-राजमार्त्तण्डमे लिखा है कि, कर्मकालीन तिथिका एकगुण कहाहै, इसीप्रकार व.रके चौदह गुण कहे हैं, नक्षत्रके सोलह गुण, योगके शताधिक गुण, सूर्य्यके सहस्राधिक गुण और चन्द्रके लक्षगुण कहे गए हैं, अतएव अन्य सब बल परित्याग करके और भी चन्द्रका बल अवश्यही ग्रहण करना चाहिये ॥ २६ ॥ २७ ॥

अपरञ्च ।

तारास्तत्र न गण्यन्ते यत्र चन्द्रो बलोत्तरः ।
स्वामिना परितुष्टेन भृत्यक्रोधो निरर्थकः ॥ २८ ॥

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ-जिस प्रकार भृत्य (नौकर) का स्वामी प्रसन्न होनेसे भृत्यका क्रोध निरर्थक होताहै, उसीप्रकार जिस स्थानमे चन्द्रका बल होय तो उसमें ताराबल नहीं देखा जाता है ॥ २८ ॥

(क) सर्वकर्म्मारम्भेषु चन्द्रताराशुद्धेः प्राशस्त्यमाह- सर्वकर्म्मणीत्यादि । तस्मात्तच्छुद्धौ चन्द्रताराशुद्धौ सत्यामेव सर्वकर्मसु ग्रहाणां फलदायकत्वमिति । यथा राजमार्त्तण्डे-"चन्द्रबलेन विहीनो न भवेत् परितोषद. क्रियारम्भः । अन्यगुणैरपि युक्तो नर इवाबलो वरस्त्रीणाम् ।" तथा 'तिथिरेकगुणा प्रोक्ता वारश्चैव" इत्यादि । तथाच "तत्रैव तारास्तत्र न गण्यन्ते यत्र" इत्यादि "कृष्णे बलवती तारा" इत्यादि । "ताराबलेन वर्त्तव्य चन्द्रमा" इत्यादि ।

+ वाराश्चैव चतुर्गुणा इत्यपि पाठ. ।

प्रकारान्तरञ्च ।

क्रकचा मृत्युयोगश्च दिनं दग्धं तथापरे ।
शुभे चन्द्रे प्रणश्यन्ति वृक्षा वज्रहता इव ॥ २९ ॥

इति ग्रन्थान्तरे ।

अर्थ–जिसप्रकार वज्रसे वृक्षका नाश होजाताहै, तिसीप्रकार क्रकचयोग, मृत्युयोग, दग्धदिन और अन्यान्य अशुभ दोषोका चन्द्र शुद्ध होनेसे नाश होताहै ॥ २९ ॥

अपिच ।

कृष्णे बलवती तारा शुक्ले चन्द्रो बलोत्तरः ।
तस्मात्कार्य्यं प्रयत्नेन सुशुद्धे चन्द्रतारके ॥ ३० ॥

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ–कृष्णपक्षमें तारावल अधिक होताहै और शुक्लपक्षमें चन्द्रका बल अधिक होताहै.अतएव चन्द्र और तारा इन दोनोंके शुद्ध होनेसेही कर्म करना चाहिये॥३०॥

अन्यच्च ।

तारावलेन कर्त्तव्यं चन्द्रमा यदि दुर्वलः ।
दुर्वलेनैव शक्तःस्यात्प्रारब्धे विषये यतः ॥ ३१ ॥

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ–यदि चन्द्रमा क्षीण होनेसे दुर्वल होय तो तारावल ग्रहण करना चाहिये जैसे प्रारब्ध विषयमे भी दुर्वल चन्द्र शक्त नहीं होताहै ॥ ३१ ॥

प्रकारान्तरञ्च ।

न कृष्णपक्षे शशिनः प्रभावस्तारावलं तत्र विचारणीयम् ॥
विदेशसंस्थे विकलेऽपि पत्यौ सर्वाणि कर्माणि करोति नारी॥३२॥

इति सत्कृत्यमुक्तावल्याम् ।

अर्थ–सत्कृत्यमुक्तावली ग्रन्थमें लिखाहै कि.जिसप्रकार विदेशगामी वा विकलाङ्गादियुक्त पति वर्तमान होनेसे समस्त कर्म उसकी स्त्री करतीहै. तिसीप्रकार कृष्णपक्षमें चन्द्रमाकी क[illegible] क्षीण होनेसे तारावलकोही ग्रहण करना चाहिये ॥ ३२ ॥

अथ चन्द्रताराद्यशुभप्रतीकारः ।

कर्म कुर्य्यात्फलावाप्तौ चन्द्रादिशोभने बुधः ।
सुस्थकाले त्विदं सर्वं नार्त्तः कालमपेक्षते ॥ ३२ ॥

इति ज्योतिस्सारसंग्रहे ।

अर्थ--कर्म करनेके समय यदि अवकाश होवै वा विशेष फल पानेके अर्थ चन्द्रताराादिके शुद्ध होनेसेही कर्म करना चाहिये, किन्तु जब कर्म करनेका अवकाश न होय तब निम्न (नीचे) लिखेहुए प्रतीकारको करके कर्म करै ॥ ३३ ॥

अन्यच्च ।

चन्द्रे च शंखं लवणञ्च तारे तिथावभद्रे सिततण्डुलांश्च ॥
धान्यञ्च दद्यात्करणर्क्षवारे योगे तिलान्हेम मणिञ्च लग्ने ॥ ३४ ॥

इति सत्कृत्यमुक्तावल्याम् ।

अर्थ—अब चन्द्रताराादिके अशुद्ध होनेसे उनका प्रतीकार कहतेहैं यथा,—चन्द्र अशुद्ध होनेसे शङ्खदान करना चाहिये इसीप्रकार तारा अशुद्ध होनेसे लवणदान, तिथि अशुद्ध होनेसे शुभ्र तण्डुलदान करै अशुद्ध करण अशुभनक्षत्र वा अशुद्ध वार होनेसे धान्य (नाज) दान करै अशुभ योगमे तिलदान और अशुद्ध (अशुभ) लग्न होनेसे उसके प्रतीकारके निमित्त स्वर्ण और माणिदान करना चाहिये ॥ ३४ ॥

चन्द्रस्य विशेषः ।

श्वेतं वासः सिता धेनुः शंखो वा क्षीरपूरितः ।
देयो वा राजतश्चन्द्रश्चन्द्रदोषोपशान्तये ॥ ३५ ॥ (क)

अर्थ-- चन्द्र अशुद्ध होनेसे दोषशान्तिके अर्थ श्वेतवस्त्र, शुक्लवर्णकी गौ और दूधसे भराहुआ शङ्ख अथवा चाँदीका चन्द्रमा बनवाकर दान करना चाहिये ॥ ३५ ॥

अथ चन्द्रदोषोपशान्तिस्नानम् ।

उशीरञ्च शिरीषञ्च चन्दनं पद्मकं तथा ।
शंखे न्यस्तमिदं स्नानं चन्द्रदोषोपशान्तये ॥ ३६ ॥

अर्थ--चन्द्र अशुभ होनेसे उशीर, शिरीष, चन्दन और पद्ममिश्रित जल शङ्खमें भरकर उसके द्वारा स्नान करनेसे चन्द्रका दोष दूर हो जाता है ॥ ३६ ॥

अथ गोचरे चन्द्रशुद्धिफलम् ।

सप्ताद्यचन्द्रे ध्रुवमर्थलाभः षष्ठे तृतीये धनभोगमायुः ॥
सर्वार्थसिद्धिं दशमे लभन्ते एकादशे सर्वसुखानि चैव ॥ ३७ ॥

अर्थ—अब चन्द्रशुद्धिका फल वर्णन करतेहैं, सातवे स्थानमें स्थित वा जन्मके

(क) चन्द्रदोषशान्तिदानमाह—श्वेतमिति वस्त्रादीना [illegible] दोषहन्तृत्वं समुदिते तु फल- [illegible] ।

चन्द्र होनेसे अर्थ (द्रव्य) लाभ होताहै इसीप्रकार छठे और तीसरे चन्द्रमें भोग और आयुकी वृद्धि होतीहै । दशवें चन्द्र होनेसे सर्वार्थलाभ होताहै और ग्यारहवें चन्द्र होनेसे सर्वप्रकारके सुख प्राप्त होतेहैं ॥ ३७ ॥

अथ ग्रहाणां गोचरापवादमाह ।

त्रयोदशदिनान्यर्को दशषड्धरणीसुतः ।
सार्द्धं दिनश्च शीतांशुर्मासमेकादशं तमः ॥ ३८ ॥
सौरिः पादाधिकं वर्षं मासानष्टौ बृहस्पतिः ।
भवनार्द्धं भृगुः सौम्यो यावद्राश्यशुभाः फलम् ।
कष्टं व्रतादिके दद्युर्न तथा शेषभागगाः ॥ ३९ ॥

अर्थ–सूर्य्य एक राशिमें एक मास स्थित रहतेहें । यदि सूर्य्य विरुद्ध हों तब तेरह दिनके बाद शुभ फल प्रदानकरतेहैं, मङ्गल तीन पक्ष एक राशिमें रहतेहै यदि विरुद्ध हो तो सोलह दिनके बाद शुभ फल करतेहैं, इसी प्रकार चन्द्र सवादो दिन एक राशिमे रहताहै विरुद्ध होनेसे डेढदिनके बाद शुभफल करताहै; राहु डेढ वर्ष एक राशिमें रहताहै विरुद्ध होनेसे ग्यारह मासके बाद शुभ फल करताहै, शनि अढाई वर्ष एक राशिमें वास करताहै विरुद्ध होनेसे एक वर्ष तीन महीनेके बाद शुभ फल करताहै, बृहस्पति एक वर्ष एक राशिमें रहताहै विरुद्ध होनेसे आठ महीनेके बाद शुभ फल करताहै, शुक्र अट्ठाईस दिन एक राशिमें रहताहै विरुद्ध होनेसे चौदह दिनके बाद शुभ फल करताहै और बुध अठारह दिनतक एक राशिमें वास करताहै विरुद्ध होनेसे नौ दिनके बाद शुभ फल प्रदानकरताहै, किन्तु उक्त नियतकालके पूर्वमें विरुद्ध ग्रह होनेसे उनमें उपनयनादि कार्य्य न करनाचाहिये ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

अथ ग्रहाणां दक्षिणवेधवामवेधौ । (ख)

तत्रादौ रवेः ।

लाभविक्रमखशत्रुतः स्थितः शोभनो निगदितो दिवाकरः ॥
खेचरैः सुततपोजलान्त्यगैर्व्यार्किभिर्यदि न विध्यते तदा ॥ ४० ॥

इति ज्योतिषतत्त्वे ।

अर्थ–अब ग्रहोंका दक्षिणवेध और वामवेधमें शुद्धि कहा जाताहै यथा, जन्मराशिसे ग्यारहवें तीसरे, दशवेंमे और छठे स्थानमे स्थित सूर्य्य दक्षिणवेधमें शुद्ध होते

(ख) वामवेधलक्षण.. धनजन्मेति इति स्मार्त्ता । [illegible] दक्षिणवेधवामवेधौ । [illegible] ज्योतिस्तत्वे स्मार्तेनोक्तम् ।

हैं, यदि शनि ग्रह पांचवें, नवमें, चौथे और बारहवें स्थानमें हो अर्थात् ग्यारहवें स्थानके सूर्य्य शुभ होतेहैं यदि पांचवें शनि होय इसीप्रकार तीसरे स्थानके सूर्य्य शुभ होतेहैं यदि नवमें स्थानमें शनि होय, दशमें स्थानका सूर्य्य शुभ होताहै यदि चौथे शनि होय और छठे स्थानमें स्थित सूर्य्य शुभफल प्रदान करतेहैं यदि बारहवें स्थानमें शनि ग्रह होय जन्मराशिसे पांचवें, नवमें, चौथे और बारहवें सूर्य्य वामवेधमें शुद्ध (शुभ) होतेहैं यादि शनिग्रह ग्यारहवे, तीसरे, दशवें और छठे स्थानमें स्थित न होवे अर्थात् पांचमे सूर्य्य शुभ होतेहैं यदि शनि ग्यारहवें न होय. इसीप्रकार नवमें सूर्य्य शुभ होताहै, जो तीसरे स्थानमे शनि न होय, चौथे सूर्य्य शुभ होताहै, यदि दशमें शनि न होय और बारहमें स्थानके सूर्य्य वामवेधमें शुभफल प्रदान करतेहैं, यदि शनि छठे स्थानमें स्थित न होय ॥ २४० ॥

चन्द्रस्य ।

द्यूनजन्मरिपुलाभखत्रिगश्चन्द्रमाः शुभफलप्रदस्तथा ।
स्वात्मजास्तमृतिबन्धुधर्मगैर्विध्यते न विबुधैर्यदि ग्रहैः ॥ ४१ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ–जन्मराशिसे सातवें, प्रथम, छठे, ग्यारहवें, दशमे और तीसरे स्थानमें स्थित चन्द्र दक्षिणवेधमे शुभफल प्रदान करताहै, यदि दूसरे, पांचवें, बारहमें, आठवें, चौथे और नवमे स्थानमें बुध ग्रह स्थित होय अर्थात् सातमें चन्द्र शुभ होताहै, यदि दूसरे स्थानमें बुध स्थित होय, इसीप्रकार जन्मराशिका चन्द्र शुभ होताहै यदि पांचमें बुध होय. छटे स्थानका चन्द्र शुभ होताहै, यदि बारहमे बुध होय.ग्यारहमे चन्द्र शुभ होतेहैं, जो आठमे बुध होवे, दशमे स्थानका चन्द्र शुभ होताहै जो चौथे स्थानमे बुध होय और तीसरे स्थानमे स्थित चन्द्र दक्षिणवेधमे शुभफल प्रदान करतेहैं यदि नवमे स्थानमे बुध ग्रह स्थित होय. जन्मराशिसे दूसरे, पांचमे, बारहमें, आठमें, चौथे और नवमे स्थानमें स्थित चन्द्र वामवेधमे शुभफल प्रदान करतेहैं, यदि सातवें जन्मराशिमें, छठे, ग्यारहमें दशमे और तीसरे स्थानमें बुध ग्रह न होय अर्थात् दूसरे स्थानमेंका चन्द्रमा शुभ होताहै यदि सातवे स्थानमे बुध न होय इसीप्रकार पांचमे चन्द्र शुभ होताहै यदि जन्मराशिमे बुध न होय, बारहमे चन्द्र शुभ होताहै यदि छठे बुध न होय आठमें चन्द्र शुभ होताहै जो ग्यारहमें बुध न होवे. चौथे चन्द्र शुभ होताहै जो दशमें बुध न होय. और नवमे स्थानमे स्थित चन्द्र वामवेधमें शुभफल प्रदान करताहै यदि तीसरे स्थानमें बुध ग्रह स्थित न होवे ॥ ४१ ॥

प्रकारान्तरे वामवेधे चन्द्रशुद्धिकथनम् ।

सितशनिकुजजीवार्कास्त इन्दुर्नराणां
व्ययसुखनवमस्थोऽपीष्टदाताथ तेषाम् ।
खसुतनिधनगश्चेन्मृत्युपुत्रार्थगोऽपि
प्रचुरशुभफलं स्याद्वामवेधेन शुद्धः ॥ ४२ ॥ (ग)

इति ज्योतिस्तत्वे ।

(ग) चन्द्रस्य वामवेधेन शुद्धिमाह–सितेति । नराणां व्ययसुखनवमस्थो विरुद्धश्चन्द्रः शुक्रशनिकुजजीवार्काणाम् अस्ते सप्तमे स्थितो नराणामिष्टदाता स्यात् एतत्तु रविमन्दकुजाक्रान्तमित्यादिना यामित्रवेधनिषिद्धादन्येषु कर्मसु बोद्धव्यम् । अथ नराणां मृत्युपुत्रार्थगोऽपि चन्द्रः यथासंख्यं तेषां सितादीनां खसुतनिधनगो यदि स्यात्तदा वामवेधेन शुद्धः प्रचुरशुभफलो भवति । प्रचुर शुभफलं यस्मात्स प्रचुरशुभफल इत्यर्थः । अयमर्थः नृणामष्टमगोऽपि सितादीनां दशमगश्चेच्छुभः । नृणां पञ्चमगोऽपि सितादीनां पञ्चमगश्चेच्छुभः । नृणां द्वितीयगोऽपि सितादीनामष्टमगश्चेच्छुभ इति । तथाच बृहद्यात्रायां" पञ्चमायदशषट्त्रिजन्मगो नेष्टदो द्विनिधनोपगैर्ग्रहैः । बन्धुरिःफनवपञ्चमस्थितैश्चेष्टदो यदि विलोमवेधगः" अस्यार्थः । जन्मराशेः सप्तमायदशषट्त्रिजन्मगश्चन्द्रो यथासंख्य जन्मराशेर्द्विनिधनोपगैर्बन्धुरिःफनवपञ्चमस्थैश्च ग्रहैर्विद्धो न शुभदः स्यात् । अत्रच पूर्वोक्तद्युनजन्मेत्यादिवचनाद्बुधं त्यक्त्वेति बोद्धव्यम् । तद्यथा जन्मराशेः सप्तमश्चन्द्रो जन्मराशेर्द्वितीयस्थेन बुधवर्जितेन ग्रहेण विद्धो न शुभः । एवं जन्मराशेरेकादशस्थे जन्मराशेरष्टमस्थेन दशमस्थो बन्धुस्थेन षष्ठस्थो रिःफस्थेन तृतीयस्थो नवमस्थेन दशमस्थो बन्धुस्थेन षष्ठस्थो रिःफस्थेन तृतीयस्थो नवमस्थेन जन्मगः पञ्चमस्थेन विद्धो नेष्टद इत्यर्थः । यदि तु विलोमवेधकश्चन्द्रः स्यात्तदा इष्टद इत्यर्थः । एतदुक्तं भवति विपरीतगश्चन्द्रो द्विनिधनबन्धुरिःफनवपञ्चमस्थो यथासंख्यं विपरीतस्थैः जन्मराशेः सप्तमायदशषट्त्रिजन्मस्थैर्बुधवर्जितैर्ग्रहैर्विद्धश्चन्द्रः शुभदः स्यात् । तद्यथा जन्मराशेर्द्वितीयस्थश्चन्द्रो जन्मराशेः सप्तमस्थेन ग्रहेण विद्धः शुभः । अतएव जन्मराशेः सप्तमात् जन्मराशेर्द्वितीयस्याष्टमत्वेन ग्रन्थकृता अर्थगश्चन्द्रः सितादीनां निधनगश्चेच्छुभ इत्युक्तः । एवञ्चाष्टमस्थ एकादशस्थेन विद्धः शुभः अतोऽष्टमस्य एकादशाद्दशमस्थत्वेन ग्रन्थकृता मृत्युगश्चन्द्रः सितादीनां दशमगश्चेत् शुभ इत्युक्तः । एवं बन्धुस्थो दशमस्थेन विद्धः शुभः । अतश्चतुर्थस्य दशमात् सप्तमस्थत्वेन ग्रन्थकृता सुखगश्चन्द्रः सितादीनां सप्तमस्थश्चेच्छुभ इत्युक्तः । एवं रिःफस्थः षष्ठस्थेन विद्धः शुभः । अतो रिःफस्य षष्ठात्सप्तमस्थत्वेन ग्रन्थकृता व्ययस्थश्चन्द्रः सितादीनां सप्तमस्थश्चेत् शुभ इत्युक्तः । एवं नवमस्थस्तृतीयस्थेन विद्धः शुभः अतो नवमस्य तृतीयात्सप्तमस्थत्वेन सितादीनामस्तस्थ इत्युक्तम् । एवं पञ्चमस्थो जन्मराशिगतेन ग्रहेण विद्धः शुभः अतः पञ्चमस्य जन्मराशितः पञ्चमत्वेन ग्रन्थकृता पञ्चमश्चन्द्रः सितादीनां पञ्चमस्थश्चेच्छुभ इत्युक्तः । यथाच वसिष्ठः ।" जन्मराशिगतश्चन्द्रो जन्मतः पञ्चमो ग्रहः । विद्धो यदा तदा चेन्दुर्वेधगो नेष्टदः स्मृतः । पञ्चमस्थानगश्चन्द्रो जन्मराशिगतो ग्रहः । यदा तदा विपरीतैः वेधगः शुभदः स्मृतः । एवं तृतीयषट्सप्तमदशमैकादशोपगः । धर्मारिःफद्विबन्ध्वष्टमैर्विद्धस्तु नेष्टदः । विपरीतेन विद्धस्तु शुभदः परिकीर्तितः ॥" इति ।

अर्थ-अब प्रकारान्तरकी रीतिसे वामवेधमें स्थित चन्द्रकी शुद्धि कहीजातीहै- मनुष्यके बारहवे, चौथे और नवमें स्थानमे स्थित विरुद्ध चन्द्र यदि शुक्र, शनि, मङ्गल, बृहस्पति वा सूर्य्यके सातवें स्थानमें स्थित होय तो वामवेधमें शुद्ध होकर शुभफल प्रदानकरताहै, इसीप्रकार मनुष्यके आठवें स्थानका विरुद्ध चन्द्र जो शुक्र, शनि, मङ्गल, बृहस्पति वा सूर्य्यके दशवें स्थानमे स्थित होय तो शुभफल होताहै, पांचवें स्थानका विरुद्ध चन्द्र इन्ही शुक्रादि ग्रहोके पांचवें स्थानमें स्थित होनेसे शुभफल करताहै और दूसरे स्थानका विरुद्ध चन्द्र यदि उक्त शुक्रादि ग्रहोंके आठवें स्थानमें स्थित होय तो वामवेधमे शुद्ध होकर प्रचुर शुभफल प्रदानकरताहै ॥ ४२ ॥

कुजशन्योः ।

विक्रमायरिपुगः कुजः शुभः स्यात्तदान्त्यसुतधर्म्मगैः खगैः ॥
चेन्न विद्ध इनसूनुरप्यसौ किन्तु धर्मघृणिना न विध्यते ॥ ४३ ॥

इति ज्योतिस्तत्वे ।

अर्थ-मनुष्यकी जन्मराशिसे तीसरे स्थानमे मङ्गल होनेसे दक्षिणवेधमें शुद्ध होताहै यदि बारहवें स्थानमे कोई ग्रह न होवे इसीप्रकार ग्यारहवें स्थानका मंगल शुभ होताहै जो पांचवें घरमे कोई ग्रह नहोय और छठे स्थानका मंगल शुभफल करताहै जो नवमे स्थानमे कोई ग्रह न होय । जन्मराशिसे बारहवें स्थानका मङ्गल वामवेधमें शुभ होताहै.यदि तीसरे घरमें कोई ग्रह होय इसी प्रकार पांचवें स्थानका मङ्गल शुभ होताहै. जो ग्यारहवे स्थानमें कोई ग्रह होय और नवमें स्थानका मङ्गल शुभ होताहै जो छठे स्थानमे किसी ग्रहका वास होवे । मनुष्यकी जन्मराशिसे तीसरे स्थानका शनि दक्षिणवेधमें शुभ होताहै, जो बारहमे स्थानमें सूर्य्य न होय. इसीप्रकार ग्यारहवें स्थानका शनि शुभ होताहै जो पांचवें स्थानमें सूर्य्य न हो और छठे स्थानका शनि शुभ होताहै जो नवमे घरमे सूर्य्य न हो मनुष्यकी जन्मराशिसे बारहवे स्थानका शनि वामवेधमें शुभ होताहै जो तीसरे स्थानमें सूर्य्य हो. इसी प्रकार पांचमे स्थानका शनि शुभ होताहै यदि ग्यारहवें स्थानम सूर्य्य स्थित होय और नवमें स्थानका शनि वामवेधमें शुभ होताहै जो छठे स्थानमें सूर्य्य स्थित होवे ॥ ४३ ॥

बुधस्य ।

स्वाम्बुशत्रुमृतिखायगः शुभो ज्ञस्तदा न खलु विध्यते यदा ।
आत्मजत्रिनवकाद्यनैधनप्रान्त्यगैर्विविधुभिर्नभश्चरैः ॥ ४४ ॥

इति ज्योतिस्तत्वे ।

अर्थ-जन्मराशिसे दूसरे स्थानमें बुध होनेसे दक्षिणवेधमें शुद्ध होताहै यदि पांचवें स्थानमें चन्द्र ग्रह होय, इसीप्रकार चौथे बुध शुभ होताहै जो तीसरे स्थानमें चन्द्र होय छठे बुध शुभ होताहै जो नवमे स्थानमें चन्द्रमा होय. आठवें बुध शुभ होताहै जो जन्मराशिमें चन्द्र होय; दशवें बुध शुभ होताहै जो आठवें चन्द्रमा होय और ग्यारह में बुध दक्षिणवेधमें शुभ होताहै यदि बारहवें स्थानमें चन्द्रातिरिक्त ग्रह न होय। जन्मराशिसे पांचवें स्थानमें बुध वामवेधमें शुभ होताहै यदि दूसरे स्थानमें चन्द्रमा न होय.इसीप्रकार तीसरे स्थानका बुध शुभ होताहै जो चौथे घरमें चन्द्रग्रह न होय.नवमें स्थानका बुध शुभ फल करता है यदि छठे स्थानमे चन्द्र न होय, जन्मराशिमें स्थित बुध शुभ होताहै यादि आठवें स्थानमें चन्द्र न होय, आठवें बुध शुभ होताहै यादि दशवें स्थानमें चन्द्र ग्रह न होवै और बारहवेंमें स्थानमें स्थित बुध वामवेधमें शुभफल प्रदान करता है यदि ग्यारहमें स्थानमें चन्द्र ग्रह न होय ॥ ४४ ॥

गुरोः ।

स्वायधर्म्मतनयद्युनस्थितो नाकनायकपुरोहितः शुभः ।
रिःफरन्ध्रखजलत्रिगैर्यदा विध्यते गगनचारिभिर्नहि ॥ ४५ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-जन्मराशिसे दूसरे स्थानमें स्थित बृहस्पति दक्षिणवेधमे शुभ होताहै यदि बारहवेंमे स्थानमें कोई ग्रह न होय, इसीप्रकार ग्यारहवे स्थानका बृहस्पति शुभ होताहै यदि आठमें स्थानमे कोई ग्रह न होय. नवमें स्थानका बृहस्पति शुभ होताहै जो दशमें स्थानमें कोई ग्रह न होय. पांचमें स्थानका बृहस्पति शुभ होताहै यदि चौथे घरमे कोई ग्रह न होय और सातवें स्थानमे स्थित बृहस्पति दक्षिणवेधमे शुभ फल प्रदान करताहै जो तिसरे स्थानमें किसी ग्रहका वासस्थान न होय जन्मराशिसे बारहवे स्थानमें स्थित बृहस्पति वामवेधमे शुभ फल प्रदान करता है यदि दूसरे घरमें कोई ग्रह होय. इसीप्रकार आठवॉ बृहस्पति शुभ होताहै यदि ग्यारहमे घरमे कोई ग्रह स्थित होय, दशवॉ बृहस्पति शुभ होताहै यदि नवमें स्थानमें कोई ग्रह होय, चौथे स्थानका बृहस्पति शुभ होताहै यदि पांचमें स्थानमें कोई ग्रह होय और तीसरे स्थानमे स्थित बृहस्पति वामवेधमे शुभफल प्रदान करताहै यदि सातवें स्थानमें कोई ग्रह स्थित होवै ॥ ४५ ॥

शुक्रस्य ।

आसुताष्टमतपोव्ययायगो विद्ध आस्फुजिदशोभनः स्मृतः ।
नैधनास्ततनुकर्मधर्मधीलाभवारिसहजस्थखेचरैः ॥ ४६ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ--मनुष्यकी जन्मराशिमें स्थित शुक्र दक्षिणवेधमें शुभ होतेहैं यदि आठवें स्थानमें कोई ग्रह न होय इसी प्रकार दूसरे स्थानमें स्थित शुक्र शुभ होतेहैं यदि सातवें स्थानमें ग्रह न होय, तीसरे शुक्र शुभ अशुभ होतेहैं यदि कोई ग्रह जन्मराशिमें स्थित न होय चौथे स्थानके शुक्र शुभ होतेहैं यदि दशवें घरमें कोई ग्रह न होय, पांचवें स्थानके शुक्र शुभ होतेहैं यदि नवमें स्थानमे कोई ग्रह न होय, नवमे स्थानके शुक्र शुभ होतेहैं यदि ग्यारहवे स्थानमे कोई ग्रह न होय, बारहवें स्थानके शुक्र शुभ होतेहैं यदि, छठे घरमें कोई ग्रह न होय और ग्यारहवें स्थानमें स्थित शुक्र दक्षिणवेधमें शुभ फल प्रदान करतेहैं यदि तीसरे स्थानमें किसी ग्रहका वासस्थान न होय ॥ मनुष्यकी जन्मराशिसे आठवें स्थानमे स्थित शुक्र वामवेधमें शुभफल प्रदान करते हैं यदि जन्मराशिमें कोई ग्रह स्थित होय,इसी प्रकार सातवे स्थानका शुक्र शुभ होताहै,यदि दूसरे स्थानमें किसी ग्रहका वास स्थान होय जन्मराशिमें स्थित शुक्र शुभ होताहै यदि तीसरे स्थानमे कोई ग्रह होय, दशमें स्थानका शुक्र शुभ होताहै यदि चौथे स्थानमें कोई ग्रह होय, नवमें स्थानका शुक्र शुभ होताहै यदि पांचमें स्थानमें कोई ग्रह होय, पांचमे स्थानका शुक्र शुभ होताहै यदि आठवें स्थानमें कोई ग्रह स्थित होय,ग्यारहमें स्थानके शुक्र शुभ होताहै यदि नवमें स्थानमें कोई ग्रह होय, छठे स्थानका शुक्र शुभ होताहै यदि बारहवें स्थानमें कोई ग्रह स्थित होय और तीसरे स्थानका शुक्र वामवेधमें शुभ फल प्रदान करता है यदि ग्यारहवेंमें स्थानमें किसी ग्रहका वासस्थान होय ॥ ४६ ॥

इति ग्रहाणां दक्षिणवेधवामवेधौ ।

अथ वेधफलम् ।

एवमत्र खचरा व्यधान्विताः सत्फलं नहि दिशन्ति गोचरे ॥
वामवेधविधिना त्वशोभना अप्यमी शुभफलं दिशन्त्यलम् ४७ (+)

(+) यथोक्तस्थानस्था ग्रहा एवमुक्तप्रकारेण व्यधान्विता जन्मराशेर्यथासंख्यं पूर्वोक्तस्थानस्थैर्ग्रहैर्विद्धा गोचरे शुभा अपि शुभफलं न दिशन्ति । विपरीतवेधविधिना तु विद्धाः शुभा । वेधकस्थानानि यान्युक्तानि वामवेधे तानि वेध्यस्थानानि यानि च वेध्यस्थानान्युक्तानि वामवेधे तानि च वेधकस्थानानि नराणां वामवेधवेध्यस्थानस्था ग्रहा जन्मराशितो वामवेधकस्थानस्थैर्ग्रहैर्विद्धा अशुभफला अपि शुभफलमत्यर्थं दिशन्तीति । तथाच रवेरुदाह्रियते । नराणां लाभविक्रमखशत्रुषु स्थितो दिवाकरो जन्मराशितो यथासंख्यं सुततपोजलान्त्यगैः शनिवर्जितैर्ग्रहैर्विद्धः सन् शुभफलं न ददाति । तथाच वामवेधे नराणां सुततपोजलान्त्यगो दिवाकरः जन्मराशितो यथासंख्यं लाभविक्रमखशत्रुषु स्थितैर्ग्रहैः शनिवर्जितैर्विद्धः सन् शुभफलं ददातीत्यर्थः । एवमन्येषामपि बोद्धव्यम् इति ॥

अर्थ—दक्षिणवेधमें जिस २ स्थानमें ग्रहोंके होनेसे वेध होताहै वह पूर्वमें कहदियाहै उस २ स्थानमे ग्रह होनेसे गोचरमें ग्रहोंके शुद्ध अशुद्ध होनेसेभी शुभफल प्रदान नही करतेहैं; किन्तु वामवेधमें ग्रहोंके विद्ध होनेसेभी उनके द्वारा शुभफलप्राप्ति होतीहै ॥४७॥

इति वेधफलम् ।

अथ दिवाविवाहनिषेधः ।

विवाहे तु दिवाभागे कन्या स्यात्पुत्रवर्जिता ।
विवाहानलदग्धा सा नियतं स्वामिघातिनी ॥ ४८ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ—दिनमें विवाह होनेसे कन्या पुत्रहीना होतीहै और विवाहानलद्वारा दग्ध होकर वह स्त्री स्वामिघातिनी होतीहै ॥ ४८ ॥

अथ कुलिकाख्ययोगकथनम् ।

सूर्य्ये च सप्तमी सोमे षष्ठी भौमे च पञ्चमी
बुधे चतुर्थी देवेज्ये तृतीया भृगुनन्दने ॥ ४९ ॥
द्वितीया वर्जनीया स्यात्प्रतिपच्च शनैश्चरे ।
कुलिकाख्यो हि योगोऽयं विवाहादौ न शस्यते ॥ २५० ॥

इति ज्योतिःसारे ।

अर्थ- ज्योतिःसारमें लिखाहै कि, रविवारको सप्तमी, सोमवारको षष्ठी, मङ्गलवारको पञ्चमी, बुधवारको चतुर्थी, बृहस्पतिवारको तृतीया, शुक्रवारको द्वितीया और शनिवारको प्रतिपदा तिथि होनेसे कुलिकाख्ययोग होताहै, इस योगमें विवाह न करना चाहिये ॥ ४९ ॥ २५० ॥

अथ दग्धकथनम् ।

द्वितीया मीनधनुषोश्चतुर्थी वृषकुम्भयोः ।
मेषकर्कटयोः षष्ठी कन्यामिथुनकेऽष्टमी ॥ ५१ ॥
दशमी वृश्चिके सिंहे द्वादशी मकरे तुले । (×)
एभिर्जातो न जीवेत यदि शक्रसमो भवेत् ॥ ५२ ॥
विवाहे विधवा नारी यात्रायां मरणं भवेत्
निष्फलं कृषिवाणिज्यं विद्यारम्भे च मूर्खता ॥ ५३ ॥

(×) "सिता च कृष्णा दशमी हगवर्ज्या विद्यारम्भे नाक्रमेज्जल्पे" इति ग्रन्थान्तरे ।

गृहप्रवेशे भङ्गः स्याच्चूडायां मरणं ध्रुवम्।
ऋणदाने फलं नास्ति व्रतादाने च निष्फले।
शुभकर्माणि सर्वाणि नैव कुर्य्याद्विचक्षणः॥ ५४॥

इति राजमार्त्तण्डादौ।

अर्थ-अब दग्धातिथि वर्णन करतेहैं, मीन और धन राशिमें सूर्य्य होनेसे द्वितीया दग्धा तिथि होतीहै इसीप्रकार वृष और कुम्भके सूर्य्य होनेसे चौथ दग्धा तिथि होतीहै, मेष और कर्कके सूर्य्य होनेसे षष्ठी दग्धा होतीहै, कन्या और मिथुनके सूर्य्य होनेसे अष्टमी दग्धा होतीहै, वृश्चिक और सिंहके सूर्य्य होनेसे दशमी दग्धा होतीहै, मकर और तुला राशिमें सूर्य्य होनेसे द्वादशी तिथि दग्धा होतीहै। इन्हीको मासदग्धा कहतेहैं। इनमें उत्पन्न हुआ मनुष्य इन्द्रके समान होनेसेभी नहीं जीसक्ताहै, मासदग्धामे विवाह होनेसे कन्या विधवा होजातीहै इसीप्रकार यात्रा करनेसे मृत्यु होताहै, कृषि (खेती) और वाणिज्य करनेमे कर्म निष्फल होताहै, विद्यारम्भ करनेसे मूर्ख होताहै, गृहप्रवेशमे गृहभङ्ग होजाताहै, चूडाकरण करनेमे मृत्यु होतीहै। ऋणदानमें फलका अभाव होताहै, और उपनयन और दान करनेसे निष्फल होताहै। अतएव पण्डितगणको चाहिये कि, किसीप्रकारका शुभ कर्म्म मासदग्धामे न करें॥५४॥

अन्यच्च।

आद्या धनुःषु शफरीषु परा द्वितीया
एकान्तरे दिनकरे तिथयः प्रदग्धाः॥ ५५॥

इति ज्योतिस्तत्वे।

अर्थ-धनराशिमें सूर्य्य होनेसे शुक्ल पक्षकी द्वितीया दग्धा तिथि होतीहै। और मीन राशिमे सूर्य्य होनेसे कृष्णपक्षकी द्वितीया दग्धा होतीहै एकएक तिथिअन्तर मदग्धा होतीहै॥ ५५॥

कार्म्मुके च तथा कुम्भे मेषे युग्मे हरौ घटे।
एषु शुक्ला द्वितीयाद्या दग्धाः कृष्णा झषादिषु॥ ५६॥

इति ज्योतिस्तत्वे।

अर्थ--धन. कुम्भ. मेष. मिथुन. सिह और तुला राशिमें सूर्य्य होनेसे शुक्लपक्षकी द्वितीयादि एक २ तिथिके अन्तरमे दग्धा होतीहै और कृष्णपक्षकी द्वितीयादि मीनादिराशिमे सूर्य्यके होनेसे दग्धा होतीहै॥ ५६॥

राश्योश्चन्द्रस्य च रवेः स्थित्या वाच्यं फलं बुधैः।

याःप्रोक्तास्तिथयो दग्धा मेषादिषु च राशिषु ।
शुक्लास्ता विषमे राशौ समे कृष्णाः प्रकीर्त्तिताः ॥ ५७ ॥

इति ज्योतिस्तत्वे ।

अर्थ–पूर्व वचनमें जो दोदो राशिमें द्वितीयादि तिथि दग्धा कही है उनको चन्द्र और सूर्य्य इन दोनों तिथिके द्वाराही जाननाचाहिये इसमें विशेष यहीहै कि, विषम राशिमें शुक्लपक्षकी तिथि दग्धा होतीहै और समराशिमें कृष्णपक्षकी तिथि दग्धा होतीहै ॥ ५७ ॥

राशिषु चन्द्रस्थित्या दग्धायां व्यक्तत्वमाह ।

षष्ठी मेषकुलीरयोर्हिमकरे कन्या युगे चाष्टमी
सिंहे वृश्चिकराशिगे च दशमी तौलौ मृगे द्वादशी ।
चापे चाथ झषे द्विका यदि वृषे कुम्भे चतुर्थी यदा
दग्धाख्यास्तिथयो वदन्ति मुनयस्त्याज्याः सदा कर्मसु ॥५८॥

इति ज्योतिस्तत्वे ।

अर्थ–राशिमें चन्द्रके स्थित होनेसे जो तिथि दग्धा होतीहै अब उनको कीर्त्तन करतेहैं । मेष और कर्क राशिमें चन्द्र होनेसे षष्ठी तिथि दग्धा होतीहै इसीप्रकार कन्या और मिथुन राशिमें चन्द्रके होनेसे अष्टमी दग्धा होतीहै, सिंह और वृश्चिक राशिमे चन्द्रके होनेसे दशमी दग्धा होतीहै, तुला और मकर राशिमे चन्द्रके होनेसे द्वादशी दग्धा होतीहै, धन और मीन राशिमें चन्द्रके होनेसे द्वितीया दग्धा होतीहै और वृष और कुम्भराशिमे चन्द्रके स्थित होनेसे चतुर्थी तिथि दग्धा होतीहै । इन समस्त दग्धा तिथि-योंको समस्त शुभकर्ममें परित्याग करना चाहिये इस प्रकार मुनिगणने कहाहै ॥ ५८ ॥

अथावमत्र्यहस्पर्शौ ।

तिथ्यन्तद्वयमेको दिनवारः स्पृशति यत्र ॥ तद्भवत्यवमदिनं
त्रिदिनस्पृक्तिथित्रयस्पर्शनादह्नः ॥ ५९ ॥ (१)

---

(१) अवमत्र्यहस्पर्शदिनमाह–तिथ्यन्तेति । एको दिनवारः एक एव वारस्तिथ्यन्तद्वयं यत्र दिनं स्पृशति तद्दिनमवमसंज्ञकं भवति अह्नस्तिथित्रयस्पर्शनात् त्रिदिनस्पृग्दिनं स्यात् यदह्नस्तिथित्रयं स्पृशति तद्दिनं त्रिदिनस्पृगित्यर्थः । यथा दण्डद्वयमेका तिथिस्तदनन्तरमपरदिनसूर्योदयादपि समस्त-दिनव्यापिनी चान्या तद्दिनमवमं स्यादिति । यत्र च दण्डद्वयमेका तिथिरन्या च समपञ्चाशद्दण्डा-त्मिका तदनन्तरमन्यातिथियोगः अतस्तिथित्रयस्पर्शात् त्र्यहस्पृगिति साम्प्रदायिकाः । तदुक्तम् दिनवार इत्यनेन वारप्रवृत्तिकालात् परदिनसूर्योदयावधि तिथ्यन्तद्वयस्पर्शोऽवमदिनं स्यात् । त्र्यहस्पृ-

अर्थ-अब अवम और त्र्यहस्पर्शको कहतेहैं, एक दिनरात्रिके मध्यमें दो तिथियोंका अवसान होनेसे उस दिनको अवम (२) कहतेहैं और एक दिनरात्रिके मध्यमें तीन तिथियोंका स्पर्श होनेसे उसको त्र्यहस्पर्श कहतेहैं ॥ ५९ ॥

अपिच ।

द्वौ तिथ्यन्तावेकवारे यत्र स स्याद्दिनक्षयः ॥ ६० ॥

इति कौर्मपाद्मयोः ।

अर्थ-कूर्मपुराण और पद्मपुराणमें लिखाहै कि, यदि एक दिनरात्रिके मध्यमें दो तिथियोका अन्त होय तब उसको दिनक्षय (त्र्यहस्पर्श) कहतेहैं ॥ ६० ॥

अन्यच्च ।

एकस्मिञ्छ्रावणे त्वन्हि तिथीनां त्रितयं यदा ।
तदा दिनक्षयःप्रोक्तस्तत्र साहस्रिकं फलम् ॥ ६१ ॥

इति वसिष्ठः ।

अर्थ-वशिष्ठने कहाहै कि, श्रावणमासमें एक दिनके मध्यमें यदि तीन तिथि होंय तो उसको दिनक्षय (त्र्यहस्पर्श) कहतेहैं, इस दिनमें माङ्गल्यके इतर वैदिक कर्म करनेसे सहस्रगुण फल प्राप्त होताहै ॥ ६१ ॥

-ग्दिनन्तु अह्नः सूर्य्योदयकालात् तिथित्रययोगो यदा स्यात्तदा इत्यर्थः । तथाच गौड़देशे सार्द्धैकदण्डादूर्ध्वं वारप्रवृत्ति । तदनतरं परादिनसूर्य्योदयावधितिथ्यन्तद्वयस्पर्शे तद्दिनमवमं स्यात् यथा दण्डत्रयमेका तिथिरन्या च षट्पञ्चाशद्दण्डात्मिका इति तथा यस्मिन् दिने सूर्य्योदयाद् वारप्रवृत्तेः पूर्वमेका तिथिर्दण्डैकान्या च सप्तपञ्चाशद्दण्डात्मिका चेत्तस्मिन्नेव दिनेऽन्यतिथियोगः स्यात्तदा त्र्यहस्पृक् तद्दिन स्यात् । तथा करणरत्नेश्वराचार्य्येण लिखितम् । " अवमं तद्वारदिनं तिथ्यन्तद्वययोगि यत् । त्र्यहस्पर्शन्तु त्रितिथिस्पर्शादौदयिकं विदुः" इति । केचित्तु अहस्त्रयस्पर्शादितिपाठं कृत्वा व्याचक्षते अहस्त्रयस्पर्शाद्दिनत्रयस्पर्शात् त्रिदिनस्पृक् तिथिः स्यादिति षष्टिदण्डात्मिकतया वर्द्धमाना या तिथि सा त्रिदिनस्पृगित्यर्थ । एतच्च सम्प्रदायविरुद्धमाचारविरुद्ध शास्त्रविरुद्धञ्च । तथाच शूलपाणिना एकादशीविवेके विष्णुरहस्यवचनं लिखितम् । " एकादशी द्वादशी च रात्रिशेषे त्रयोदशी । त्र्यहस्पृक्तदहोरात्रमुपोष्या सा सदा तिथि ॥" इति । तथाच राजमार्त्तण्डे-' एकस्मिन् श्रावणे त्वह्नि तिथीनाम्' इत्यादि । " त्र्यहस्पृग्दिवसश्चैव महापुण्यतमः स्मृत । तिथित्रयस्य संस्पर्शात्त्र्यहस्पृक्समुदाहृत ॥ "

(२) जो तिथि सूर्योदयके (वारप्रवृत्तिके) बाद कुछ समय रहकर यदि परतिथि परदिनं सूर्योदयके पूर्वकालपर्य्यन्त रहै तब उसको ' अवम ' कहतेहैं ।

(३) माङ्गल्यं पर्नमिति माङ्गल्येतरवैदिककर्मपरमिति स्मार्त्तेनोक्तम् ।

अपरञ्च ।

अधिमासे दिनपाते (४) धनुषि रवौ भानुलंघिते मासि ।
चक्रिणि सुप्ते कुर्य्यान्नो माङ्गल्यं विवाहञ्च ॥ ६२ ॥

इति भीमपराक्रमे ।

अर्थ—भीमपराक्रममें कहाहै कि, अधिमासमें, दिनक्षयमे, सौरपौषमे, मलमासमें और श्रीहरिके शयनावस्थामें विवाहादि मङ्गलजनक कार्य्य न करना चाहिये ॥ ६२ ॥

त्र्यहस्पृशन्नाम यदेतदुक्तं यत्र प्रयत्नः कृतिभिर्विधेयः ॥
विवाहयात्राशुभपुष्टिकर्म सर्वं न कार्य्यं त्रिदिनस्पृशे तु ॥ ६३ ॥ (५)

इति त्र्यहस्पर्शनिन्दा ।

अर्थ—जिस दिनमे त्र्यहस्पर्श कहा गया है, उस दिनमे विवाह और यात्रादि शुभ कर्मको पण्डितगण यत्नपूर्वक परित्याग करदेवै ॥ ६३ ॥

एकदिने सोदराणां विवाहनिषेधः ।

एकोदरप्रसूतानामेकस्मिन्नपि वासरे । (६)
विवाहो नैव कर्त्तव्यो गर्गस्य वचनं यथा ॥ ६४ ॥

इति बृहस्पतिः ।

अर्थ—बृहस्पतिने कहाहै कि, " गर्ग मुनिके मतसे एक दिनमें एक गर्भसे उत्पन्न सहोदर वा सहोदर गणके मध्यम एकाधिक विवाह निषिद्ध है " गौडादि देशमेंभी इसीप्रकारही व्यवहार होताहै किन्तु औड्डिष्यावासीगण उक्त वचनमे " वासरे " इस स्थलमें " वत्सरे " इसी प्रकार पाठकरके एकवर्षके मध्यमे एक गर्भसे उत्पन्न हुए दो भाईयोंका वा दो बहनोंका विवाह नही करते है ॥ ६४ ॥

अपिच ।

एकस्मिन्दिवसे चैव सोदराणां तथैव च ।
युग्मसौद्वाहिकं वर्ज्यं कन्यादानद्वयं तथा ॥ ६५ ॥

इति मत्स्यसूक्ते महातन्त्रे ।

---

(४) दिनपाते दिनक्षये इति स्मार्त्तः ।

(५) त्र्यहस्पर्शनिन्दामाह—त्र्यहस्पृशमिति । त्र्यहस्पर्शदिनं यदुक्तं तत्र पण्डितैः प्रयत्नः कार्य्यः यत्नेन तद्वर्जनीयमित्यर्थः । विवाहादि सर्वं शुभकर्म तत्र न कार्य्यमित्यर्थः ।

(६) वासरे इत्यत्र वत्सरे इति औड्देशीयगणाः पठन्ति व्यवहरन्ति च । इति रघुनन्दन स्मार्त्तेनोक्तम् ।

अर्थ–मत्स्यसूक्त महातन्त्रमें भी लिखाहै कि, एक दिनमें दो सगे भाइयोंका विवाह निषिद्ध है और दो कन्या दानभी एक दिनमें न करना चाहिये ॥ ६५ ॥

गुणबाहुल्ये अल्पदोषस्य त्याज्यतांकथनम् ।

न सकलगुणसम्पल्लभ्यतेऽल्पैरहोभि-
र्बहुतरगुणयुक्तं योजयेन्मङ्गलेषु ।
प्रभवति हि न दोषो भूरिभावे गुणानां
सलिललव इवाग्नेः संप्रदीप्तेन्धनस्य ॥ ६६ ॥ (१)

अर्थ–समस्तगुण अल्प (थोड़े) दिनमे नही प्राप्त होतेहैं अतएव विवाहादि मङ्गल-कार्य्यमें वह गुणयुक्त दिनका मुहूर्त रक्खे कारण प्रज्वलितकाष्ठ जिसप्रकार जलके बिन्दुसे निवारण होताहै तिसी प्रकार वह गुणयुक्त दिनभी अल्पदोषसे दूषित नहीं होताहै ६६॥

बहुगुणसत्त्वे गुरुतरैकदोषस्य निन्दाकथनम् ।

गुणशतमपि दोषः कश्चिदेकोऽतिवृद्धः
क्षपयति यदि नान्यस्तद्विरोधी गुणोऽस्ति ।
घट इव परिपूर्णं पञ्चगव्येन सद्यो
मलिनयति सुराया बिन्दुरेकोऽपि सर्वम् ॥ २६७ ॥ (*)

अर्थ-एकबडे दोषसेही सौ गुणोंका नाश होजाताहै यदि दोषका विरोधी कोई गुण न होवै, जिसप्रकार पञ्चगव्यसे भराहुआ घट एक बूंदसे शराबके मिलनेसे ही दूषित होजाताहै २६७

इति वंशबरेलीनिवासिकान्यकुब्जकुलभूषणभारद्वाजगोत्रेण त्रिपाठ्युपनामकेन पण्डित-बोकेलालात्मजेन श्यामसुन्दरशर्म्मणा सम्पादिते भाषाटीकया विभूषिते च ज्योतिषतत्वसुधार्णवे विवाहप्रकरणनाम द्वितीयस्तरङ्गः ॥ २ ॥

---

१ उपसंहारमाह–नसकलेति । अल्पदिने सर्वे गुणा न लभ्यन्ते तस्माद्विवाहादिमङ्गलकर्मसु बहुगुणयुक्तं दिनं योजयेत् । हि यस्माद् गुणानां भूरिभावे बहुत्वे दोषो न प्रभवति दृष्टान्तमाह–सलिललव इति ।

(*) बहुगुणे सत्यपि एकस्यापि दोषस्य अतिगुरुत्वे निषेधमाह–गुणशतमिति । एकोऽप्यतिगुरुः कश्चिद्दोषो गुणशतमपि नाशयति यदि तद्दोषविरोधी गुणोऽन्यो नास्ति विरोधिगुणे तिष्ठति सति गुरुदोषोऽपि न दोषावह इति । दृष्टान्तमाह–घटमिति । यथा पञ्चगव्येन पूरितं घटं मद्यरसतत्संगात् सुराबिन्दुर्मलिनयति करणे तृप्त्यर्थयोरिति करणे षष्ठी । एवं सर्वो विचारो शुभकर्मण्येव विवाहे न निषिद्धाणिग्रहणे सम्य वदन्ति केचिदन्योन्यहस्तावरोहणमिति । यथा राजमार्तण्डे–"घृतदधिमधुदुर्वैमाननादभिनाशयति शुभमशुभं वा पाणियोगेऽङ्गनानां । बहुमुनिमतमेतन्मण्डनं प्रधानं शुभमवलम्ब्यालोचनादस्य केचित्" इति । एतेन द्वयमेव शुभलग्ने कार्य्यमिति मतमिति ।

तृतीयस्तरङ्गः ३.



अथ नववध्वागमनम् ।

युग्माङ्कबाणाद्रिदिने विवाहाद्वध्वागमः षोडशवासरान्तः ।
शुभस्तदूर्द्ध्वं विषमाब्दमासघस्रेषु यावन्नच पञ्चमाब्दम् ॥ १ ॥

अर्थ–अब नववध्वागमन कहतेहैं विवाहके बाद सोलह दिनके मध्यमें युग्म दिनमें और अयुग्म दिनके मध्यमें नवमें, पांचवे और सातवें दिनमें नववधूको पतिके घरमें लानाचाहिये । सोलह दिनके बाद पांचवर्षके मध्यमें अयुग्म वर्षमें अयुग्म मासमे और अयुग्म दिनमें नववधूको पतिके घरमे लावै ॥ १ ॥

अन्यच्च ।

आरभ्योद्वाहदिवसात्पष्ठे वाप्यष्टमे दिने ।
वधूप्रवेशः सम्पत्त्यै दशमेऽथ समे दिने ॥ २ ॥

अर्थ–विवाहके दिनसे छठे, आठवें वा दशवे दिनमे अथवा अन्यान्य युग्म दिनमे नववधूको पतिके घरमें लानेसे सम्पत्तिकी वृद्धि होतीहै ॥ २ ॥

अपरञ्च ।

वधूप्रवेशनं कार्य्यं पञ्चमे सप्तमे दिने ।
नवमे च शुभे वारे सुलग्ने शशिनो बले ॥ ३ ॥

अर्थ–विवाहके दिनसे पांचवें, सातवे वा नवमें दिनमे शुभग्रहके वारमें शुभलग्नमें चन्द्र बलवान् होनेसे नववधूको पतिके घरमे लावै ॥ ३ ॥

प्रकारान्तरम् ।

ध्रुवक्षिप्रमृदुश्रोत्रवसुमूलमघानिले ।
वधूप्रवेशः संनेष्टो रिक्तारार्के बुधे परः ॥ ४ ॥

अर्थ–उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, रोहिणी, पुष्य, अश्विनी, हस्त, चित्रा, अनुराधा, मृगशिर, रेवती, श्रवण, धनिष्ठा, मूल, मघा और स्वाति नक्षत्रमें, रिक्ताभिन्न तिथिमें, मङ्गल, इतवार और बुधभिन्न वारमें नववधूको पतिके घरमें लाना चाहिये ॥ ४ ॥

अथ बालबन्धः।

ध्रुवमृदुलघुवर्गे विष्णुमूलानिलर्क्षे
शनिशशिदिनवर्ज्यं गोद्विदेहोदयेषु।
उपचयगतपापे सत्सु केन्द्रत्रिकोणे
सुतिथिकरणयोगे बालबन्धः शुभेन्दौ ॥ ५ ॥ (×)

अर्थ--विवाहके बाद केशबन्धन शुभदिन कीर्त्तन करतेहैं। उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, रोहिणी, चित्रा, अनुराधा, मृगशिर, रेवती, पुष्य, अश्विनी, हस्त, श्रवण, मुल और स्वाति नक्षत्रमे शनि और सोमभिन्न वारमें वृष, मिथुन, कन्या, धन, और मीन लग्नमें. तीसरे, ग्यारहवें, छठे और दशवे स्थानमे स्थित पापग्रह होनेसे लग्नमें, चौथे, सातवें, दशवें, नवमे और पांचवें स्थानमें शुभ ग्रह स्थित होनेसे शुभ तिथिमें, शुभ करणमें और शुभयोगमें चन्द्र शुद्ध होनेसे कामिनीके विवाहके बाद प्रथम केशबन्धन करना चाहिये ॥ ५ ॥

अथ द्विरागमनम्।

वृत्ते पाणिग्रहे गेहात्पितुःपतिगृहं प्रति।
पुनरागमनं वध्वास्तद्विरागमनं विदुः ॥ ६ ॥

इति नारायणपद्धतौ।

अर्थ–अब द्विरागमनका मुहूर्त्त कहतेहैं। विवाह होनेके वाद पिताके घरसे वधू पतिके घरमे दूसरीबार जो जातीहै उसकोही पण्डितगण द्विरागमन कहतेहै ॥ ६ ॥

अपिच–

श्वश्रूं हन्त्यष्टमे वर्षे श्वशुरञ्च दशाब्दिके।
संप्राप्ते द्वादशे वर्षे पतिं हन्ति द्विरागमे ॥ ७ ॥ (१)

इति कृत्यचिन्तामणौ।

(×) विवाहानन्तरं केशबन्धमाह–ध्रुवेति। ध्रुवगणादिनक्षत्रेषु शनिशशिवारं वर्जयित्वा अन्येषु वारेषु तत्र च रविगुरुकुजवारा अतिप्रशस्ता यथा राजमार्त्तण्डे "भवति पुंग्रहवारे स्त्रीणां खलु बालबन्धने पुरुष। युवतिग्रहे हि युवती नपुंसके स्यान्नपुंसकोत्पत्ति"। वृषद्व्यात्मकलग्नेषु वृषमिथुनकन्याधनुर्मीनेषु लग्नादुपचयस्थपापे केन्द्रत्रिकोणस्थेषु सद्ग्रहेषु शुभे चन्द्रे शुभतिथिकरणयोगे बालबन्धः कार्य्यः।

(१) "षष्ठेऽष्टमे द्विदशविंशचतुष्टये वाप्यष्टादशे दशमके च चतुर्दशे वा। वर्षे यदा नववधूगमनञ्च शीघ्रं दैवज्ञ गच्छति स्वपतिस्वकन्तुम्" इति ॥ इति मन्त्रान्तरे।

अर्थ–आठवें वर्षमे द्विरागमन होनेसे सासकी मृत्यु होतीहै इसीप्रकार दशवें वर्षमें श्वशुरकी मृत्यु होतीहै और बारहवें वर्षमें द्विरागमन होनेसे पतिकी मृत्यु होतीहै॥७॥

अपरञ्च ।

विवाहमासि प्रथमं वध्वा नागमनं यदि ।
तदा सर्वमिदं चिन्त्यं युग्माद्यब्दं विचक्षणैः ॥ ८ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ–विवाह जिस मासमें होताहै उस मासके मध्यमेंही जो वधू पतिके घरमें न आवे तभी पण्डितगणकर्तृक युग्मादि वर्षका विचार करना चाहिये ॥ ८ ॥

अन्यच्च ।

विवाहदिवसाद्यात्रा द्वितीयदिवसे शुभा ।
तन्मासाभ्यन्तरे तस्य चिन्त्यं नैतद्विचक्षणैः ॥ ९ ॥

अर्थ–वचनान्तरमें लिखा है कि, विवाहके दिनसे दूसरे दिनमे यात्रा शुभ होतीहै और विवाहके एक मासके मध्यमें भी युग्मादिका विचार नहीं होताहै ॥ ९ ॥

प्रकारान्तरञ्च ।

स्त्रीशुद्धयालिवटाजसंयुतरवौकालेविशुद्धेभृगुं
संत्यज्यप्रतिलोमगंशुभदिनेयात्राप्रवेशोचिते ।
त्यक्त्वाहस्तुनिरंशकंनववधूयात्राप्रवेशेपतिः
कुर्य्यादेकपुरादिषुप्रतिभृगोर्नेच्छन्तिदोषंबुधाः ॥ १०॥ (१)

इति दीपिकायाम ।

अर्थ–दीपिकानामक ग्रन्थमें लिखाहै कि, वधूके चन्द्रताराशुद्धि और कालशुद्धि होनेसे सौर अग्रहायण, फाल्गुन वा वैशाखमासके शुभदिनमें संक्रान्ति और पुरः शुक्रको त्यागकरके यात्रोचित नक्षत्रमें नववधूको यात्रा करावे । पति यदि स्वयं नववध्वा-गमन करावै तो पुरःशुक्रादिदोषको ग्रहण न करना चाहिये ॥ १० ॥

अपरञ्च ।

पैत्र्यागारे कुचकुसुमयोः सम्भवो वा यदि स्या-
त्कालः शुद्धो न भवति यदा सन्मुखो वापि शुक्रः ।

(१) "भृगौ सन्मुखे संस्थिते नाथ दक्षे न गच्छेन्नवोढा शिशुर्गर्भिणीच । [illegible] नवोढा शिशुर्मृत्युमाप्नोत्यगर्भा सगर्भा ॥" इति ग्रन्थान्तरे ।

मघे कुम्भेऽलिनि च न भवेद्भास्करश्चेत्तथापि
स्वामी भद्रेऽहनि नववधूं वेशयेन्मन्दिरं स्वम् ॥ ११ ॥ (२)

इति ज्योतिस्तत्वे ।

अर्थ–यदि पिताके घरमें रमणीके दोनों स्तन विकसित होजांय तो कालशुद्धि न होनेसेभी पुरःशुक्रादि दोष न विचार करके शुभ दिनमें उसका स्वामी स्वयं नववधूको अपने घरको लेजाय । वैशाख, फारगुन वा अग्रहायण मास न होनेसेभी कोई दोष नही होता है ॥ ११ ॥

अपिच ।

भर्त्तुर्गोचरशोभने दिनपतौ नास्तं गते भार्गवे
हित्वा च प्रतिलोमगौ बुधसितौ जीवस्य शुद्धौ तथा ।
सूर्य्ये कीटघटाजगे शुभदिने पक्षे च कृष्णेतरे
चानीता गुणशालिनी नववधूर्नित्योत्सवामोदिता ॥ १२ ॥

इति ज्योतिस्तत्वे ।

अर्थ–पतिके गोचरमें सूर्य्य और बृहस्पति शुद्ध होनेसे सौर अग्रहायण, फाल्गुन वा वैशाखमासमे, शुक्लपक्षमे और शुभदिनमें सर्वदा उत्सवयुक्ता और आमोदान्विता गुणशालिनी भार्य्याको द्विरागमन करावै. किन्तु शुक्रके अस्त होनेसे अथवा बुध वा शुक्र सम्मुख होनेसे द्विरागमन निषिद्ध होताहै ॥ १२ ॥

पुनरपि च ।

एकग्रामे चतुःशाले दुर्भिक्षे राष्ट्रविप्लवे ।
पतिना नीयमानायाः पुरःशुक्रो न दुष्यति ॥ १३ ॥

इति ज्योतिस्तत्वे ।

अर्थ–सन्मुखमे स्थित शुक्रके प्रतिप्रसव कहतेहैं यथा एक ग्राममें वा चतुःशालाके मध्यमे अथवा दुर्भिक्षसमयमे अथवा राजविप्लव होनेमें पति यदि पत्नीको लेजाय तो उसमे सम्मुख शुक्र होनेसेभी दोष नही होताहै ॥ १३ ॥

अन्यच्च ।

काश्यपेषु वसिष्ठेषु भृग्वादित्याङ्गिरःसु च ।
भारद्वाजेषु वात्स्येषु प्रतिशुक्रो न दोषभाक् ॥ १४ ॥

इति ज्योतिस्तत्वे ।

---

(२) "पैत्रे गृहे वृद्धस्तनकुम्भवत्स्त्रीणां न दोषः प्रतिशुक्रसम्भवः । भृग्वङ्गिरोवात्स्यवसिष्ठक-श्यपात्रीणां भरद्वाजमुने कुले तथा"। इति ग्रन्थान्तरे ।

अर्थ—जिसका काश्यप, वसिष्ठ, भृगु, अदिति, अङ्गिरा; भारद्वाज वा वात्स्यगोत्र होय उसके गमनकालमें सम्मुखस्थ शुक्र दोषभागी नहीहोताहै ॥ १४ ॥

अपरञ्च ।

मार्गफाल्गुनवैशाखे शुक्लपक्षे शुभान्विते ।
गोचरादित्यशुद्धौ च पत्युः शुद्धौ बृहस्पतौ ॥
वध्वा द्विरयनं शस्तं मासेष्वन्येष्वनिष्टदम् ॥ १५ ॥

इति भीमपराक्रमे ।

अर्थ—भीमपराक्रममें द्विरागमनके विषयमे कहाहै कि, अग्रहायण फाल्गुन वा वैशाख मासके शुक्लपक्षमें शुभनक्षत्रवारादियुक्त दिनमें वधूके गोचरमें सूर्य्य शुद्ध और पतिके गोचरमें बृहस्पतिशुद्धि होनेसे नववधूका द्विरागमन शुभ होताहै और उक्तमास भिन्न अन्यान्य मासमें द्विरागमन करानेसे अनिष्ट होता है ॥ १५ ॥

प्रकारान्तरञ्च ।

पुष्यादित्यसमीरणादितिवसुष्वप्युत्तरारेवती-
तारानायकरोहिणीषु शुभदे मेषालिकुम्भे रवौ ।
वारेष्विज्यसितेन्दुवित्सु शुभदे तारे प्रशस्ते विधौ
कन्यामन्मथमीन(१)तौलिमृगभे स्यादङ्गनाद्व्यागमः॥१६॥

इति प्रचेता ।

अर्थ—प्रचेताने कहाहै कि, पुष्य, हस्त, स्वाति, पुनर्वसु, धनिष्ठा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, रेवती, मृगशिर और रोहिणी इन समस्त शुभनक्षत्रोंमे सौर वैशाख, अग्रहायण और फाल्गुनमासमे, बृहस्पति, सोम और बुधवारमें, शुभताराμें, चन्द्रशुद्धि होनेसे कन्या, मिथुन, मीन 'मतान्तरमे' कुम्भ, तुला और मकर लग्नमे नववधूका द्विरागमन शुभ होताहै ॥ १६ ॥

अन्यच्च ।

पुष्यादित्यसमीरणादितिवसुत्राण्युत्तराण्याश्विनी-
रोहिण्यः शशलाञ्छनोऽपि शुभदो मेषालिकुम्भे रवौ ।
देवाचार्य्यसितेन्दुसौम्यदिवसे तारा प्रशस्ते बुधः
कन्यामन्मथमीनभे नववधूयानं मृग तौलिके ॥ १७ ॥

इति मार्तण्डे ।

(१) 'तौलिकुम्भे मृगभे' इति पाठान्तरम् ।

अर्थ—सारसंग्रहनामक ग्रन्थमें लिखाहै कि—पुष्य, हस्त, स्वाति, पुनर्वसु, धनिष्ठा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपदा, अश्विनी रोहिणी और मृगशिर इन नक्षत्रोंमें, सौर वैशाख, अग्रहायण वा फाल्गुनमासमें बृहस्पति, शुक्र, सोम और बुधवारमें ताराशुद्धि होनेसे कन्या, मिथुन, मीन, मकर और तुलालग्नमें नववधूका द्विरागमन प्रशस्त है ॥ १७ ॥

अपरञ्च ।

वृद्धे चास्तमिते शिशौ भृगुसुते चन्द्रे च सूर्य्ये स्थिते
वक्रे चापि गुरौ तथातिचरिते लुप्ते च संवत्सरे ॥
वर्षे द्वादशके गुरौ हरिगृहे पक्षे च शुक्लेतरे
आनीता श्रमकांक्षिणो नववधूरत्यन्तदुःखप्रदा ॥ १८ ॥

इति पराशरः ।

अर्थ—शुक्रके वार्द्धक्य, अस्त वा बाल्यावस्थामें चन्द्र और सूर्य्य एक राशिमें स्थित होनेसे, बृहस्पति सिंहराशिमे स्थित वक्री, अतिचारी वा महातिचारी होनेसे, कृष्णपक्षमें द्वादशवर्षवयस्का, नववधूका द्विरागमन करनेसे वह अत्यन्त दुःखदायिनी होतीहै। इसप्रकार पराशरने कहाहै ॥ १८ ॥

प्रकारान्तरञ्च ।

ओजोऽब्देऽलिघटाजगे दिनकरे गुर्वर्कचन्द्रे शुभे
कन्यामन्मथतौलिमीनमृगभे युक्तेक्षिते सद्ग्रहैः ।
देवाचार्य्यसितेन्दुसौम्यदिवसे पक्षे च कृष्णेतरे
मूलक्षिप्रचरध्रुवेषु मृदुभे वध्वा द्वितीयागमः ॥ १९ ॥

इति ग्रन्थान्तरे ।

अर्थ—अब ग्रन्थान्तरकी रीतिसे द्विरागमका शुभ दिन कहतेहै. अयुग्मवर्षमे सौर अग्रहायण. फाल्गुन और वैशाख मासमें बृहस्पति, सूर्य्य और चन्द्र शुद्ध होनेसे कन्या, मिथुन. तुला. मीन और मकरलग्न शुभग्रहयुक्त वा शुभग्रहकी दृष्टि होनेसे, बृहस्पति शुक्र. सोम और बुधवारमे शुक्लपक्षमे. मूल. पुष्य, अश्विनी. हस्त, स्वाति. पुनर्वसु, श्रवण. धनिष्ठा. शतभिषा. उत्तराफाल्गुनी. उत्तराषाढा. उत्तराभाद्रपदा. रोहिणी. चित्रा, अनुराधा. मृगशिर और रेवती इन नक्षत्रोमे नववधूका द्विरागमन प्रशस्त है ॥ १९ ॥

अथ द्विरागमने प्रशस्ततिथिकथनम् ।

द्वितीया तृतीया चैव पञ्चमी सप्तमी तथा ।

दशम्येकादशी प्रोक्ता त्रयोदशी शुभा तथा ॥ २० ॥

अर्थ--द्वितीया, तृतीया, पञ्चमी, सप्तमी, दशमी, एकादशी और त्रयोदशी तिथि द्विरागमनमें प्रशस्त हैं ॥ २० ॥

अथ निषिद्धतिथिकथनम् ।

नाष्टम्यां न च रिक्तायां नाद्यषष्ठी च पूर्णिमा ।
द्वादशी चाशुभा ज्ञेया द्विरागमनकर्मसु ॥ २१ ॥ (+)

अर्थ--अष्टमी, रिक्ता (चतुर्थी, नवमी और चतुर्दशी) प्रतिपदा, षष्ठी, पूर्णिमा और द्वादशी तिथि द्विरागमनमे अप्रशस्त हैं ॥ २१ ॥

अथ पितृगृहे भोजनानन्तरं पतिगृहे भोजननिषेधः ।

भुक्त्वा पितृगृहे कन्या भुङ्क्ते स्वामिगृहे यदि ।
दौर्भाग्यं जायते तस्याः शपन्ति कुलदेवताः ॥ २२ ॥

इति सत्कृत्यमुक्तावल्याम् ।

अर्थ--विवाहिता कन्या पिताके घरमें भोजन करके यदि पुनः (फिर) पतिके घरमें भोजन करै तव दुर्भाग्यवती होतीहै और कुलदेवता उसको शापदेतेहैं ॥ २२ ॥

अथाद्यरजोदर्शने शुभाशुभवारादिकथनम् ।

आदित्ये विधवा नारी सोमे चैव पतिव्रता ।
वेश्या मङ्गलवारे च बुधे सौभाग्यमेव च ॥ २३ ॥
बृहस्पतौ पतिः श्रीमाञ्छुक्रे पुत्रवती भवेत् ।
शनौ वन्ध्यां विजानीयात्प्रथमं स्त्री रजस्वला ॥ २४ ॥

इति नारायणपद्धतौ ।

अर्थ--अव प्रथम रजोदर्शनका फल वर्णन करते हैं । रविवार (इतवार) में स्त्रीको प्रथम रजोदर्शन होनेसे वह स्त्री विधवा होजातीहै. इसीप्रकार सोमवारमे पतिव्रता, मङ्गलवारमें वेश्या और बुधवारमें सौभाग्यवती होतीहै. बृहस्पतिवारमें प्रथम रजस्वला होनेसे उसका पति अत्यन्त धनाढ्य होताहै. शुक्रवारमें प्रथम रजोदर्शन होनेसे वह नारी पुत्रवती होती है और शनिवारमें प्रथम रजस्वला होनेसे वन्ध्यात्व प्राप्त होताहै ॥ २३ ॥ २४ ॥

अथ मासकथनम् ।

ज्येष्ठे स्याद्विधवा नारी आषाढे बन्धुनाशिनी ।

(+) मासदग्धाविवाहप्रकरणे विलिखिता विष्टिभद्रा च सामान्यकाण्डे लिखिता दिनदग्धा यात्राप्रकरणे वक्ष्यामि । एता महणीया. ।

श्रावणे च मृतापत्या भाद्रे च बहुरोगिणी ॥ २५ ॥
आश्विने च मृतापत्या कार्त्तिके कुलनाशिनी ।
मार्गशीर्षे धर्मशीला पौषे च रतिविह्वला ॥ २६ ॥
माघे पतिव्रता नारी फाल्गुने बहुपुत्रिणी ।
चैत्रे च मदनोन्मत्ता वैशाखे प्रियवादिनी ॥ २७ ॥ (×)

इति ज्योतिस्तत्वे ।

अर्थ-ज्येष्ठमासमें प्रथम रजस्वला होनेसे वह नारी विधवा होतीहै. इसीप्रकार आषाढमें बन्धुनाशिनी, श्रावणमे मृतवत्सा, भाद्रपदमें रोगिणी, आश्विनमें मृतवत्सा, कार्तिकमें कुलक्षयकारिणी, अग्रहायणमें धर्मपरायणा, पौषमें मदनोन्मत्ता, माघमें पतिव्रता. फाल्गुनमें बहुपुत्रवती, चैत्रमें कामुकी और वैशाखमासमें प्रथमवार रजस्वला होनेसे वह नारी प्रियभाषिणी होतीहै ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥

अथ तिथिकथनम् ।

प्रतिपत्सुभगां नारीं द्वितीया वातुलां प्रियाम् ।
तृतीया क्षेममारोग्यं चतुर्थी पतिवल्लभाम् ॥ २८ ॥
पञ्चमी सुभगां नारीं षष्ठी पररतां चरेत् ।
सप्तमी श्रीयुतां नारीमष्टमी पतिरोगिणीम् ॥ २९ ॥
नवमी विधवां नारीं दशमी च सुपुत्रिणीम् ।
एकादशी मृतवत्सां द्वादशी परगामिनीम् ॥ ३० ॥
त्रयोदशी चार्थपुत्रां चञ्चलाञ्च चतुर्दशी ।
नष्टेन्दुः कुरुते मृत्युं पौर्णमासी च सम्पदः ॥ ३१ ॥

अर्थ-स्त्रियोंके प्रथमवार रजस्वला होनेमें तिथिफल कहतेहै । प्रतिपदा तिथिमें प्रथमवार स्त्री रजस्वला होनेसे सुभगा होतीहै. इसीप्रकार द्वितीयामें वातुला. तृतीयामे मङ्गल और आरोग्यलाभ. चतुर्थीमे पतिकी प्यारी, पञ्चमीमे सुभगा. षष्ठीमें परपुरुषमे प्रीति रखनेवाली. सप्तमीमें धनशालिनी, अष्टमीमें पतिको रोग, नवमीमें विधवा. दशमीमें पुत्रवती. एकादशीमें मृतवत्सा.द्वादशीमें परपुरुष-

(×) "सन्ध्यादये तथा रात्रौ पितृगारे परालये। विष्टौ तथैव सङ्क्रान्त्या ग्रहणे चन्द्रसूर्ययो. । कृष्णपक्षे चाशुभं स्यान्नारीणां प्रथमं रज. ॥" इति सन्ध्यादौ आद्यर्तुफलम् ।

गामिनी, त्रयोदशीमें धन और पुत्रयुक्ता, चतुर्दशीमें चञ्चला और अमावास्यामें मृत्यु होतीहै और पूर्णमासी तिथिमें प्रथमवार रजस्वला होनेसे सम्पत्तिलाभ होताहै ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥

अन्यच्च ।

द्वितीया पञ्चमी चैव तृतीया दशमी तथा ।
प्रथमे रजसि स्त्रीणां शुभाश्चान्येऽधमाः स्मृताः ।
अमारिक्ताष्टमीषष्ठीद्वादशीप्रतिपत्स्वपि ॥ ३२ ॥

अर्थ–ग्रन्थान्तरमें लिखाहै कि, द्वितीया, पञ्चमी, तृतीया और दशमी तिथिमें प्रथमवार रजस्वला होनेसे शुभ होताहै, और अमावस्या, रिक्ता, अष्टमी, षष्ठी, द्वादशी और प्रतिपदा तिथिमें प्रथमवार रजस्वला होनेसे अशुभ होताहै ॥ ३२ ॥

अथ योगादिकथनम् ।

परिघस्य तु पूर्वार्द्धे व्यतीपाते च वैधृतौ ॥
सन्ध्या (×) सूपप्लवे विद्यादशुभं प्रथमार्त्तवम् ॥ २२ ॥

अर्थ–अब योगका फल वर्णन करतेहैं । परिघ योगके पूर्वार्द्धमें, व्यतीपातमें, वैधृतियोगमें, सन्ध्याकालमें और ग्रहणसमयमें प्रथमवार रजस्वला होनेसे अशुभ फल होताहै ॥ ३३ ॥

अन्यच्च ।

विष्कम्भे दुर्भगा नारी वन्ध्या स्यादतिगण्डके ।
शूले शूलान्विता गण्डे वज्रे वेश्या भवेद्ध्रुवम् ॥ ३४ ॥
व्यतीपाते वैधृतौ च पतिघ्नी नात्र संशयः ।
परिघे स्यान्मृतापत्या व्याघाते चात्मघातिनी ॥
शेषा यथानामफला नारीणां प्रथमार्त्तवे ॥ ३५ ॥

अर्थ–विष्कम्भयोगमें प्रथमवार रजस्वला होनेसे वह स्त्री दुर्भगा होतीहै इसीप्रकार अतिगण्डयोगमें वन्ध्या. शूलयोगमें शूल रोगान्विता गण्ड और वज्र योगमें वेश्या व्यतीपात और वैधृति योगमें स्वामिघातिनी. परिघयोगमें मृतपुत्रा और व्याघातयोगमें प्रथमवार रजस्वला होनेसे आत्मघातिनी होतीहै. अन्यान्ययोगमें नामकेसे माने फल होताहै ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

(×) मार्गशीर्षफाल्गुनज्येष्ठे च आषाढे तथा । माघे [illegible] । कृष्णपक्षे तु दशमी मध्यम [illegible] ॥ इति [illegible] ।

अथ नक्षत्रकथनम् ।

पूर्वात्रये याम्यभुजङ्गरौद्रे
वैधव्यमस्या विदधाति नूनम् ॥
मघे सशोकाप्यथ भेऽदितीशे
सा बन्धकीन्द्रानलभे दरिद्रा ॥ ३६ ॥

इति ज्योतिस्तत्वे ।

अर्थ-पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा, भरणी, आश्लेषा और आर्द्रानक्षत्रमें प्रथमवार स्त्री रजस्वला होनेसे निश्चयही विधवा होतीहै, इसी प्रकार मघानक्षत्रमें शोक होताहै, पुनर्वसु नक्षत्रमें जारिणी होतीह और ज्येष्ठा और कृत्तिका नक्षत्रमें प्रथम वार रजस्वला होनेसे नारी दरिद्रा होतीहै ॥ ३६ ॥

पुष्यं दृष्टं निन्दिते भे यदि स्या-
च्छान्तिं (×) कुर्य्यादङ्गनानाञ्च पूर्वम् ॥
तत्संयोगं बान्धवा वर्जयेयु-
र्यावद्भूयो दृश्यते शस्तभे तत् ॥ ३७ ॥

इति ज्योतिस्तत्वे ।

अर्थ-निन्दित नक्षत्रमे यदि प्रथमवार नारी रजस्वला होय. तब उस नारीके लिए शान्ति करनी चाहिये और जबतक शुभ नक्षत्रमे दूसरीवार रजस्वला न होय तबतक बान्धवगण उस स्त्रीके साथ स्पर्शादि सम्बन्धको परित्याग करदेवें ॥ ३७ ॥

कृत्तिकादीनि ऋक्षाणि दिक्ष्वष्टसु लिखेद्बुधः ।
चत्वारि दिक्षु ऋक्षाणि कोणेषु च त्रयं लिखेत् ॥ ३८ ॥
पूर्वादिक्रमतो लब्धं फलं तेनैव निर्दिशेत् ।
श्रीर्वन्ध्या सुभगा चैव विपुत्रा पुत्रिणी तथा ॥ ३९ ॥

इति ग्रन्थान्तरे ।

विधवा सर्वसम्पन्ना वेश्या चेति क्रमात्फलम् ।

---

(१) 'मासदोषे गुडं तैलं वारदोषे च तण्डुलम् । नक्षत्रे च मणिं दद्याद्योगे च तिलकाञ्चनम् । तिथिदोषे मणिं दद्यात्करणे काञ्चनं तथा । लग्नदोषे घृतं दद्यात्सर्पणे [illegible] ॥ "

आद्ये रजसि सम्भूते स्त्रीणामृक्षफलम्भवेत् ॥ ४० ॥ (+)

इति ज्योतिस्तत्वे ।

अर्थ–एक दिक्चक्र अङ्कित करके उसमें कृत्तिकादिकरके नक्षत्राङ्क आठो दिशामें स्थापन करै । चारो दिशामें चार २ नक्षत्र और चतुष्कोणमें तीन २ नक्षत्राङ्क अङ्कित करना चाहिये । कृत्तिकादि नक्षत्र पूर्वादिक्रमसे लिखै फलभी इसी प्रकार जानना चाहिये अर्थात् पूर्वदिशाके नक्षत्रोंके मध्यमें प्रथम वार रजस्वला होनेसे श्रीयुक्ता होतीहै, इसीप्रकार अग्निकोणमें होनेसे वन्ध्या दक्षिणमें सौभाग्यवती, नैर्ऋतमे पुत्रहीना, पश्चिममें पुत्रवती, वायुकोणमें विधवा, उत्तरमें सर्वसम्पन्ना और ईशान कोणस्थित नक्षत्राङ्कोंके मध्यमें प्रथमवार नारी रजस्वला होनेसे वेश्या होतीहै । स्त्रियोंके प्रथमवार रजस्वला होनेमें नक्षत्रोंका फल इस प्रकारसे कहागया । आगे दिक्चक्र स्पष्ट लिखाहै जिसके देखनेसेही पाठकगणको अनायासमें ज्ञात होजायगा ॥ ३८–४० ॥

इति नक्षत्रकथनम् ।

अथ दिक्चक्रम् ।

ई. रे. अ भ.	पू. कृ. रो. मृग. आ.	अ. पुन. पु श्ले.
उ ध. श. पू भा. उ-भा.	अथ दिक्चक्रम्	द म. पू-फा. उ-फा ह
वा. उ-पा. अभि श्र	प. अनु ज्ये मू पू-षा	नै. चि स्वा. वि.

अथ गर्भाधानम् ।

तत्रादौ पञ्चपर्वनिरूपणम् ।

चतुर्दश्यष्टमी चैव अमावस्याथ पूर्णिमा ।

(+) अश्विन्यादिक्रमेण नक्षत्रफलम् । "सुभगा चैव दुःशीला वन्ध्या पुत्रसमन्विता । धर्मयुक्ता व्रतघ्नी च परसन्तानमोहिनी । सुपुत्रा चैव दुःपुत्रा पितृवेश्मगता सदा । दीना प्रजावती [illegible] पत्राढ्या लिङ्गधारिणी । साध्वी पतिप्रिया नित्यं सुपुत्रा कष्टचारिणी । स्वकर्मणि रता [illegible] पुत्र-पुत्रादिसंयुता । नित्यं धनचयासक्ता सुपुत्रा धान्यसंयुता । पूर्वा चाज्ञा पुष्पदर्शनमुक्ताऽ [illegible] क्रमात्स्मृतम् ॥" इति ग्रन्थान्तरे ।

पर्वाण्येतानि राजेन्द्र रविसंक्रांतिरेव च ॥ ४१ ॥
स्त्रीतैलमांसभोगी च पर्वस्वेतेषु वै पुमान् ।
विण्मूत्रभोजनं नाम प्रयाति नरकं ध्रुवम् ॥ ४२ ॥

इति विष्णुपुराणे ।

अर्थ-अब पञ्चपर्व वर्णन करतेहैं । विष्णुपुराणमें लिखाहै कि, चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस्या, पूर्णिमा और रविसंक्रान्तिको पञ्चपर्व कहतेहैं इनमे जो मनुष्य स्त्रीसम्भोग तैलाभ्यङ्ग, वा मांसभोजन करताहै, वह मनुष्य विण्मूत्रभोजननामक नरकमें निश्चयही वास करता है ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

अन्यच्च ।

कुहूपूर्णेन्दुसंक्रान्तिचतुर्दश्यष्टमीषु च ।
नरश्चाण्डालयोनिः स्या (+) त्तैलस्त्रीमांससेवनात् ॥४३॥

इति सारसंग्रहे ।

अर्थ-सारसंग्रहमें लिखाहै कि, अमावस्या, पूर्णिमा, संक्रान्ति, चतुर्दशी और अष्टमी तिथियोमें मनुष्य तैलव्यवहार, स्त्रीसङ्ग. वा मांसभोजन करनेसे चाण्डालयोनिमें प्राप्त होताहै अतएव उक्त समस्त निषिद्ध दिनमें स्त्रीसेवनादि न करना चाहिये ॥ ४३ ॥

अथ निषेककालकथनम् ।

प्रथमेऽहनि चाण्डाली द्वितीये ब्रह्मघातिनी ।
तृतीये रजकी प्रोक्ता चतुर्थेऽहनि शुद्ध्यति ॥ ४४ ॥

अर्थ-रजस्वला स्त्री प्रथम दिनमें चण्डालिनीके समान होतीहै द्वितीयदिनमे ब्रह्मघातिनीके समान होतीहै और तृतीय दिनमें रजकिनी (धोबिन) के समान अस्पृश्या रहकर चतुर्थ दिनमे शुद्ध होतीहै ॥ ४४ ॥

रामं दिनं परित्यज्य यावद्वहति शोणितम् ।
तावदेव ऋतुः स्त्रीणां रात्रयः षोडश स्मृताः ॥ ४५ ॥

अर्थ-स्त्रियोके रजस्वला होनेकी अवधि सोलह रात्रिके मध्यमें प्रथम तीन दिन परित्याग करके ऋतुकाल जानना चाहिये ॥ ४५ ॥

(१) "पूर्णा[illegible] [illegible]परिवर्जनीया" । इति कल्पतरूद्धृतवामनपुराणम् । "[illegible]धे च योषां न समाचरेत्" इति । "[illegible]" । इति कल्पतरौ

चतुर्थे जायते पुत्रः स्वल्पायुर्गुणवर्जितः ।
विद्याधर्मपरिभ्रष्टो दरिद्रः क्लेशभोजनः ॥ ४६ ॥

अर्थ–रजस्वला स्त्री चौथे दिनमें स्नान करके पतिके साथ वास करसक्तीहै, किन्तु उक्त दिनमे गर्भ धारणकरके पुत्रप्रसव करनेसे वह पुत्र अल्पायुविशिष्ट, गुणहीन. मूर्ख, अधर्माचारी, दरिद्र होताहै और उसको क्लेशकर भोजन प्राप्त होताहै ॥ ४६ ॥

पञ्चमे जायते कन्या दुर्भगा नित्यदुःखिता ।
स्वल्पायुरसती वेश्या कुरूपा विधवा स्मृता ॥ ४७ ॥

अर्थ–पांचमें दिन गर्भधारण करनेसे कन्या होतीहै,वह कन्या दुर्भगा, चिरदुःखिनी, अल्पायुविशिष्टा, असती, वेश्या, कुरूपा और विधवा होतीहै ॥ ४७ ॥

षष्ठे च जायते पुत्रो न दोषी न गुणी तथा ।
मूर्खो दुःखी कुरूपश्च धनसन्ततिवर्जितः ॥ ४८ ॥

अर्थ–छठे दिनमें गर्भ धारण करनेसे पुत्र होताहै, वह पुत्र दोषहीन. निर्गुण. मूर्ख, दुःखभागी, कुरूप, धनहीन, और निःसन्तान होताहै ॥ ४८ ॥

सप्तमे जायते कन्या दुःखिनी नायिका भवेत् ।
जीवंती सा मृता लोके धनधान्यविवर्जिता ॥ ४९ ॥

अर्थ–सातमें दिन गर्भ धारण करनेसे कन्या उत्पन्न होतीहै वह कन्या दरिद्रकी स्त्री और जीवन्मृताके समान धनधान्यसे हीना होतीहै ॥ ४९ ॥

अष्टमे जायते पुत्रः पितुर्वित्तविनाशकः ।
व्याधितो दुर्मुखश्चैव प्रायो निष्ठुरमानसः ॥ ५० ॥

अर्थ–आठमें दिन गर्भ धारण करनेसे पुत्र होताहै.वह पुत्र पिताके धनका नाश करनेवाला, व्याधियोंसे युक्त. दुर्मुख और निर्दय होताहै ॥ ५० ॥

नवमे जायते कन्या मेधायुःपुत्रसंयुता ।
लक्ष्मीसमा भवेन्नारी स्वामिनो हितकारिणी ॥ ५१ ॥

अर्थ–नवमें दिन गर्भ धारण करनेसे कन्या होतीहै, वह कन्या मेधाविनी. दीर्घायुयुक्ता, पुत्रवती, लक्ष्मीके समान और पतिके हितकारिणी होतीहै ॥ ५१ ॥

दशमे जायते पुत्रो धनधान्यमहेश्वरः ।
भाग्यवान्बहुशो विद्यामेधायुःपुत्रसंयुतः ॥ ५२ ॥

अर्थ–दशमें दिन गर्भ धारण करनेसे पुत्र होताहै. वह पुत्र धनधान्यका स्वामी, भाग्यवान्, अत्यन्त विद्वान् मेधायुक्त और पुत्रवान् होताहै ॥ ५२ ॥

रुद्रे च जायते कन्या कुलद्वयमनोहरा।
सती पुत्रवती साध्वी धर्मकर्महितैषिणी ॥ ५३ ॥

अर्थ–ग्यारहमें दिन गर्भ धारण करनेसे कन्या होतीहै. वह कन्या दोनों कुलोंको उज्ज्वल करतीहै और सती, पुत्रवती, साध्वी और धर्मकर्ममें प्रीति रखनेवाली होतीहै ॥ ५३ ॥

द्वादशे जायते पुत्रो यशोविद्यादयान्वितः।
धनी सुपुत्रयुक्तश्च मतिमाँल्लोकपालकः ॥ ५४ ॥

अर्थ–बारहवे दिन गर्भ धारण करनेसे पुत्र होताहै, वह पुत्र यशस्वी, विद्वान् दयाशील, धनी, सुपुत्रान्वित, बुद्धिमान् और लोकपालक होताहै ॥ ५४ ॥

त्रयोदशे च कन्या स्यात्कुलद्वयमनोहरा।
साध्वी पुत्रवती धन्या धर्मलोकनिवासिनी ॥ ५५ ॥

अर्थ–तेरहमे दिन गर्भ धारण करनेसे कन्या होतीहै वह कन्या दोनों कुलको उज्ज्वल करनेवाली, साध्वी, पुत्रवती और प्रशंसनीया होकर धर्मलोकमें वास करतीहै ॥ ५५ ॥

चतुर्दशे तु पुत्रः स्याद्बलवान्नृपसन्निभः।
शुद्धवीर्य्ययशोराशिर्मेधालक्ष्मीसमन्वितः ॥ ५६ ॥

अर्थ–चौदहवे दिन गर्भ धारणकरनेसे पुत्र होताहै, वह पुत्र बलवान् राजाके समान, यशस्वी, मेधावी और लक्ष्मीयुक्त होताहै ॥ ५६ ॥

भवेत्पञ्चदशे कन्या भूपानां कण्ठधारिणी।
अर्द्धप्राणहरा पत्युः सती धर्मपरायणा ॥ ५७ ॥

अर्थ–पन्द्रहमे दिन गर्भ धारणकरनेसे कन्या होतीहै भूपालप्रणयिनी. स्वामीकी अर्द्धाङ्गरूपा सती और धर्मपरायणा होतीहै ॥ ५७ ॥

धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च समयज्ञो महीपतिः।
षोड़शे जायते पुत्रः सत्यवादी जितेन्द्रियः ॥ ५८ ॥ (+)

इति सारसंग्रहधृतवचनानि ॥

(+) इत्यादिवचनानुसारेण ऋतुकालावधिषोड़शदिनमध्ये दशमे द्वादशे चतुर्दशे षोडशे वा निषेकः कर्त्तव्यः ॥ इति।

अर्थ–सोलहमें दिन गर्भधारण करनेसे पुत्र होताहै. वह पुत्र धर्मज्ञ, कृतज्ञ, भूपति, सत्यवादी और जितेन्द्रिय होताहै ॥ ५८ ॥

अथ गर्भाधाने युग्मायुग्मदिनव्यवस्था ।

षोड़शर्त्तुनिशाः स्त्रीणां तासु युग्मासु संविशेत् ॥ ५९ ॥

इति याज्ञवल्क्यः ।

अर्थ–भगवान् याज्ञवल्क्यने कहा है कि, स्त्रियोंके ऋतुकालका समय सोलह रात्रितक होताहै तिनके मध्यमें युग्म रात्रियोंमे निषेक करना चाहिये ॥ ५९ ॥

अन्यच्च ।

स्त्रीणामृतुर्भवति षोड़शवासराणि
तत्रादितः परिहरेच्च निशाश्च तिस्रः ॥
युग्मासु रात्रिषु नरा विषमासु नार्य्यः ।
कुर्य्यान्निषेकमथ तास्वपि पर्ववर्जम् ॥ ६० ॥

इति ज्योतिरतत्वे ।

अर्थ–स्त्रियोंके ऋतुकालका समय सोलह दिनतक होताहै, तिनके मध्यमें प्रथमके तीन दिन परित्याग करके अन्य तरह दिनके मध्यमे रजोदर्शनावधि युग्मरात्रिमे गर्भधारण करनेसे पुत्र और अयुग्म रात्रिमें कन्या उत्पन्न होतीहै अतएव युग्म रात्रियोंमें निषेक करना चाहिये किन्तु पञ्चपर्वको परित्याग करदेवै ॥ ६० ॥

अपरञ्च ।

एवं गच्छेत्स्त्रियं क्षामां मघां मूलञ्च वर्जयेत् ।
शस्त इन्दौ सकृत्पुत्रं लक्षण्यं जनयेत्पुमान् ॥ ६१ ॥

इति याज्ञवल्क्यः ।

अर्थ–मूल और मघा नक्षत्रको छोडकर शुभ चन्द्रमें आहारलाघवादिद्वारा क्षीणा स्त्रीमें गमन करनेसे उत्तम लक्षणाक्रान्त पुत्र उत्पन्न होताहै ॥ ६१ ॥

प्रकारान्तरञ्च ।

युग्मासु पुत्रा जायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रि ।
तस्माद्युग्मासु पुत्रार्थी संविशेदार्त्तवे स्त्रियम् ॥ ६२ ॥

ययर

इति याज्ञवल्क्यः ।

अर्थ–याज्ञवल्क्यने कहा है कि, युग्मरात्रिमें पुत्र और अयुग्म रात्रिमें कन्या होतीहै अतएव पुत्रार्थी मनुष्यको युग्म रात्रिमेंही स्त्रीगमन करना चाहिये ॥ ६२ ॥

अर्थ–अब नाडीनक्षत्रका फल वर्णनकरतेहैं । मनुष्यकी जन्मनाड़ी (जन्मनक्षत्र) उपतापित होनेसे चेष्टा, देह और अर्थकी हानि होती है इसीप्रकार कर्म्मनाड़ी अर्थात् जन्मनक्षत्रसे दशवाँ नक्षत्र उपतापित होनेसे कर्मकी हानि होतीहै, मानसनाडी उपतापित होनेसे मानसिकपीड़ा होतीहै, सांघातिक नाड़ीके उपतापित होनेसे देह, धन और बान्धवोंकी हानि होतीहै, सामुदयिक नाडी उपतापित होनेसे मित्र, भृत्य और अर्थका नाश होताहै और वैनाशिक नाडी उपतापित होनेसे शरीर, धन और सम्पत्का नाश होजाताहै ॥ ११२ ॥ ११३ ॥ ११४ ॥

अथ नाडीनक्षत्रपीडाशान्तिकथनम् ।

सर्वेषामेव पीडायां दिनमेकमुपोषितोऽनलंजुहुयात् । (३)
सावित्र्या क्षीरतरोः समिद्भिरमरद्विजानुरतः ॥ ११५ ॥

अर्थ–अब नाडीके नक्षत्रोका प्रतीकार कहतेहैं । जन्मप्रभृति छः नाड़ियोके मध्यमे मनुष्यकी कोई एक [illegible] अथवा समस्त नाड़िये यदि दूषित हो तो उन दोषोंके शान्तिके अर्थ देव[illegible]अश्वि[illegible]रक्त मनुष्य एक दिन उपवास करके गायत्रीपाठपूर्वक [illegible] सहस्र होमकरे ॥ ११५ ॥
अग्नेम क्षारवृक्ष[illegible]समिधद्वारा अष्टोत्तर[illegible]

अथाशुभनक्षत्रनिर्णयः ।

नक्षत्रपटुकिरणं पश्चात्सन्ध्यागतं ग्रहैर्भिन्नम् ।
क्रूरनिपीडितमुत्पातदूषितञ्चाशुभं सर्वम् ॥ ११६ ॥ (४)

---

(३) नाडीनक्षत्रदोषप्रतीकारमाह । सर्वेषामिति । सर्वेषां नाडीनक्षत्राणां क्रमेण समुदायेन वा पीडायां गायत्र्या होमं कुर्य्यादित्यर्थः । देवद्विजानुरक्तपुरुषः देवब्राह्मणपूजापि कर्त्तव्येति तात्पर्य्यम्। अनुक्तसंख्यके होमेऽष्टोत्तरसहस्रसंख्याविधानादत्राप्यष्टोत्तरसहस्रहोम इति । यथा पुरश्चरणचन्द्रिकायाम्–"येषां जपे च होमे च संख्या नोक्ता मनीषिभिः । तेषामष्टसहस्रन्तु संख्या स्याज्जपहोमयोः॥" अत्र च नाडीदोषशान्तिस्नानमुक्तं योगयात्रायाम् । यथा– "गोक्षीररसितवृषभशकृन्मूत्रैः पत्रैश्च पूर्णकोशाया । स्नानं जन्मदिने दुष्टे स्वाचारवतां हरति पापम्॥ कर्म्मणि घृतमधुहोमो दशाहमक्षारमद्यमांसादः। दूर्वाप्रियङ्गुलाजशतपुष्पशतावरीस्नानम् ।सांघातिके तु दुष्टे मासमधुक्रौर्य्यमन्मथास्त्यक्त्वा। स्नानञ्च तत्र कुर्य्यात्प्रियङ्गुसिद्धार्थबिल्वदलैः समिश्रितेन पयसा सुराह्वयचन्दनद्वितीयमुस्तैः । दान्तो दूर्वां जुहुयाद्दानं दद्याद्यथाशक्ति । सामुदयिके तु दद्यात्काञ्चनरजताक्षतं स्तेयधान्ये । वैनाशिकेऽन्नपानं वसुधाश्च गुणान्विते दद्यात् । मानसतापे होमः सरोरुहैः पायसैर्द्विजा भोज्याः । गजमदशिरीषचन्दनवलातिविषाभिः स्नानम् । सितसिद्धार्थकमिश्रैर्दूर्वादधिचन्दनोशीरैः । स्नायान्नदीशमन्त्रैस्ताराद्दोषप्रशमनाय ॥" इति ॥

(४) अशुभनक्षत्रमाह । नक्षत्रमिति । अपटुकिरणम् अस्पष्टरश्मिरविभोगनक्षत्रस्य पूर्वापरस्थं नक्षत्रद्वयम् अस्पष्टरश्मीत्यर्थः । पश्चात्सन्ध्यागतम् अस्तगतं सूर्य्यभोग्यनक्षत्रमित्यर्थः ॥ ग्रहैः शुभा-

अर्थ–अब अशुभ नक्षत्रोका निर्णय करतेहैं । अश्विन्यादि सत्ताईस नक्षत्रोके मध्यम पटुकिरण (सूर्य्यभोग्य) नक्षत्रोके पूर्व और परनक्षत्र, पश्चात् सन्ध्यागत (सूर्य्यभोग्य) नक्षत्र, और शुभाशुभ ग्रहयोगद्वारा भिन्न नक्षत्र, अशुभ नक्षत्र, पापग्रह भोग्य नक्षत्र और उल्कापातादि त्रिविधोत्पातदूषित नक्षत्रोको अशुभ नक्षत्र कहतेहै, उक्त समस्त शुभ नक्षत्रोंमें कोई कार्य्य न करनाचाहिये ॥ ११६ ॥

अथ पुंनक्षत्रकथनम् ।

हस्तो मूलः श्रवणः पुनर्वसुर्मृगशिरास्तथा पुष्यः ।
पुंसंज्ञिते च कार्य्ये पुंनामाऽयं गणः स्मृतः ॥ ११७ ॥ (५)

अर्थ–हस्त, मूल, श्रवण, पुनर्वसु, मृगाशिर और पुष्य इन समस्त नक्षत्रोको पुनक्षत्र कहतेहैं, पुंकार्य्यमें उक्त नक्षत्र प्रशस्त हैं ॥ ११७ ॥

अथ राशिनक्षत्रविभागः ।

अश्विनीमृगमूलादौ मेषसिंहहयादयः ।
विषमर्क्षान्निवर्तन्ते पादवृद्ध्या यथोत्तरम् इति ११८ ॥ (६)

अर्थ--अब राशियोके नक्षत्रोंका विभाग वर्णन करतेहै । अश्विनी मघा और मूल नक्षत्रसे विषम (अयुग्म) नक्षत्रके एक २ पाद वृद्धिसे क्रमानुसार यथासंख्य करके सिंहादि और धनुरादि राशिको जानो ॥ ११८ ॥

अथ स्पष्टमाह ।

अश्विन्या सह भरणी कृत्तिका पादश्च कथितो मेषः ।
वृषभः कृत्तिकाशेषं रोहिण्यर्द्धञ्च मृगशिरसः ॥ ११९ ॥

—शुभग्रहैः सर्वग्रहैर्योगतारायोगेन शकटभेदेन वा भिन्नमित्यर्थः । क्रूरनिपीडित पापग्रहभोग्यनक्षत्रमित्यर्थः । उत्पातदूषितम् उल्कादित्रिविधोत्पातदूषितमित्यर्थः । एतत्सर्वं नक्षत्रं सर्वकर्मण्यशुभमित्यर्थः । इति ॥

(५) पुन्नामगणमाह । हस्त इति । पुंसंज्ञिते पुंसवनादौ तु कार्य्ये इत्यर्थः ॥

(६) राशिनक्षत्रविभागमाह । अश्विनीति । अश्विन्यादिश्लेषान्त मघादिज्येष्ठान्त मूलादिरेवत्यन्त यथासंख्य मेषादयश्चत्वारः सिंहादयश्चत्वारो धनुरादयश्चत्वारो राशयः स्युः । तेन मेषादयः सिंहादयो हयादयश्चत्वारो राशयः विषमनक्षत्रादारभ्य पादैकवृद्ध्या निवर्तन्ते । एतदुक्तं भवति प्रथमराशिर्मेषः तृतीयकृत्तिकानक्षत्रस्यैकपादात् द्वितीयराशिर्वृषः पञ्चममृगशिरोनक्षत्रस्य पादद्वयात्, तृतीयराशिर्मिथुनः सप्तमपुनर्वसुनक्षत्रस्य पादत्रयात् चतुर्थराशिः कर्कट नवमाश्लेषानक्षत्रस्य पादचतुष्टयात् । एवं सिंहादयो हयादयश्च मघादितो मूलादितश्च ज्ञेयाः । [illegible] त्यस्य सम्बन्धं प्रकाशति ॥

मृगशिरोऽर्द्धश्चार्द्रा पुनर्वसोस्त्रिपादं मिथुनः ।
पादः पुनर्वसोरम्भः पुष्याश्लेषा च कर्कटः ॥ १२० ॥
सिंहोऽथ मघापूर्वाफाल्गुनीपाद उत्तरायाः ।
तच्छेषं हस्तचित्रार्द्धश्च कन्याख्या ॥ १२१ ॥
तौलिनि चित्रार्द्धश्चस्वातिविशाखायाः पादत्रयम् ।
अलिनि विशाखापादस्तथानुराधान्विता ज्येष्ठा ॥ १२२ ॥
मूलं पूर्वाषाढा प्रथमश्चाप्युत्तरांशको धन्वी ।
मकरस्तत्परिशेषं श्रवणार्द्धं धनिष्ठायाः ॥ १२३ ॥
धनिष्ठार्द्ध शतभिषा पूर्वभाद्रपदत्रयं कुम्भः ।
भाद्रपदा शेषस्तथोत्तरारेवती मीनः ॥ १२४ ॥

अर्थ–अश्विनीप्रभृति सत्ताईस नक्षत्रोंके द्वारा द्वादश राशिका विभाग स्पष्टरूपसे कीर्त्तन करतेहै यथा–अश्विनी, भरणी और कृत्तिकाके प्रथमपादतक मेष राशि होतीहै इसीप्रकार कृत्तिकाके शेष तीनपाद, रोहिणी और मृगशिरके प्रथमार्द्धतक वृषराशि, मृगशिरका शेषार्द्ध आर्द्रा और पुनर्वसुके तीन पादतक मिथुन राशि पुनर्वसुका शेष पाद, पुष्य और आश्लेषा नक्षत्रतक कर्क राशि। मघा पूर्वाफाल्गुनी और उत्तराफाल्गुनीके प्रथमपादतक सिहराशि, उत्तराफाल्गुनीके शेष तीन पाद हस्त और चित्राके पूर्वार्द्धतक कन्या राशि। चित्राका उत्तरार्द्ध,स्वाति और विशाखाके तीन पादतक तुला राशी विशाखाका शेष पाद, अनुराधा और ज्येष्ठा नक्षत्रतक वृश्चिकराशि। मूल, पूर्वापाढा और उत्तराषाढाके प्रथमपादतक धनराशि। उत्तराषाढाके शेष तीन पाद, श्रवण और धनिष्ठाके दो पादतक मकरराशि। धनिष्ठाका शेषार्द्ध, शतभिषा और पूर्वभाद्रपदके तीनपादतक कुम्भराशि। पूर्वाभाद्रपदका शेष पाद, उत्तराभाद्रपद और रेवतीनक्षत्रतक मीन राशि होतीहै ॥ ११९ ॥ १२० ॥ १२१ ॥ १२२ ॥ १२३ ॥ १२४ ॥

अथ तिथिनिरूपणम् ।

अर्काद्विनिःसृतः प्राचीं यद्यात्यहरहः शशी ।
भागैर्द्वादशभिस्तत्स्यात्तिथिश्चान्द्रमसं दिनम् ॥ १२५ ॥

इति सूर्य्यसिद्धान्तः ॥

अर्थ–अब तिथिनिरूपण करतेहैं सूर्य्यमण्डलसे विनिर्गत होकर पूर्व दिशामें चन्द्रके द्वादशभागगमनका नाम तिथि वा चान्द्रदिन है ॥ १२५ ॥

त्रिंशांशकस्तथा राशेर्भाग इत्यभिधीयते ।
आदित्याद्विप्रकृष्टस्तु भागं द्वादशकं यदा ।
चन्द्रमाः स्यात्तदा राम तिथिरित्यभिधीयते ॥ १२६ ॥

इति विष्णुधर्मोत्तरे ।

अर्थ—राशिको त्रिंशांश करनेसे उसके एक२अंशका नाम भाग है चन्द्र सूर्य्यमण्डलसे विनिर्गत होकर इसीप्रकार द्वादशभाग गमन करनेसे उसका नाम एक तिथि होताहै ॥ १२६ ॥

तत्र पक्षावुभौ मासे शुक्लकृष्णौ क्रमेण हि ।
चन्द्रवृद्धिकरः शुक्लः कृष्णश्चन्द्रक्षयात्मकः ॥ १२७॥

इति षट्त्रिंशन्मतम् ।

अर्थ—चान्द्रके तीस तिथियोंका एक चान्द्रमास होताहै, उस चान्द्रमासके मध्यमे शुक्ल और कृष्णनामक दो पक्ष होतेहै । शुक्लपक्षमें चन्द्रकी कला क्रमानुसार बढतीहै और कृष्णपक्षमें चन्द्रकी कला क्रमसे घटतीहै ॥१२७ ॥

पक्षत्याद्यास्तु तिथयः क्रमात्पञ्चदश स्मृताः ।
दर्शान्ताः कृष्णपक्षे ताः पूर्णिमान्ताश्च शुक्लके ॥ १२८ ॥

अर्थ—प्रतिपदासे आदि लेकर अमावस्यातक १५ पन्द्रह तिथि कृष्णपक्षमे और इसीप्रकार प्रतिपदासे पूर्णमासीतक पन्द्रह तिथि शुक्लपक्षमें होतीहै ॥ १२८ ॥

अथ तिथिसंज्ञाकथनम् ।

प्रतिपद्द्वितीया तृतीया चतुर्थी पञ्चमी षष्ठी सप्तम्यष्टमी नवमी दशम्येकादशी द्वादशी त्रयोदशी चतुर्दशी पूर्णिमामावस्या इति तिथयः ॥ १२९ ॥ (७)

अर्थ—अब तिथियोंके नाम कहतेहै । यथा—प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी, सप्तमी, अष्टमी, नवमी, दशमी, एकादशी, द्वादशी, त्रयोदशी, चतुर्दशी और पूर्णिमा यह पन्द्रह तिथि शुक्लपक्षमे और प्रतिपदासे अमावस्यातक पन्द्रह तिथि कृष्णपक्षमे होतीहै ॥ १२९ ॥

अथ तिथीनां विशेषसंज्ञाकथनम् ।

नन्दा भद्रा जया रिक्ता पूर्णाः प्रतिपदः क्रमात् ॥ १३० ॥

---

(७) अथ तिथ्यधिदेवतामाह—"अग्नि [illegible] गौरी [illegible] । [illegible] विश्वे हरि कामो हरः शशी । [illegible] प्रतिपदादीनां तिथीनामधिपाः क्रमात् ॥ [illegible] इति ॥

अर्थ-प्रतिपदादितिथिके क्रमानुसार नन्दा, भद्रा, जया, रिक्ता और पूर्णा यह पांच प्रकारके नाम हैं ॥ १२० ॥

अन्यच्च।

प्रतिपदेकादशी षष्ठी नन्दा ज्ञेया मनीषिभिः ।
द्वितीया द्वादशी चैव भद्रा प्रोक्ता च सप्तमी ॥ १३१ ॥
त्रयोदश्यष्टमी चैव तृतीया च तथा जया।
चतुर्थी नवमी चैव रिक्ता चतुर्दशी तथा ॥ १३२ ॥
पञ्चमी दशमी चैव ह्यमावस्या च पूर्णिमा।
पूर्णेति तिथयो ज्ञेयाः सर्वदा च मनीषिभिः ॥ १३३ ॥ (८)

अर्थ-प्रतिपदादि तिथियोकी नन्दादिसंज्ञा विस्तारसहित वर्णन करतेहैं। प्रतिपदा, एकादशी और षष्ठी तिथिकी नन्दासंज्ञाहै। इसीप्रकार द्वितीया द्वादशी और सप्तमीकी भद्रासंज्ञा है। त्रयोदशी, अष्टमी और तृतीयाकी जयासंज्ञा है। चतुर्थी, नवमी और चतुर्दशीकी रिक्तासंज्ञा है, और पञ्चमी अमावस्या और पूर्णिमाकी पूर्णासंज्ञा है१३१॥ ॥ १३२ ॥ १३३ ॥

अथ नित्ययोगकथनम्।

विष्कम्भः प्रीतिरायुष्मान्सौभाग्यः शोभनस्तथा।
अतिगण्डः सुकर्म्मा च धृतिः शूलस्तथैव च ॥ १३४ ॥
गण्डो वृद्धिर्ध्रुवश्चैव व्याघातो हर्षणस्तथा ।
वज्रसिद्धिर्व्यतीपातो वरीयान्परिघः शिवः ।
साध्यः सिद्धःशुभः शुक्लो ब्रह्मेन्द्रौ वैधृतिस्तथा ॥१३५॥ (९)

अर्थ-विष्कम्भ, प्रीति, आयुष्मान्, सौभाग्य, शोभन, अतिगण्ड, सुकर्मा, धृति, शूल, गण्ड, वृद्धि, ध्रुव, व्याघात, हर्षण, वज्र, सिद्धि, व्यतीपात, वरीयान्, परिघ, शिव, साध्य, सिद्ध, शुभ, शुक्ल, ब्रह्म, इन्द्र और वैधृति इन सत्ताईसको नित्ययोग कहतेहैं ॥ १३४ ॥ १३५ ॥

(८) अथ तिथिविशेष कर्म्मविशेषादि । "नन्दासु चित्रोत्सववास्तुयज्ञक्षेत्रादि कुर्वीत तथैव नित्यम्। विवाहभूषाशकटाध्वयान भद्रासु कार्य्याण्यपि पौष्टिकानि। जयासु संग्रामबलोपयोगी कार्य्याणि सिध्यन्ति हि निर्मितानि । रिक्तासु विद्विड्वधबन्धनादि विषाग्निशस्त्रादि च याति सिद्धिम् । पूर्णासु माङ्गल्यविवाहयात्रासपौष्टिकं शान्तिककर्म्म कार्य्यम्। सदैव दर्शे पितृकर्म मुक्त्वा नान्यद्विदध्यात् शुभमङ्गलादि" । इति ज्योतिःसारे ।

(९) नित्ययोगानाह । विष्कम्भेति । सुगममिति ।

अथ योगानां त्याज्यकालकथनम ।

परिघस्य त्यजेदर्द्धं शुभकर्म्म ततः परम् ।
त्यजादौ पञ्च विष्कम्भे सप्त शूले च नाडिकाः ॥ १३६ ॥
गण्डव्याघातयोः षट्कं नव हर्षणवज्रयोः ।
वैधृतिं च व्यतीपातं समस्तौ परिवर्ज्जयेत् ।
शेषा यथार्थनामानः शुभकार्य्येषु शोभनाः ॥ १३७ ॥ (१०)

अर्थ–अब विष्कम्भादियोगका त्याज्यकाल कहतहै । यथा–परिघ योगका अर्द्ध परित्यागकरके शुभ कर्म करै । इसीप्रकार विष्कम्भयोगके प्रथम पांच दण्ड, शूलयोगके प्रथम सात दण्ड, गण्ड और व्याघातयोगके छः दण्ड, हर्षण और वज्र योगके नौ दण्ड, और वैधृति और व्यतीपात योगके समस्त परित्याग करके शुभ कार्य्य करना चाहिये । उक्त समस्त योग भिन्न जो योग है उनमे शुभकर्मका अनुष्ठान करनेसे शुभ फल प्राप्तहोताहै ॥ १३६ ॥ १३७ ॥

अन्यच्च ।

विरुद्धसंज्ञा इह ये च योगास्तेषामनिष्टः खलु पाद आद्यः ।
सवैधृतिस्तु व्यतिपातनामा समस्त[illegible]
[illegible] (अयुग्म) नक्षत्रके [illegible]ः परिघस्य चार्द्धम् ॥ १२८ ॥
सिंहादि और [illegible]
तिस्रस्तु योगे प्रथमे सवज्रे व्याघातसंज्ञे नवपञ्च शूले ।
गण्डेऽतिगण्डे च षडेव नाड्यः शुभेषु कार्य्येषु विवर्ज्जनीयाः ॥ १२९ ॥

अर्थ–वचनान्तरमे योगका त्याज्यकाल इस प्रकारसे कहाहै । यथा-विरुद्ध जो समस्त योग है उनके आद्यपाद दूषणीय होतेहै, वैधृति और व्यतीपात योग समस्त दूषित हैं, परिघ योगका अर्द्ध दूषित होताहै । किन्तु विष्कम्भ योगके प्रथम तीन दण्ड, वज्र और व्याघात योगके नौ दण्ड. शूल योगके पाच दण्ड. गण्ड और अतिगण्ड योगके छः दण्ड परित्याग करके शुभ कर्मका अनुष्ठान करना चाहिये ॥ १२८ ॥ १२९ ॥

अपरञ्च ।

विष्कम्भे घटिकास्तिस्रः शूले पञ्च तथैव च ।
गण्डातिगण्डयोः सप्त नव व्याघातवज्रयोः ॥ १३० ॥

ओर अतिगण्डके सात दण्ड. व्याघात और वज्रयोगके नौ दण्ड परित्याग करके शुभकर्मको करै ॥ १४० ॥

प्रकारान्तरञ्च ।

दण्डमेकं त्यजेत्साध्ये व्याघाते घटिकाद्वयम् ।
सप्तशूले षट् च वज्रे नव गण्डातिगण्डयोः ॥ १४१ ॥
वैधृतौ परिघे चार्द्धं विष्कम्भे घटिकाद्वयम् ।
व्यतीपाते च निःशेषं दण्डात्मकञ्च हर्षणे ॥ १४२ ॥

इति कृत्यचिन्तामणौ ।

अर्थ–कृत्याचिन्तामाणि ग्रंथमे लिखाहै कि, शुभकर्ममे साध्य योगका एक दण्ड, व्याघातयोगके दो दण्ड, शूलयोगके सात दण्ड, वज्रयोगके छः दण्ड, गण्ड और अतिगण्ड योगके नौ दण्डोंको परित्याग करै । इसीप्रकार वैधृतियोगका अर्द्धभाग, विष्कम्भके दो दण्ड. व्यतीपातके समस्त और हर्षणयोगका एक दण्ड परित्याग करकें शुभकर्म करै ॥ १४१ ॥ १४२ ॥

सर्वेषु देशेष्वविशेषतोऽमी
[illegible] ॥ १८९ ॥
विष्कम्भकाद्या मुनिभिस्तु योगाः ।
वारर्क्षयोगास्तिथिवारयोगा
वङ्गेषु योज्या न तु तेऽन्यदेशे ॥ १४३ ॥ (क)

अर्थ–विष्कम्भादि सत्ताईस नित्य योगोका शुभाशुभ फल सब देशोमेही समान होताहै, किन्तु वक्ष्यमाण अमृत और पाप योगादि, वार नक्षत्रनिमित्तक योग सिद्धियोग और दग्धादि और तिथिवारनिमित्तक योगोका शुभाशुभ फल वङ्गदेशमेही होताहै । और देशोमे इन समस्त योगोका व्यवहार और फल नही देखाजाताहै. मुनिगणकाभी इसीप्रकार मत है ॥ १४३ ॥

अथ करणकथनम् ।

ववबालवकौलवतैतिलगरवणिजाविष्टयः सप्त ।
शकुनिचतुष्पदनागाकिंस्तुघ्नानि ध्रुवाणि करणानि ॥ १४४ ॥

अर्थ–बव. बालव. कौलव. तैतिल, गर. वणिज. विष्टि. शकुनि, चतुष्पाद. नाग और किंस्तुघ्न यही ग्यारह करण है ॥ १४४ ॥

(क) सर्वदा शुभाशुभयोगानां देशविशेष एव फलमाहान्नेष्विति । वारर्क्षयोगा वक्ष्यमाणा अमृतपापाद्य तिथिवारयोगा सिद्धिदग्धाद्य वङ्गेषु योज्याश्चान्यदेशे गुणदोषा न सन्तीत्यर्थः ।

अथ साधिपववादिकथनम् ।

ववबालवकौलवतैतिलगरवाणिजविष्टिसंज्ञानाम् ।
पतयः स्युरिन्द्रकमलजामित्रार्य्यमभूश्रियः सयमाः ॥ १४५ ॥(×)

अर्थ–अब साधिप करण कहते है । बव, बालव, कौलव, तैतिल, गर, वणिज, और विष्टि इन सात करणोके क्रमानुसार इन्द्र, ब्रह्मा, मित्र. अर्य्यमा. पृथ्वी, लक्ष्मी और यमको स्वामी जानो ॥ १४५ ॥

अथ साधिपशकुन्यादिकथनम् ।

कृष्णचतुर्द्दश्यन्तार्द्धाद्ध्रुवाणि शकुनिचतुष्पदनागाः ।
किंस्तुघ्नमथ च तेषां कलिवृषफणिमारुताः पतयः ॥ १४६ ॥ (१)

अर्थ–अब शकुन्यादि करणचतुष्टय कहते है । कृष्णाचतुर्द्दशीके शेषार्द्धसे आरम्भ होकर शुक्लप्रतिपदाके पूर्वार्द्धपर्य्यन्त तिथ्यर्द्धभोगक्रमसे शकुनि चतुष्पद, नाग, और किंस्तुघ्न यह चार करण होतेहैं इनको ध्रुव (निश्चल) कहतेहैं, उक्त चारो करणोके स्वामी कलि, वृष. फणी और मारुतको यथासंख्यक क्रमसे जानो ॥ १४६ ॥

शुक्लादितिथिशेषार्द्धे पञ्चमे [illegible]तुर्यके ।
आद्यान्तर्द्धात्क्रमेण स्युरष्टावृत्त्या ववादयः ॥ १४७ ॥

अर्थ–किस तिथिमे कौन करण होताहै अब उसको वर्णन करतेहै । शुक्लप्रतिपदाके शेषार्द्धमे. शुक्लपञ्चमीके पूर्वार्द्धमें, शुक्लाष्टमीके शेषार्द्धमे, शुक्लाद्वादशीके पूर्वार्द्धमे. पूर्णिमाके शेषार्द्धमें, कृष्णाचतुर्थीके पूर्वार्द्धमें, कृष्णासप्तमीके शेषार्द्धमे और कृष्णा एकादशीके पूर्वार्द्धमें ववकरण होताहै । शुक्लाद्वितीयाके पूर्वार्द्धमे, शुक्लापञ्चमीके शेषार्द्धमे. शुक्ला नवमीके पूर्वार्द्धमे, शुक्ला द्वादशीके शेषार्द्धमें. कृष्णा प्रतिपदाके पूर्वार्द्धमे. कृष्णा चतुर्थीके शेषार्द्धमे, कृष्णाष्टमीके पूर्वार्द्धमे और कृष्णा एकादशीके शेषार्द्धमे बालव करण होताहै शुक्ला द्वितीयाके शेषार्द्धमे, शुक्ला षष्ठीके पूर्वार्द्धमे. शुक्ला नवमीके शेषार्द्धमे शुक्ला त्रयोदशीके पूर्वार्द्धमे. कृष्णा प्रतिपदाके शेषार्द्धमे, कृष्णापञ्चमीके पूर्वार्द्धमे कृष्णा-षष्ठीके शेषार्द्धमे. और कृष्णाद्वादशीके पूर्वार्द्धमे कौलवकरण होताहै । शुक्लातृतीयाके पूर्वार्द्धमे, शुक्ला षष्ठीके शेषार्द्धमे. शुक्ला दशमीके पूर्वार्द्धमे. शुक्ला त्रयोदशीके शेषार्द्धमे [illegible]कृष्णाद्वितीयाके पूर्वार्द्धमे. कृष्णापञ्चमीके शेषार्द्धमे. कृष्णानवमीके पूर्वार्द्धमे और कृष्णा

द्वादशीके शेषार्द्धमे तैतिलकरण होताहै । शुक्ला तृतीयाके शेषार्द्धमे, शुक्ला सप्तमीके पूर्वार्द्धमे, शुक्ला दशमीके शेषार्द्धमे, शुक्ला चतुर्दशीके पूर्वार्द्धमे, कृष्णा द्वितीयाके शेषार्द्ध मे. कृष्णा षष्ठीके पूर्वार्द्धमें, कृष्णानवमीके शेषार्द्धमें और कृष्णा त्रयोदशीके पूर्वार्द्धमें गरकरण होताहै । शुक्ला चतुर्थीके पूर्वार्द्धमें, शुक्ला सप्तमीके शेषार्द्धमें, शुक्ला एकादशीके पूर्वार्द्धमें. शुक्ला चतुर्दशीके शेषार्द्धमे. कृष्णा तृतीयाके पूर्वार्द्धमे, कृष्णा षष्ठीके शेषार्द्धमें कृष्णा दशमीके पूर्वार्द्धमे और कृष्णा त्रयोदशीके शेषार्द्धमे वणिज करण होताहै । शुक्ला चतुर्थीके शेषार्द्धमें. शुक्लाअष्टमीके पूर्वार्द्धमे, शुक्ला एकादशीके शेषार्द्धमे पूर्णिमाके पूर्वार्द्धमे कृष्णा तृतीयाके शेषार्द्धमे, कृष्णा सप्तमीके पूर्वार्द्धमे, कृष्णा दशमीके शेषार्द्धमें और कृष्णा चतुर्दशीके पूर्वार्द्धमे विष्टि करण होताहै ॥ १४७ ॥

कृष्णपक्षे चतुर्दश्याः शेषार्द्धे शकुनिर्भवेत् ।
चतुष्पादश्च पूर्वार्द्धे नागः शेषार्द्धसंस्थितः ।
शुक्लप्रतिपदाद्यर्द्धे किंस्तुघ्नः शेषतो बवः ॥ १४८ ॥

अर्थ—कृष्णाचतुर्दशीके शेषार्द्धमें शकुनि करण होताहै, अमावास्याके पूर्वार्द्धमें चतुष्पादकरण, [illegible] शुक्लप्रतिपदाके पूर्वार्द्धमें किस्तुघ्न करण और शेषार्द्धमे बवकरण होताहै । शकुनि, चतुष्पाद , नाग और किस्तुघ्न करणका अङ्क व्यवहारमे नही आता; शकुनि का "श" चतुष्पादका "च" नागका "ना" किस्तुघ्नका "कि" अङ्कके परिवर्त्तनमे लिखा जाताहै ॥ १४८ ॥

इति करणनिरूपणम् ।

अथ विष्टिभद्राकथनम् ।

तृतीयादशमीशेषे तत्पञ्चम्योस्तु पूर्वतः ।
कृष्णे विष्टिः सिते तद्वत्तासां परतिथिष्वपि ॥ १४९ ॥

अर्थ—विष्टि भद्रा (विष्टिकरण) विशेषप्रकारसे वर्णन कहते है । कृष्णपक्षमें तृतीया और दशमीके शेषार्द्धमे विष्टिकरण होताहै इसप्रकार उक्त दोनो तिथियोंके पञ्चम कृष्णा सप्तमी और कृष्णा चतुर्दशी तिथिके पूर्वार्द्धमें विष्टिकरण होताहै । शुक्ल पक्षमें तृतीया और दशमीके परातिथि चतुर्थी और एकादशीके परार्द्धमें और अष्टमी और पौर्णमासीके पूर्वार्द्धमे विष्टिभद्रा होताहै ॥ १४९ ॥

(न) सुखबोधार्थं विष्टिनिर्णयमाह—तृतीयेति । कृष्णपक्षे तृतीयादशम्योः शेषार्द्धे विष्टिः स्यात्तत्पञ्चम्योः तृतीयादशम्योः पञ्चमतिथ्योः सप्तमीचतुर्दश्योः पूर्वार्द्धे विष्टिरित्यर्थः । सिते शुक्लपक्षे तासां तृतीयादीनां परतिथिषु चतुर्थ्येकादश्योस्तद्वच्छेषार्द्धे अष्टमीपौर्णमास्योः तद्वत्पूर्वार्द्धे विष्टिरित्यर्थः ।

अन्यच्च ।

एकादश्याश्चतुर्थ्याश्च शेषार्द्धे शुक्लपक्षके ।
अष्टमीपौर्णमास्योस्तु पूर्वार्द्धे विष्टिसम्भवः ॥ १५० ॥

अर्थ—शुक्लपक्षमें एकादशी और चतुर्थीके शेषार्द्धमे और—अष्टमी और पूर्णिमाके पूर्वार्द्धमें विष्टि भद्रा होतीहैं ॥ १५० ॥

कृष्णपक्षे तृतीयाया दशम्यास्तु परार्द्धतः ।
सप्तम्याश्च चतुर्दश्याः पूर्वार्द्धे विष्टिरीरिता ॥ १५१ ॥

अर्थ—कृष्णपक्षमे तृतीया और दशमीके शेषार्द्धमें और सप्तमी और चतुर्दशीके पूर्वार्द्धमे विष्टि भद्रा होती हैं ॥ १५१ ॥

अपरञ्च ।

कृष्णे तृतीयादशमीपरार्द्धे पूर्वार्द्धभागे मुनिभूततिथ्योः ।
सिते चतुर्थीशिवयोः परस्तात्पूर्वेऽष्टमीपूर्णिमयोश्च विष्टिः ॥ १५२ ॥

अर्थ—और तन्त्रहनामके ग्रन्थमें लिखा है कि, कृष्णपक्षमे तृतीया और दशमीतिथिके परार्द्धमे, सप्तमी और चतुर्दशीतिथिके पूर्वार्द्धमें विष्टिभद्रा होती है, और शुक्लपक्षमे चतुर्थी और एकादशीतिथिके परार्द्धमें अष्टमी और पूर्णिमा तिथिके पूर्वार्द्धमे विष्टिभद्रा होतीहै १५२

प्रकारान्तरञ्च ।

तृतीयादशमीशेषे पूर्वे सप्त चतुर्दशी ।
पूर्वे पूर्णाष्टमी शुक्ले चतुर्थ्येकादशी परे ॥ १५३ ॥

इति सारसंग्रहे ।

अर्थ—प्रकारान्तरसे सारसंग्रह नामकग्रन्थमें लिखा है कि, तृतीया और दशमीके शेषार्द्धमें भद्रा होती हैं.शुक्लपक्षमे पूर्णिमा और अष्टमीके पूर्वार्द्धमे चतुर्थी और एकादशी-के परार्द्धमें भद्रा होती है ॥ १५३ ॥

अथ विष्टिभद्रोत्पत्तिः ।

दैत्येन्द्रैः सशरेऽमरेषु विजितेष्वीशः क्रुधा दृष्टवां-
स्तत्कायात्किल निर्गता खरमुखी लांगूलिनी च त्रिपात् ॥
विष्टिः सप्तभुजा मृगेन्द्रगलका स्थूलोदरी प्रेतगा
दैत्यघ्नी मुदिता सुरैस्तु करणप्रान्ते नियुक्ता सदा ॥ १५४ ॥

अर्थ–अब विष्टिभद्राकी उत्पत्ति वर्णन करते है । पूर्व समय देवासुरसंग्राममे ज देवगण असुरोंसे पराजित होकर शिवके निकट आकर समस्त वृत्तान्त सुनाया दे महादेवजी अत्यन्त क्रोधयुक्त हुए उसीसमय महादेवजीके शरीरसे गर्दभके समा मुखवाली पुच्छधारिणी (पूँछको धारण किएहुए) त्रिपादविशिष्टा (तीन पाओंवाली सप्तभुजा (सात भुजाओंको धारणकिये) सिहके समान जिसका गलदेश है, स्थूलोदर (बडे पेटवाली) प्रेतके समान शरीरको धारणकिये विष्टि भद्रा नाम्नी एक मूर्त्ति निकलकर असुरगणको विनाशकरके देवताओंसे स्थानकी प्रार्थना करी, तो देवता- प्रसन्न होकर विष्टिभद्राको करणके प्रान्तभागमे सदाके लिए नियुक्त करदेतेहुए ॥१५॥

अथ विष्टिभद्राया अङ्गविभागः ।

नाड्यस्तु पञ्च वदनं गलकस्तथैका
वक्षो दशैकसहिता तियतं चतस्रः ॥
नाभिः कटिः षडथ पुच्छतलं च तिस्रो ..
विष्टे[illegible]
[illegible] भौमहृष्टे [illegible] अङ्गं समाग एषः ॥ १५५ ॥

अर्थ–अब विष्टिभद्राका अङ्गविभाग वर्णनकरते है । जिस २ तिथिके पूर्वा पराद्ध विष्टिसंज्ञामे कहेगयेहै उनको त्रिशांश करनेसे प्रथमके पांच अंशोंका विष्टिभ. मुख है. इसीप्रकार एकअंशका गलदेश (गला) है. ग्यारह अंशका वक्षःस्थान है. [illegible] नाभि है. छः अंशकी कटि है और तीन अंशकी पूँछ है । इन समस्त स्थानोक फलाफल नीचे लिखा है ॥ १५५ ॥

अथाङ्गविभागफलम् ।

मुखे कार्य्यध्वस्तिर्भवति मरणञ्चाथ गलके
धनग्लानिर्वक्षस्यथ कटितटे बुद्धिविलयः ॥
कलिर्नाभिदेशे विजयमथ पुच्छे च जगदुः
शरीरे भद्रायाः पृथगिति फलं सर्वमुनयः ॥ १५६ ॥

अर्थ–अब विष्टिभद्राके अङ्गविभागका फल कहा जाताहै । विष्टिभद्राके मुखमे अड्गुल- (प्रथम पांच दण्डके मध्यमे) कार्य्यकी हानि होतीहै, इसीप्रकार गलदेशमे मृत्यु. वक्षःस्थलमे [illegible] धनकी हानि. कटिदेशमे बुद्धिनाश. नाभिदेशमे कलह और पुच्छदेशमें (शेष तीन [illegible]) कार्य्य करनेसे विजय अर्थात् वह सिद्ध होताहै ॥ १५६ ॥

अथ भद्रास्थितिनिर्णयः ।

मेषोक्षकर्कमिथुने घटसिंहमीन-

कलुषैःपीड़ागर्भस्य पीडितैः पतनमन्यथा पुष्टिः ॥ ६६ ॥ (+ ॥

अर्थ–गर्भमासाधिपतिद्वारा गर्भका शुभाशुभ कहतेहैं । गर्भधारणसे प्रसवकालपर्य्यन्त दशमासके स्वामी क्रमानुसार शुक्र, मङ्गल, बृहस्पति, रवि, चन्द्र, शनि, बुध, निषेककालकी लग्नके स्वामी चन्द्र और सूर्य्य कहतेहैं, अर्थात् प्रथममासका स्वामी शुक्र, द्वितीयमासका स्वामी मङ्गल, तीसरे मासका स्वामी बृहस्पति, चौथे मासका स्वामी सूर्य्य, पांचमें मासका स्वामी चन्द्र, छठे मासका स्वामी शनि, सातवें मासका स्वामी बुध, आठमें मासका स्वामी निषेकलग्नाधिपति, नवमें मासका स्वामी चन्द्र और दशमें महीनेका स्वामी सूर्य्यग्रह होताहै. उक्त समस्त मासके स्वामी ग्रहोंके मध्यमें कोई ग्रह पापयुक्त होय तो सौम्यमासमे गर्भकी पीडा होतीहै, और यदि कोई ग्रह अस्तादि त्रिविधोत्पात वा उपरागादिद्वारा पीडित होय–तब उसी मासमे गर्भपात होजानेकीः आशङ्का होतीहै और यदि कोई ग्रह शुभग्रह युक्त हो वा किसी ग्रहपः शुभग्रहकी दृष्टि होय तो गर्भ पुष्ट होकर शुभ होताहै ॥ ६६ ॥

प्रशस्ताप्रशस्तनक्षत्रकथनम् ।

पुंनक्षत्राणिचैतानितिष्योहस्तःपुनर्वसुः ।
अभिजित्प्राष्टपाच्चैवानुराधापाढश्चाश्वयुक् ॥ ६७ ॥

इति वशिष्ट. ।

अर्थ–वशिष्ठने कहाहै कि; पुष्य, हस्त,पुनर्वसु, अभिजित्, अनुराधा; पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा और अश्विनी इनको पुंनक्षत्र कहतेहैं ॥ ६७ ॥

अपिच–

हस्तो मूलं श्रवणः पुनर्वसुमृगशिरस्तथा पुष्यश्च ।
गर्भाधानादिकार्य्येषु पुंन्नामायं गुणः शुभदः ॥ ६८ ॥

इति ग्रन्थान्तरे।

अर्थ–ग्रन्थान्तरमें लिखाहै कि, हस्त, मूल, श्रवण, पुनर्वसु, मृगशिर और पुष्य इन पुंसंज्ञक नक्षत्रोंमें गर्भाधानादिकार्य्य करनेसे शुभफल प्राप्त होताहै ॥ ६८ ॥

अन्यच्च ।

ज्येष्ठामूलमघाश्लेषारेवतीकृत्तिकाश्विनीः ॥
उत्तरात्रितयं त्यक्त्वा पर्ववर्ज्यं व्रजेदृतौ ॥ ६९ ॥

इति ज्योतिस्तत्वे ।

अर्थ-ज्योतिषतत्त्वमे लिखाहै कि, ज्येष्ठा, मूल, मघा, आश्लेषा, रेवती, कृत्तिका, अश्विनी, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, और उत्तराभाद्रपदा नक्षत्र और पर्व त्यागकरके ऋतुकालमे स्त्रीके साथ सहवास करना चाहिये ॥ ६९ ॥

अपरंच ।

पुष्यार्कचन्द्राशिवमूलपुनर्वसुःस्या-
दाषाढयुग्महरिभाद्रपदद्वयञ्च ॥
एतानिपुंसिकथितानिशुभानिभानि
चान्येषुगर्भपतनादिभयञ्चभेषु ॥ ७० ॥

इति ज्योतिस्तत्वे ।

अर्थ-पुष्य, हस्त, मृगशिर, आर्द्रा, मूल, पुनर्वसु, पूर्वाषाढ़ा, उत्तराषाढा, श्रवण, पूर्वाभाद्रपदा और उत्तराभाद्रपदा इन सब पुंसज्ञक नक्षत्रोंमें गर्भाधान शुभदायक होताहै। उक्त नक्षत्राने शिवाय अन्य समस्त नक्षत्रोमें गर्भाधान होनेसे वह गर्भ पतन होजाताहै ॥ ७० ॥

प्रकारान्तरञ्च ।

मूलर्क्षंस्मृतिदुष्टत्वाद्गर्भाधानेषुनेष्यते ।
तस्य पुंसवनादौ तु पुंसंज्ञत्वे प्रयोजनम् ॥ ७१ ॥

इति ज्योतिस्तत्वे ।

अर्थ-मूलनक्षत्र स्मृतिके विरुद्ध होनेसे गर्भाधानमें प्रशन्त नही है किन्तु पुंसव-नादिकार्य्यमे मङ्गलदायक पुंनक्षत्रोके मध्यमे कहाहै ॥ ७१ ॥

अथ प्रशस्ताप्रशस्ततिथ्यादिकथनम् ।

नन्दा भद्रा भवेत्पुंसि स्त्रीषु पूर्णा जया स्मृता ।
रिक्ता नपुंसके त्वाहुस्तस्मात्तां परिवर्जयेत् ॥ ७२ ॥

इति ज्योतिस्तत्वे ।

भाषार्थ-नन्दा और भद्रा तिथि पुरुषकर्ममें प्रशस्त है. पूर्णा और जया तिथि स्त्रीकर्ममें

प्रशस्त हैं, रिक्ता तिथि नपुंसक है अतएव उसको समस्त कर्ममें परित्याग करना चाहिये ॥ ७२ ॥

पापासंयुतमध्यगेषु दिनकृल्लग्नक्षयास्वामिषु
तद्द्यूनेष्वशुभोज्झितेषु विकुजेच्छिद्रे विपापे सुखे ॥
सद्युक्तेषु त्रिकोणकण्टकविधुष्वायत्रिषष्टान्विते
पापे युग्मनिशास्वगण्डसमये पुंशुद्धितः (१)सङ्गमः॥७३॥(२)

अर्थ—यदि सूर्य्य, लग्न और चन्द्र पापग्रहयुक्त न हों, पापग्रहके मध्यमें स्थित न होय, सूर्य्य, लग्न और चन्द्रके सातमें स्थानमें पापग्रहका वासस्थान न होय. आठमे मङ्गल अथवा चौथे पापग्रहसे युक्त न होय, और राशि, लग्न और लग्नके पांचमें, नवमें, चौथे, सातमें, और दशमें स्थानमें शुभग्रह होय और लग्नके ग्यारहमें. तीसरे और छठे स्थानमें पापग्रह स्थित होय तो युग्मरात्रियोमे गण्डनक्षत्र त्याग करके पुरुष चन्द्रशुद्धि होनेसे गर्भाधानकरै ॥ ७३ ॥

---

(१) "कन्यानक्षत्रशुद्धौ स्याद्विवाहः शुभकृन्नृणाम् । पश्चाद्भर्तुर्विशुद्ध्या तु यात्रापुण्योत्सवादयः ॥" इति ज्योतिस्तत्वे । "विवाहकार्य्यं कुसुमप्रतिष्ठा गर्भप्रतिष्ठा वनिताविशुद्धौ । अन्यानि कार्य्याणि धवस्य शुद्धौ पत्यौ विहीने प्रमदात्मशुद्ध्या ॥" इति ग्रन्थान्तरे [illegible]वचनमस्ति ।

(२) निषेकमाह—पापेति । रविलग्नचन्द्रेषु पापायुक्तेषु तद्द्यूनेषु तेषां रविलग्नचन्द्राणां सप्तमेषु पापवर्जितेषु लग्नस्य छिद्रेऽष्टमस्थाने विकुजे कुजरहिते सति लग्नस्य सुखे चतुर्थे पापरहिते सति सौभरिस्तु तेषां छिद्रे विकुज इति तत्र निष्पापिद्वितीयादिशुद्धौ लग्नस्यैव द्वितीयादि[illegible] नान्यस्येति । तथाच सारावल्याम् "होराष्टमे क्षितिसुते म्रियते गर्भः सहजनन्येति" ॥ सद्युक्तेति । लग्नस्य त्रिकोणे नवपञ्चमे केन्द्रे चन्द्रे च शुभग्रहयुक्त इत्यर्थः । अत्र च सौभरिणा [illegible] पाठं

अथ गण्डपादवर्जनम् ।

मूलमघाश्विनीनामाद्यं ज्येष्ठान्त्यसार्पाणाम् ।
अन्त्यं गण्डपदं त्यक्त्वा षोडशाहे ऋतौ व्रजेत् ॥ ७४ ॥

अर्थ—अब गण्डनक्षत्रको कहते है । मूल, मघा और अश्विनीके प्रथम चरणको और ज्येष्ठा, रेवती और आश्लेषाके चतुर्थचरणको गण्डनक्षत्र कहतेहैं । गण्डनक्षत्र त्यागकरके सोलह रात्रिओके मध्यमें गर्भाधान करै ॥ ७४ ॥

अशक्तौ तु भुजबलमाह ।

अन्त्यं पौष्णेन्द्रसर्पाणामाद्यं पित्रश्विमूलगम् ।
गण्डं दण्डत्रयं ख्यातं सर्वकार्य्येषु गर्हितम् ॥ ७५ ॥

इति भीमपराक्रमे ।

अर्थ—अशक्त विषयमे भुजबल कहतेहैं, भीमपराक्रममें लिखाहै कि, रेवती, ज्येष्ठा और आश्लेषाके अन्त्य (शेष) तीन दण्ड और मघा अश्विनी और मूलके आद्य (प्रथम) तीन दण्डको गण्डनक्षत्र कहतेहैं, इनको समस्त कार्य्यमेंही परित्याग करना चाहिये ॥ ७५ ॥

अथ फलबन्धनम् ।

रोहिण्यन्तकचित्राहिविशाखशतवर्जिते ।
भे पुंग्रहाहे स्त्रीशुद्ध्या फलबन्धनमिष्यते ॥ ७६ ॥ (१)

अर्थ—स्त्रियोंके प्रथम रजोदर्शन होनेसे ऋतुदानके बाद फलबन्धन करना, चाहिये अब उसका शुभ दिन वर्णन करते है । रोहिणी, भरणी, चित्रा, आश्लेषा, विशाखा और शतभिषा इन समस्त नक्षत्रोंको छोडके अन्य नक्षत्रोमें मङ्गल रवि और बृहस्पति वारमे स्त्रियोंके चन्द्रताराशुद्धि होनेसे प्रथम ऋतुस्नानके बाद फलबन्धन करै ॥ ७६ ॥

पुमान्विंशतिवर्षश्चेत्पूर्णषोडशवर्षया ।
स्त्रिया संगच्छते गर्भाशये शुद्धे रजस्यपि ॥
अपत्यं जायते भद्रं ततोन्यूनेऽधमं स्मृतम् ॥ ७७ ॥

---

(१) प्रथम ऋतौ रजसि चोपरते ऋतुस्नानानन्तरं फलबन्धनं क्रियते । तद्विधिमाह—रोहिणीति । रोहिण्यादिवर्जिते नक्षत्रे पुंग्रहस्याहनि वारे रविकुजगुरुवारे स्त्रीशुद्ध्या स्त्रीणां चन्द्रताराशुद्ध्या फलबन्धनमिष्यते । ऋतुस्नानात् चतुर्थदिने पुष्पादिभिः कार्यं यथा गर्गमार्तण्डे—"शुभश्री-[illegible]स्तनयोर्विते । [illegible] पुष्पैः निशाम्ये चाप्यात् ॥" इति ।

अर्थ–वीस वर्षका पुरुष यदि सोलह वर्षकी स्त्रीके साथ सम्भोग करे और स्त्रीके गर्भाशयमें वा शोणितमें कोई दोष न होय तो उत्तम सन्तान उत्पन्न होतीहै, इसके इतर विशेष होनेसे अधम सन्तान उत्पन्न होतीहै ॥ ७७ ॥

अथ षोडशवर्षीयागर्भिणीचिन्ता ।

प्रसूता षोडशे वर्षे तत्र याधृतगर्भिका ।
मृत्युस्तस्याः सपुत्रायाः पितुश्चापि च सम्मतः ॥ ७८ ॥

अर्थ–जो नारी सोलह वर्षकी आयुमे प्रसव करे वा गर्भधारण करे तो उसकी पुत्रके साथ मृत्यु होती है. और इस पुत्रके पिताकोभी मृत्यु होजाती है ॥ ७८ ॥

अथ पुंसवनम् ।

कुर्य्यात्पुंसवनं सुयोगकरणे नन्दे सभद्रे तिथौ
भाद्राषाढनृभेश्वरेषु नृदिने वेधं विनेन्दौ शुभे ॥
अक्षीणश्च त्रिकोणकण्टकगते सौम्येऽशुभे वृद्धिषु
स्त्रीशुद्धया घटयुग्मसूर्य्यगुरुभेपूर्वत्सु मासत्रये ॥ ७९ ॥ (×)

अर्थ–अब पुंसवन कहतेहैं । गर्भाधानके दिनसे गिनकर तीसरे मासमे, शुभयोगमे और शुभकरणमें, प्रतिपदा, एकादशी, षष्ठी, द्वितीया, द्वादशी और सप्तमी तिथिमें, पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, हस्त, मूल, श्रवण, पुनर्वसु, मृगशिर, पुष्य और आर्द्रा नक्षत्रमें; रवि, मङ्गल और बृहस्पतिवारमे, यामित्रवेध, युतिवेध और दशयोगभङ्ग न होनेसे शुभ चन्द्रमे, और पूर्ण चन्द्रमे,लग्नके त्रिकोण स्थानमें और केन्द्रस्थानमें शुभ ग्रह होवें और तीसरे, ग्यारहमें और छठे स्थानमें अशुभ ग्रह होनेसे स्त्रीके चन्द्रतारा शुद्धि होनेसे कुम्भ, मिथुन, सिंह, धन और मीन लग्नमें पुंसवन करना चाहिये ॥ ७९ ॥

अथ पञ्चामृतम् ।

रेवत्यश्विपुनर्वसुद्वयमरुन्मूलानुराधामघा ।
हस्ताद्युत्तरफल्गुभेषु च भृगौ जीवार्कवारे तथा ॥
लग्ने (१) चोभयशुद्धिगे सुनियतं संत्यज्य रिक्तां तिथिं
देयं मासि तु पञ्चमे शुभदिने (२) पञ्चामृतं योषिताम् ॥८०॥

अर्थ–अब पञ्चामृतका शुभ दिन कहतेहैं । रेवती, अश्विनी, पुनर्वसु, पुष्य, स्वाति, मूल, अनुराधा, मघा, हस्त और उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रमे, शुक्र, बृहस्पति और रविवारमे शुभलग्नमे स्त्री और पुरुषके चन्द्र तारा शुद्ध होनेसे रिक्ताभिन्न तिथिमें गर्भधारण करनेसे पांचमें मासके शुभ दिनमें स्त्रियोको पञ्चामृतपान करना चाहिये ८० ॥

अन्यच्च ।

पञ्चामृतं पञ्चममास एव अजद्वये चाम्बुनि पैत्रषट्के ॥
विरञ्चिपञ्चान्त्यचतुष्टयेषु शुक्रारसूर्य्येन्दुदिने शुभेन्दौ ॥८१॥(३)

अर्थ–वचनान्तरमे पञ्चामृतके विषयमे कहाहै कि, गर्भाधानके दिनसे पांचमें महीनेमे, शुक्र, मंगल, रवि और सोमवारमे, पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा, पूर्वाषाढा, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, रोहिणी, मृगशिर, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, रेवती, अश्विनी, भरणी और कृत्तिका नक्षत्रमें चन्द्रशुद्धि होनेसे स्त्रियोंको पञ्चामृन पिलाना चाहिये ॥ ८१ ॥

अथ धटी (चीरवस्त्र) दानम् । (*)

मघाष्टकेऽम्बुत्रितयेऽदितिद्वये पौष्णद्वये धातुयुगे गुरूदये ॥
मासे च षष्ठे च चतुष्टये स्त्रियां शुद्ध्या ज्ञमन्दाहर्बाहिर्धटी शुभा ८२(×)

(१) लग्नर्क्षोडुपशोभनेषु इति पाठान्तरम् ।

(२) सवरणं इति पाठान्तरम् ।

(३) पञ्चमे मासि गर्भदोहदार्थं पञ्चामृत दीयते तस्य विधिमाह–रेवत्यश्वीति । रेवत्यादिनक्षत्रेषु शुक्रगुररविवारे शुभे लग्ने दम्पत्यशुद्धिगे पुस्त्रीशुद्धिगे च रिक्ता तिथि त्यक्त्वा शुभदिने पञ्चममासे योषितां पञ्चामृत देयम् । याज्ञवल्क्य "दोहदस्याप्रदानेन गर्भो दोषमवाप्नुयात् । वैरूप्यं मरणं वापि तस्मात्कार्यं प्रियं स्त्रियाः ॥" पञ्चामृतमुक्तं यथा 'दुग्धं शर्करश्चैव घृतं दधि तथा मधु ।

अर्थ–वीस वर्षका पुरुष यदि सोलह वर्षकी स्त्रीके साथ सम्भोग करै और स्त्रीके गर्भाशयमे वा शोणितमें कोई दोष न होय तो उत्तम सन्तान उत्पन्न होतीहै, इसके इतर विशेष होनेसे अधम सन्तान उत्पन्न होतीहै ॥ ७७ ॥

अथ षोडशवर्षीयागर्भिणीचिन्ता ।

प्रसूता षोडशे वर्षे तत्र याधृतगर्भिका ।
मृत्युस्तस्याः सपुत्रायाः पितुश्चापि च सम्मतः ॥ ७८ ॥

अर्थ–जो नारी सोलह वर्षकी आयुमे प्रसव करै वा गर्भधारण करै तो उसकी पुत्रके साथ मृत्यु होती है. और इस पुत्रके पिताकोभी मृत्यु होजाती है ॥ ७८ ॥

अथ पुंसवनम् ।

कुर्य्यात्पुंसवनं सुयोगकरणे नन्दे सभद्रे तिथौ
भाद्राषाढनृभेश्वरेषु नृदिने वेधं विनेन्दौ शुभे ॥
अक्षीणश्च त्रिकोणकण्टकगते सौम्येऽशुभे वृद्धिषु
स्त्रीशुद्धया घटयुग्मसूर्य्यगुरुभेषूद्यत्सु मासत्रये ॥ ७९ ॥ (×)

अर्थ–अब पुंसवन कहतेहैं । गर्भाधानके दिनसे गिनकर तीसर मासमे, शुभयोगमे और शुभकरणमें, प्रतिपदा, एकादशी, षष्ठी, द्वितीया, द्वादशी और सप्तमी तिथिमे, पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, हस्त, मूल, श्रवण, पुनर्वसु, मृगशिर, पुष्य और आर्द्रा नक्षत्रमें; रवि, मङ्गळ और बृहस्पतिवारमे, यामित्रवेध, युतिवेध और दशयोगभङ्ग न होनेसे शुभ चन्द्रमें, और पूर्ण चन्द्रमे,लग्नके त्रिकोण स्था में और केन्द्रस्थानमें शुभ ग्रह होवै और तीसरे, ग्यारहमें और छठे स्थानमें अशुभ ग्र होनेसे स्त्रीके चन्द्रतारा शुद्धि होनेसे कुम्भ, मिथुन, सिंह, धन और मीन लग्नमें पुंसव करना चाहिये ॥ ७९ ॥

(×) पुंसवनमाह–कुर्य्यादिति । शोभनयोगे शोभनकरणे च नन्दाभद्रातिथौ तथा च "नन्दा भद्र भवेत्पुंसि स्त्रिया पूर्णा तथा जया । रिक्ता नपुंसकस्य स्यात्तस्मात्ता परिवर्जयेत् ॥ " भाद्रपदाद्व आषाढद्वये नृभे पुन्नामगणे हस्तमूलश्रवणपुनर्वसमृगशिरःपुष्येषु ईश्वरे आर्द्रायाश्च नृदिने पुग्रहवा रविकुजगुरुवारे अक्षीणे पूर्णे चन्द्रे वेधं यामित्रवेधं दशयोगभङ्गवेधश्च विना शुभे गोचरशुद्धे सति लग्नात् केन्द्रत्रिकोणस्थे शुभग्रहे पापग्रहे च वृद्धिगे उपचयस्थे स्त्रीशुद्धया स्त्रीणा चन्द्रताराशुद्धौ। तथा च ग्रन्थान्तरे "स्त्रीणा सर्वक्रियारम्भे भर्त्तुर्गोचरशुद्धित. । यात्रापुंसवनोद्वाहे विशु द्धियोंपित सदा ॥ " इति कुम्भमिथुनसिंहधनुर्मीनलग्नेषु मासत्रये पुंसवनं कुर्य्यात् । तृतीयमासेऽशक्तो षष्ठाष्ट मासेऽपि कार्य्यम् । तथाच" मासे षष्ठेऽष्टमे वापि शुद्धया चन्द्रमस. सदा।अरिक्तायां तिथौ शुद्धे गर्भ पुंसवनं हितम् ॥" एतत्प्रतिगर्भे कर्त्तव्यम् । यथा राजमार्त्तण्डे–"प्राप्ते तृतीयमासे स्फुटे रविन्दुलग्ने-

अथ पञ्चामृतम् ।

रेवत्यश्विपुनर्वसुद्वयमरुन्मूलानुराधामघा ।
हस्ताद्युत्तरफल्गुभेषु च भृगौ जीवार्कवारे तथा ॥
लग्ने (१) चोभयशुद्धिगे सुनियतं संत्यज्य रिक्तां तिथिं
देयं मासि तु पञ्चमे शुभदिने (२) पञ्चामृतं योषिताम् ॥८०॥

अर्थ—अब पञ्चामृतका शुभ दिन कहतेहैं । रेवती, अश्विनी, पुनर्वसु, पुष्य, स्वाति, मूल, अनुराधा, मघा, हस्त और उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रमे, शुक्र, बृहस्पति और रविवार-मे शुभलग्नमे स्त्री और पुरुषके चन्द्र तारा शुद्ध होनेसे रिक्ताभिन्न तिथिमें गर्भधारण करनेसे पांचमे मासके शुभ दिनमें स्त्रियोको पञ्चामृतपान करना चाहिये ८० ॥

अन्यच्च ।

पञ्चामृतं पञ्चममास एव अजद्वये चाम्बुनि पैत्रषट्के ॥
विरञ्चिपञ्चान्त्यचतुष्टयेषु शुक्रारसूर्य्येन्दुदिने शुभेन्दौ ॥८१॥(३)

अर्थ—वचनान्तरमे पञ्चामृतके विषयमे कहाहै कि, गर्भाधानके दिनसे पांचमें महीनेमे, शुक्र, मंगल, रवि और सोमवारमे, पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा, पूर्वाषाढा, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, रोहिणी, मृगशिर, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, रेवती, अश्विनी, भरणी और कृत्तिका नक्षत्रमें चन्द्रशुद्धि होनेसे स्त्रियोंको पञ्चामृत पिलाना चाहिये ॥ ८१ ॥

अथ धटी (चीरवस्त्र) दानम् । (*)

मघाष्टकेऽम्बुत्रितयेऽदितिद्वये पौष्णद्वये धातुयुगे गुरूदये ॥
मासे च षष्ठे च चतुष्टये स्त्रियां शुद्ध्या ज्ञमन्दाहवहिर्धटी शुभा ८२ (×)

(१) लग्नक्षोडुपशोभनेषु इति पाठान्तरम् ।

(२) सुवर्णं इति पाठान्तरम् ।

(३) पञ्चमे मासि गर्भदोहदार्थं पञ्चामृतं दीयते तस्य विधिमाह—रेवत्यश्वीति । रेवत्यादिनक्षत्रेषु शुक्रगुरुरविवारे शुभे लग्ने दम्पत्योः शुद्धिगे पूर्णाशुद्धिगे च रिक्तां तिथिं त्यक्त्वा शुभदिने पञ्चममासे योषितां पञ्चामृतं देयम् । याज्ञवल्क्यः—"दोहदस्याप्रदानेन गर्भो दोषमवाप्नुयात् । वैरूप्यं मरणं वापि

अर्थ–अब धटीदान कहते हैं। मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफागुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढ़ा, श्रवण, पुनर्वसु, पुष्य, रेवती, अश्विनी, रोहिणी और मृगशिरनक्षत्रमें, धन और मीन लग्नमें, पांचमे वा छठें महीनेके गर्भसमय स्त्रियोंके चन्द्रताराादि शुद्धि होनेसे बुध और शनि भिन्न वारमें गर्भकी रक्षाके निमित्त हरिद्राक्तग्रन्थियुक्त वस्त्राञ्चल स्त्रियोंके कटिदेशमें बांधना चाहिये उक्त वस्त्राञ्चल-कोही धटी कहतेहैं ॥ ८२ ॥

अथ सीमन्तोन्नयनम् ।

षष्ठे मास्यष्टमेऽह्नीज्यकुजदिनकृतां नन्दभद्रे तिथौ च
मैत्रे मूले मृगाङ्के करपितृपवने पौष्णविष्णुत्रियुग्मे ॥ (१)
तिष्याश्व्यादित्यरौद्रे युवतिहरिझषे वृश्चिके वापि लग्ने
चन्द्रे ताराऽनुकूले शुभमपि नियतं स्याच्च सीमन्तकर्म्म ॥ ८३ ॥

अर्थ–अब सीमन्तोन्नयनका मुहूर्त्त कहतेहैं। गर्भाधानसे छठे वा आठमे महीनेमें बृहस्पति, मङ्गल और रविवारमें, प्रतिपदा, एकादशी, षष्ठी, द्वितीया, द्वादशी और सप्तमी तिथिमें; अनुराधा, मूल, मृगशिर, हस्त, मघा, स्वाति, रेवती, श्रवण, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा, पुष्य, अश्विनी, पुनर्वसु और आर्द्रा नक्षत्रमें, कन्या, सिंह, मीन और वृश्चिक लग्नमे, चन्द्र तारा शुद्ध होनेसे सीमन्तोन्नयन करना चाहिये ॥ ८३ ॥

अन्यच्च ।

मृगाजरहिते लग्ने नवांशे पुंग्रहस्य च ।
केचिद्वदन्ति सीमन्तं तथा रिक्तेतरे तिथौ ॥ ८४ ॥

अर्थ–कोई २ पंडितोंने कहाहै कि, मकर और मेषभिन्न लग्नमे, रवि, मङ्गल और बृहस्पतिवारके नवांशोंमें, रिक्ताभिन्न तिथियोंमें गर्भवती स्त्रियोंका सीमन्तोन्नयन करना चाहिये ॥ ८४ ॥

अपरञ्च ।

मासेशे (२) प्रबले शुभेक्षितविधौ मासे च षष्ठेऽष्टमे ।

–मृगशिरसोः गुरूदये धनुर्मीनलग्नेषष्ठे चतुष्टये मासे स्त्रियाश्चन्द्रताराशुद्ध्या बुधशनिवारं त्यक्त्वा घटीदानकर्म शुभमित्यर्थ. । इति ।

(१) त्रियुग्मे फाल्गुनीद्वये आषाढद्वये भाद्रपदद्वये चेत्यर्थः ।

(२) मासाधिपास्तु सितकुजगुरुरविशशिशनिसौम्यलग्नपशशीनाः । निषेकदिवसाद्धिमं गृहीत्वा मासाधिपा गणनीयाः ।

मैत्रे पुंसवनोदितर्क्षसहिते रिक्ताविहीने तिथौ ॥
सीमन्तोन्नयनं मृगाजरहिते लग्ने नरांशोदये
योज्यं पुंसवनोदितं यदपरं तत्सर्वमत्रापि च ॥ ८५ ॥ (३)

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ-मासाधिपति (महीनोके मालिक) ग्रहोंके बलवान् होनेसे; चन्द्रपर शुभ ग्रहोंकी दृष्टि होनेसे, छठे वा आठमें महीनेमे अनुराधा और पुंसवनोदित नक्षत्रोंमें रिक्ताभिन्न तिथिमे, मकर और मेषभिन्न लग्नमे, मिथुन, तुला, कुम्भ और कन्या लग्नके नवांशोंमें; पुंसवनोक्त वारादिमे स्त्रियोका सीमन्तोन्नयन करना चाहिये ॥ ८५ ॥

अथ जातकप्रकरणम् ।

तत्रादौ लग्नमानम् ।

वेदोऽगैः ४ । ७ खसुतैर्युगो ४ । ५० ग्रहभुजैर्बाणो ५-२९
ऽश्विवेदैः ५ शरो ४१ बाणो वन्हिगुणैः ५।३३ शरो ग्रहभुजैः
५ । २९ शैलानलैः सायकः ५ । ३७ ॥ बाणः शून्यकृतैः ५ ।
४ शरोऽगशशिभि ५ । १७ वेह्न्यग्निभिर्वेदको ४ । ३३
वह्निः सप्तशरै ३ । ५७ गुणे नगकृतै ३ । ४७ मेषादिमानं
सताम् ॥ ८६ ॥

अर्थ-अब मेषादि लग्नका मान कहतेहैं, मेषलग्नका मान ४ । ७ चार दण्ड सात पल होताहै, इसीप्रकार वृषका मान ४ । ५० चार दण्ड पचाश पल, मिथुनका मान ५ । २९ पांच घडी उन्तिस पल, कर्कका मान ५ । ४१ पांच घडी इकतालिस पल,

सिहका मान ५ । ३३ पांच घड़ी तैंतिस पल, कन्याका मान ५ । २९ पांच घडी उन्तिस पल, तुलाका मान ५ । ३७ पांच घड़ी सैंतिसपल, वृश्चिकका मान ५ । ४० पांच घडी चालिस पल, धनका मान ५ । १७ पांच घड़ी सत्रहपल, मकरका मान ४ । ३३ चार घड़ी तैंतिस पल, कुम्भका मान ३ । ५७ तीन घड़ी सत्तावन पल और मीनलग्नका परिमाण ३ । ४७ तीन घड़ी सैंतालिस पल होताहै ॥ ८६ ॥

अथ प्रसूतिज्ञानम् ।

सुप्रसूतिर्भवेच्चन्द्रे शुभग्रहयुतेक्षिते ।
दुर्ग्रहेक्षितयुक्ते च प्रसूतिर्दुःखभागिनी ॥ ८७ ॥

अर्थ–अब जातकप्रकरण कहतेहैं । उत्पन्न हुए मनुष्यके फलाफल जाननेके पूर्व उसकी माताके प्रसवसमयकी अवस्था जाननी चाहिये, अतएव उसको कहतेहैं यथा, चन्द्र शुभग्रहयुक्त होय वा उसपर शुभग्रहकी दृष्टि होनेसे गर्भिणी सुखसे प्रसव करतीहै और यदि चन्द्रपर पापग्रहकी दृष्टि होय वा पापग्रहके साथ होय तो गर्भिणी स्त्री अत्यन्त कष्टसे प्रसव करतीहै ऐसा जानना चाहिये ॥ ८७ ॥

अथ लग्नज्ञानम् ।

यस्मिन्नृक्षे वसेद्भानुस्तदेव सप्तमेऽपि वा ।
यावद्द्विप्रहरं पश्चाद्दिवा द्वादशभिः पुनः ॥ ८८ ॥
ऊनविंशतिभे रात्रौ यावद्यामो वसेद्द्वयम् ।
चतुर्विंशतिभे पश्चाज्जातलग्नमुदाहृतम् ॥ ८९ ॥

इति जातकचन्द्रिकायाम् ।

अर्थ–अब बालकके उत्पन्न होनेकी लग्न कहीजातीहै यथा,–सूर्य्य जिस जिस नक्षत्रमें स्थित होय अथवा उसका सातवां नक्षत्र जिस घरमे होय तो उसी स्थानमें लग्न होतीहै, यह नियम दोपहर दिनके मध्यमें जानना चाहिये । दोपहरके बाद सायंतक सूर्य्यके नक्षत्रसे बारहमा नक्षत्र जिस घरमे होय उसी घरमें लग्न होतीहै । इसीप्रकार अर्द्धरात्रिके मध्यमें सूर्य्यके नक्षत्रसे उन्नीसमें नक्षत्रमें लग्न होतीहै और शेष अर्द्ध रात्रिके मध्यमें सूर्य्यके नक्षत्रसे चौबीसमें नक्षत्रमें लग्न होतीहै ॥ ८८ ॥ ८९ ॥

अन्यच्च ।

यस्मिन्नृक्षे वसेद्भानुस्तदादिसप्तऋक्षके ।
द्वादशे सप्तदशे चैव तथैव पञ्चविंशतौ ॥ ९० ॥
पूर्वापराह्णयोगेन दिने रात्रौ यथाक्रमात् ॥ ९१ ॥

अर्थ-अब वचनान्तरकी रीतिसे लग्ननिर्णय करतेहैं । मनुष्यके जन्मसमय सूर्य्य जिस नक्षत्रमे होय तिसको आदि ले सातवें, बारहवें और सत्रहवे, तथा पचीसवे नक्षत्रमें दिनके समय पूर्वाह्न पराह्न योगसे, रात्रिसमय पूर्वरात्रि यथाक्रमसे पूर्वोक्तनक्षत्रोंकी लग्न तात्कालिक लग्न होतीहै ॥ ९० ॥ ९१ ॥

अपरश्च ।

चन्द्रे वा सप्तमे वापि ह्युभयत्रिकोणेऽपि वा ।
जातलग्नं न सन्देह इति ज्योतिर्विदो विदुः ॥ ९२ ॥

अर्थ-अन्य प्रकार कहतेहै । चन्द्रमा जिस राशिमे हो वह राशि वा चन्द्रमासे सप्तम राशि, अथवा इन दोनोसे ५ । ९ राशि निस्सन्देह जातलग्न होतीहै यह ज्योतिर्विद् पंडितोने कहाहै ॥ ९२ ॥

प्रकारान्तरश्च ।

चन्द्रो राश्यधिपो वापि यत्र तत्सप्तमेऽपि वा ।
एषां त्रिकोणके वापि जातलग्नमुदाहृतम् ॥ ९३ ॥ (१)

अर्थ-अब अन्य प्रकारसे कहते है ॥ चंद्रमाकी राशि वा चंद्रराशीश जिस राशिपर हो अथवा उनसे सातवी राशि यद्वा इनके त्रिकोण ५ । ९ स्थानमे जो राशि हो वह जन्मलग्न निश्चय जानना ॥ ९३ ॥

अपिच ।

मेषकुलीरतुलालिघटे प्रागुत्तरतो गुरुसौम्यगृहेषु ।
पश्चिमतश्च वृषेण निवासो दक्षिणभागकरौ मृगसिंहौ ॥ ९४ ॥

इति बृहज्जातके ।

अर्थ-बृहज्जातकमे लिखाहै कि. मेष. कर्क, तुला. वृश्चिक और कुम्भ लग्नमें उत्पन्न होनेसे गर्भिणीका घर पूर्व दिशामे वा उत्तर दिशामें होताहै. धन. मीन. मिथुन वा कन्या लग्नमे उत्पन्न होनेसे गर्भिणीका घर पश्चिमदिशामें जाने और वृष. मकर और सिंह लग्नमे उत्पन्न होनेसे गर्भिणीका घर दक्षिण दिशामे जानना चाहिये ॥ ९४ ॥

अथ गृहस्वरूपमाह ।

जीर्णं संस्कृतमर्कजे क्षितिसुते दग्धं नवं शीतगौ
काष्ठाढ्यं न दृढं रवौ शशिसुते चानेकशिल्पोद्भवम् ॥

रम्यं चित्रयुतं नवञ्च भृगुजे जीवे दृढं मन्दिरं
चक्रस्थैश्च यथोपदेशरचनां सामन्तपूर्वां वदेत् ॥ ९५ ॥

अर्थ–जन्मसमय सूर्य्य बलवान् होनेसे जीर्ण सस्कृत घरमें प्रसव होताहै, इसीप्रकार मङ्गल होनेसे दग्ध घरमें, चन्द्र होनेसे नवीन घरमें, रावि होनेसे भग्नकाष्ठके घरमें बुध होनेसे बहुशिल्पकार्य्यान्वित घरमे, शुक्र होनेसे मनोहर चित्रयुक्त नवीन घरमें और बृहस्पति जन्मसमयमें बलवान् होनेसे सुदृढ (मजबूत) घरमें प्रसव होताहै फलितार्थ यह है कि, चक्रमें स्थित ग्रहोंके बलसेही प्रसव होनेका घर निश्चय किया जाताहै ॥ ९५ ॥

अन्यच्च ।

मेषे चापमृगेन्द्रयोः किल शिशुः प्राचीशिरा जायते
गोकन्यामकरेषु दक्षिणशिरा जातो भवेन्निश्चितम् ॥
मीने वृश्चिककर्किणोर्यदि तदा कौबेरमूर्द्धा भवे-
त्कुम्भर्क्षे घटयुग्मयोर्यदि तदा पाश्चात्त्यमूर्धा यतः ॥ ९६ ॥

इति ज्योतिस्तत्वे ।

अर्थ–अब बालकके मस्तक पतनसे लग्न निर्णय करतेहैं । मेष, धन और सिह लग्नमें प्रसव होनेसे उस बालकका मस्तक पूर्व दिशामें होताहै, इसीप्रकार वृष, कन्या और मकर लग्नमें उत्पन्न होनेसे दक्षिणादिशामें, मीन, वृश्चिक और कर्क लग्नमे उत्पन्न होनेसे उत्तर दिशामें और कुम्भ, तुला और मिथुन लग्नमें उत्पन्न होनेसे बालकका शिर पाश्चिम दिशामें होताहै ॥ ९६ ॥

अपरञ्च ।

द्वारं वास्तुनि केन्द्रोपगाद्ग्रहादसति वा विलग्नर्क्षात् ।
दीपोऽर्कादुदयाद्वर्त्तिरिन्दुतः स्नेहनिर्देशः ॥ ९७ ॥ (क)

इति दीपिकायाम् ।

(क) जन्मकालसंप्रत्ययार्थ वास्तुद्वारादिज्ञानमाह–द्वारमिति । वास्तुनि वास्तुविषये द्वारं निर्गमवर्त्म केन्द्रगतगृहात् ज्ञातव्य केन्द्रे यो ग्रह तद्दिशि निर्गमवर्त्मेत्यर्थ. । बहुषु सत्सु बलिनो ग्रहस्य एवं द्वयोर्बलवशात् द्वे अपि निर्गमवर्त्मनी ज्ञातव्ये केन्द्रे ग्रहे त्वसति सति लग्नर्क्षदिशीत्यर्थः । एवं यस्मिन्गृहे जन्म तस्य द्वारं बोद्धव्यम् । अर्कादीपो ज्ञातव्य. यदि लग्ने रवि. स्थितस्तस्या दिशि आदित्यारूढचरराशेर्दिशि सञ्चार्य्यमाणो दीपो वाच्य । यदि आदित्यारूढस्थिरराशेर्दिशि तदा स्थिरो दीपो वाच्य. । आदित्यारूढद्व्यात्मकराशेर्दिशि चलित. दीप. स्थिरश्च वाच्य । तथाच बृहज्जातके “स्नेहः शशाङ्कादुदयाच्च वर्त्तिर्दीपोऽर्कयुक्तर्क्षवशाच्चराद्यैः” इति तथार्कस्य बलाबलाद्दीपस्य

अर्थ-बालकके जन्मसमय केन्द्रस्थानमें (ख) जो ग्रह होय वह ग्रह जिस दिशाका स्वामी होय उसी दिशामें गर्भिणी स्त्रीके घरका द्वार होताहै यदि केन्द्रस्थानमें अनेक ग्रह होय तब उनमेंसे जो ग्रह अधिक बलवान् होय उसकी दिशामेंही गर्भिणी स्त्रीके घरका द्वार होताहे । यदि दो ग्रह समान बलके हो तब गर्भिणी स्त्रीकी घरके दो द्वार होतेहै । और केन्द्रके स्थानमें यदि ग्रह न होंय तो जन्मलग्न जिस दिशाकी मालिक होतीहै उसी दिशामे गर्भिणी स्त्रीके घरका द्वार जानना चाहिये । सूर्य्यकी राशिसे दीपज्ञान होताहै अर्थात् सूर्य्य यदि किसी चरराशिमें स्थित हों तो उसी राशिकी दिशा अनुसार उसी दिशामें दीपक चालित होताहै । और सूर्य्य यदि किसी स्थिर राशिमे स्थित होंय तब उसी राशिकी दिशानुसार दीपक स्थिरभावसे रहताहै । सूर्य्य यदि द्व्यात्मक राशिमें होय तो उसी राशिकी दिशानुसार दीपक सञ्चालित और स्थिरभावसे रहताहै लग्नके भोगानुसार दीपककी वत्ती जाननी चाहिये अर्थात् लग्नके जितने परिमित अंशोका भोग हो उतनेही परिमित दीपककी वर्त्ती जलतीहे । दीपकका स्नेह अर्थात् तैल घृतादि चन्द्रमाकी क्षीणता और पूर्णतासे जानाजाता है ॥ ९७ ॥

अथ दीपस्थितिज्ञानम् ।

द्वादशभागे विभक्ते वासगृहे व्यवस्थिते सहस्रांशौ ।
दीपश्चरस्थिरादिषु तथैव वाच्यः प्रसवकाले ॥ ९८ ॥

अर्थ-गर्भिणीके घरको द्वादश (१२) भागमे विभक्त करके चरस्थिर और द्व्यात्मक राशिके मध्यमे जिस किसी राशिमे प्रसवसमय सूर्य्य ग्रह स्थित होय और उस राशिका स्वामी जो ग्रह होय तो उसी दिशामेंही दीपक सञ्चालित होताहै॥९८॥

अथ वर्तिज्ञानम् ।

लग्नस्य यस्तु वर्णोऽपि निर्दिष्टस्तेन वर्त्तिरादेश्या ।
लग्नस्योदिताद्भागात्क्षीणो ज्ञेयो दशाभागः ॥ ९९ ॥

अर्थ-लग्नका जो वर्ण कहाहै उस वर्णके अनुसारही बत्तीका वर्ण होता है.

और जन्मसमयमें लग्नके जितने अंश भुक्त होजातेहैं बत्तीके भी उतने अंश जलजातेहैं ॥ ९९ ॥

अथ तैलज्ञानम् ।

इन्दोर्भागवशाद्राशेर्दीपे तैलस्य संस्थितिः ।
केचित्पूर्णादिभेदेन वदन्त्येवं मनीषिणः ॥ १०० ॥

अर्थ–प्रसवसमयमें राशिके जितने अंश भुक्त होकर चन्द्रके बाकी रहतेहैं । दीपकमें भी उतने अंश तेल जलकर बाकी रहता है कोई २ पंडित कहतेहैं कि, चन्द्रके पूर्णादि भेदद्वारा दीपकमें तैलकी स्थिति जानीजातीहै ॥ १०० ॥

अथ षड्वर्गनिर्णयः ।

तत्रादौ क्षेत्रकथनम् ।

कुजशुक्रबुधेन्द्वर्कसौम्यशुक्रावनिभुवाम् ।
जीवार्किरविजेज्यानां क्षेत्राणि स्युरजादयः ॥ १ ॥

अर्थ–अब क्षेत्र और क्षेत्रोके स्वामी ग्रहोंको कीर्त्तन करतेहैं। मङ्गल, शुक्र, बुध, रवि. बुध, शुक्र, मंगल, बृहस्पति शनि शनि बृहस्पति यही क्रमानुसार मेषादि द्वादश राशियोंके क्षेत्राधिपति होतेहैं। अर्थात् मेषादि द्वादशराशि उक्त ग्रहोंके क्षेत्र(स्थान)है, यथा–मङ्गलका क्षेत्र मेष, शुक्रका वृष, बुधका मिथुन, चन्द्रका कर्क, सूर्य्यका सिंह, बुधका कन्या, शुक्रका तुला, मङ्गलका वृश्चिक, बृहस्पतिका धन, शनिका मकर, शनिका कुम्भ और बृहस्पतिका क्षेत्र मीनराशि होतीहै ॥ १ ॥

अथ होरा (×) कथनम् ।

होरे विषमेऽर्केन्द्वोः समराशौ चन्द्रसूर्य्ययोः ॥ २ ॥

अर्थ–अब होरा कहतेहैं । राशिके (लग्नके) अर्द्धभागका नाम होराहै । विषमराशिका प्रथम होरा सूर्य्यकेभी द्वितीय होरा चन्द्रका होता है और समराशिमें प्रथम होरा चन्द्रकेभी द्वितीय होरा सूर्य्यका होताहै ॥ २ ॥

अपिच ।

ओजःसुरवेः प्रथमा परा हिमांशोः
समे विपरीता इति सत्याचार्य्यः ॥ ३ ॥

अर्थ--सत्याचार्य्यनें कहाहै कि, ओज (विषम) राशिका प्रथम होरा सूर्य्यके

(×) होरा राश्यर्द्धं द्विवचननिर्देशात ।

भी द्वितीय होरा चन्द्रका होताहै। और सम राशिमें इसके विपरीत अर्थात् प्रथम प्रथम होरा चन्द्रका द्वितीय द्वितीय होरा सूर्य्यका होताहै ॥ ३ ॥

फलम्।

सूर्य्यस्य होरायां तेजस्विनो भवन्ति
चन्द्रस्य होरायां मृदवो भवन्ति ॥ ४ ॥

इति होराफलम्।

अर्थ-सूर्य्यके होरामे उत्पन्न होनेसे मनुष्य तेजस्वी होताहै और चन्द्रके होरामें उत्पन्न होनेसे मनुष्य मृदु (कोमल) होताहै ॥ ४ ॥

अथ द्रेक्काणकथनम्।

द्रेक्काणाः प्रथमपञ्चनवपानाम् ॥ ५ ॥ (१)

अर्थ-अब द्रेक्काण कहतेहैं। लग्नको तीन अंशमे विभक्त करनेसे उसके एक २ भागका नाम द्रेक्काण कहा है। प्रथम द्रेक्काणका स्वामी लग्नाधिपति ग्रह होताहै, दूसरे द्रेक्काणका स्वामी लग्नसे पांचमी राशिका मालिक ग्रह होताहै और तीसरे द्रेक्काणका स्वामी ग्रहके नवमे राशिका मालिक ग्रह होताहै ॥ ५ ॥

अपिच।

राशेस्त्रिधा द्रेक्काणास्तत्पञ्चमनवमभवनपतयस्तु।
तेषामधिपाः स्वद्रेक्काणग्रहा बलिनः ॥ ६ ॥

इति सत्याचार्य्यः।

अर्थ-सत्याचार्य्यने कहाहै कि, राशिको (लग्नको) तीन भागमें विभक्त करनेसे प्रथम द्रेक्काण लग्नके स्वामी ग्रहका होताहै दूसरा द्रेक्काण लग्नसे पांचमी राशिके मालिक ग्रहका होता है और तीसरा द्रेक्काण नवमें राशिके स्वामी ग्रहका होता है, कि इनके मध्यमे अपने द्रेक्काणका स्वामी ग्रहही बलवान् होताहै ॥ ६ ॥

अन्यच्च।

मीनकुम्भधनुर्मेषमृगवर्के द्वितीयके।
वृषे द्वन्द्वे च भूसंख्ये कन्याद्यन्तौ भवेत्क्रमात् ॥ ७ ॥
वृश्चिके प्रथमे मध्ये द्रेक्काणे कन्यका भवेत्।
अन्यस्मिन्पुरुषो ज्ञातो द्रेक्काणे मुनिनोदितः ॥ ८ ॥

अर्थ–लग्नके द्रेकाणविशेषमें पुरुष और कन्याका जन्म कहते हैं । मीन, कुम्भ, धन, मेष, मकर और कर्क लग्नके दूसरे द्रेकाणमें वृष, और मिथुन लग्नके प्रथम द्रेकाणमें, कन्या लग्नके प्रथम और तृतीय द्रेकाणमें और वृश्चिक लग्नके प्रथम और द्वितीय द्रेकाणमें कन्या होतीहै, इनको छोडकर और द्रेकाणोंमें पुत्र उत्पन्न होताहै ॥ ७ ॥ ८ ॥

इति द्रेकाणकथनम् ।

अथ नवांशकथनम् ।

मेषकेसरिचापानां मेषाद्याः स्युर्नवांशकाः ।
कर्किवृश्चिकमीनानां कर्कटाद्याः प्रकीर्त्तिताः ॥ ९ ॥
तुलाकुम्भनृयुग्मानां तुलाद्याः कथिता इमे ।
मकरस्त्रीवृषाणाञ्च मकराद्याः प्रकीर्त्तिताः ॥ ११० ॥

अर्थ-अब नवांश कहतेहैं, यथाः–लग्नमानको नौभागोंमें विभक्त करनेसे एक २ भागका नाम नवांश होताहै । मेष, सिह और मेषादि (१) करके नवांशकी गणना करी जातीहै । कर्क, वृश्चिक, और मीनके कर्कटादि करके नवांशको गिने । तुला कुम्भ और मिथुनके नवांशकों तुलादिसे गिनै, और मकर, कन्या और वृषके नवांशको मकरादिसे गिनकर देखना चाहिये ॥ ९ ॥ ११० ॥

वर्गोत्तमकथनम् ।

चराणां सत्रिकोणानां तच्चराद्या नवांशकाः ।
राशीनां स्वनवांशो यः सवर्गोत्तमसंज्ञकः ॥ ११ ॥

अर्थ–मेष, कर्क, तुला और मकर इन चार राशियोंको चरराशि कहतेहैं। इन चर राशियोंके और इनके पांचमें और नवमी राशिके नवांशको इन चरराशिसेही गिनना चाहिये। राशिका जो अपना नवांश हो उसको वर्गोत्तम कहतेहैं ॥ ११ ॥

अपिच ।

चराणां प्रथमोंऽशः स्थिराणां पञ्चमस्तथा ।
द्व्यात्मकानां तथा चान्त्यःस वर्गोत्तमसंज्ञकः ॥ १२ ॥

---

(१) मेष सिह और धन इन तीनो लग्नोके नवांशको मेषसे गिनै अर्थात् नौ भागोंमे विभक्त लग्नका प्रथम भाग मेषाधिपति मंगलका, दूसरा भाग वृषाधिपति शुक्रका, तीसरा भाग मिथुनाधिपति बुधका–इत्यादि प्रकारसे नवांशको देखना चाहिये इति ।

अर्थ-चर (मेष, कर्क, तुला और मकर) राशिके प्रथमांशकोही वर्गोत्तम कहते हैं । स्थिर अर्थात् वृष, सिंह, वृश्चिक और कुम्भराशिके पञ्चमांशको वर्गोत्तम कहतेहैं और द्व्यात्मक अर्थात् मिथुन, कन्या, धन और मीन राशिके नवमांशको वर्गोत्तम कहतेहैं ॥ १२ ॥

इति नवांशकथनम् ।

अथ द्वादशांशकथनम् ।

स्वर्क्षे च मेषपूर्वाणां स्वर्क्षाद्या द्वादशांशकाः ॥ १३ ॥

अर्थ--लग्नमानको द्वादश भागमें विभक्त करनेसे एक २ भागका नाम द्वादशांश होताहै मेषादिराशिके द्वादशांशको मेषादिकरके द्वादश राशिका स्वामी भोग करता है ॥ १३ ॥

अन्यच्च ।

लग्नमानं व्यवस्थाप्य द्वादशस्वेव राशिषु ।
कृत्वा द्वादशभागांस्तु गणयेत्स्वगृहाद्बुधः ॥ १४ ॥

अर्थ-अब द्वादशांशको अन्यप्रकारसे कहतेहैं । लग्नमानको बारहजगह भागकरनेसे उसके एक२भागको द्वादशांश कहतेहै,जिस लग्नके द्वादशांशका विचार करना हो,उसको अपने घरसे गिनना चाहिये अर्थात् जैसे मेषलग्नके द्वादशांशको मेषसे गिने, वृष लग्नके वृषसे और मिथुन लग्नके द्वादशांशको मिथुनसे गिननाचाहिये, इत्यादि औरभी इसी प्रकार जानना ॥ १४ ॥

इति द्वादशांशकथनम् ।

अथ त्रिंशांशकथनम् ।

कुजयमजीवज्ञसिताः पञ्चेन्द्रियवसुमुनीन्द्रियांशानाम् ।
विषमेषु समर्क्षेषूत्क्रमतस्त्रिंशांशाः कल्प्याः ॥ १५ ॥

अर्थ-अब त्रिंशांश कहतेहै । लग्नमानको त्रिंशतभागमे विभक्त करनेसे उसके एक२ भागका नाम त्रिंशांश होताहै, इस त्रिंशांशमे विषमराशिके प्रथम पांच अंश मङ्गलके होतेहै इसीप्रकार उनके बाद पांच अंश शनिके, आठ अंश बृहस्पतिके, सात अंश बुधके और शेषके पांच अंश शुक्रके होतेहै । और समराशिके त्रिंशांशको विपरीत भावसे जानना चाहिये अर्थात् प्रथम पांच अंश शुक्रके, इसीप्रकार उसके बाद बुधके, बृहस्पतिके, शनिके और सर्व शेषमे मङ्गलका त्रिंशांश होताहै ॥ १५ ॥

इति त्रिंशांशकथनम् ।

अथ यामार्द्धकथनम् ।

आदौ दिनेशयामार्द्धस्तदन्ते तत्पराः क्रमात् ।
दिवसेषु षड़ावृत्त्या पञ्चावृत्त्या तु रात्रिषु ॥ १६ ॥

इति सारसंग्रहे ।

अर्थ–अब यामार्द्ध कहतेहैं । सारसंग्रहनामक ग्रन्थमें लिखाहै कि, दिनमान वा रात्रिमानको आठ भागमें विभक्त करनेसे उसके एक २ भागका नाम यामार्द्ध कहाहै । इसके प्रथम यामार्द्ध दिनमे होय वा रात्रिमें होय वह वारके स्वामीका होताहै । दिनमें द्वितीयादि यामार्द्ध वारके स्वामीसे गिनकर छटे ग्रहका होताहै और रात्रिमे पांचमें ग्रहका होताहै । अर्थात् रविवारके दिनमें प्रथम यामार्द्ध सूर्य्यका होताहै इसी प्रकार दूसरा यामार्द्ध शुक्रका, तीसरा यामार्द्ध बुधका, चौथा यामार्द्ध चन्द्रका, पांचमा यामार्द्ध शनिका, छठा यामार्द्ध बृहस्पतिका, सातवाँ यामार्द्ध मङ्गलका और आठवाँ यामार्द्ध सूर्य्यका होताहै । रात्रिमें प्रथम यामार्द्ध सूर्य्यका, दूसरा यामार्द्ध बृहस्पतिका, तीसरा यामार्द्ध चन्द्रका, चौथा यामार्द्ध शुक्रका, पांचवाँ यामार्द्ध मङ्गलका, छठा यामार्द्ध शनिका, सातवाँ यामार्द्ध बुधका और आठवाँ यामार्द्ध सूर्य्यका होताहै । अन्यान्य वारमेंभी वारके स्वामीसे इसीप्रकार गिनकर यामार्द्ध जानना चाहिये ॥ १६ ॥

अपिच ।

द्युनिशोः षडिषुक्रमाद्वारेशादर्द्धयामतः ॥ १७ ॥

इति सारसंग्रहे ।

अर्थ–दिनमे वारके स्वामीसे गिननेमे छय २ ग्रह अन्तरसे यामार्द्धके स्वामी होतेहैं और रात्रिमें वारके स्वामीसे पांच २ ग्रह अन्तरसे यामार्द्धके स्वामी होतेहैं ॥ १७ ॥

अन्यच्च ।

वारेशादर्द्धयामेषु रात्र्यह्नोः पञ्चषट्क्रमात् ।
अधिपाःस्युर्ग्रहास्तत्र यथार्काहे भवन्ति ते ॥ १८ ॥
रवीज्येन्दुभृगुक्ष्माजशनिज्ञरवयो निशि ।
रविशुक्रज्ञराज्यंशशनीज्यकुजभास्कराः ।
दिनेपूह्याः परेष्वेवं तत्राध्यक्षाश्चतुर्ग्रहाः ॥ १९ ॥

इति सत्कृत्यमुक्तावल्याम् ।

अर्थ–सत्कृत्यमुक्तावलीनामक ग्रन्थमे लिखाहै कि, दिनमे हो वा रात्रिमें होय प्रथम यामार्द्धका स्वामी वारका मालिक ग्रह होताहै, वारके मालिक ग्रहसे गिन-

कर पांचवां ग्रह द्वितीय यामार्द्धका मालिक होताहै और दूसरे यामार्द्धका मालिक ग्रह तीसरे यामार्द्धका स्वामी होताहै इत्यादि प्रकारसे रात्रिमे आठो यामार्द्धके मालिक जानना चाहिये । दिनमेभी वारके स्वामीका प्रथम यामार्द्ध होताहै, प्रथम यामार्द्धके स्वामी ग्रहसे गिनकर छठा ग्रह दूसरे यामार्द्धका मालिक होताहै और दूसरे यामार्द्धके स्वामीसे गिनकर छठा ग्रह तीसरे यामार्द्धका मालिक होताहै । अन्यान्य यामार्द्धके स्वामीभी इसीप्रकारसे जानना चाहिये । रविवारको रात्रिमें प्रथम यामार्द्धका स्वामी सूर्य्य होताहै. इसीप्रकार दूसरे यामार्द्धका स्वामी बृहस्पति, तीसरे यामार्द्धका स्वामी चन्द्र. चौथे यामार्द्धका स्वामी शुक्र. पांचमे यामार्द्धका स्वामी मङ्गल, छठे यामार्द्धका स्वामी शनि. सातवे यामार्द्धका स्वामी बुध और आठवें यामार्धका स्वामी सूर्य्य ग्रह होताहै । दिनके प्रथम यामार्द्धका स्वामी सूर्य्य होताहै । इसी प्रकार दूसरे यामार्धका स्वामी शुक्र. तीसरे यामार्द्धका स्वामी बुध, चौथे यामार्द्धका स्वामी चन्द्र. पांचवे यामार्द्धका स्वामी शनि, छठे यामार्द्धका स्वामी बृहस्पति, सातमे यामार्द्धका स्वामी मङ्गल और आठवे यामार्द्धका स्वामी सूर्य्य होताहै । प्रत्येक यामार्द्धके चार ग्रह मालिक होतेहैं उन्हीको दण्डाधिपति कहतेहैं । इसी प्रकारसे अन्यान्यवारके यामार्द्धके स्वामी जानना चाहिये ॥ १८ ॥ १९ ॥

अथ दण्डकथनम् ।

यामार्द्धाधिपसंख्यातो द्वितीयस्तु तदर्द्धतः ।
तदर्द्धात्तु तृतीयः स्यात्तदर्द्धात्तु तुरीयकः ॥ २० ॥
अङ्काभावे तु राहुः स्यात्तदङ्को वसुसंज्ञकः ।
भग्नाङ्कस्य परित्यागाद्दिवादण्डाधिपा यथा ॥ २१ ॥
रवौ राहुर्बुधश्चन्द्रः परेष्वप्येवमादिशेत् ॥ २२ ॥

अर्द्धसे भग्नांक होय, तो उसको परित्याग कर देवै दिनमें उक्त नियमके अनुसार दण्डके स्वामी ग्रहोंको जानना चाहिये ।

सूर्य्यके यामार्द्धमें सूर्य्य, राहु, बुध और चन्द्र क्रमानुसार दण्डके स्वामी होतेहैं, इसीप्रकार अन्यान्य यामार्द्धमेभी दण्डके स्वामी जाने जातेहैं ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥

विशेषमाह ।

रविदनुजबुधाग्लौश्चन्द्रसुरासुरज्ञाः
कुजरविदनुजज्ञा ज्ञेन्दुसुरासुराश्च ॥
गुरुशशिरविदैत्याः शुक्रभौमार्कदैत्याः
शनिकुजरविदैत्या दण्डदण्डे ग्रहाः स्युः ॥ २३ ॥

इति सारसंग्रहे ।

अर्थ—अब दण्डाधिपतिका विवरण स्पष्ट प्रकारसे वर्णन करते हैं यथा,—दिनमें सूर्य्यके यामार्द्धमें प्रथम दण्ड सूर्य्यका होताहै. इसी प्रकार दूसरा दण्ड राहुका, तीसरा दण्ड बुधका, चौथा दण्ड चन्द्रका होताहै, चन्द्रके यामार्द्धमे प्रथम दण्ड चन्द्रका, दूसरा दण्ड सूर्य्यका, तीसरा दण्ड राहुका, चौथा दण्ड बुधका होताहै, मङ्गलके यामार्द्धमे प्रथम दण्ड मङ्गलका, दूसरा दण्ड सूर्य्यका, तीसरा दण्ड राहुका, चौथा दण्ड बुधका होताहै; बुधके यामार्द्धमें प्रथम दण्ड बुधका, दूसरा दण्ड चन्द्रका, तीसरा दण्ड सूर्य्यका, चौथा दण्ड राहुका होताहै; बृहस्पतिके यामार्द्धमे प्रथम दण्ड बृहस्पतिका, द्वितीय दण्ड चन्द्रका, तृतीय दण्ड सूर्य्यका, चतुर्थ दण्ड राहुका होताहै, शुक्रके यामार्द्धमें प्रथम दण्ड शुक्रका, द्वितीय दण्ड मङ्गलका, तृतीय दण्ड सूर्य्यका, चतुर्थ दण्ड राहुका होताहै, शनिके यामार्द्धमें प्रथम दण्ड शनिका, दूसरा दण्ड मङ्गलका, तीसरा दण्ड सूर्य्यका और चौथा दण्ड राहुका होताहै, इसी प्रकार प्रत्येक दण्डका मालिक एक२ग्रह होताहै ॥ २३ ॥

अथ सूतिकावस्त्रेण शिशोर्दिवादण्डज्ञानम् ।

दग्धवस्त्रं रवेर्दण्डे श्वेतञ्च शशिनस्तथा ।
भौमे सरक्तहारिद्रं बुधे छिद्रं नवांशुके ॥ २४ ॥
गुरोश्चित्रं भृगोश्छिद्रं छिन्नभिन्नं शनैश्चरे ।
राहोः शुक्लतरं जीर्णमिति दण्डस्य निर्णयः ॥ २५ ॥ (+)

इति सारसंग्रहे ।

होय प्रथ॰

(+) दण्ड जाननेके अनेक प्रकारके सङ्केत हैं यथा—"शय्यायाद्वतिथेरङ्क मासस्थाङ्कयेर च। ...हत्वा दिवा रात्रौ तु सप्तभि. ॥" इति ग्रन्थान्तरे ।

अर्थ–सूर्य्यके दण्डमे प्रसव होनेसे गर्भिणीका परिधान दग्धवस्त्र होताहै इसीप्रकार चन्द्रके दण्डमें शुक्ल वस्त्र, मङ्गलके दण्डमें रक्तवर्णयुक्त हारिद्रियवस्त्र, बुधके दण्डमें छिद्रयुक्त नूतनवस्त्र, बृहस्पतिके दण्डमें चित्रितवस्त्र, शुक्रके दण्डमें छिद्रयुक्त वस्त्र शनिके दण्डमे छिन्नवस्त्र और राहुके दण्डमें गर्भिणी स्त्री प्रसवसमय शुक्लतर अथच जीर्णवस्त्र पहिरे होतीहै॥ २४ ॥ २५ ॥

इति दिवादण्डज्ञानम् ।

अथ रात्रिदण्डज्ञानम् ।

यामार्द्धाधिपतेर्दण्डः प्राग्ज्ञेयो जन्मवासरे ।
षडावृत्त्या क्रमेणैव निशादण्डाधिपा यथा ॥ २६ ॥

अर्थ--अब रात्रिके दण्डाधिपति ग्रहोको कहतेहै । रात्रिके प्रथम दण्डका स्वामी यामार्द्धाधिपति होताहै यामार्द्धपतिसे गिनकर छय २ ग्रहके अन्तरमें द्वितीयादि दण्डके स्वामी होते है ॥ २६ ॥

अपिच ।

यस्यार्द्धयामस्तस्यैव प्राग्दण्डः समुदाहृतः ।
षट्षट्परीत्य रात्रौ तु त्रयो दण्डाधिपा यथा ।
रवौ भृगुर्बुधश्चन्द्रः परेष्वेवं प्रकल्पयेत् ॥ २७ ॥

इति मत्कृत्यमुक्तावल्याम् ।

अर्थ-जिसका यामार्द्ध प्रथम दण्डका स्वामी वही ग्रह होय. रात्रिमें दण्डके स्वामी ग्रहसे गिनकर छटा ग्रह दूसरे दण्डका मालिक होताहै. इस नियमसे तीसरे और चौथे दण्डका स्वामी जाना जाताहै । रात्रिमे सूर्य्यके यामार्द्धमें प्रथम दण्डका मालिक सूर्य होताहै. दूसरे दण्डका मालिक शुक्र. तीसरे दण्डका मालिक बुध और चौथे दण्डका मालिक चन्द्र होताहै । अन्यान्य यामार्द्धमे भी यही नियम जानना चाहिये । २७ ॥

अन्यच्च ।

आदित्ये भृगुबोधनौ शशधरश्चन्द्रे शनीज्यौ कुजे
भौमेऽर्कः सितसौरजौ शशिसुते राहवार्कसौरीज्यकाः ॥
जीवेऽङ्गाररवी भृगुर्भृगुसुते राहीज्यचन्द्रान्तकाः
[illegible] जीवसितौ [illegible] रात्रौ च दण्डाधिपाः ॥ २८ ॥

इति [illegible]

अर्थ—अब दण्डके स्वामीको स्पष्ट रीतिसे वर्णन करतेहैं । सूर्य्यके यामार्द्धमे प्रथम दण्डका स्वामी सूर्य्य होताहै, दूसरे दण्डका मालिक शुक्र, तीसरे दण्डका मालिक बुध और चौथे दण्डका मालिक चन्द्र ग्रह होताहै इसीप्रकार चन्द्रके यामार्द्धमें चन्द्र, शनि, बृहस्पति और मङ्गल होताहै, मङ्गलके यामार्द्धमें-मङ्गल, सूर्य्य, शुक्र और बुध होताहै, बुधके यामार्द्धमे बुध, चन्द्र, शनि और बृहस्पति होताहै, बृहस्पतिके यामार्द्धमें बृहस्पति, मङ्गल,सूर्य्य और शुक्र होताहै, शुक्रके यामार्द्धमें शुक्र, बुध, चन्द्र और शनि होताहै और शनिके यामार्द्धमे शनि, बृहस्पति, मङ्गल और सूर्य्य क्रमानुसार रात्रिदण्डके स्वामी होतेहैं ॥ २८ ॥

अथ जन्मसमये पितुः परोक्षादिज्ञानम् ।

वाच्यं शिशोर्जन्म पितुः परोक्षं क्षपाकरे पश्यति नैव लग्नम् ॥
चरस्थितेऽर्केऽष्टमधर्मगे वा जातः परोक्षे विपरीतिवाच्यम् ॥२९॥

इति भीमपराक्रमे ।

अर्थ—पिताके असमक्षमे (पीछे) बालकका जन्म कहतेहैं । यदि चन्द्रमाकी दृष्टि जातलग्नमें न होय और सूर्य्य चरराशिमे रहकर अष्टम वा नवमस्थायी होय तब उस लग्नमें जात बालक पिताके परोक्षमें जन्म हुआहै ऐसा जानना चाहिये ॥ २९

लग्ने स्थिते वा दिननाथसूनौ यामित्रसंस्थेऽप्यथवा महीजे ॥
चन्द्रे च शुक्रेन्दुजमध्यगे वा विदेशसंस्थे पितरि प्रजातः ॥ ३०

इति भीमपराक्रमे ।

अर्थ—जातलग्नमें यदि शनैश्चर स्थित होय और मङ्गल इस लग्नके सातमे स्थान होवै तो बालकका जन्म पिताके विदेश समयमें होताहै और जन्मकालमे शुक्र औ बुधके मध्यमें चन्द्रमा स्थित होनेसेभी बालकके जन्मसमय उसका पिता परदेशमें ? ऐसा जानना चाहिये ॥ ३० ॥

अथ जारज (अन्यपुरुषजातसन्तान) योगः ।

न लग्नमिन्दुञ्च गुरुर्निरीक्षते न वा शशाङ्कं रविणा समायुतम् ॥
सपापकोऽर्केण युतोऽथवा शशी परेण जातं प्रवदन्ति निश्चयात् ॥ ३१ ।

(क) जारजयोगमाह—न लग्नमिति । गुरुर्यदि लग्नं चन्द्रञ्च न निरीक्षते तदैको जारजयोग स्यात् लग्ने दृष्टे सत्यपि रवियुक्तं चन्द्रं यदि गुरुर्न निरीक्षते तदा द्वितीय अथवा लग्नं पश्यतु वा पश्यतु यदि सार्कः शशी अन्यपापग्रहेण युक्तः स्यात्तदा बुधा परजातमेव वदन्ति । तथ लघुजातके "पापयुतोऽर्कः सेन्दुः पश्यति होरां न चन्द्रमपि जीवः । पश्यति मार्को नेन्दुः यदि जातो न परैर्जातः" तथा जारजयोगान्तरमुक्तं 'द्वादश्याञ्च द्वितीयायां सप्तम्याम्' इत्यादि । इति ।

अर्थ--अब अन्यपुरुषजात सन्तानका योग वर्णन करतेहैं । यदि जन्मसमय बृहस्पति लग्न और चन्द्रको न देखताहोय तब वह बालक अन्य पुरुषसे उत्पन्न होताहै और यदि लग्नमे बृहस्पतिकी दृष्टि होय किन्तु रवियुक्त चन्द्रको वह न देखैं तब वह बालक अन्य पुरुषसे उत्पन्न होताहै । लग्नमें बृहस्पतिकी दृष्टि होय वा न होय रवियुक्त चन्द्र यादि अन्य पापग्रहके साथ एक घरमे स्थित होय तब वह बालक निश्चयही जारज होताहै, इस प्रकारसे पंडितोंने इन तीन योगोको कहाहै ॥ ३१ ॥

अन्यच्च ।

अजीवभागे ह्यनिरीक्षिते वा जीवेन चन्द्रेऽथ विलग्नभे वा ॥
जातं परोद्भूतमिति ब्रुवन्ति हारीतगर्गप्रमुखा मुनीन्द्राः ॥ ३२ ॥

अर्थ–अब अन्य प्रकारसे जारजयोग कहतेहै । लग्नसे वा चन्द्रसे यदि बृहस्पतिका किसीप्रकार सम्बन्ध न होय तो उस बालकको अन्यपुरुषजात हारीत गर्गप्रभृति मुनिगणोने कहाहै ॥ ३२ ॥

अपरश्च ।

द्वादश्याञ्च द्वितीयायां सप्तम्यां भग्नऋक्षके ।
रविमन्दकुजे वारे जारजः स प्रकीर्त्तितः ॥ ३३ ॥

अर्थ--अब प्रकारान्तरसे जारज योग कहतेहै । द्वादशी द्वितीया और सप्तमी तिथि, भग्नपादनक्षत्र और रवि शनि और भौमवार इसके अन्यतम तिथि, नक्षत्र और वार यदि एकसमय हो और उसमे बालक उत्पन्न होय–तो उस बालकको जारज (दूसरेकी सन्तान) कहतेहै इस जारजयोगका प्रतिप्रसव नही होताहै ॥ ३३ ॥

अथ जारजयोगभङ्गः ।

गुरुक्षेत्रगते चन्द्रे तद्युक्ते वान्यवेश्मनि ।
तद्द्रेष्काणे नवांशे वा जायते न परेण सः ॥ ३४ ॥ (ख)

अर्थ–अब जारज योगके प्रतिप्रसवको कहतेहैं । यदि चन्द्र बृहस्पतिके घरमे (धन वा मीनराशिमे) होय तो जारज योगमे बालक उत्पन्न होनेसे भी जारज नही होताहै । और धन मीनभिन्न अन्य राशिमे- चन्द्र गुरुयुक्त होनेसे बालक अन्यसे जात

नहीं होताहै और बृहस्पतिके द्रेक्काणमें वा बृहस्पतिके नवांशमे चन्द्र होनेसेभी जात बालक जारज नहीं होताहै ॥ ३४ ॥

अन्यच्च ।

शशाङ्को जीवसंयुक्तस्तदंशे वा भवेद्यदि ।
जीवक्षेत्रगतो वापि न जातः परतस्तदा ॥ ३५ ॥

अर्थ–अब अन्यप्रकारसे जारज योगका भङ्ग कहतेहैं । चन्द्र यदि बृहस्पतियुक्त वा बृहस्पतिके नवांशमें अथवा बृहस्पतिके क्षेत्रमें स्थित होय तो जारज योगमें जात बालक जारज नही होताहै । यह समस्त प्रतिप्रसव "न लग्नमिन्दुश्च" इत्यादि वचनके हैं "द्वादश्यां च द्वितीयायां" इस वचनके नही हैं ॥ ३५ ॥

अथ बालस्य पितृमातृसादृश्यज्ञानम् ।

यादृक्पश्यति सौम्यस्तत्तुल्यं गुणं सुतः समाधत्ते ।
पितृजननीसादृश्यं रवेः शशाङ्काच्च बलयोगात् ॥ ३६ ॥

अर्थ–अब बालकको पिता और माताके समान कहतेहैं । शुभ ग्रह लग्नको जिस प्रकारसे देखताहै जात बालकको तदनुरूप गुण (उसके समानही गुण) प्राप्त होताहै और सूर्यके बलानुसार जात बालक पिताके समान और चन्द्रके बलानुसार माताके समान बालक उत्पन्न होताहै ॥ ३६ ॥

अथ गण्डयोगः ।

अश्विनीमघमूलानां तिस्रो गण्डाद्यनाडिकाः ।
अन्त्याः पौषणोरगेन्द्राणां पञ्चैव यवना जगुः ॥ ३७ ॥ (अ)

अर्थ–अब गण्डयोग कहतेहैं ! अश्विनी, मघा और मूलनक्षत्रके प्रथम तीन दण्डको गण्ड कहतेहैं । रेवती, आश्लेषा और ज्येष्ठा नक्षत्रके शेष तीन दण्डको भी गण्ड कहतेहैं ॥ ३७ ॥

अथ गण्डयोगस्य कालनिर्णयः ।

मूलेन्द्रयोर्दिवा गण्डो निशायां पितृसर्पयोः ।

(अ) गण्डयोगमाह–अश्विनीति । अश्विनीमघामूलानां गण्डाद्यनाडिका गण्डसञ्ज्ञकप्रथमनाडिकास्तिस्रो जगुरित्यर्थः । केचित्तु आद्यनाडिकास्तिस्रो गण्डा गण्डसञ्ज्ञका जगु. तन्मतेनशनादि निर्दिष्टमनित्यमिति पुनः सन्धिः । रेवत्याश्लेषाज्येष्ठानामन्त्याः । पञ्चैव नाडिका गण्डसंज्ञका जगुरित्यर्थ. । स

सन्ध्याद्वये तथा ज्ञेया रेवती तुरगर्क्षयोः ॥ ३८ ॥ (आ)

अर्थ-मूल और ज्येष्ठानक्षत्रमे जो गण्ड होताहै उसको दिवागण्ड कहतेहैं मघा और आश्लेषा नक्षत्रका जो गण्ड होताहै उसको रात्रिगण्ड कहतेहैं, रेवती और अश्विनीनक्षत्रमें जो गण्ड होताहै उसको सन्ध्यागण्ड कहतेहैं ॥ ३८ ॥

अथ गण्डारिष्टकथनम्।

सन्ध्यारात्रिदिवाभागे गण्डयोगोद्भवः शिशुः।
आत्मानं मातरं तातं विनिहन्ति यथाक्रमम् ॥ ३९ ॥ (इ)

अर्थ-अब गण्डारिष्ट कहतेहै। सन्ध्यासमय रेवती और अश्विनी नक्षत्रके गण्डमें जात बालक स्वयं विनष्ट होजाताहै। रात्रिकालमे मघा और आश्लेषा नक्षत्रके गण्डमें जात बालकके माताकी मृत्यु होतीहै और दिनमे मूल और ज्येष्ठानक्षत्रके गण्डमें जो बालक उत्पन्न होताहै उसके पिताकी मृत्यु होजातीहै ॥ ३९ ॥

अन्यच्च।

मूलायाः प्रथमे पादे पितुर्वपुः प्रणश्यति।
द्वितीये नियतां पीड़ां मातुः कुर्य्यात्पितुस्तथा ॥ ४० ॥
तृतीये धननाशाय चतुर्थे सर्वसम्पदः।
व्यत्ययेन फलं ज्ञेयमाश्लेषास्वपि पूर्ववत् ॥ ४१ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे।

(आ) गण्डयोगस्य कालनैयत्यमाह-मूलेन्द्रयोरिति। मूलज्येष्ठयोर्गण्ड दिवा दिवस एव स्यात्। पितृसर्पयोस्तु निशायामेव गण्ड स्यात्। अश्विनीरेवत्यो. सन्ध्याद्वय एव गण्ड स्यादि- त्यर्थः। [illegible]।

अर्थ- ज्योतिषतत्त्वमें लिखाहै कि, मूलके प्रथमपादमें जात बालकको पिताका वियोग होताहै, दूसरे पादमें जन्म होनेसे माता पिताको सर्वदाही पीडा रहतीहै, तीसरे पादमे जन्म होनेसे धनका नाश होताहै. और चौथे पादमें जन्म होनेसे बालककी समस्त सम्पत्तियोका नाश होजाताहै। आश्लेषादि नक्षत्रमें जन्म होनेसे इसके विपरीतभावसे फल होताहै अर्थात् प्रथमपादमे सर्वसम्पत्तियोका नाश होजाताहै, दूसरे पादमें धनक्षय इत्यादि ॥ ४० ॥ ४१ ॥

अथ गण्डापवादः ।

दिवा जाता तु या कन्या निशि जातश्च यः पुमान् ।
नोभयोर्गण्डदोषः स्यान्नाचलो हन्ति पर्वतम् ॥ ४२ ॥

इति ज्योतिस्तत्वे ।

अर्थ—अब गण्डदोषका अपवाद कहतेहैं। जिस प्रकारसे पर्वतका नाश पर्वत नहीं करसक्ताहै, उसीप्रकार दिनके गण्डमें उत्पन्न हुई कन्याका और रात्रिगण्डमें जात पुरुषका गण्डदोष नही होताहै ॥ ४२ ॥

दिवागण्डे निशाजातो निशिगण्डेऽथ वा दिवा ।
नोभयोर्गण्डदोषः स्यान्नाचलो हन्ति पर्वतम् ॥ ४३ ॥

इति ज्योतिस्तत्वे ।

अर्थ—जिसप्रकार पर्वतका नाश पर्वत नही करसक्ताहै तिसीप्रकार दिवागण्डसंज्ञक नक्षत्रमें यदि रात्रिसमय जन्म होय और रात्रिगण्डसंज्ञक नक्षत्रमें यदि दिनमे जन्म होय तो उसमे गण्डदोष नही होताहै ॥ ४३ ॥

अथ गण्डारिष्टशान्तिः ।

सर्वेषां गण्डजातानां परित्यागो विधीयते ।
तातेनादर्शनं वापि यावत्षाण्मासिको भवेत् ॥ ४४ ॥

इति ज्योतिस्तत्वे ।

अर्थ—गण्डयोगमे जो बालक उत्पन्न होय तो उसको परित्याग करना चाहिये अथवा जबतक छय मासका बालक न होय तबतक उस बालकका दर्शन पिताको न करना चाहिये ॥ ४४ ॥

कुंकुमं चन्दनं कुष्टं गोरोचनमथापि वा ।

घृतेनैवान्वितं कृत्वा चतुर्भिः कलशैर्बुधः ॥ ४५ ॥ (ई)
सहस्राक्षेण मन्त्रेण बालकं स्नापयेत्ततः ।
पितृयुक्तं दिवाजातं मातृयुक्तञ्च रात्रिजम् ॥ ४६ ॥
स्नापयेत्पितृमातृभ्यां सन्ध्ययोरुभयोरपि ।
वल्मीकमृत्तिकां दद्यान्नद्याश्च तटमृत्तिकाम् ॥ ४७ ॥
गोविषाणमृदश्चैव दन्तिमृत्सां च निक्षिपेत् ।
तीर्थाम्भः पञ्चगव्येन स्नानं मातुः पितुः शिशोः ॥ ४८ ॥
कांस्यपात्रं घृतैः पूर्णं गण्डदोषोपशान्तये ।
दद्याद्धेनुं सुवर्णञ्च ग्रहांश्चापि प्रपूजयेत् ॥ ४९ ॥

अर्थ—अब गण्डदोषकी शान्ति कही जातीहै । कुङ्कुम, चन्दन, कूठ, गोरोचन और घृत इनको चार कलशमे रखकर उनको जल भरै अनन्तर इन्ही कलशोके जलद्वारा "ॐ सहस्राक्षेण शतशारदेन" इत्यादि मन्त्रको पढ़कर दिवागण्डजात बालकको पिताके साथ स्नान करावै, इसी प्रकार रात्रिगण्डजात बालकको माताके साथ स्नान करावै और दोनों सन्ध्यागण्डजात बालकको पिता और माताके साथ स्नान कराना चाहिये और वल्मीकमृत्तिका, नदीके समीपकी मृत्तिका, गोदन्तोद्धृत मृत्तिका, और हस्तिदन्तोद्धृतमृत्तिका और पञ्चगव्योको तीर्थके जलमे मिलाकर उसके द्वारा माता, पिता और बालकका स्नान करावै अनन्तर घृतपूर्ण कांस्यपात्र, धेनु और सुवर्ण दान और

ग्रहोंकी पूजा करावै तभी गण्डदोषकी शान्ति होतीहै (अर्थात् गण्डदोष दूर होजाताहै) ॥ ४४–४९ ॥

अथ मात्रारिष्टम् ।

केन्द्रत्रिकोणगःपापोमातृहासप्तवासरात् ।
सपापाद्भार्गवात्पापोहिबुकेमातृनाशकृत् ॥ ५० ॥ (उ)

अर्थ–अब माताके अरिष्ट ग्रहोंको कहतेहैं । जन्मसमयका लग्नमे वा लग्नसे चौथे, दशमें, सातमें, नवमें और पांचमें स्थानमें यदि बलवान् पापग्रह स्थित होय तो जात मनुष्यके सातदिनके मध्यमें माताकी मृत्यु होतीहै और पापग्रहयुक्त शुक्रसे चौथे स्थानमें पापग्रह होनेसेभी जात बालकके माताकी मृत्यु होतीहै ॥ ५० ॥

अन्यच्च ।

लग्नाच्चतुर्थगःपापोयदिस्याद्बलवत्तरः ।
तदामातृवधंकुर्य्यात्तत्केन्द्रेचापरोयदि ॥ ५१ ॥ (ऊ)

अर्थ–अब अन्य प्रकारसे माताके अरिष्ट ग्रह कहतेहैं । जन्मलग्नसे चौथे स्थानमें यदि बलवान् पापग्रह स्थित होय और उसके केन्द्रमे (उसी स्थानमे और चौथे, सातमें दशमें) यदि पापग्रह होय तब जात बालककी माताकी मृत्यु होतीहै ॥ ५१ ॥

अपरञ्च ।

शनिमङ्गलयोर्मध्ये यदि तिष्ठति चन्द्रमाः ।
तदा मातृवधो ज्ञेयो भौमार्कौ संयुतौ यदि ॥ ५२ ॥

अर्थ–अब अन्य प्रकारसे मात्रारिष्ट कहतेहैं । शनि और मङ्गलके मध्यमें यदि चन्द्र होय और मङ्गल सूर्य्यके साथमे होय तो उसी समयमें जात बालकके माताकी मृत्यु होतीहै ॥ ५२ ॥

प्रकारान्तरञ्च ।

चन्द्रमा यदि पापेन त्रयेणैवेह वीक्षितः ।
मातृनाशो भवेत्तस्य षष्ठः पापो भवेद्यदि ॥ ५३ ॥

(उ) मात्रारिष्टमाह–केन्द्र इति । केन्द्रगस्त्रिकोणगश्च बलवान्पापः सप्तदिनान्मातृहा स्यात् योगान्तरं स पापाद्भार्गवात्पापयुक्ताच्छुक्राच्चतुर्थस्थः पापो मातृहा स्यात् ।

(ऊ) योगान्तरमाह–लग्नादिति । लग्नाच्चतुर्थो बलवान्पापः तत्केन्द्रे चापरः पापो यदि स्यात्तदा मातृवधं जानीयात् । तथा योगान्तरं शनिमङ्गलयोर्मध्य इत्यादिवःप्रमाणावचनात् इति ।

अर्थ-चन्द्रमापर यदि तीन पाप ग्रहोंकी दृष्टि होय और जन्मलग्नसे छठे स्थानमें पापग्रह होय तब जात बालकके माताकी मृत्यु होतीहै ॥ ५३ ॥

लग्नाच्चतुर्थगः पापो यदि स्याद्बलवत्तरः ।
नूनं मातृवधं कुर्य्याच्चन्द्राच्चैव विशेषतः ॥ ५४ ॥

अर्थ-जन्मलग्न वा जन्मलग्नसे छठे स्थानमें बलवान् पापग्रहोंके स्थित होनेसेही जात बालकके माताकी मृत्यु होतीहै ॥ ५४ ॥

चन्द्रः पापसमायुक्तो लग्नकेन्द्रगतो यदि ।
तदा मातुर्वधो ज्ञेयः सप्ताहान्नात्र संशयः ॥ ५५ ॥

अर्थ-जन्मसमय पापग्रहयुक्त चन्द्रमा यदि लग्नके केन्द्र स्थानमे स्थित होय तब सातदिनके मध्यमे जात बालकके माताकी मृत्यु होतीहै ॥ ५५ ॥

चन्द्राष्टमगते भौमे शत्रुस्थे शत्रुवीक्षिते ।
मातुस्तस्य भवेद्धानिः पिता चासीद्विदेशगः ॥ ५६ ॥

अर्थ-जन्मसमय चन्द्रमाके आठमे स्थानमे मङ्गल स्थित होकर यदि शत्रुयुक्त हो वा शत्रुको देखताहोय तब जात बालकके माताकी मृत्यु होतीहै और पिता विदेशको चलाजाताहै ॥ ५६ ॥

प्रसवे रात्रिसमये चन्द्रः पापगृहे स्थितः ।
माता च म्रियते तस्य यदि पापैः समन्वितः ॥ ५७ ॥

अर्थ-रात्रिजात बालकके जन्मसमयका चन्द्रमा यदि पापग्रहके घरमें स्थित होकर पापग्रहयुक्त होय तो उसके माताकी मृत्यु होतीहै ॥ ५७ ॥

अथवा क्षीणचन्द्रञ्च पापाः पश्यन्ति सर्वदा ।
शुभग्रहा न पश्यन्ति माता च म्रियते ध्रुवम् ॥ ५८ ॥

अर्थ-रात्रिमें जन्मसमयका चन्द्रमा यदि क्षीण होय और इस चन्द्रमापर पापग्रहकी दृष्टि होय शुभग्रहकी दृष्टि न होय तो जात बालकके माताकी शीघ्रही मृत्यु होतीहै ॥ ५८ ॥

निधनारिगतश्चन्द्रो भौमो वा सप्तमे स्थितः ।
तदा मातुर्विनाशः स्याद्यदि पापैः समन्वितः ॥ ५९ ॥

होकर पापग्रहयुक्त होय अथवा मङ्गल सातवें स्थानमें पापग्रहके साथ स्थित होय तो जात बालकके माताकी मृत्यु होतीहै ॥ ५९ ॥

पापगेहे स्थिते शुक्रे पापैर्वा पापगेहगे ।
शुभग्रहा न पश्यन्ति माता च म्रियते ध्रुवम् ॥ ६० ॥

अर्थ–जन्मसमय शुक्र यादि पापग्रहके घरमे होय वा पापग्रहके साथ पापग्रहके स्थानमें स्थित होय और उसके ऊपर शुभग्रहकी दृष्टि न होय तो जात बालकके माताकी शीघ्रही मृत्यु होतीहै ॥ ६० ॥

प्रसवे च दिवाभागे शुक्रे वा पापसंयुते ।
अथवा पापसंदृष्टे माता संम्रियते ध्रुवम् ॥ ६१ ॥

अर्थ–दिनमें जात बालकके जन्मसमय शुक्र यादि किसी पापग्रहके साथ होय अथवा शुक्रपर पापग्रहकी दृष्टि होय तो जात बालकके माताकी शीघ्रही मृत्यु होतीहै ॥ ६१ ॥

अथारिष्टभङ्गयोगः ।

आत्मक्षेत्रगते शुक्रे पापैर्वा पापगेहगे ।
शुभग्रहाः प्रपश्यन्ति रिष्टभङ्गस्तदा भवेत् ॥ ६२ ॥

अर्थ–अब शुक्रारिष्टभङ्गयोग कहतेहैं शुक्र यादि अपने घरमें होय वा पापग्रहके साथ पापग्रहके घरमें स्थित होनेसे भी यादि शुभग्रहोंकी दृष्टि होय तो अरिष्टभङ्ग होजाताहै ॥ ६२ ॥

अथ पित्रारिष्टम् ।

कर्मस्थाने स्थितः सौरी(१) रिःफस्थाने (२) च चन्द्रमाः ।
कुजे च सप्तमे स्थाने म्रियते पितृसंज्ञकः ॥ ६३ ॥

अर्थ–अब पिताके अरिष्टग्रह कहतेहैं । जन्मलग्नसे शनि यादि दशमे स्थानमे होय और चन्द्रमा बारहवें स्थानमे होय और मङ्गल सातमे स्थानमें स्थित होय तो जात बालकके पिताकी मृत्यु होतीहै ॥ ६३ ॥

अन्यच्च ।

तमोहा यदि पापेन त्रयेणैवेह वीक्षितः ।
शुभैरयुतदृष्टश्च पितुरप्यन्तमादिशेत् ॥ ६४ ॥

---

(१) स्थिते सौम्ये इति पाठः ।
(२ रिपुस्थाने च चन्द्रमा इति पाठान्तरम् ।

अर्थ—जन्मसमय सूर्य्य यदि शुभग्रहयुक्त न होय और शुभग्रहकी सूर्य्यपर दृष्टिभी न होय केवल तीन पाप ग्रहोकी दृष्टि होय तो जात बालकके पिताको मृत्यु होतीहै॥ ६४॥

अपरञ्च ।

अष्टमस्थो यदा भानुर्लग्ने च राहुसंयुते ।
पिता वा म्रियते तस्य स्वयं वा म्रियते शिशुः ॥ ६५ ॥

इति सोमसिद्धान्ते ।

अर्थ—जन्मलग्नके आठमे स्थानमे सूर्य्य और लग्नमें यदि राहु स्थित होय तो जात बालकके पिताकी मृत्यु होतीहै वा जात बालककीही मृत्यु होतीहै ॥ ६५ ॥

प्रकारान्तरञ्च ।

सूर्य्याच्च सप्तमे राशौ शनिभौमौ यदा स्थितौ ।
तदा पितृवधो ज्ञेयस्तयोर्मध्येऽथवा रविः ॥ ६६ ॥

इति सोमसिद्धान्ते ।

अर्थ—जन्मसमय सूर्य्यसे सातवी राशिमें यदि शनि और मङ्गल स्थित होय अथवा शनि और मङ्गलके मध्यमे सूर्य्य होय तो जात बालकके पिताकी मृत्यु होतीहै ॥ ६६ ॥

अपिच ।

अष्टमस्थो यदा चन्द्रो गुरुराहू द्वितीयगो ।
सौरिभौमेक्षिते मित्रे पितृहा सप्तवासरात् ॥ ६७ ॥

अर्थ—जन्मसमय यदि चन्द्रमा आठवे स्थानमे होय और बृहस्पति और राहु दूसरे स्थानमे होय और शनि और मङ्गलकी दृष्टि सूर्य्यपर होय तो सात दिनके मध्यमें जात बालकके पिताकी मृत्यु होतीहै ॥ ६७ ॥

अन्यच्च ।

लग्नाष्टमे गते भौमे द्वादशे द्वित्रयेखले ।
पितृघाती भवेन्नित्यं शुभैर्यदि न दृश्यते ॥ ६८ ॥

अर्थ—जन्मलग्नके आठवें वा नवमें स्थानमें सूर्य्य, सातमे स्थानमें मङ्गल और दूसरे स्थानमें शनि होय और इनपर शुभग्रहोंकी दृष्टि न होय तो जात बालकके पिताकी मृत्यु होतीहै ॥ ६९ ॥

प्रकारान्तरञ्च ।

निधनारिगतश्चन्द्रः सौरिभौमेक्षितो यदि ।
शुक्रगुर्वोर्न चालोकी सपिता म्रियते शिशुः ॥ ७० ॥

अर्थ—जन्मसमय यदि चन्द्रमा आठवे वा छटे स्थानमें स्थित होय और इसपर शनि और मङ्गलकी दृष्टि होय और शुक्र और बृहस्पतिकी दृष्टि चन्द्रमापर न होय तव बालककी पिताके साथ मृत्यु होतीहै ॥ ७० ॥

अथ पितृमातृहा योगः ।

भौमे वा निधने चन्द्रः पापयुक्तो भवेद्यदि ।
पितृघाती परोक्षे च माता च म्रियते ध्रुवम् ॥ ७१ ॥

अर्थ—लग्नके आठवे स्थानमें मङ्गल वा चन्द्रमा यदि पापग्रहके साथ स्थित होय त पिता और माताकी मृत्यु होतीहै ॥ ७१ ॥

अपिच ।

दिवार्कशुक्रौ पितृमातृसंज्ञितौ शनैश्चरेन्दू निशि तद्विपर्य्ययात् ।
पितृव्यमातृष्वसृसंज्ञितौ तावथौजयुग्मर्क्षगतौ तयोः शुभौ ॥७२॥

इति बृहज्जातके ।

अर्थ—बालकका दिनमें जन्म होनेसे सूर्य्यकी पितासंज्ञा और शुक्रकी मातासज्ञा होतीहै और रात्रिमें जन्म होनेसे शनिकी पितासज्ञा और चन्द्रमाकी मातासज्ञा होतीहै । और दिनमे जन्म होनेसे शनिकी पितृव्य (चचा संज्ञा होतीहै और चन्द्रमाकी मातृष्वसृ (मौसी) संज्ञा होतीहै, और रात्रिमे जन्म होनेसे सूर्य्यकी पितृव्य (चचा) संज्ञा और शुक्रकी मातृष्वसृ (मौसी) संज्ञा होतीहै । उक्त समस्त संज्ञाओंकाप्रयोजन यही है कि सूर्य्य, शुक्र, शनि और चन्द्रमा इन सब ग्रहोंकी स्थिति और बलाबलद्वारा जात बालकके पिता, माता, चचा और मौसीका शुभाशुभ फल माना जाताहै ॥ बालकका दिनमें जन्म होनेमे यदि सूर्य्य विषमराशिमे (मेष, मिथुन, सिंह, तुला, धन वा कुम्भराशिमें) स्थित होय तो जात बालकके पिताका शुभ होताहै और इन समस्त राशिओमें सूर्य्य होनेसे यदि रात्रिमें जन्म होय तव पितृव्य (चचा) को शुभ होताहै । रात्रिमे जन्म होनेसे यदि शनैश्चर विषम राशिमे स्थित

होय तो पिताको शुभकारक होताहै, दिनमें जन्म होनेसे यदि शनि विषमराशिमें होय तब पितृव्य (चचा) को शुभकारक होताहै और इसके विपरीतमे विपरीत भावसे फल होताहै। दिनमे जन्म होनेसे यदि सूर्य्य समराशिमे (वृष, कर्क, कन्या, वृश्चिक, मकर वा मीन राशिमें) होय तब पिताको अशुभकारक होताहै और रात्रिमें समराशिमें सूर्य्य होनेसे पितृव्य (चचा) को अशुभकारक होताहै ॥ दिनमे शुक्र समराशिमे माताको शुभ होतेहै और रात्रिमें शुक्र समराशिमे स्थित होनेसे मौसीको शुभ होताहैं। इसी प्रकार रात्रिमे चन्द्र समराशिमें होनेसे माताको अशुभ होताहै। और दिनमें समराशि गत होनेसे मौसीको अशुभ होताहै। दिनमे शुक्र विषम राशिमे होनेसे माताको अशुभ होताहै और रात्रिसमय विषमराशिमे होनेसे शुक्र मौसीको अशुभ हाताहै और रात्रिमे चन्द्रमा विषम राशिमें होनेसे माताको अशुभ होताहै और दिनमें चन्द्रमा विषमराशिमे होनेसे मौसीको अशुभ होताहै ॥ ७२ ॥

अथ शिश्वरिष्टम्।

तत्रादौ सूर्य्यारिष्टम्।

पापास्त्रिकोणकेन्द्रेषु सौम्याः षष्ठाष्टमव्ययगताश्चेत्।
सूर्य्योदये प्रसूतः सद्यः प्राणांस्त्यजति जन्तुः ॥ ७३ ॥ (१)

अर्थ-अब बालकके अरिष्ट ग्रह कहतेहै। पापग्रह यदि जन्मलग्नके नवमे, पांचवें, वा अपने घरमे अथवा चौथे वा दशवे घरमे स्थित होय और शुभग्रह यदि लग्नके छठे, आठवे वा बारहवे स्थान स्थित होय तो सूर्य्योदयकालमें प्रसूत बालकको उसी समय मृत्यु होतीहै ॥ ७३ ॥

इति सूर्य्यारिष्टम्।

अथ चन्द्रारिष्टम्।

षष्ठेऽष्टमे चन्द्रः सद्यो मरणाय पापसंदृष्टः।
अष्टाभिः शुभदृष्टो वर्षैर्मिश्रैस्तदर्द्धेन ॥ ७४ ॥ (२)

जो शुभाशुभ ग्रहोंकी चन्द्रमापर दृष्टि होय तो चार महीनेके मध्यमें जात बालककी मृत्यु होतीहै ॥ ७४ ॥

अथ चन्द्रारिष्टभङ्गः ॥

पक्षे सिते भवति जन्म यदि क्षपायां
कृष्णे तथाहनि शुभाशुभदृष्टमूर्त्तिः ।
तं चन्द्रमा रिपुविनाशगतोऽपि यत्ना-
दापत्सु रक्षति पितेव शिशुं न हन्ति ॥ ७५ ॥ (३)

अर्थ—अब चन्द्रारिष्टका अपवाद कहतेहैं । शुक्लपक्षमे रात्रिसमय जात बालक और कृष्णपक्षमें दिनमें जात बालकको छठे वा आठवें राशिमें स्थित चन्द्रमा शुभाशुभ ग्रहोंकी दृष्टि होनेसेभी क्रमानुसार पिता पुत्रकी समान रक्षा करताहै और किसीप्रकार-का अनिष्टसाधन नही करताहै ॥ ७५ ॥

अथ पापयुतचन्द्रारिष्टम् ।

सुतमदननवान्त्यरन्ध्रलग्नेष्वशुभयुतो मरणाय शीतरश्मिः ।
भृगुसुतशशिपुत्रदेवपूज्यैर्यदि बलिभिर्न युतोऽवलोकितो वा ॥ ७६ ॥

अर्थ—जन्मसमय चन्द्रमा यदि किसी पापग्रहके साथमे होकर लग्नमें वा लग्नके पांचमें, सातमे, नवमे, बारहवे वा आठवे स्थानमे स्थित होय और शुक्र, बुध, वा बृहस्पति यदि इस चन्द्रमाको न देखतेहों वा उसके (चन्द्रमाके) साथ न होवे तो जात बालककी मृत्यु होतीहै ॥ ७६ ॥

अन्यच्च ।

द्यूनचतुरस्रसंस्थे पापद्वयमध्यगे शशिनि जातः ।
विलयं प्रयाति नियतं देवैरपि रक्षितो बालः ॥ ७७ ॥ (५)

अर्थ—जन्मसमय चन्द्रमा यदि दो पाप ग्रहोंके मध्यमे होकर लग्नके सातमें, चौथे,

---

(३) उक्तचन्द्रारिष्टभङ्गमाह—पक्षइति । शुक्लपक्षे रात्रौ यदि जन्म कृष्णपक्षे च दिवा यदि जन्म तदा शुभेनाशुभेन वा दृष्टश्चन्द्रः षष्ठाष्टमगोऽपि आपत्सु तं बालं रक्षति न हन्ति पितेव पुत्रमिति ।

(४) चन्द्रारिष्टमाह—सुतेति । शुक्रबुधगुरूणामेकेनापि दृष्टे युक्ते वा चन्द्रे योगभङ्गः स्यादित्यर्थः ।

(५) चन्द्रारिष्टान्तरमाह—द्यूनेति । लग्नात्सप्तमचतुर्थाष्टमस्थे चन्द्रे पापद्वयमध्यगे जातो विलयं प्रयाति सप्तमचतुर्थ द्वितीयद्वादशस्थयोरेकराशिस्थयोर्वा पापयोरित्यर्थः ।

अथवा आठमें स्थित होय तो उस बालकका रक्षा करनेमे देवतागणभी असमर्थ होतेहैं अर्थात् उसकी निश्चयही मृत्यु होतीहै ॥ ७७ ॥

अथ लग्नस्थक्षीणेन्दुरिष्टम् ।

क्षीणे शशिनि विलग्ने पापैः केन्द्रेषु मृत्युसंस्थैर्वा ।
भवति विपत्तिरवश्यं यवनाधिपतेर्मतञ्चैतत् ॥ ७८ ॥ (६)

अर्थ–जन्मसमय क्षीण चन्द्रमा यदि लग्नमें स्थित होय और पापग्रहगण यदि लग्नमे वा लग्नके चौथे, सातमे, दशमे अथवा आठवें होय तो उस जात शिशु (बालक) की अवश्यही मृत्यु होतीहै, इसप्रकार यवनाचार्य्यने कहाहै ॥ ७८ ॥

अथ त्रिंशांशविशेषस्थचन्द्रारिष्टम् ।

नागगोसिद्धिजातीषु क्ष्माऽब्धित्र्यश्विधृतिर्नखाः ।
क्ष्माश्विदिक्चेत्यजाद्यंशे तत्तुल्याब्दैर्विधौ व्यसुः ॥ ७९ ॥ (७)

अर्थ–राशिको त्रिंशांशभागमे विभक्त करनेसे उसको त्रिशांश कहतेहै इस त्रिशांश भागमे मेषके आठ, वृषके नौ, मिथुनके चौविस, कर्कके बाईस, सिंहके पांच, कन्याका एक, तुलाके चार, वृश्चिकके तेईस, धनके अठारह, मकरके वीस, कुम्भके इक्कीस और मीनके दशमांशके मध्यमे यदि किसी बालकका जन्म होय तो उस बालककी उक्त सङ्ख्याक वर्षके मध्यमे मृत्यु होतीहै ॥ ७९ ॥

इति चन्द्रारिष्टम् ।

---

(६) चन्द्रारिष्टान्तरमाह–क्षीणइति । क्षीणे चन्द्रे लग्नस्थे केन्द्रेषु स्थितैः पापैरष्टमस्थैर्वा जातस्य विपत्तिरवश्यं भवेदित्यर्थः । एषु पूर्वोक्तश्लोकत्रयेषु योगेषु कालनियमस्त्वयं चन्द्रो यदा योगकर्त्तुर्बलस्य स्थानं स्वगृहं वा जन्मलग्नं वा गतो बलवान् पापदृष्टश्च स्यात्तदा वत्सराभ्यन्तरे मरणं स्यात् तथाच सारावल्याम्–"योगे बलिनः स्थानं स्वं वा लग्नं गतेऽपि वा चन्द्रे । बलवति चाशुभदृष्टे आवर्षाभ्यन्तरे मृत्युः स्यात् ॥" इति ।

अथ विविधभौमारिष्टम् ।

भौमो विलग्ने शुभदैरदृष्टः षष्ठेऽष्टमे वार्कसुतेन युक्तः ॥
सद्यः शिशुं हन्ति वदेन्मुनीन्द्रः स्मरे यमारौ न शुभेक्षितौ च ॥८०॥(८)

अर्थ–मङ्गल लग्नमे स्थित होय और उसपर शुभग्रहोंकी दृष्टि न होवै अथवा लग्नके छठे वा आठवें स्थानमें शनिके साथ स्थित होय वा सातमें स्थानमें शनिके साथ मङ्गल होय और उसको शुभग्रह न देखतेहो तब जात बालककी शीघ्रही मृत्यु होतीहै ॥८०॥

अथ बुधारिष्टम् ।

कर्कटधामनि सौम्यः षष्ठाष्टमराशिगो विलग्नर्क्षात् ।
चन्द्रेण दृष्टमूर्त्तिर्वर्षचतुष्केण मारयति ॥ ८१ ॥ (९)

अर्थ–जन्मसमय लग्नके छठी वा अष्टम राशिस्थ बुध यदि कर्कराशिमे स्थित होय औ उसपर चन्द्रमाकी दृष्टि होय तो जात बालककी चार वर्षके मध्यमे मृत्यु होतीहै ॥८१ ।

इति बुधारिष्टम् ।

अथ गुर्वरिष्टम् ।

बृहस्पतिर्भौमगृहेऽष्टमस्थः सूर्य्येन्दुभौमार्कजदृष्टमूर्त्तिः ।
वर्षैस्त्रिभिर्भार्गवदृष्टिहीनो लोकान्तरं प्रापयति प्रसूतम् ॥८२॥(१०)

अर्थ–जन्मसमय बृहस्पति यदि लग्नके अष्टमस्थ होकर मेषमें वा वृश्चिक राशिमे स्थित होय और सूर्य्य, चन्द्र, मङ्गल और शनि इनकी बृहस्पतिपर दृष्टि होय, और शुक्र उसको न देखता होय तो तीन वर्षके मध्यमें जात बालककी मृत्यु होतीहै, किन्तु शुक्रकी बृहस्पतिपर दृष्टि होनेसे उक्त शिशुका अरिष्टभङ्ग होजाताहै ॥ ८२ ॥

इति गुर्वरिष्टम ।

अथ शुक्रारिष्टम् ।

रविशशिभवने शुक्रे द्वादशरिपुरन्ध्रगोऽशुभैः सर्वैः ।

---

(८) भौमारिष्टमाह–भौमइति । लग्नस्थभौमः शुभग्रहैरदृष्टः शिशु हन्ति । षष्ठाष्टमस्थ शनियुक्तश्च शिशु हन्ति सप्तमे स्थितौ यमारौ शनिकुजौ शुभग्रहैर्दृष्टौ न शिशु हन्ति इत्यर्थः ॥ इति ।

(९) बुधारिष्टमाह–कर्कटेति । कुम्भलग्नाद्धनुर्लग्नाद्वा षष्ठाष्टमगतः कर्कटस्थो बुधश्चन्द्रदृष्टश्चतुर्भिर्वर्षैः शिशुं मारयति ।

(१०) गुर्वरिष्टमाह– बृहस्पतिरिति। भौमगृहे मेषे वृश्चिके वा स्थितो गुरुः लग्नादष्टमस्थः सूर्येन्दुकुजशनिदृष्टः शुक्रेणादृष्टस्त्रिभिर्वर्षैर्जातं मारयति शुक्रेण तु दृष्टे योगभङ्ग एवेत्यर्थः ।

दृष्टः करोति मरणं षड्भिर्वर्षैः किमिह विचित्रम् ॥ ८३ ॥ (११)

अर्थ–जन्मसमय सिंह वा कर्क राशिस्थ शुक्र यदि जातलग्नके बारहवें, छठे, आठमे स्थित होय और समस्त पापग्रहोकी उसपर दृष्टि होय तो छय वर्षके मध्यमें जात बालककी मृत्यु होतीहै ॥ ८३ ॥

इति शुक्रारिष्टम् ।

अथ शन्यरिष्टम् ।

मारयति षोड़शाहाच्छनैश्चरः पापवीक्षितो लग्ने ।
संयुक्तो मासेन च वर्षाच्छुद्धस्तु मारयति ॥ ८४ ॥ (१२)

अर्थ–जन्मसमय शनि यदि लग्नमे स्थित होय और उसपर पापग्रहोंका दृष्टि होय तो सोलह दिनके मध्यमे जात बालककी मृत्यु होतीहै, और इस शनिके साथ पापग्रह होनेसे सोलह महीनेमे और पापग्रह युक्त वा पापग्रहोकी दृष्टिहीन होकर शुद्ध लग्नमें स्थित होनेसे सोलह वर्षमे जात बालककी मृत्यु होतीहै । किन्तु बलवान् शुभग्रहोंकी दृष्टि होनेसे वा युक्त होकर शनि यदि लग्नमे स्थित होय तब अरिष्टभङ्ग होजाताहै ॥ ८४ ॥

अथ शन्यरिष्टभङ्गः ।

स्वोच्चस्वजीवभवने क्षितिपालतुल्यो
लग्नेऽर्कजे भवति देशपुराधिनाथः ॥
शेषेषु दुःखगदभीतित एव बाल्ये
दारिद्र्यकामवशगो मलिनोऽलसश्च ॥ ८५ ॥

इति सारावल्याम् ।

दिका स्वामी (मालिक) होताहै । और उक्त समस्त राशिभिन्न अन्यराशिमें रहकर शनि लग्नस्थ होनेसे जातबालक दुःखी, पीडित और भीत होकर बाल्यावस्थामे दरिद्र, कामासक्त, मलीन और आलसी होताहै ॥ ८५ ॥

अन्यच्च ।

तुलाकोदण्डमीनस्थो लग्नस्थश्च शनिर्यदा ।
सर्वारिष्टं निहन्त्याशु शेषे जातो भवेद्व्यसुः ॥ ८६ ॥

अर्थ–जन्मसमय शनैश्चर यदि तुला, धन वा मीन राशिमें स्थित होकर लग्नस्थ होय तो जात बालकके समस्त अरिष्ट नष्ट हो जातेहैं; किन्तु उक्त राशियोंके भिन्न अन्य राशिमें शनि रहकर लग्नस्थ होनेसे जात बालककी मृत्यु होतीहै ॥ ८६ ॥

अपरश्च ।

तुङ्गाङ्गिरोगेहगते विलग्ने भवेन्नरेन्द्रप्रतिमःप्रसूतः ।
मार्त्तण्डजे माण्डलिकोऽथवा स्थे अन्यत्र लग्नोपगते गतायुः ॥८७॥

इति राजमार्त्तण्डे ।

अर्थ–राजमार्तण्डमें लिखाहै कि, शनैश्चर यदि उच्च स्थानमे वा बृहस्पतिके घरमे अथवा अपने घरमें स्थित होकर लग्नगत होय तो जात बालक नरेन्द्रके समान अथवा माण्डलिक होताहै । और उक्त समस्त स्थानभिन्न अन्य राशिमें होकर यदि शनैश्चर लग्नगत हो तब जात बालककी मृत्यु होतीहै ॥ ८७ ॥

इति शन्यरिष्टम् ।

अथ राह्वरिष्टम् ।

राहुश्चतुष्टयस्थो मरणाय वीक्षितो भवति पापैः ।
वर्षैर्वदन्ति दशभिः षोडशभिः केचिदाचार्य्याः ॥ ८८ ॥ (×)

अर्थ–जन्मलग्नसे चौथे स्थानमे राहु होय और उसपर पाप ग्रहोंकी दृष्टि होय तो जात बालककी दश वर्षमें मृत्यु होतीहै, किसी २ आचार्यके मतसे इस प्रकार होनेसे सोलह वर्षमें मृत्यु होतीहै ॥ ८८ ॥

अथ राह्वरिष्टभङ्गः ।

अजवृषभकर्किविलग्ने रक्षति राहुः समस्तरिष्टेभ्यः ।

(×) राह्वरिष्टमाह–राहुरिति । केन्द्रस्थो राहुः पापैर्दृष्टो मरणाय स्यात् । तच्च मरणं दशभि इति केचिद्वदन्ति षोडशभिरिति । अत्र च मेषे वृषे कर्कटे च लग्ने स्थिते राहौ अरिष्टभङ्गः स्यात् तथाच सारावल्याम्–'अजवृषभकर्किविलग्ने' इत्यादि ।

पृथ्वीपतिः प्रसन्नः कृतापराधं यथा पुरुषम् ॥ ८९ ॥

इति सारावल्याम् ।

अर्थ—अब राहुका अरिष्टभङ्ग कहतेहैं । जन्मसमयमें मेष, वृष वा कर्क लग्नमें राहु स्थित होनेसे जात बालक सब अरिष्टोंको दूर करदेताहै, जिसप्रकार अपराधी मनुष्यको प्रसन्न होकर राजा छोडदेताहै ॥ ८९ ॥

इति राह्वरिष्टम् ।

अथ केत्वरिष्टम् ।

केतुर्यस्मिन्नृक्षेऽभ्युदितस्तस्मिन्प्रसूयते यस्तु ।
रौद्रे सर्पमुहूर्ते वा प्राणैः संत्यज्यते चाशु ॥ ९० ॥ (*)

अर्थ—अब केत्वरिष्ट कहतेहैं । राशिचक्रके जिस नक्षत्रमे केतु ग्रह स्थित होय उस नक्षत्रमे, आर्द्रानक्षत्रके मुहूर्त्तमें वा आश्लेषा नक्षत्रके मुहूर्त्तमें यदि बालकका जन्म होय तो इस बालककी शीघ्रही मृत्यु होतीहै ॥ ९० ॥

इति केत्वरिष्टम् ।

अथ द्रेक्काणारिष्टम् ।

लग्ने ये द्रेक्काणा निगडाहिविहङ्गपाशधरसंज्ञाः ॥
मरणाय सप्तवर्षैः क्रूरयुता न स्वपतिदृष्टाः ॥ ९१ ॥ (×)

अर्थ—अब द्रेक्काणका अरिष्ट कहतेहैं । निगड़, सर्प, पक्षी और पाशधरसंज्ञक द्रेक्काण लग्नगत होय और उनपर पापग्रहोंकी दृष्टि होय और उनके स्वामीगणकी उनपर दृष्टि न होय तो जात बालककी सातवर्षमें मृत्यु होतीहै ॥ ९१ ॥

इति द्रेक्काणारिष्टम् ।

अथ लग्नाधिपाद्यरिष्टम् ।

लग्नाधिपजन्मपती षष्ठाष्टमरिःफगौ प्रसवकाले ।
ज. अस्तमितौ मरणकरौ राशिप्रमितैर्वदेद्वर्षैः ॥ ९२ ॥ (ऽ)

अर्थ–लग्नके स्वामी और राशिके स्वामीका अरिष्ट कहतेहैं । जन्मसमयमें लग्नका स्वामी ग्रह और राशिका स्वामी ग्रह यदि अस्तमित होकर लग्नके छठे आठवें वा बारहवें स्थानमें स्थित हों तब जात बालककी मृत्यु छठे वा आठवें वर्षमें होतीहै॥ ९२॥

इति लग्नाधिपाद्यरिष्टम् ।

अथ सौम्यग्रहारिष्टम् ।

सौम्याः षष्ठाष्टमगाः पापैर्वक्रोपसंयुतैर्दृष्टाः ।
मासेन मृत्युदास्ते यदि न शुभैस्तत्र संदृष्टाः ॥ ९३ ॥ (ऽऽ)

अर्थ–अब शुभ ग्रहोंका अरिष्ट कहतेहैं।जन्मसमय यदि शुभग्रह लग्नके छठे वा आठवें स्थानमें होय और उनपर पापग्रहोंकी वा वक्र ग्रहोंकी दृष्टि होय और उनके प्रति अन्य शुभ ग्रहोंकी दृष्टि न होय तो जात बालककी एक महीनेके मध्यमें मृत्यु होतीहै ॥ ९३ ॥

इति सौम्यग्रहारिष्टम् ।

अथ पापादिग्रहारिष्टम् ।

एकः पापोऽष्टमगः शत्रुगेही शत्रुवीक्षितो वर्षात् ।
मारयति नवं प्रसूतं सुधारसो येन पीतोऽपि ॥ ९४ ॥ (ऽऽऽ)

अर्थ–अब पापग्रहोंका अरिष्ट कहतेहैं । यदि एक पापग्रह जन्मलग्नके आठवे स्थानमे स्थित होकर शत्रुगृहगत होय अथच इस पापग्रहके ऊपर शत्रुग्रहकी दृष्टि होय तो जात मनुष्य अमृत पीनेसे भी एकवर्षके मध्यमे कालके गालमें जाताहै ॥ ९४ ॥

होरायाः सप्तमे सौरिर्हिबुकस्थश्च भास्करः ।
अस्मिन्योगे तु यो जातः सोल्पायुर्भवति प्रिये ॥ ९५ ॥

अर्थ–होराधिपतिके सातमें स्थानमे शनैश्चर और चौथे स्थानमे सूर्य्य होनेसे इस योगमें जिसका जन्म होय उसकी थोडी आयु होतीहै ॥ ९५ ॥

वसुषष्ठगते जीवे सप्तसप्तगते शनौ ।
द्वादशस्थो यदा भानुर्वर्षमेकं न जीवति ॥ ९६ ॥

(ऽऽ) सौम्यग्रहारिष्टमाह–सौम्यइति । सौम्याः शुभग्रहाः षष्ठेऽष्टमे वा उभयत्र वा स्थिताः पापग्रहैः वक्रिग्रहैर्दृष्टाः सन्तः मासेन मृत्युकरा भवन्ति ते यदि शुभग्रहैर्न दृष्टाः शुभदर्शने तु योगभङ्ग इत्यर्थः । एतेन सर्वत्र एव शुभाः षष्ठाष्टमस्थाः यदि स्युरित्यर्थः ।

(ऽऽऽ)पापग्रहारिष्टमाह–एकइति।एको बलवान् पापः शत्रुगृहस्थः शत्रुदृष्टोऽष्टमस्थः सन् वार्षिकेणामृतभोजिनं नरं मारयति एतेन मरणावश्यकत्वं सूचितम् ॥

अर्थ–जात बालककी जन्मलग्नसे आठमें वा छठे स्थानमें बृहस्पति समसप्तगत शनि और बारहवें स्थानमे सूर्य्य होनेसे यह बालक एकवर्षभी नही जीसक्ताहै ॥ ९६॥

अथाशुभानि ।

समसप्तगतो भौमो लग्ने भास्करचन्द्रकौ ।
गुरुर्भृगुर्यदा षष्ठे तदा कष्टं समादिशेत् ॥ ९७ ॥

अर्थ–जन्मसमय यदि मङ्गल सम राशिमें स्थित होकर सातमें होय और लग्नमें सूर्य्य और चन्द्रमा स्थित होय और बृहस्पति और शुक्र छठी राशिमें स्थित होंय तो जात मनुष्य अत्यन्त कष्ट पाताहै ॥ ९७ ॥

अपिच ।

अष्टमस्थौ शनिकुजौ भास्करः सोमजस्तथा ।
षष्ठे भार्गवदेवश्च भवेन्मृत्युस्तदाचिरात् ॥ ९८ ॥

अर्थ–जन्मसमय आठमें स्थानमे शनि, मङ्गल, सूर्य्य और बुध यदि स्थित होय और छठे स्थानमें शुक्र होय तो जात बालक शीघ्रही यमालयको गमन करताहै॥९८॥

अन्यच्च ।

शुभे लग्ने यदा चन्द्रो जातोऽष्टमनिशाकरः ।
शनैश्चरस्तु बन्धुस्थस्तृतीये मासि नश्यति ॥ ९९ ॥

अर्थ–जन्मसमय चन्द्रमा लग्नमें वा लग्नके आठमे स्थानमें स्थित होय और शनैश्चर यदि चौथे स्थानमे स्थित होय तो जात बालकको तीन महिनेके मध्यमें मृत्यु होतीहै ॥ ९९ ॥

अन्यच्च ।

मदस्था यदा पापाः सौम्या द्वादशाश्रिताः ।
तदा मृत्युर्भवेज्जातो देवराजसमो यदि ॥ १०० ॥

अन्यच्च ।

पापत्रयगतः सूर्य्यो गुरुशुक्रविवर्जितः ।
पापिष्ठं कुरुते नित्यं पण्डितोऽपि भवेद्यदि ॥ २ ॥

अर्थ—जन्मसमय तीनों पापग्रहोंके साथ सूर्य्य होय और बृहस्पति और शुक्र उस स्थानमें स्थित न होय तब जातमनुष्य पण्डित होनेसे भी पापिष्ठ होताहै ॥ २ ॥

अपिच ।

कण्टकस्थो यदा सौरिः शुक्रग्रहविवर्जितः ।
रवियुक्तो विशेषेण खलो भवति नान्यथा ॥ ३ ॥

अर्थ—जन्मसमय यदि शनि केन्द्रस्थानमें स्थित होकर सूर्य्यके साथमें स्थित होय और शुक्र उस स्थानमें न होय तो जात मनुष्यकी खल (दुष्ट) प्रकृति होतीहै ॥ ३ ॥

अपरञ्च ।

लग्नचन्द्रव्ययस्थाने तिष्ठेत्पापग्रहो यदि ।
कृपणः स्यात्तदा जातो दाता सति शुभग्रहे ॥ ४ ॥

अर्थ—जन्मसमय लग्न और चन्द्रमाके बारहमें स्थानमें पापग्रह स्थित होनेसे जातमनुष्य कृपण होताहै और शुभग्रह होनेसे दाता होताहै ॥ ४ ॥

अन्यच्च ।

चन्द्रसूर्य्यगृहे राहुश्चन्द्रसूर्य्ययुतो यदि ।
मृत्युस्थान (१) गतश्चैव पशुभिर्हन्यते ततः ॥ ५ ॥

अर्थ—जन्मसमय चन्द्रमा वा सूर्य्यके क्षेत्रमें राहु स्थित होकर यदि चन्द्रमा और सूर्य्यके साथ होय और यह स्थान जन्मलग्नके आठमें होय तो जात मनुष्यकी पशुद्वारा मृत्यु होतीहै ॥ ५ ॥

अपिच ।

शत्रुगेहे यदा सौम्यः शत्रुयुक्तो निरीक्षितः ।
षष्ठाष्टमगतश्चन्द्रो हन्यते जलजन्तुभिः ॥ ६ ॥

अर्थ—जन्मसमय बुध शत्रुके घरमें होकर शत्रुके साथ होय और उसपर शत्रुकी दृष्टि होय और चन्द्रमा छठे स्थानमें वा आठमें स्थानमें होय तब जात मनुष्यकी जलजन्तुद्वारा मृत्यु होतीहै ॥ ६ ॥

---

(१) मृत्युस्थो मदनस्थोऽपि इति पाठान्तरम् ।

प्रकारान्तरश्च ।

मृत्युस्थो यदि वा भौमः शत्रुगेही (२) निरीक्षितः ।
एष नाशकरो योगो द्विजिह्वान्नात्र संशयः ॥ ७ ॥

अर्थ–जन्मसमय मङ्गल यदि आठमें स्थानमें रहकर शत्रुग्रहके क्षेत्रमें स्थित होय और उसके ऊपर शत्रुग्रहकी दृष्टि होय तो जात मनुष्यकी सर्पद्वारा मृत्यु होतीहै ॥७॥

अथ छेदादियोग ।

भौमक्षेत्रगते लग्ने रविस्तत्र शनैश्चरः ।
पापेन संयुतो वापि कर्णच्छेदी भवेन्नरः ॥ ८ ॥

अर्थ–जन्मलग्न यदि मङ्गलका क्षेत्र होय और उसमें पापग्रहके साथ होकर सूर्य्य और शनैश्चर स्थित होय तो जात मनुष्यके कानमें छेद होताहै ॥ ८ ॥

अन्यच्च ।

पापयुक्तो भृगुसुतो रिपुस्थानगतो यदि ।
जीवो भौमेन संदृष्टः कर्णच्छेदी भवेन्नरः ॥ ९ ॥

अर्थ–जन्मसमय पापग्रहके साथ शुक्र यदि छठे स्थानमें स्थित होय और बृहस्पतिके ऊपर मङ्गलकी दृष्टि होय तो जात मनुष्यके कानमे छेद होताहै ॥ ९ ॥

अपिच ।

कंटकस्थो यदा सौरिः शशियुक्तो भवेद्यदि ।
शुभग्रहा न पश्यन्ति खञ्जो भवति नान्यथा ॥ १० ॥

अर्थ–जन्म लग्नके केन्द्रस्थानमे यदि चन्द्रमाके साथ शनैश्चर स्थित होय और उसपर शुभ ग्रहकी दृष्टि न होय तो जात मनुष्य खञ्ज (थोडा लंगडा) होताहै ॥ १० ॥

अपरञ्च ।

शत्रुगेहे यदा सौरिः शत्रुयुक्तो निरीक्षितः ।
एकपादकरच्छेदयोगोऽयं परिकीर्तितः ॥ ११ ॥

अर्थ–शनि शत्रुके घरमें रहकर यदि शत्रुके साथ होय वा उसपर शत्रुकी दृष्टि होय तो जात बालकका एक पदच्छेदन और एक करच्छेदन होता है ॥ ११ ॥

प्रकारान्तरञ्च ।

पापत्रययुतः सोमः शत्रुगेहे व्यवस्थितः ।
शुभग्रहा न पश्यन्ति चक्षुर्नाशो भवेद्ध्रुवम् ॥ १२ ॥

अर्थ—जन्मसमय चन्द्रमा यदि तीनों पाप ग्रहोंके साथ शत्रुग्रहके क्षेत्रमें स्थित होय और उसके ऊपर शुभ ग्रहकी दृष्टि न होय तो जात मनुष्यके नेत्रोंका नाश हो जाता है ॥ १२ ॥

अपिच ।

तनुस्थानस्थितो भौमः शनिराहुसुरान्वितः ।
नासाच्छेदकरो योगो मुनिभिः परिकीर्तितः ॥ १३ ॥

अर्थ—जन्मलग्नमें मङ्गल स्थित होकर यदि शनि राहु और सूर्य्यके साथ होय तब जात मनुष्यके नासिकामें छेद होताहै ॥ १३ ॥

अन्यच्च ।

मृत्युस्थानगतो भौमः शनिराहुविवर्जितः ।
नासाच्छेदो भवेद्योग इन्द्रवंशोद्भवस्य च ॥ १४ ॥

अर्थ—जन्मसमय यदि आठवें स्थानमें मङ्गल रहकर शनि और राहुयुक्त न होय तब जात मनुष्य इन्द्रके वंशमे उत्पन्न होनेसे भी उसकी नासिकामें च्छेद होताहै॥ १४॥

अपरञ्च ।

अष्टमस्थो यदा सोमो राहुयुक्तो भवेद्यदि ।
शिरसश्छेदयोगोऽयं विष्णुना परिकीर्तितः ॥ १५ ॥

अर्थ—जन्मलग्नके आठवें स्थानमें राहुयुक्त होकर यदि चन्द्रमा स्थित होय तो जात मनुष्यका शिरश्छेद होता है, इस प्रकार विष्णुने कहाहै ॥ १५ ॥

अपिच ।

वज्रावातेन सर्पेण मृत्युस्थेऽर्के ज्वरेण वा ।
यमेन नर आक्रान्तस्तोये भूमौ विनश्यति ॥ १६ ॥

अर्थ—जन्म समय लग्नके आठवें स्थानमे यदि सूर्य्य होय तब जात मनुष्यकी वज्रवातसे, सर्पद्वारा वा ज्वररोगसे पीडित होकर जलयुक्त भूमिमें मृत्यु होती है॥ १६॥

अन्यच्च ।

सूर्य्यः स्वगृहगतः शुभनिधनं निधनस्थः कुरुते ।
अन्यगृहे बहुदुःखं दत्वा प्राणानपहन्ति ॥ १७ ॥

अर्थ—जन्मसमय लग्नका आठवाँ स्थान सूर्य्यका घर होय और उसमें वह स्थित हो तो जात मनुष्यकी अनायाससे मृत्यु होती है किन्तु अन्यके क्षेत्रमें स्थित होकर सूर्य्य अष्टमस्थानी होनेसे नानाप्रकारके कष्ट पाकर जात मनुष्यकी मृत्यु होती है॥ १७॥

प्रकारान्तरम् ।

मदनस्थो यदा भानुः शनिभौमावलोकितः ।
रिपुगेही विशेषेण कासरोगी न चान्यथा ॥ १८ ॥

अर्थ–जन्मलग्नके सातमे स्थानमें सूर्य्य स्थित होकर यदि उनपर विशेष करके शनि और मंगलकी दृष्टि होय तो यह स्थान उसका रिपुगृह होता है तो जात मनुष्यको कासरोग होताहै ॥ १८ ॥

अपि च ।

प्रतिपद्युत्तराषाढा नवम्यामेव कृत्तिका ।
पूर्वाभाद्रपदाष्टम्यामेकादश्याञ्च रोहिणी ॥ १९ ॥
द्वादश्याञ्च यदाश्लेषा त्रयोदश्यां यदा मघा ।
एभिर्जातो न जीवेत यदि शक्रसमो भवेत् ॥ २० ॥

अर्थ–प्रतिपदा तिथिमे उत्तराषाढा नक्षत्र होय इसीप्रकार नवमीमे कृत्तिका. अष्टमीमे पूर्वाभाद्रपदा, एकादशीमे रोहिणी. द्वादशीमें आश्लेषा और त्रयोदशीमे मघा नक्षत्र होय तो इन तिथि नक्षत्रयोगमे जिस बालकका जन्म होय; वह इन्द्रके समान होनेसे भी नहीं जीसक्ता है ॥ १९ ॥ २० ॥

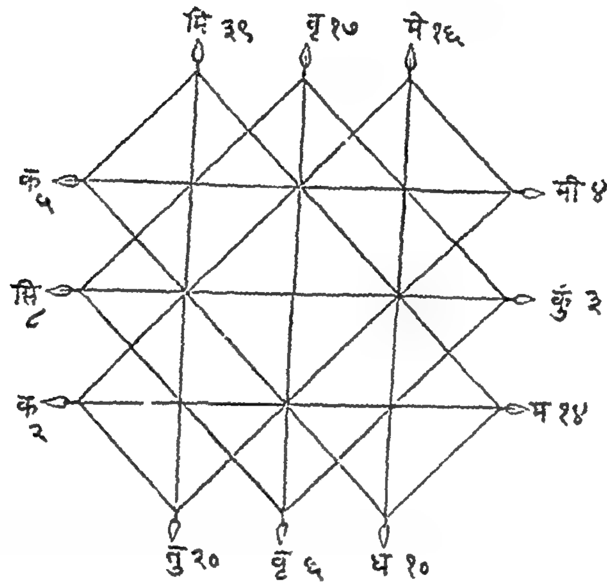
अथ पताकीवेधः ।

तिर्य्यगूर्द्ध्वगता रेखास्तिस्रो देयाः पताकया ।
युताः कार्य्या वेदविदा सर्वसङ्गतरेखया ॥ २१ ॥
दक्षस्थोद्गतरेखातो रामं मेषाद्यराशयः ।
पञ्चाष्टयुग्मविंशाश्च षड्दशेन्द्राग्निसागराः ।
कर्कटान्मीनपर्य्यन्तमङ्का देया यथाक्रमम् ॥ २२ ॥ (क)

मेषादिके चिन्ह रक्खे, अनन्तर कर्कमें पांच, सिंहमें आठ, कन्यामें दो, तुलामें बीस, वृश्चिकमें छय, धनमें दश, मकरमें चौदा, कुम्भमें तीन और मीनमें चार इस प्रकारसे अङ्कयोजना करै ॥ २१ ॥ २२ ॥

पाठकगणके सुगमार्थ नीचे पताकीचक्र लिखागयाहै ।

पताकीचक्रम् ।



बालस्य जन्मकालीनग्रहलग्नमजादिषु ।
विन्यस्य चिन्तयेत्प्राज्ञः शुभाशुभं यथाक्रमम् ॥ २३ ॥
शुभदण्डयोगवेधैर्लग्नाद्बालस्य शोभनम् ।
पापदण्डयोगवेधैराश्यङ्काद्रिष्टिकालवित् ॥ २४ ॥

अर्थ–बालकके जन्मसमय राशिचक्रके जिस घरमे जो ग्रह होय उनको पताकीचक्रमें रखकर अनन्तर बालकका शुभाशुभ फल जानना चाहिये । यदि बालक शुभ ग्रहोंके दण्डमे उत्पन्न होय और शुभ ग्रह वेधमे होय तो बालकको शुभ होताहै और यदि अशुभ ग्रहोंके दण्डमें उत्पन्न होय और अशुभग्रहही वेधमें होय अब इस बालककी राशिका अङ्कपरिमित दिन, मास वा वर्षमे अरिष्ट होताहै ॥ २३ ॥ २४ ॥

बले ऽधिके दिनं मध्ये मासो हीने च हायनम् ।
लग्नस्य दक्षिणे वामे सन्मुखे ग्रहसंस्थिते ॥ २५ ॥

अर्थ–यदि पापग्रह दण्डके स्वामी होकर बलवान् होय तो अङ्कपरिमित दिनमें, मध्यबल होनेसे अङ्कसंख्याक मासमें और हीनबल होनेसे अङ्कसंख्याक वर्षमें अरिष्ट

प्रदान करतेहै लग्नमें वा लग्नके दक्षिणमें वा वाममे अथवा सन्मुखमें पापग्रह स्थित होनेसे वेध होताहै, वेधस्थानमे जो अङ्क होय उन्ही अङ्कसंख्याक दिनमे, मासमे वा वर्षमें बालकको अरिष्ट होताहै ॥ २५ ॥

कर्के मीनधनुर्भ्याञ्च हरेः कीटघटेन च ।
स्त्रियास्तौलिमृगाभ्याञ्च घटे मीनेन कन्यया ॥ २६ ॥
वृश्चिके कलशे चैव पञ्चास्ये कलशे तथा ।
धनुषो मृगकार्किभ्यां मकरे धनुषा स्त्रिया ॥ २७ ॥
घटस्य कीटसिंहाभ्यां मीलनं कथितं बुधैः ।
मीने कर्कितुलाभ्याञ्च मीनस्त्रीधनुषा त्वजे ॥ २८ ॥
तुलाकर्किमृगैर्द्वन्द्वे हरेः कीटघटे वृषे ।
सिंहवद्वेध एतेषु वामदक्षिणसन्मुखे ॥ २९ ॥

अर्थ–पताकीवेधमें किस २ राशिके साथ किस २ राशिका वेध होताहै अब उसको कहतेहै यथा;–कर्कका मीन और धन राशिके साथ वेध होताहै; इसीप्रकार सिंहका वृश्चिक और कुम्भके साथ, कन्याका तुला मकरके साथ, तुलाका मीन और कन्याके साथ, वृश्चिकका कुम्भ और सिंहके साथ, धनका मकर और कर्कके साथ, मकरका धन और कन्याके साथ, कुम्भका वृश्चिक और सिंहके साथ और मीनका कर्क और तुलाके साथ वेध (मिलन) होताहै पण्डितगणने इसप्रकार कहाहै । अपर मेष राशिका मीन, कन्या और धनके साथ वेध होताहै, इसीप्रकार वृषका सिंह, कुम्भ और वृश्चिकके साथ, मिथुनका कर्क, तुला और मकरराशिके साथ वेध होताहै। सिंहराशिका जिसप्रकार वाममे, दक्षिणमे और सम्मुखमे वेध होताहै अन्यान्य राशिकाभी इसी प्रकारसे वेध होताहै ॥ २६–२९ ॥

पताकीचक्रस्य शुभाशुभविवेचनात्प्रमाणीभूताङ्कपरिमाणम् ।

एकोनविंशतिः कर्के सिंहे सप्तदशैव तु ।
षट्त्रिंशदबलायान्तु षड्विंशतिस्तुलाधरे ॥ ३० ॥
वृश्चिके सिंहवज्ज्ञेयमूनत्रिंशच्छरासने ।
षड्विंशं मकरे ज्ञेयं कुम्भे सप्तदश स्मृताः ॥ ३१ ॥
नवयुग्मं तथा मीने मेषे पञ्चदश एव च ।

वृषे सप्तदश प्रोक्ता युग्मेऽङ्कहरलोचने ॥
त्रितयाङ्कादियं संख्या दिनमासाब्दनिर्णये ॥ ३२ ॥

अर्थ–पताकीवेधचक्रमें पूर्वोक्त तीन २ राशिका वेध-होनेसे उन तीनों राशियोके अङ्कयोग करनेसे जो संख्या होतीहै उतने संख्यक दिनमे, वा मासमे अथवा वर्षमे बालकका अरिष्ट होताहै । इन तीनों राशियोके मिलनाङ्कोंमें जो जो संख्या होतीहै अब उनको कहतेहैं । कर्कके १९ ऊनविंशति, सिंहके १७ सप्तदश, कन्याके २६ षट्त्रिंशत्, तुलाके २६ षड्विंशति, वृश्चिकके १७ सप्तदश, धनके २९ ऊनत्रिंशत्, मकरके २६ षड्विंशति, कुम्भके १७ सप्तदश, मीनके २९ ऊनत्रिंशत, मेषके १६ षोडश, वृषके १७ सप्तदश, और मिथुनके ३९ ऊनचत्वारिंशत् अङ्क होतेहैं ॥ ३०–३२ ॥

एकाङ्काद्विग्रहाङ्काद्वात्रिग्रहाङ्काच्च कुत्रचित् ।
पापदण्डे भवेद्दृष्टिः शुभदण्डे शुभं भवेत् ॥ ३३ ॥

अर्थ–पूर्वोक्त समस्त राशिके अङ्क जोड़ करके किसी स्थानमे एक राशिके अङ्कमें किसी स्थानमें दो राशियोंके अङ्कमें जोड़ करके उसमें और किसी स्थानमें पूर्वोक्त मिलनाङ्क संख्यक मासादिमे पापग्रहके दण्डमे बालक उत्पन्न होनेसे अरिष्ट होताहै और शुभ ग्रहके दण्डमें बालकका जन्म होनेसे शुभ होताहै ॥ ३३ ॥

अथ पताकीचक्रे ग्रहवेधफलम् ।

राहुकेत्वर्कसौरारैः पापैर्विद्धो युतोऽशुभः ।
तदन्यैर्युतो विद्धस्तु लग्नराशिः शुभप्रदः ॥ ३४ ॥

अर्थ–जात बालकके लग्नमें वा लग्नके वेधस्थानमे राहु, केतु, सूर्य्य, शनि वा मङ्गलके स्थित होनेसे उस बालकको अशुभ होता है; और उक्त समस्त ग्रहभिन्न शुभग्रह होनेसे शुभ फल होताहै, परन्तु चन्द्रमामें वा चन्द्रमाके वेधस्थानमे अशुभ होनेसे अशुभ और शुभग्रह होनेसे शुभ फल होताहै ॥ ३४ ॥

अन्यच्च ।

अशुभे दण्डसंयोगे सर्वत्र पुण्यवर्जिते ।
बालस्य मरणं शीघ्रं यदि पापैः समन्वितम् ॥ ३५ ॥

अर्थ–जन्मसमय दण्डका स्वामी यदि अशुभ ग्रह होय और उसीका वेध होय और वेधस्थानमें पाप ग्रह होय तो जातबालककी शीघ्रही मृत्यु होतीहै ॥ ३५ ॥

अपरञ्च।

अशुभग्रहदण्डे तु सर्वत्र पापवर्जिते।
बालस्य कुशलं सर्वं शुभैर्यदि समन्वितम् ॥ ३६ ॥

अर्थ–पापग्रहोके दण्डमे जन्म होनेसेभी वेधस्थानमें शुभग्रह यादि होंय तब बालकको शुभ होताहै ॥ ३६ ॥

अपिच।

अशुभो दण्डनाथो हि वेधश्चेत्तेन लभ्यते।
मरणं तत्र वक्तव्यं बालस्य नान्यथा भवेत् ॥ ३७ ॥

अर्थ–दण्डका स्वामी यदि पाप ग्रह होय और वेधस्थानमें भी पापग्रह होय तो जात बालककी मृत्यु होताहै ॥ ३७ ॥

प्रकारान्तरञ्च।

पापस्य दण्डमात्रे तु तद्योगो वेधवर्जिते।
बालस्य कुशलं तत्र शुभैर्यदि समन्वितम् ॥ ३८ ॥

अर्थ–पापग्रहके दण्डमे जन्म होकर पापग्रहका वेध न होय और शुभ ग्रहके साथ ग्रहके स्वामीका वध होय तो जात बालकको शुभ होताहै ॥ ३८ ॥

इति पताकावेध।

अथ पुरुषगणनम्।

यस्मिन्नृक्षे वसेद्भानुस्तदादित्रीणि मस्तके।
मुखे त्रीणि प्रदेयानि एकैकं स्कन्धदेशयोः ॥ ३९ ॥
द्वे द्वे देये च बाहुभ्यां हस्ताभ्याञ्च द्वयं तथा।
हृदये पञ्च भानि स्तनयोरेकं नाभिमण्डले ॥ ४० ॥
गुह्ये स्यादेकनक्षत्रं जानुभ्याञ्च द्वयं तथा।
प्रतिपादे द्वयं कृत्वा जानीयाद्बालजन्मनि ॥ ४१ ॥

चार नक्षत्र दोनों भुजाओंमें, दो नक्षत्र हाथमें, पांच नक्षत्र हृदयमे, एक नक्षत्र नाभिदेशमें, एक नक्षत्र गुदामें, दो नक्षत्र जानुमें और प्रत्येक पादमें दोदो नक्षत्र योजना करे ॥ ३९-४१ ॥



अथ अङ्गविशेषे जन्मनक्षत्रपतनफलम् ।

स्वल्पायुः पादयोर्जातो जानुनि स्याद्विदेशगः ।
परदाररतो गुह्ये नर्त्तको नाभिमण्डले ॥ ४२ ॥
हृदये त्वीश्वरो जातो हस्तयोश्चैव तस्करः ।
बाह्वोर्जातः सुशीलः स्यात्स्कन्धयोर्नृपतिर्भवेत् ।
मुखेजन्मी च मिष्टाशी शिरसि स्यात्स भूपतिः ॥ ४३ ॥

इति सारसंग्रहे ।

अर्थ–जात पुरुषके अङ्गविशेषमे जन्मनक्षत्रपतनका फल कहतेहैं । जन्मनक्षत्र पुरुषके दोनों पैरोंमें पड़नेसे जात बालककी अल्पायु (थोड़ीउम्र) होतीहै, इसीप्रकार जानुदेशमें पड़नेसे विदेशगामी, गुह्यमें पडनेसे परदारासक्त, नाभिदेशमे पडनेसे नर्त्तक, हृदयमें पड़नेसे धनशाली, हाथमे पड़नेसे तस्कर (चोर), भुजाओंमें पड़नेसे सुशील, स्कन्ध देशमे पड़नेसे नृपति, मुखमे पडनेसे मिष्टान्नभोक्ता, और जात पुरुषके मस्तकमें जन्मनक्षत्र पड़नेसे जात बालक भूपति (राजा) होताहै ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

इति पुरुषगणनम् ।

अथ बालानां दन्तोद्गमफलम् ।

जातः सदन्तः पितृमातृहन्ता
तातं विहन्यात्प्रथमे तु मासे ॥
अम्बां द्वितीये सहजं तृतीये
मासे चतुर्थे शुभकारकः स्यात् ॥ ४४ ॥

मिष्टान्नभोजी सुभगः सुताख्ये
षष्ठे सुखी पण्डितकल्पबुद्धिः ॥
ततोऽधिकः स्याद्बलवान्धुनाख्ये (१)
मासेऽष्टमे वित्तसुखैर्विहीनः ॥ ४५ ॥
शूरः प्रतापी नवमे (२) मृत्युश्च दशमे तथा ।
एकादशे द्वादशे च सुखी च सुभगो भवेत् ॥ ४६ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ–अब जात बालकके दाँत निकलनेका फल कहतेहैं यदि दाँतोके साथ बालकका जन्म होय तो पिता और माताकी मृत्यु होतीहै, प्रथम महीनेमें दाँत निकलनेसे बालकके पिताकी मृत्यु होतीहै; इसीप्रकार दूसरे महीनेमें माता-की तीसरे महीनेमे दाँत निकलनेसे भाईकी मृत्यु होतीहै, चौथे महीनेमें शुभ, पांचमें महीनेमे मिष्टान्नभोजन करनेवाला और धनशाली होताहै छठे महीनेमें सुखी और पण्डितके समान, सातवे महीनेमे बलवान् और आठवें महीनेमे बालकके दाँत निकलनेसे द्रव्यहीन और सुखहीन होताहै और नववें महीनेमें दाँत निकलनेसे वीर और प्रतापशाली होताहै. दशवे महीनेमे मृत्यु, ग्यारहवे और बारहवे महीनेमे दाँत निकलनेसे सुखी और सुभोगी होताहै ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

अशुभदन्तजननप्रतीकारः ।

अष्टौ पुत्तलकान्कृत्वा सुगन्धैर्गन्धकैस्तथा ।
स्रोतःसु संक्रमे चापि स्नापयेच्छुक्लपुष्पकैः ॥ ४७ ॥
स्नानं संक्रमणस्याधः शम्भोर्दर्शनमन्ततः ।
होमं विप्रार्चनञ्चैवमशुभे दन्तदर्शने ॥ ४८ ॥

अथारिष्टभङ्गयोगः ।

एकोऽपि केन्द्रभवने नवपञ्चमे वा
भास्वन्मयूखविमलीकृतदिग्विभागः ॥
निःशेषदोषमपहृत्य शुभं प्रसूतं
दीर्घायुषं विगतरोगभयं करोति ॥ ४९ ॥ (क)

अर्थ—अब अरिष्टभङ्गयोग कहतेहैं. अस्तादिदोषरहित कोई एक शुभग्रह यदि जन्मलग्नमें वा लग्नके चौथे, सातवें, दशवें, नववें अथवा पांचवे स्थानमें स्थित होय तो जात बालकके समस्त अरिष्ट दूर होकर दीर्घायु और रोगभयमभृति दूरहोतेहैं कोई२आचार्य्य कहतेहैं कि, केवल बृहस्पति उक्त समस्त स्थानोंमें रहनेसेभी यही फल होताहै ॥ ४९ ॥

अन्यच्च ।

राहुस्त्रिषष्ठलाभे लग्नात्सौम्यैर्निरीक्षितः सद्यः ।
नाशयति सर्वदुरितं मारुत इव तृणसंघातम् ॥ ५० ॥

अर्थ—जन्मलग्नसे तीसरे, छठे वा ग्यारहवे यदि राहु होय और राहुपर शुभग्रहों की दृष्टि होय तो वायु जिसमकार तृणको दूर करदेताहै उसीमकार जात बालकके सर्व दोष दूर होजातेहैं ॥ ५० ॥

दिवा सूर्य्यो निशि शशी लग्नस्यैकादशे स्थितः ।
कोटिदोषं निहन्त्याशु गर्गस्य वचनं यथा ॥ ५१ ॥

अर्थ—दिनमें जन्म होनेसे बालकके जन्मलग्नसे ग्यारहवे स्थानमें और रा जन्म होनेसे बालकके जन्मलग्नसे ग्यारहवें स्थानमें चन्द्रमाके स्थित होनेसे क दोष यह सूर्य्य और चन्द्रमा दूर करदेतेहैं; इस मकार गर्गमुनिने कहाहै ॥ ५१ ॥

(क) उक्तानां सर्वेषाममरिष्टाना भङ्गमाह एकोऽपीति । एकोऽपि शुभो गुरुर्वा शुक्रो वा बुधो भास्वन्मयूखविमलीकृतदिग्विभागः स्फुटकिरणप्रकाशीकृतदिग्विभागः । केन्द्रस्थो नवपञ्चमस्थो यदा भवेत् तदा निःशेषदोषं सर्वारिष्टं प्रहृत्य दूरीकृत्य प्रसूतं जातं दीर्घायुषं विगतरोगभयं करोति केचित्तु एकः शुभो गुरुरेवेत्याहुस्तदसत् एकपदस्य वैयर्थ्यादपि शब्दस्वरसाच्च । यत्तु सारावल्याम् "सर्वानिमानतिबलः स्फुरदंशुजालो लग्नोपगः प्रशमयेत्सुरराजमन्त्री" इति । तदेकदेशकीर्तनपरमिति अन्येरिष्टभङ्गा. सारावल्यामुक्ता. । राहुस्त्रिषष्ठलाभे लग्नात्सौम्यैर्निरीक्षितः सद्य । नाशयति सर्वदुरितं मारुत इव तृणसंघातम् । शीर्षोदयेषु सर्वैर्गगनाधिवासिभिः सूते । प्रकृतिस्थैश्चारिष्टं विनाशं घृतमिवाग्निस्थम्" इति । प्रकृतिस्थैरविकृतैरस्तादिदोषरहितैरित्यर्थः ।

चन्द्रः सम्पूर्णतनुः सौम्यर्क्षगतः स्थितश्च शुभस्यांशे।
प्रकरोत्यरिष्टभङ्गं विशेषतः शुक्रसंदृष्टः॥ ५२॥

अर्थ–चन्द्रमा यदि जन्मसमयमें पूर्णरूपसे शुभग्रहके क्षेत्रमें होय वा शुभग्रहके अंशमें स्थित होय और शुभग्रहकी चन्द्रमापर दृष्टि होय तो निश्चयही अरिष्टभङ्ग होजाताहै ॥५२॥

सौम्यद्वयान्तर्गतः संपूर्णः स्निग्धमण्डलः शशभृत्।
निःशेषरिष्टहन्ता भुजङ्गलोकस्य गरुड इव॥ ५३॥

अर्थ–स्निग्धशील सम्पूर्ण चन्द्रमा यदि जन्मसमयमे दो पापग्रहोंके मध्यमें स्थित होय तो गरुड जिसप्रकार नागोंका नाश करताहै उसीप्रकार जात बालकके सम्पूर्ण अरिष्ट चन्द्रमा विनाश करदेताहै ॥ ५३ ॥

शुक्रः पञ्चसहस्राणि बुधः पञ्चशतानि च।
लक्षमेकन्तु दोषाणां हन्याच्चैवोदितो गुरुः॥ ५४॥

अर्थ–शुक्रके पांचहजार दोष दूर होतेहैं, बुधके पांचसौ दोष दूर होजातेहैं और बृहस्पतिके उदयकालमें लाख दोष दूर होजातेहैं ॥ ५४ ॥

सप्ताष्टमषष्ठाः शशिनः सौम्या घ्नन्ति कष्टफलम्।
पापैरमिश्रचाराः कल्याणघृतं यथोन्मादम्॥ ५५॥

अर्थ–जन्मसमय चन्द्रमाके सातवे आठवे और छठे स्थानमें यदि शुभ ग्रहगण स्थित होय तो कल्याणघृत जिसप्रकार उन्मादको नष्टकरताहै उसीप्रकार जात बालकके अरिष्टोंका नाश होजाताहै ॥ ५५ ॥

कण्टकस्थो(१) यदा जीवःसप्तमे यदि भार्गवः।
बुधे च लग्नसंप्राप्ते शतं जीवति बालकः॥ ५६॥

अर्थ–जन्मसमय लग्नके केन्द्रस्थानमें बृहस्पति सातवे स्थानमे शुक्र और बुध लग्नस्थानमे स्थित होय तो जातबालक सौवर्षतक जीताहै ॥ ५६ ॥

तृतीयैकादशे चैव नवमे पञ्चमे भृगौ।
समस्त (२) गते जीवे जीवेदब्दशतं नरः॥ ५७॥

सर्वैर्गगनभ्रमणैर्दृष्टे लग्ने भवेन्महीपालः ।
बलिभिः समस्तसौख्यो विगतभयो दीर्घजीवी च ॥ ५८ ॥

अर्थ-जन्मसमय समस्त बलवान् ग्रहोंकी दृष्टि लग्नपर होनेसे जातबालक राजा होताहै, और सर्व प्रकारके सुखोंका भोगनेवाला भयहीन और दीर्घजीवी होता है ॥ ५८ ॥

बुधो वा भार्गवो वापि गुरुर्वा केन्द्रसंस्थितः ।
शतायुर्बलवान्विज्ञो जातो गोत्राधिपो भवेत् ॥ ५९ ॥

अर्थ-बुध, शुक्र वा बृहस्पति यदि जन्मलग्नके केन्द्रस्थानमें स्थित हो तब जात बालक विज्ञ और गोत्राधिपति होकर सौवर्षपर्य्यंत जीता है ॥ ५९ ॥

चन्द्रं पश्येद्यदा शुक्रः शुक्रं पश्येद्दिवाकरः ।
दीर्घायुः स्वगुणैश्वर्य्यो धनवांश्चोपजायते ॥ ६० ॥

अर्थ-जन्मसमयमें शुक्र यदि चन्द्रमाको देखै और सूर्य्य शुक्रको देखता होय तो जात बालक दीर्घायुष्मान् और अपने गुणोंसे ऐश्वर्यशाली और धनवान् होता है ॥६०॥

नवमस्थौ गुरुभृगू सप्तमस्थः कुजो यदि ।
बुधे लग्नगते चैव दीर्घायुश्च भवेत्तदा ॥ ६१ ॥

अर्थ-जन्मलग्नके नवमे स्थानमें बृहस्पति और शुक्र सातवें स्थानमें मङ्गल और बुध लग्नमें स्थित होनेसे जात बालककी दीर्घायु होती है ॥ ६१ ॥

गुरुर्लग्ने तथा शुक्रः समसप्तगतो बुधः ।
चन्द्रश्चैकादशे (×)केन्द्रे आयुः सत्यो जितेन्द्रियः ॥ ६२ ॥

अर्थ-जन्मलग्नमें बृहस्पति और शुक्र समराशिस्थ स्थित सातवे स्थानमे बुध और ग्यारहवें वा केन्द्रस्थानमें चन्द्रमाके होनेसे जात बालक दीर्घायुयुक्त सत्यवादी और जितेन्द्रिय होता है ॥ ६२ ॥

गुरुशुक्रौ शुभैर्दृष्टौ भवेतां केन्द्रगौ यदा ।
तदा रिष्टानि भज्यन्ते दीर्घायुश्च नरो भवेत् ॥ ६३ ॥

अर्थ-जन्मसमय बृहस्पति और शुक्र लग्नके केन्द्रस्थानमें स्थित हों और उन शुभ ग्रहोंकी दृष्टि होय तो जातबालकके समस्त अरिष्ट दूर होकर दीर्घायु होताहै॥६३

(+) एकादश इति रात्रिजातपरम् । "दिवा सूर्य्यो निशि शशी लग्नस्यैकादशे स्थित इति वचनात् ।

नवपञ्चमगो जीवो भृगुः सप्तमगो यदा ।
बुधो लग्नगतश्चैव सुदीर्घायुस्तदा भवेत् ॥ ६४ ॥

अर्थ–लग्नके नववें पांचवें वा सप्तमराशिगत बृहस्पति वा शुक्र और लग्नस्थ बुध होनेसे जातबालक दीर्घायु होता है ॥ ६४ ॥

निधनारिगते चन्द्रे लग्नात्सञ्जायते यदि ।
अथ केन्द्रगते जीवे जीवेदब्दशतं नरः ॥ ६५ ॥

अर्थ–जन्मलग्नसे आठवें वा छठे चन्द्रमा और केन्द्रस्थानमे बृहस्पतिके होनेसे जात बालककी शतवर्षकी आयु होती है ॥ ६५ ॥

समस्तैर्बलिभिः सौम्यैर्लग्नं यदि समीक्षते ।
तदा विगतभीर्नूनं दीर्घजीवी च जायते ॥ ६६ ॥

अर्थ–जन्मसमय बलवान् समस्त शुभग्रह यदि लग्नको सम्यक् प्रकारसे देखतेहों तो जात बालक भयहीन और दीर्घजीवी होताहै ॥ ६६ ॥

लग्नात्षष्ठाष्टगाः सौम्याः पापैरयुतवीक्षिताः ।
जनयन्ति हि निर्भीतिं नीरोगं दीर्घजीविनम् ॥ ६७ ॥

अर्थ–जन्मलग्नके छठे वा आठवें स्थानमे शुभग्रहगण होय और पापग्रहके साथ न होय अथवा पापग्रहकी उनपर दृष्टि न होय तो जात बालक निर्भय निरोगी और दीर्घजीवी होता है ॥ ६७ ॥

उच्चस्थोऽपि यदा चन्द्रो गुरुभौमयुतो यदि ।
धनवान्गुणसम्पन्नो दीर्घायुर्मन्त्रविन्नरः ॥ ६८ ॥

अर्थ–जन्मसमय यदि बृहस्पति और मङ्गलके साथ चन्द्रमा अपने उच्चस्थानमें वास करताहोय तो जात बालक धनाढ्य गुणवान् दीर्घायुसम्पन्न और मन्त्रज्ञ होता है ॥ ६८ ॥

अथ गुरुचन्द्रयोगः ।

गुरुक्षेत्रगते चन्द्रे चन्द्रक्षेत्रगते गुरौ ।
गुरुचन्द्रो भवेद्योगो देवानामपि दुर्लभः ॥ ६९ ॥

अथ जीवयोगः ।

जीवात्सप्तमगश्चन्द्रोऽप्यथवा जीवसंयुतः ।
जीवयोगोऽयमित्याहुर्ज्योतिःशास्त्रपरायणाः ॥ ७० ॥

अर्थ–जन्मसमय बृहस्पतिसे सातवें स्थानमे अथवा बृहस्पतियुक्त चन्द्रमा होय तब उसको ज्योतिर्विद पण्डितगण जीवयोग कहते हैं ॥ ७० ॥

अथ जीवयोगफलम् ।

बहुविभवपरिच्छदोऽथ भोक्ता गुणपरिपूर्णोनृपपूजितः ।
बहुयुवतिरतोऽथ दानशीलो भवति चिरायुर्नरो जीवयोगे ॥ ७१ ॥

अर्थ–जीवयोगमें मनुष्य उत्पन्न होनेसे अत्यन्त धनवान् परिच्छद (वस्त्रभूषणादि) सम्पन्न, भोक्ता गुणवान् राजसन्मानित अनेक युवतियोंके साथ प्रीति रखनेवाला दानशील और दीर्घायुयुक्त होता है ॥ ७१ ॥

इति जीवयोगफलम् ।

अपि च ।

सकलरिपुनिहन्ता सर्वसौख्योपभोक्ता
सकलगुणनिधिः स्यात्सर्वलोकप्रियो हि ॥
सकलकलुषहीनः सर्वविद्यासमर्थो
भवति गुणनिधानो जीवदृष्टे हिमांशौ ॥ ७२ ॥

अर्थ–जन्मसमय चन्द्रमापर बृहस्पतिकी दृष्टि होनेसे जातबालक समस्त शत्रुओंका नाश करनेवाला, समस्त सुखोंका उपभोक्ता, सर्व गुणोंका आधार, समस्त लोकका प्रियपात्र, सर्व प्रकारके पापोंसे रहित और सर्वविद्याओंका जाननेवाला होताहै ॥ ७२ ॥

अन्यच्च ।

तुङ्गी त्रिकोणी स्वगृही च जीवो युतो भवेद्वा यदि चन्द्रदृष्टः ॥
तदा सुवीर्य्यः सुमतिः सुमूर्तिर्भवेन्नरोऽसौ गजवाजिपूर्णः ॥ ७३ ॥

अर्थ–जन्मसमयमें बृहस्पति चन्द्रमाके साथ होय वा बृहस्पतिपर चन्द्रमाकी दृष्टि होकर यदि तुङ्गस्थ, त्रिकोण (नववें वा पांचवें) हो अथवा, अपने घरमे (धन वा मीनमे) स्थित होय तो जात बालक अत्यन्त बलवान, सुबुद्धिसम्पन्न, सुन्दराङ्गयुक्त और हाथी घोडा आदिका स्वामी (मालिक) होताहै ॥ ७३ ॥

अपरञ्च ।

यत्र यत्र स्थितो भौमो गुरुणापि समन्वितः ।
तत्रोच्चं फलमाप्नोति स्यादुच्चे त्रिगुणं फलम् ॥ ७४ ॥

अर्थ-जन्मसमय मगल बृहस्पतिके साथ होकर जिस किसी राशिमें स्थित होय उसमेंही उच्चफल प्रदान करताहै, और यदि बृहस्पतिके साथ उच्चस्थानमें स्थित होय तो उक्त फलका तिगुना फल होताहै ॥ ७४ ॥

इति रिष्टभङ्गयोगः ।

अथ दारिद्र्ययोगः ।

लग्नस्य दशमे शून्ये रवेरेकादशे तथा ।
चन्द्रस्य चाष्टमे शून्ये त्रिशून्ये च दरिद्रता ॥ ७५ ॥

अर्थ-अब दरिद्रयोग कहते हैं । यदि जन्मलग्नसे दशमें स्थानमें सूर्यसे ग्यारहवे स्थानमें और चन्द्रमासे आठवें स्थानमे यदि शून्य होय अर्थात् कोई ग्रह स्थित न होय तो जातमनुष्य दरिद्र होताहै ॥ ७५ ॥

अन्यच्च ।

शशिना सहितो मन्दः शुक्रभौमयुतो यदि ।
तेन दारिद्र्ययोगेन समुद्रमपि शोपयेत् ॥ ७६ ॥

अर्थ-जन्मकालमें शनि ग्रह शुक्र, मङ्गल और चन्द्रमाके साथ होनेसे जातबालकका दारिद्रनयोग होताहै उस दारिद्र्ययोगसे समुद्रभी सूखजाताहै भावार्थ यह कि, ऐसे योगसे अतुलधनकाभी नाश होजाताहै ॥ ७६ ॥

अथ वंशनाशयोगः ।

रविणा सहितो मन्दो राहुयुक्तो भवेद्यदि ।
वंशनाशकरो योगः कथितो मुनिपुङ्गवैः ॥ ७७ ॥

अर्थ-अब वंशनाशक योग कहतेहैं जन्मलग्नमें यदि सूर्य, शनि और राहु एक राशिमें स्थित होय तो जात मनुष्यका वंश नाश होजाताहै ॥ ७७ ॥

अथ वृक्षमरणयोगः ।

सितासितगृहे भानुर्यदा मदनमृत्युगः ।
सितभौमार्किभिर्दृष्टो वृक्षान्मरणमादिशेत् ॥ ७८ ॥

अर्थ–जन्मसमय सूर्य्य यदि शुक्र वा शनिके क्षेत्रमें स्थित होकर लग्नके सातवें वा आठवें स्थानमें होय और उसके ऊपर शुक्र मङ्गल और शनैश्चरकी दृष्टि होय तो जात मनुष्यकी वृक्षपरसे गिरकर मृत्यु होतीहै ॥ ७८ ॥

अथ शून्यमृत्युयोगः ।

लग्नपो धर्मपो नीचे दृश्यते च सुरारिणा ।
नेक्षते लग्नपो धर्ममाकाशे मरणं भवेत् ॥ ७९ ॥

अर्थ–जन्मसमय यदि लग्नाधिपति और नवमाधिपति नीच घरमे स्थित होय और राहुकी इन दोनो ग्रहोंके ऊपर दृष्टि होय और लग्नाधिपति धर्म्मस्थानको न देखता होय तो जातमनुष्यकी आकाशमण्डलमें मृत्यु होतीहै ॥ ७९ ॥

अथ वर्त्ममृत्युयोगः ।

लग्नपो व्ययपो नीचे नीचस्थग्रहवीक्षिते ।
नेक्षते लग्नपो लग्नं मृत्युः स्यात्पथि बन्धने ॥ ८० ॥

अर्थ–जन्मसमय लग्नाधिपति और द्वादशाधिपति नीचस्थानमें स्थित हों और नीच स्थानमें स्थित ग्रहोंकी दृष्टि होय और लग्नाधिपति लग्नस्थानको न देखता होय तो जातमनुष्यकी मार्गमे बन्धनरूपसे मृत्यु होतीहै ॥ ८० ॥

अन्यच्च ।

चरे च निधने तीर्थे स्थिरे च भृगुमण्डले ।
द्व्यात्मके लग्नसंयोगे म्रियते हट्टवर्त्मनि ॥ ८१ ॥

अर्थ–चरराशिमें निधनस्थान होनेसे तीर्थ स्थानमें मृत्यु होतीहै स्थिर राशि आठवें होनेसे ऊंचे स्थानपरसे गिरकर मृत्यु होतीहै और द्व्यात्मक राशि मृत्युस्थानमें होनेसे बजारमें वा मार्गमें मृत्यु होतीहै ॥ ८१ ॥

अथ नौकामृत्युयोगः ।

लग्नपो धर्म्मपो द्वौ तु भवेतां पापसंयुतौ ।
नेक्षते मृत्युपो मृत्युं नौमध्ये मरणं भवेत् ॥ ८२ ॥

अर्थ–जन्मसमय लग्नाधिपति और नवमाधिपति यदि पापग्रहोंके साथ होय और अष्टमाधिपति अष्टमस्थानको न देखता होय तो जात मनुष्यकी नौकामें मृत्यु होती है ॥ ८२ ॥

अथ कारागारेमृत्युयोगः ।

लग्नपो धर्मपो नीचे रिपुयुक्तो भवेद्यदि ।
नेक्षते मृत्युपो मृत्युं कारागारे मृतिर्भवेत् ॥ ८३ ॥

अर्थ-जन्मसमय लग्नका स्वामी और नववें स्थानका स्वामी नीच घरमे रहकर पाप ग्रहोंके साथमें होय और आठवे स्थानका स्वामी आठवें घरको न देखता होय तब जात मनुष्यकी कारागार (जेलखाना) में मृत्यु होती है ॥ ८३ ॥

अथ गृहे मृत्युयोगः ।

लग्नपो बन्धुपो वापि युतो दृष्टोऽथ खेचरैः ।
नेक्षते मृत्युपो मृत्युं गृहमध्ये मृतिर्भवेत् ॥ ८४ ॥

अर्थ-जन्मसमय लग्नका स्वामी और चौथे स्थानका स्वामी यदि शत्रु ग्रहके साथ हो वा उनपर शत्रुग्रहोंकी दृष्टि होय और आठवे स्थानका स्वामी आठवें स्थानको न देखता होय तो जात मनुष्यकी घरमे मृत्यु होती है ॥ ८४ ॥

अथ सपत्नीकमृत्युयोगः ।

जायेशो मृत्युपो द्वौ तु राशावेकत्र संस्थितौ ।
मृत्युपो वीक्षते लग्नं म्रियते भार्यया सह ॥ ८५ ॥

अर्थ-सातवे स्थानका मालिक और आठवे स्थानका मालिक यदि जन्मसमय एक राशिमे स्थित होय और आठवे स्थानका मालिक यदि लग्नको देखता होय तो जात मनुष्यकी भार्य्या (स्त्री) के साथ मृत्यु होती है ॥ ८५ ॥

अपिच ।

लग्नपः स्मरगश्चापि मृत्यौ स्यातामुभौ यदि ।
स्थितौ द्रेष्काण एकस्मिन्म्रियते भार्य्ययासह ॥ ८६ ॥

अर्थ-जन्मसमयमे लग्नका मालिक और सातमे स्थानका मालिक यदि आठवें स्थानमें एक द्रेष्काणमें स्थित होय तो जात मनुष्यकी स्त्री के साथ मृत्यु होती है ॥ ८६ ॥

अन्यच्च ।

मृत्युपो लग्नपश्चापि लग्ने स्यातामुभौ यदि ।
स्थितौ द्रेष्काण एकस्मिन्म्रियते भार्य्यया सह ॥ ८७ ॥

अपरश्च ।

द्व्यात्मकं निधनं यस्य युग्मके निधनेश्वरः ।
सह मृत्युं व्रजेदेव नारी चेद्व्यभिचारिणी ॥ ८८ ॥

अर्थ–जात मनुष्यका यदि आठवाँ स्थान द्व्यात्मक लग्न होय और युग्म राशिमें आठवें स्थानका मालिक स्थित होय तब जात मनुष्यकी भार्य्या व्यभिचारिणी होनेसेभी पतिके साथ मृत्युको प्राप्त होती है ॥ ८८ ॥

प्रकारान्तरञ्च ।

चन्द्रात्सप्तमगः पापो यस्याः शुभयुतो भवेत् ।
सा तु नीचगृहस्था स्यान्म्रियते पतिना सह ॥ ८९ ॥

अर्थ–जन्मकालमें चन्द्रमाके सातमें स्थानमें स्थित पाप ग्रह यदि शुभग्रह युक्त होय तो जात स्त्री नीच जातिकीभी होनेसे पतिके साथ मृत्युको प्राप्त होती है॥८९॥

अथ तीर्थमृत्युयोगः ।

धर्माधिपः पश्यति धर्मभावं लग्नाधिपः पश्यति लग्नभावम् ॥
मृत्युं यदा पश्यति मृत्युनाथस्तदा सुतीर्थे नियतं मृतिः स्यात्९०॥

अर्थ--जन्मसमय लग्नके नववें स्थानका मालिक ग्रह यदि धर्म्मभावको देखै लग्नका मालिक ग्रह यदि लग्नभावको देखै और आठवें स्थानका मालिक यदि आठवे स्थानको देखता होय तो जात मनुष्यकी निश्चयसे तीर्थमें मृत्यु होती है ॥ ९० ॥

उच्चगेहगते चन्द्रे दशमे जीववीक्षिते ।
मृत्यौ शुक्रे धने जीवे मृत्युस्तीर्थजलाशये ॥ ९१ ॥

अर्थ–जन्मसमय चन्द्रमा यदि उच्च स्थानमे स्थित होय और बृहस्पति दशवें स्थानको देखता होय अथवा आठवे स्थानमें शुक्र और धन (दूसरे) स्थानमें बृहस्पति स्थित होय तो जात मनुष्यकी तीर्थजलमें मृत्यु होती है ॥ ९१ ॥

निधनं गुरुणा युक्तं गुरुणा दृश्यतेऽथवा ।
एवं भृगुसुतेनापि तीर्थे च मरणं भवेत् ॥ ९२ ॥

अर्थ–जन्मलग्नके आठवें स्थानमें यदि बृहस्पति वा शुक्र स्थित हो अथवा बृहस्पति वा शुक्रकी दृष्टि होय तो जात मनुष्यकी तीर्थस्थानमें मृत्यु होती है ॥ ९२ ॥

येषां गुरुर्भृगुसुतः शशिजः क्षपेशो
दुश्चिक्यधर्म्मनिधनाधिपतिं प्रपश्येत ॥

तेषामनन्तधनधर्मसुखानि नित्यं
दीर्घायुरन्तसमये खलु तीर्थलाभः ॥ ९३ ॥

अर्थ-जन्मसमय जिस मनुष्यकी लग्नके तीसरे स्थानमें और नववें स्थानमें बृहस्पति, शुक्र, बुध और चन्द्रमा स्थित होय अथवा आठमें स्थानके मालिकको यह समस्त ग्रह देखतेहो तो वह मनुष्य सर्वदा अत्यन्त धनका मालिक और अनेक प्रकारके धर्म्म कार्य कर दीर्घायु लाभकरके अन्तसमयमे तीर्थलाभ करताहै ॥ ९३ ॥

आनृण्यं पितुरादत्ते तीर्थे मरणमेव च ।
नयेत्पितृकुलं पुण्यं बन्धुगे भृगुनन्दने ॥ ९४ ॥

अर्थ-जन्मसमयमें शुक्र लग्नके तीसरे चौथे स्थानमे होनेसे वह मनुष्य पिताको अनृणी करके पितृकुलका उद्धार करताहै और उसकी तीर्थमें मृत्यु होतीहै ॥ ९४ ॥

निधननिधननाथो धर्म्मपो मृत्युपो वा
शुभखगभवनस्थो यस्य वापि प्रपश्येत् ॥
निवसति बहुकालं मानयुक्तः सुतीर्थे
विसृजति निजदेहं रामनाम प्रजल्पन् ॥ ९५ ॥

अर्थ-जिस मनुष्यके जन्मलग्नके आठवे स्थानमे आठवे स्थानका मालिक होय अथवा नवमे स्थानका मालिक और आठमे स्थानका मालिक शुभग्रहके क्षेत्रमे स्थित हो वा देखतेहो तो वह मनुष्य चिरकाल सन्मानके साथ तीर्थमें वासकरके रामनामका जप करते करते तीर्थस्थानमें ही प्राणको छोडदेताहै ॥ ९५ ॥

विधुर्वा सागरे यस्य कुजो वा यस्य युग्मके ।
निधनं पुण्यतीर्थेषु निधनेशो भवेद्यदि ॥ ९६ ॥

अर्थ-जन्मसमय चन्द्रमा यदि चौथे स्थानमें होय अथवा मङ्गल युग्मराशिमें स्थित होय और मृत्युका मालिक यदि मृत्युस्थानमे होय तो उस मनुष्यकी तीर्थस्थानमें मृत्यु होतीहै ॥ ९६ ॥

दशमे रविणा सौम्ये द्वितीये जीवसंयुते ।
मृत्युपो लग्नपो लग्ने मृतिस्तीर्थे निगमये ॥ ९७ ॥

मृत्यौ दृष्टे जीवशुक्रे लग्ने च सूर्यनन्दने ।
धर्म्मेशो वीक्षते लग्नं ब्रह्मपुत्रे मृतिर्भवेत् ॥ ९८ ॥

अर्थ-जन्मलग्नके आठवें स्थानमें यदि बृहस्पति और शुक्रकी दृष्टि होय और शनैश्चर लग्नके होय और नवमें स्थानका मालिक लग्नको देखताहोय होय तो जातमनुष्यकी ब्रह्मपुत्रमें मृत्युहोतीहै ॥ ९८ ॥

लग्नेशे ग्रहसंयुक्ते मृत्युस्थे रजनीकरे ।
जीवक्षेत्रगते मृत्यौ मृत्युः पुष्करसंज्ञिते ॥ ९९ ॥

अर्थ--जन्मलग्नका मालिक यदि अन्यग्रहके साथमें होय और चन्द्रमा आठवें स्थानमें होय और आठमा बृहस्पतिका क्षेत्र होय तो जातमनुष्यकी पुष्कर तीर्थमें मृत्यु होतीहै ॥ ९९ ॥

चरे यदि स्यान्निधनाधिनाथस्तस्याधिपः पश्यति चेद्विलग्नम् ।
तदा सुतीर्थे नियतश्च मृत्युर्धर्म्माधिपः पश्यति धर्म्मभावम्॥१००॥

अर्थ-जन्मसमयमें यदि लग्नके आठमें स्थानका मालिक चर राशिमे होय और लग्नके मालिककी लग्नपर दृष्टि होय और नवमे स्थानका मालिक नवमें स्थानको देखता होय तो जातमनुष्यकी निरन्तर सुन्दर तीर्थमें मत्यु होतीहै ॥ १०० ॥

अथ गङ्गामृत्युयोगः ।

त्रयो ग्रहा यदैकत्र लग्नराशिविवर्जिताः ।
भुक्त्वा च विविधान्भोगान्म्रियते जाह्नवीजले ॥ १०१ ॥

अर्थ-यदि किसी मनुष्यके जन्मसमय लग्न और राशि भिन्न किसी घरमें तीन ग्रहोका वासस्थान होय तो वह मनुष्य अनेक प्रकारके भोगोंसे काल व्यतीत करके अंन्तसमयमे गङ्गाजीके जलमे उसका मृत्यु होताहै ॥ १०१ ॥

वृषे सूर्य्ये गुरौ धर्म्मे लग्नस्थे दैत्यपुङ्गवे ।
मृत्यौ सौम्येक्षिते युक्ते म्रियते जाह्नवीजले ॥ २ ॥

अर्थ-जन्मसमय वृषराशिमे सूर्य, लग्नके नवमे स्थानमें बृहस्पति, लग्नमें शुक्र और आठमे स्थानमें बुधकी दृष्टि वा बुधयुक्त होनेसे जातमनुष्यकी गङ्गाजलमे मृत्यु होती है ॥ २ ॥

चन्द्रे कुम्भे हरौ लग्ने भौमक्षेत्रे बृहस्पतौ ।
मृत्युपावेक्षिते धर्म्मे म्रियते जाह्नवीजले ॥ ३ ॥

अर्थ–जिसका सिंहराशिमे जन्म होय उस मनुष्यके जन्म समय यदि चन्द्रमा कुम्भराशिमे और बृहस्पति मङ्गलके घरमे स्थित होय और आठमे स्थानका मालिक यदि नवमे स्थानको देखता होय तो जात मनुष्यको मृत्यु गंगाजलमे होती है ॥ ३ ॥

गुरुणा सहिते चन्द्रे मृत्यौ दृष्टे शुभग्रहे।
लग्नपो मृत्युपो धर्म्मे म्रियते जाह्नवीजले ॥ ४ ॥

अर्थ–जन्मसमयमे बृहस्पति और चन्द्रमाका एक घरमे वासस्थान होय और आठवें स्थानमे शुभग्रहोकी दृष्टि होय और लग्नका मालिक और आठवें स्थानका मालिक नववें स्थानमें स्थित होय तो जात मनुष्यकी गङ्गाजलमे मृत्यु होती है ॥ ४ ॥

केन्द्रगौ गुरुशुक्रौ तु मृत्यौ दृष्टे शुभग्रहे।
चरेऽष्टमे गुरौ युक्ते म्रियते जाह्नवीजले ॥ ५ ॥

अर्थ--जन्मसमय यदि लग्नके केन्द्रस्थानमें बृहस्पति और शुक्र स्थित होय और आठवे स्थानमे शुभग्रहोंकी दृष्टि होय अथवा मृत्यु स्थान यदि चरराशि होय और उसमे बृहस्पति स्थित होय तो इस मनुष्यकी गङ्गाजलमें मृत्यु होती है ॥ ५ ॥

गुरुणा सहितश्चन्द्रो लग्नपो यदि पुण्यगः।
स्मरपो व्ययपो लाभो मृत्युः स्याज्जाह्नवीजले ॥ ६ ॥

अर्थ–जन्मसमयमे यदि बृहस्पति और चन्द्रमा एक घरमे होय, लग्नका मालिक नवमे स्थानमे स्थित होय और सातमे स्थानका मालिक और बारहवें स्थानका मालिक ग्यारहवे स्थानमे स्थित होय तो जात मनुष्य गङ्गाजलमें प्राणत्यागकरताहै ॥ ६ ॥

लग्नपः पुण्यपश्चापि मृत्यौ स्यातामुभौ यदि।
स्थितौ द्रेष्काण एकस्मिन्म्रियते जाह्नवीजले ॥ ७ ॥

अर्थ–जन्मकालमे लग्नका मालिक और नवमे स्थानका मालिक यदि आठवे स्थानमें एक द्रेष्काणमे स्थित हो तब जात मनुष्यकी गङ्गाजलमे मृत्यु होतीहै ॥ ७ ॥

स्वोच्चस्थे शुक्रजीवे तु द्वादशे भूमिजे गुरौ।
लग्ने वा शुक्रजीवे तु म्रियते जाह्नवीजले ॥ ८ ॥

लग्ने शुक्रे स्मरे जीवे धर्म्मस्थे रजनीकरे ।
मृत्युं पश्यति लग्नेशो म्रियते जाह्नवीजले ॥ ९ ॥

अर्थ–जन्मसमय लग्नमें शुक्र, सातवें बृहस्पति और नवमें स्थानमे चन्द्रमा होय और लग्नका मालिक मृत्यु स्थानको देखता हो तो जात मनुष्यकी गङ्गाजलमें मृत्यु होतीहै ॥ ९ ॥

धर्म्मे गुरौ सचन्द्रे च मृत्युपो वीक्षते मृतम् ।
दशमे जीवशुक्रे तु म्रियते सागरे जले ॥ १० ॥

अर्थ–जन्मसमय चन्द्रमाके साथ बृहस्पति यदि नववे स्थानमें होय और आठवे घरका मालिक आठवें घरको देखताहोय अथवा बृहस्पति और शुक्र दशवें स्थानमें स्थित हों तो जातमनुष्यकी समुद्रके जलमें मृत्यु होतीहै ॥ १० ॥

लग्नस्य दक्षिणे चन्द्रे वामे चैव दिवाकरे ।
कृत्वा पुण्यसहस्राणि म्रियते जाह्नवीजले ॥ ११ ॥

अर्थ–जन्मसमय लग्नके दक्षिणभागमे चन्द्रमा और वामभागमे सूर्य्य होनेसे जातमनुष्य सहस्रपुण्य कर्म करके गङ्गाजलमे प्राण त्याग करताहै ॥ ११ ॥

पुण्यराशिगतः सूर्य्यो निधने चन्द्रमा यदि ।
कृत्वा पुण्यसहस्राणि म्रियते जाह्नवीजले ॥ १२ ॥

अर्थ–जन्मसमय यदि सूर्य्य नववे स्थानमें और चन्द्रमा आठवें स्थानमे स्थित होय तो जातमनुष्य हजारों पुण्य कर्म करके गङ्गाजलमे मृत्युको प्राप्त होताहै ॥ १२ ॥

पुण्यराशिगते सौम्ये निधने चन्द्रमा यदि ।
भुक्त्वा च सकलान्भोगान्म्रियते जाह्नवीजले ॥ १३ ॥

अर्थ–जन्मसमय शुभ ग्रह यदि पुण्यराशिमें हों और चन्द्रमा आठवे स्थानमे स्थित होय तो जातमनुष्य अनेक प्रकारके ऐश्वर्य्यादिकोंको भोग कर अन्तसमय गङ्गाजलमें प्राणत्याग करताहै ॥ १३ ॥

मीने कुम्भे मृगे चैव कुलीरे च विशेषतः ।
जीवयुक्तेऽथवा दृष्टे हरिपादोदके व्यसुः ॥ १४ ॥

अर्थ–जन्मसमय यदि मीन, कुम्भ, मकर वा कर्क राशिमें बृहस्पति स्थित होय अथवा उक्त समस्त राशियोंमें उसकी दृष्टि होय तो जातमनुष्यकी विष्णुपादोदक गङ्गाजलमें मृत्यु होतीहै ॥ १४ ॥

निधनेशो यदा युग्मे गुरुस्तेन युतो यदि ।
भुक्त्वा च विविधान्भोगान्म्रियते जाह्नवीजले ॥ १५ ॥

अर्थ-जन्मसमय यदि आठवे स्थानका मालिक बृहस्पतिके साथ होकर युग्म राशिमें स्थित होय तो जात मनुष्य अनेक प्रकारके भोगोंको भोगकर अन्तसमय उसकी गङ्गाजलमे मृत्यु होतीहै ॥ १५ ॥

निधनेशो यदा युग्मे गुरुशुक्रावलोकितः ।
कृत्वा पुण्यसहस्राणि म्रियते जाह्नवीजले ॥ १६ ॥

अर्थ-जन्मसमय यदि आठवें स्थानका मालिक युग्मराशिमे होय और उसपर बृहस्पति और शुक्रकी दृष्टि होय तो जातमनुष्य हजारो पुण्य कर्म करताहै और अन्तसमय उसकी गङ्गाजलमें मृत्यु होतीहै ॥ १६ ॥

कर्कटे जीवशुक्रौ च धर्मर्क्षे चन्द्रमा यदि ।
तस्य भाग्यं विजानीयाद्गङ्गायां मरणं भवेत् ॥ १७ ॥

अर्थ-जन्मसमयमे यदि बृहस्पति और शुक्र कर्क राशिमे होयँ और चन्द्रमा यदि नववे स्थानमें होय तो उस मनुष्यकी गङ्गाजलमें मृत्यु होतीहै ॥ १७ ॥

बुधादित्य (क) समो योगो न भूतो न भविष्यति ।
चिरकालं सुखं भुक्त्वा म्रियते जाह्नवीजले ॥ १८ ॥

अर्थ-बुधादित्ययोगके समान दूसरा योग न हुआ और न होय जिस मनुष्यका बुधादित्य योगमे जन्म होय वह चिरकाल सुखोंको भोगकर अन्तसमय उसकी गङ्गाजलमे मृत्यु होतीहै ॥ १८ ॥

विनाशराशौ यदि पुण्यगेहे निजाधिपेनैव विलोकितः स्यात् ॥
मृत्यौ भवेत्सौम्ययुतोऽपि नूनं प्राणांस्त्यजेज्जह्नुसुतासुनीरे ॥ १९ ॥

अर्थ-जन्मसमय आठवे स्थानका मालिक और नववें स्थानका मालिक यदि आठवे स्थान और नववे स्थानको देखतेहो और शुभग्रह मृत्यु स्थानमें स्थित हों तो उस मनुष्यकी गङ्गाजलमे मृत्यु होतीहै ॥ १९ ॥

पुण्याधिपः पुण्यगृहे च केन्द्रे केन्द्राधिपयोग इहैव नीतः ॥
राजाधिराजो गुणिनां वरेण्यो गङ्गाजले मुञ्चति जीवितं सः ॥ २० ॥

अर्थ--जन्मसमय मनुष्यकी लग्नसे नवमें स्थानमें नववें स्थानका मालिक और केन्द्रस्थानमें केन्द्रस्थानका मालिक स्थित होय तो वह मनुष्य अत्यन्त गुणवान् और राजाधिराज होकर अन्तसमयमें गंगाजलमें मृत्युको प्राप्तहोताहै ॥ २० ॥

चतुर्भिः सप्तभिर्वापि निधनं यदि दृश्यते ।
भुक्त्वा भोगान्भूतियुतानन्ते च जाह्नवीं लभेत् ॥ २१ ॥

अर्थ—जन्मलग्नके आठवें स्थानपर यदि चार ग्रहोंकी वा सात ग्रहोंकी दृष्टि होय तो जातमनुष्य अनेकप्रकारके ऐश्वर्य्यादिकोंको भोगताहै और अन्तसमय गंगाजलमें मृत्यु होतीहै ॥ २१ ॥

बुधे लग्नगते चैव दशमे रोहिणीपतौ ।
जान्हव्यां हि तदा मृत्युर्नात्र कार्य्या विचारणा ॥ २२ ॥

अर्थ—जन्मलग्नमें बुध और लग्नके दशवें स्थानमे चन्द्रमा होनेसे जातमनुष्यकी निश्चयही गंगाजलमे मृत्यु होतीहै ॥ २२ ॥

चरराशौ स्थिते सूर्य्ये लग्नस्थश्चन्द्रमा यदि ।
वसिष्ठादिमुनिवाक्यं गङ्गायां मरणं भवेत् ॥ २३ ॥

अर्थ—जन्मसमय यदि चरराशिमें सूर्य्य और लग्नमें चन्द्रमा स्थित होय तो जातमनुष्यकी गंगाजलमें मृत्यु होतीहै; इसप्रकार वसिष्ठादि मुनिगणने कहाहै ॥ २३ ॥

धर्मगेहे यदा चन्द्रो बुधशुक्रावलोकितः ।
ते धर्मचारिणो भूत्वा मज्जन्ति सुरदीर्घिकाम् ॥ २४ ॥

अर्थ--जन्मलग्नके नववे स्थानमें चन्द्रमा होय और उसको बुध और शुक्र देखते हो तो जातमनुष्य धार्मिक होकर अन्तसमय गङ्गालाभ करताहै ॥ २४ ॥

पुण्यराशिगतश्चन्द्रः पुष्करे च दिवाकरः ।
कृत्वा पुण्यसहस्राणि म्रियते जाह्नवीजले ॥ २५ ॥

अर्थ--जन्मसमय यदि चर राशिमें चन्द्रमा और स्थिरराशिमें सूर्य्य स्थित होय (नववी राशिमे चन्द्रमा और दशवी राशिमें सूर्य्य इसप्रकार भी किसी आचार्यने कहाहै) तो जातमनुष्य हजारो पुण्यका कर्मकरके गंगाजलमें अन्तसमय प्राण त्यागताहै ॥ २५ ॥

अथ काशीमरणयोगः ।

लग्ने जीवे सशुक्रे च मृत्युयुक्ते निशाकरे ।
मृतिं पश्यति लग्नेशो मृतिं काश्यामवाप्नुयात् ॥ २६ ॥

अर्थ-जन्मलग्नमे यदि बृहस्पति और शुक्र स्थित हों और आठवें स्थानमें चन्द्रमा होय और लग्नका मालिक मृत्युस्थानको देखताहोय तो जातमनुष्य काशीधाममें मृत्युको प्राप्त होतीहै ॥ २६ ॥

लग्ने सिंहे शनौ षष्ठे मिथुने जीवसंयुते ।
मृतिं पश्यति लग्नेशो वाराणस्यां मृतिर्भवेत् ॥ २७ ॥

अर्थ-जिस मनुष्यकी जन्मलग्न सिंह होय, लग्नके छठे स्थानमें शनि होय. मिथुनमें बृहस्पति होय और लग्नका मालिक आठवें स्थानको देखता हो तो जात मनुष्यकी काशीमे मृत्यु होतीहै ॥ २७ ॥

लग्नेशः पूर्णदृष्ट्या तु मृत्युभावं प्रपश्यति ।
लग्नं वा रात्रिपो मृत्यौ काश्यां मृत्युं समादिशेत् ॥ २८ ॥

अर्थ-जन्म लग्नके मालिककी यदि आठवें स्थानमे वा जन्मलग्नमें. सम्पूर्ण दृष्टि होय और चन्द्रमा यदि आठवे स्थानमें स्थित होय तो जात मनुष्यकी काशीमें मृत्यु होती है ॥ २८ ॥

सप्तमस्थे जीवशुक्रे दशमे रजनीकरे ।
मृतिं पश्यति लग्नेशो वाराणस्यां मृतिर्भवेत् ॥ २९ ॥

अर्थ-जन्मलग्नके सातवे स्थानमे यदि बृहस्पति और शुक्र और दशमें स्थानमें चन्द्रमा स्थित होय और लग्नका मालिक आठवे स्थानको देखता होय तो जात मनुष्यकी काशीमे मृत्यु होती है ॥ २९ ॥

दशमे जीवशुक्रौ तु मृतिं पश्यति मृत्युपः ।
लग्ने वा लग्नपो भौमः काश्यां मृत्युं समादिशेत् ॥ ३० ॥

अर्थ-जन्मलग्नसे यदि दशवें स्थानमें बृहस्पति और शुक्र स्थित हो और आठवें स्थानका मालिक आठवें स्थानको देखता होय और लग्नमें लग्नका मालिक वा मङ्गल स्थित होय तो जात मनुष्यकी काशीमें मृत्यु होती है ॥ ३० ॥

जीवेन दृश्यते चन्द्रश्चन्द्रेण दृश्यते गुरुः ।
तदा मृत्युं वदेदेव काशीक्षेत्रे न संशयः ॥ ३१ ॥

१४

अर्थ–जन्मसमय यदि बृहस्पतिकी चन्द्रमापर और चन्द्रमाकी बृहस्पतिपर दृष्टि होय तो जात मनुष्यकी काशीमें मृत्यु होती है ॥ ३१ ॥

निधने च स्थितो भौमो बुधक्षेत्रे भवेद्यदि ।
काशीवासो भवेत्तस्य शशी केन्द्रे विशेषतः ॥ ३२ ॥

अर्थ–जन्मलग्नका आठवाँ स्थान यदि बुधका क्षेत्र होय और मङ्गल उस स्थानमे स्थित होय और चन्द्रमाका केन्द्रस्थानमें वासस्थान होय तो जात मनुष्यका काशीमें वास होता है ॥ ३२ ॥

अथ जन्ममरणयोर्मोक्षज्ञानम् ।

षष्ठाष्टमकण्टकगो गुरुरुच्चे मीनसंज्ञे विलग्ने वा ।
शेषैरबलैर्जन्मनि मरणे वा मोक्षगतिमाहुः ॥ ३३ ॥ (क)

अर्थ–जन्मसमय वा मृत्यु समय यदि बृहस्पति छठे आठवें लग्नमें चौथे सातवे वा दशवें स्थानमें होकर उच्च स्थानमे स्थित होय अथवा मीनराशिमे होय और अन्य ग्रह हनिबल होय तो जात वा मृतक मनुष्यको मोक्ष प्राप्त होती है इस प्रकार विद्वानोने कहा है ॥ ३३ ॥

अथ स्त्रीणां रूपादिनिरूणम् ।

स्त्रीपुंसोर्जन्मफलं तुल्यं किन्त्वत्र चन्द्रलग्नस्थम् ।
तद्बलयोगाद्वपुराकृतिश्च सौभाग्यमस्तमये च ॥ ३४ ॥ (ख)

(क) मोक्षगतिनिर्णयमाह–षष्ठेति । उच्चे स्थितो गुरुः षष्ठेऽष्टमे कण्टके केन्द्रे स्थितो यदि जन्मकाले मरणकाले वा स्यात्तदा ज्योतिर्विदो मोक्षगतिमाहुः । यदि भावसानान्तलग्ने वा इति पाठस्तदा भावसानराश्यन्तो मीनराशिः तस्मिन् लग्ने स्थितो गुरुः । यदि स्यात्तदा शेषग्रहैरबलैर्जन्मनि मरणे वा मोक्षगतिमाहुः। अत्र च गुरूच्चो मीनलग्नश्च यदि स्यादिति सौभरेः॥ मलापो हेय एव तथा लग्न इति प्रथमान्तनिर्देशस्यैवोचितत्वात् । पञ्चमषष्ठाष्टमकेन्द्रे ग इत्यनेनैव सिद्धे भावसानलग्ने इत्यस्य वैयर्थ्यापत्तेश्च । तथा बृहज्जातके–गुरुरथ रिपुकेन्द्रच्छिद्रगः स्वोच्चसंस्थ उदयति भवनान्त्यसौम्यभागे च मोक्षः । यदि भवति बलेन प्रोज्झितास्तत्र शेषाः मलपति यदि जीवस्तस्य निर्वाणमोक्षः ॥ इति ।

(ख) इदानीं स्त्रीजातकमाह–स्त्रीपुंसोरिति । जन्मफल स्त्रीपुंसोस्तुल्यं पुंसो यत्फलमुक्तं स्त्रिया अप्येतत् इत्यर्थः । अत्र स्त्रीषु यदसम्भवं राजयोगादि तत्तत्पतिषु वाच्यम् । तथा च लघुजातके "पुंजन्मफलं यद्घटते न स्त्रीषु पतिषु तत्तासाम्" इति । किन्तु चन्द्रलग्नस्थं तद्बलयोगादिति वपुः शरीरं शरीरस्य रूपशीलादि ज्ञातव्यं तथाऽऽकृतिराकारोऽप्यनः लग्नचन्द्रस्था ज्ञातव्या तयोर्मध्ये यो बली तद्बलाद्वाच्या इत्यर्थः । तथा लग्नादस्तसमये सप्तमे सौभाग्यं ज्ञातव्यं पतिश्च ज्ञातव्य । अत्र केचिल्लग्नवत् चन्द्रादपि सर्वं वाच्यमिति वदन्ति । तत्र केवल वपुर्मात्रं लग्नचन्द्रयोरित्युक्तं–

अर्थ—अब स्त्रियोके रूपादिको वर्णन करते हैं स्त्री और पुरुषके जन्मफलके समान अर्थात् पुरुषके जो समस्त फल कहे हैं स्त्रियोंकेभी प्रायः उसी प्रकार होते हैं किन्तु विशेष यही है कि चन्द्रमा और लग्नके बलानुसार शरीरका रूप और शीलादि और सातवें स्थानमे सौभाग्यका विचार करना चाहिये ॥ ३३ ॥

अथ सप्तमस्थपापग्रहफलम् ।

बाल्ये विधवा भौमे पतिसंत्यक्ता दिवाकरेऽस्तस्थे ।
सौरे पापदृष्टे कन्यैव जरां समुपयाति ॥ ३५ ॥ (ग)

अर्थ—अब कन्याके सातवे स्थानमे स्थित पापग्रहोका फल कहते हैं स्त्रियोके जन्मसमयमे लग्नके सातमे स्थानमें मङ्गल होनेसे बाल्यावस्थामे विधवा होजाती है सूर्य्य सातवें स्थानमे होनेसे जात स्त्रीको पति त्यागकर देता है और शनैश्चरको यदि पाप ग्रह देखते होय तो जात कन्या अविवाहिताही वृद्ध हो जाती है ॥ ३५ ॥

अथ वैधव्यादियोगः ।

क्रूरैरस्ते विधवा भवति पुनर्भूः शुभाशुभैर्नारी ।
क्रूरेऽष्टमे च विधवा स्यात्सतत्स्वथें सा स्वयं म्रियते ॥३६॥ (घ)

नान्यत अत्र सामान्यशास्त्रेण लग्नेनैव सम्बन्धः अत एव ओजक्षगतेत्यादि वपुर्गुणमात्रं लग्नेन्दुतो लक्ष्यते । ओजे लग्नेन्द्वोरित्यादिना नहि सर्वमेव स्त्रीजातकं [illegible] राजयोगादिलग्नवच्चन्द्रादपि ज्ञातव्यम् । तथा बृहज्जातके । "तासान्तु भर्तृमरणं निधने वपुस्तु लग्नेन्दुगं शुभगतास्तमये पतिश्च" इति । एवं वक्ष्यमाणेऽपि लग्नादेव सर्वं बोद्धव्यम् इति ।

(ग) सप्तमस्थे पापग्रहे फलमाह—बाल्य इति । भौमे लग्नादस्तगे सप्तमस्थे बाल्ये शैशवे विधवा स्यात् । दिवाकरे सप्तमस्थे पतिसंत्यक्ता स्यात् । शनौ तु पापदृष्टे सप्तमस्थे कन्या अनूढैव जरां प्राप्नोति जरावस्थायामपि तस्या विवाहो न स्यादित्यर्थः । पापदृष्टे इति शनिनैव सम्बन्धः । तथा बृहज्जातके—"[illegible] तरणौ कुजे तु विधवा बाल्येऽस्ते शनिनान्विते कन्यैवाशुभवीक्षिते [illegible] जरां गच्छति ॥" इति ।

अर्थ–पापग्रह लग्नके सातवें होनेसे जात नारी विधवा होती है, शुभाशुभ ग्रह सातवें होनेसे पुनर्भू होती है अर्थात् उस नारीका दूसरीवार विवाह होता है और पापग्रह आठमें स्थानमें होनेसेभी जातकन्या विधवा होती है, किन्तु दूसरे स्थानमें यदि शुभग्रह होय तो उस स्त्रीकीही मृत्यु होजाती है ॥ ३६ ॥

अपिच ।

ओजे लग्नेन्द्वोः स्त्री दुःशीला शील युता युग्मे ।
शून्ये बले कदर्य्यः पतिश्चरेऽस्ते प्रवासी स्यात् ॥३७॥(ङ)

(ङ) चन्द्रलग्नस्थं वपुराकृतिश्चेति यदुक्तं तत्फलमाह × ओज इति ओजेविषमगृहस्थितयोर्लग्नेन्द्वोः सतोः स्त्रीदुःशीला पुरुषप्रकृतिः स्यात् युग्मलग्नेन्द्वोःशीलयुता स्वभावस्था स्यात् मिश्रे मिश्र फलमूहनीयम् तथा लघुजातके "युग्मर्क्षे लग्नेन्द्वोः प्रकृतिस्था रूपशीलगुणयुक्ता ओजे पुरुषाकारा दुःशीला दुःखिता चैव" इति । अत्रच शुभपापदर्शनात् गुणयुक्ता गुणहीना च ज्ञातव्या । सप्तमस्थानात्पतिज्ञानमाह शून्य इति । ग्रहशून्ये बल रहिते चास्ते सप्तमस्थाने पतिः कदर्य्यः कापुरुषः स्यात् चरे च सप्तमस्थाने पतिर्नित्यप्रवासी स्यात् अत्रच शुभग्रहदर्शने शुभफलं स्यात् । तथा बृहज्जातके"शून्ये कापुरुषोऽबलेऽस्तभवने सौम्यग्रहावीक्षिते क्रूरेऽस्ते बुधमन्दयोश्चरगृहे नित्यं प्रवासाश्रितः"इति। अत्रच सौभरेः प्रलापः प्रहसनमेवेति।अत्र च लग्नस्य यावन्नवांशः सप्तमगृहस्य तावति नवांशे शुभग्रहसम्बन्धिनि सति सुभगा स्यात । सप्तमे पापग्रहनवांशे पापवीक्षिते व्याधियोनिर्दुर्भगा स्यात् । तथा बृहज्जातके "कौजेऽस्ते हंसे सौरिणाव्याधियोनिश्चारुश्रोणी वल्लभा सद्ग्रहांशे । " अत्र च द्रेक्काणात्स्त्रीपुंज्ञानं बृहज्जातके उक्तं तत्सङ्कलय्य मयोच्यते।"आदित्रिभागे मेषस्य कट्यां शुक्लपटावृतः । क्रोधनो रक्तनेत्रश्च पुमान्कृष्णो दुरासदः । मेषे द्वितीये नारी स्यात्खञ्जा भक्ष्येषु लोलुपा कुम्भाकृतिर्वाजिमुखी तृषार्त्ता लोहिताकृतिः मेषे तृतीये कर्म्मार्थी दारुणे निर्भयः पुमान् । कलाज्ञः कपिलः क्रूर सत्यशौच विवर्जितः ॥ १ ॥ वृषस्य प्रथमे नारी तृषार्त्ता स्यात्पतिव्रता । स्थूलोदरी दग्धपटा स्वल्पकेशी प्रियम्वदा । द्वितीये छागवदन स्तृषार्त्तो मलिनाम्बरः । वृषस्कन्धः कलाभिज्ञः कुशलः सर्वकर्मसु-वृषस्यान्ते हस्तितुल्यशरीरः पिङ्गलः पुमान् । उच्चपादः सूक्ष्मदन्तो मृगलोमाकुलाश्रयः ॥ २ ॥ मिथुनप्रथमे नारी कुर्वती कर्म निष्फलम् । हीन प्रजोच्छ्रितभुजा सतीरूपान्विता भवेत् । द्वितीये पुरुषः शूरो धनुष्मान्गरुडाननः । अन्ते धनुष्मान्नृत्यादिकलाज्ञो रत्नवान्सुधीः ॥ ३ ॥ कर्कटाद्ये हस्तिकायः शूकरास्यः फलादिभृत् । कुटिलांघ्रिर्हयग्रीवः पुरुषो जायते महान् । द्वितीये कर्कशा पद्मार्चिता नारी वनास्थिता। अन्ते प्रियाश्चिपीटास्यो नौवाणिज्यपरः पुमान् ॥ ४ ॥ सिंहाद्ये जम्बुकाकारो गृध्रकुक्कुरनिःस्वनः । मातापितृपरित्यक्तः पुष्पो मलिनाम्बरः । द्वितीये श्वाकृतिः कृष्णाजिनकम्बलवान्पुमान् । लताग्रनासो धन्वी च सिंहवत्स्याद्दुरासदः । अन्ते पुमान्नृक्षमुखो वानरोपमचेष्टित । दीर्घश्मश्रुर्दण्डधरो भवेत्कुञ्चितमूर्धज. ॥ ५ ॥ कन्याद्ये सह कन्याभिर्गच्छन्ती मलिनाम्बरा । पुष्पप्रकीर्णकुम्भेन लक्षिता कन्यका भवेत् । मध्यस्कन्धशिरायामो लेखको लोमशः पुमान् । अन्ते गौरी पुत्रहीना धौतवस्त्रसमन्विता॥ ६ ॥ तुलाद्ये मानकुशलस्तुलावान्सकलन्तिकः । वीथीमध्यगतोभाण्डं विचिन्वन्पुरुषो भवेत् । मध्ये क्षुधार्त्तस्तृषितः गृध्रास्यः कलत्रान्वित । अन्ते धनुष्मान्दीर्घास्यो मार्गगो-

अर्थ–स्त्रियोका जन्म ओज अर्थात् अयुग्म लग्नमें होनेसे अथवा जन्मचन्द्रमा अयुग्मराशिमे होनेसे वह दुःशीला होती है सातवाँ स्थान ग्रहशून्य वा बलशून्य होनेसे पतिकापुरुष होता है और चरराशि सातवें स्थानका होनेसे स्त्रीका पति नित्यप्रवासी होता है ३६

अथ ग्रहाणां गोचरभोगकालकथनम् ।

हरिर्मासं निशानाथः सपाददिवसद्वयम् ।
पक्षत्रयं भूमिपुत्रो बुधोऽष्टादश वासरान् ॥ ३७ ॥
वर्षमेकं सुराचार्यश्चाष्टाविंशद्दिनं भृगुः ।
शनिश्चार्द्धद्वयं वर्षं स्वर्भानुः सार्द्धवत्सरम् ॥ ३८ ॥
एवं प्रमाणात्सकलाः स्वराशिं भुञ्जते ग्रहाः ।
वक्रशीघ्रगतिश्चेत्स्याद्भौमादि पञ्चकेऽन्यथा ॥ ३९ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ–अब ग्रहोंके गोचरमे रहनेका समय कहते है. सूर्य्य एक राशिमे एक महीनेतक रहता है. इसीप्रकार चन्द्रमा सवादो दिन. मङ्गल पैंतालिस दिन बुध अठारह दिन. बृहस्पति एकवर्ष. शुक्र अट्ठाईस दिन, शनैश्चर अढाइ वर्ष और राहु डेढ वर्षतक एक राशिमे रहता है। ग्रहोंका स्वाभाविक नियम उक्त प्रकारसे एक एकराशिमें जानना चाहिये, किन्तु मङ्गल बुध. बृहस्पति. शुक्र. और शनि इन पांचग्रहोंकी वक्रगति और शीघ्र गति द्वारा कभी २ उक्त समयसे न्यूनाधिक होजाता है ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

—रत्नभूषित ॥ ७ ॥ वृश्चिके प्रथमे नारी वस्त्रालङ्कारवर्जिता । रथानञ्चुना नदी तीर्णकुम्भं मामा मनोहरा । मध्ये स्थानं सुख लिप्सुर्नारी कूर्मवटाकृति । अन्ते वृद्धिर्घटाम्यक्षर पश्चादिर्भीषनः ॥ ८ ॥ धनुष प्रथमे धन्वी मनुष्यास्योऽश्वरूपः । मध्ये स्वरूपा गौरी स्वानारी भद्रासनस्थिता । धनुस्तृतीये गौराङ्ग स्वमध्वान्दण्डधारक । बौद्धदराज्ञी दधरो विंशती पुरुषो भवेत् ॥ ९ ॥ मकर प्रथमो रौद्ररूपो रज्जुधर प्रमान । लोमशो मकरावक्त्र कृष्णरूपः । मध्ये गजार्दानीत्री

अथ ग्रहाणां गोचरफलम् ।
(तत्रादौ रवेः)

स्थानं जन्मनि नाशयेद्दिनकरः कुर्य्याद्द्वितीये भयम् ।
दुश्चिक्ये श्रियमातनोति हिबुके मानक्षयं यच्छति ॥
दैन्यं पञ्चमगः करोति रिपुहा षष्ठेऽर्थहा सप्तमः ।
पीड़ामष्टमगः करोति नितरां कान्तिक्षयं धर्म्मगः ॥ ४० ॥

इति रत्नकोषे ।

अर्थ–अब ग्रहोंके गोचरका फल कहतेहैं जन्मराशिमें सूर्य्य स्थित होनेसे मनुष्यका स्थान भ्रष्ट होजाताहै; इसीप्रकार दूसरे स्थानमें होनेसे भय, तीसरे स्थानमें श्रीलाभ, चौथे स्थानमें मानहानि, पांचवें स्थानमें दैन्य, छठे स्थानमे स्थितहोनेसे शत्रुओंका नाश, सातवें स्थावमें अर्थनाश, आठवें स्थानमें होनेसे पीडा और नवमें स्थानमें सूर्य्य स्थित होनेसे कान्तिक्षय होती है ॥ ४० ॥

कर्म वृद्धि जनकस्तु कर्मगो वित्तवृद्धिकृदथाय संस्थितः ॥
द्रव्यनाशजनितां महापदं यच्छति व्ययगतो दिवाकरः ॥ ४१ ॥

इति रत्नकोषे ।

अर्थ–सूर्य्य जन्म राशिसे दशमें स्थानमें होनेसे कार्य्यकी वृद्धि होतीहै, ग्यारहवें स्थानमें होनेसे सम्पत्तिकी वृद्धि होतीहै और गोचरके बारहवें स्थानमें सूर्य्य स्थित होनेसे मनुष्यकी सम्पत्तिका नाश होताहै और घोरतर विपद होतीहै ॥ ४१ ॥

इति रवेर्गोचरफलम् ।

अथ चन्द्रस्य ।

जन्मन्यर्थं दिशति हिमगुर्वित्तनाशं द्वितीये ।
दद्याद्द्रव्यं सहजभवने कुक्षिरोगं चतुर्थः ॥
कार्य्यभ्रंशं तनयगृहगो वित्तलाभञ्च षष्ठे ।
द्यूने द्रव्यं युवतिसहितं मृत्युसंस्थोऽपि मृत्युम् ॥ ४२ ॥

इति रत्नकोषे ।

अर्थ -जन्मराशिमे चन्द्रमा स्थित होनेसे मनुष्यको अर्थलाभ होता है. इसीप्रकार दूसरे स्थानमें वित्तनाश तीसरे स्थानमें होनेसे द्रव्यलाभ चौथे स्थानमें होनेसे उदरमें पीडा होती है पांचमी राशीमें होनेसे कार्य्यका नाश छठे स्थानस्थित होनेसे वित-

लाभ, सातवें स्थानमे होनेसे द्रव्य और स्त्री प्राप्त होती है और आठवे स्थानमें होनेसे मनुष्यकी मृत्यु होती है ॥ ४२ ॥

नृपभयं कुरुते नवमः शशी दशमधामगतस्तु महत्सुखम् ॥
विविधमायगतः कुरुते धनं व्ययगतस्तु रुजं सधनक्षयम् ॥ ४३ ॥

इति रत्नकोषे ।

अर्थ—चन्द्रमा जन्मराशिसे नवमे स्थानमे स्थित होनेसे मनुष्यको राज्यभय होता है इसी प्रकार दशमे स्थानमें होनेसे अत्यन्त सुख ग्यारहवें स्थानमें होनेसे धनकी वृद्धि होती है और बारहवें स्थानमे चन्द्रमा स्थित होनेसे मनुष्य रोगी होता है और उसके धनका नाश हो जाता है ॥ ४३ ॥

इति चन्द्रस्य गोचरफलम् ।

अथ मङ्गलस्य ।

प्रथमगृहगः क्षोणीसूनुः करोत्यरिजं भयं ।
क्षपयति धनं वित्तस्थाने तृतीयगतोऽर्थदः ॥
अरिभयकरः पातालेऽसून्क्षिणोति च पञ्चमो ।
रिपुगृहगतो धत्ते वित्तं शुचं मदनस्थितः ॥ ४४ ॥

इति रत्नकोषे ।

अर्थ—मङ्गल जन्मराशिमे स्थित होनेसे शत्रुका भय मनुष्यको होता है, इसीप्रकार दूसरे स्थानमे होनेसे धनका नाश, तीसरे स्थानमे होनेसे अर्थलाभ चौथे स्थानमें होनेसे शत्रुका भय पांचवे स्थानमे होनेसे मृत्यु, छटे स्थानमें होनेसे वित्तलाभ और सातवे स्थानमे मङ्गल स्थित होनेसे मनुष्यको शोक प्राप्त होता है ॥ ४४ ॥

जनयति मरणस्थः शस्त्रधारां धराजो ।
दिशति च नवमस्थः कार्य्यपीडामतीव ॥
शुभमपि दशमस्थो लाभगो भूमिलाभः ।
व्ययभवनगतोऽसौ व्याध्यनर्थार्थ नाशम् ॥ ४५ ॥

स्थानमे होनेसे पृथ्वीलाभ होता है और गोचरके मंगल बारहवें स्थानमें स्थित होनेसें रोग अर्थनाश और अमंगल होता है ॥ ४५ ॥

इति कुजस्य गोचरफलम् ।

अथ बुधस्य ।

बुधः प्रथमधामगो दिशति बन्धमर्थं धनं ।
वधंरिपुभयान्वितं सहजगश्चतुर्थेऽर्थदः ॥
अनिर्वृतिकरो भवेत्तनयगोऽरिगः स्थानदः ।
करोति मदनस्थितो बहुविधां शरीरापदम् ॥ ४६ ॥

इति रत्नकोषे ।

अर्थ–जन्मराशिमें बुधके स्थित होनेसे बन्धन होता है इसी प्रकार दूसरे स्थानमें होनेसे धनलाभ तीसरेमें मृत्युकी शङ्का और शत्रुका भय चौथेमें अर्थलाभ, पाँचवेंस्थानमें होनेसे आनन्दका अभाव, छठे स्थानमे प्राप्ति और गोचरके सातवे स्थानमें बुध होनेसे मनुष्यको अनेक प्रकारकी शारीरिक पीड़ा होती है ॥ ४६ ॥

अष्टमे शशिसुते धनलब्धिर्धर्मगेऽतिमहतीं तनुपीडाम् ॥
कर्मगे सुखमथायगतेऽर्थदो द्वादशगे भवति वित्तसुलाभः ॥४७॥

इति रत्नकोषे ।

अर्थ–बुध जन्मराशिसे आठवें स्थानमें होनेसे धनका लाभ होता है. इसीप्रकार नवमें स्थानमें होनेसे अत्यन्त शारीरिक पीड़ा दशमें स्थानमें होनेसे सुख ग्यारहवे स्थानमें होनेसे अर्थलाभ और गोचरके बुध बारहवें स्थानमे होनेसे मनुष्यको द्रव्य प्राप्त होता है ॥ ४७ ॥

इति बुधस्य गोचरफलम् ।

अथ बृहस्पतेः ।

भयं जन्मन्याय्यों जनयति धनस्थोऽर्थ मतुलं ।
तृतीयोऽङ्गक्लेशं दिशति च चतुर्थोऽर्थ विषमम् ॥
शुभं पुत्रस्थाता शुभमपि च कुर्य्यादरिगृहे । २ ॥
द्युने भूभृत्पूजां धननिचयनाशश्च निधने ॥ ४८ ।

इति [illegible] है. इसीप्रकार

अर्थ–बृहस्पति गोचरके जन्मराशिमें स्थित होनेसे भय होता है [illegible] होनेसे उदरमें स्थानमें होनेसे अतुल धनका लाभ तीसरे स्थानमें होनेसे शारीरिक [illegible] होनेसे चिन-

होनेसे धनका नाश पाँचवें स्थानमें होनेसे शुभ, छठे स्थानमें होनेसे अशुभ, सातवें स्थानमे होनेसे राजपूज्य और आठवें स्थानमे बृहस्पति स्थित होनेसे मनुष्यके धनका नाश होजाता है ॥ ४८ ॥

धर्म्मगतो धनवृद्धिकरः स्यात्प्रीतिहरो दशमोऽमरपूज्यः ॥
स्थानधनानि ददाति स चाये द्वादशगस्तनुमानसपीडाम् ॥ ४९ ॥

इति रत्नकोषे

अर्थ-बृहस्पति जन्मराशिसे नवमें स्थानमें स्थित होनेसे धनकी वृद्धि होती है, इसीप्रकार दशवे स्थानमें होनेसे प्रीतिभंग, ग्यारहवें स्थानमे होनेसे स्थान और धनप्राप्ति होती है और गोचरमें बृहस्पति बारहवें स्थानमे स्थित होनेसे मनुष्यको मानसिक और शारीरिक पीडा होती है ॥ ४९ ॥

अन्यच्च ।

आद्याष्टमे बन्धुवियोगदुःखमस्ते चतुर्थे धनहानितापम् ॥
षष्ठे च रोगं कलहं तृतीये सर्वस्वनाशं दशमस्तु जीवः ॥ ५० ॥

इति ग्रन्थान्तरे ।

अर्थ-ग्रन्थान्तरमे लिखा है कि, बृहस्पति गोचरमे जन्मराशिमे स्थित होनेसे वा आठवे स्थानमे स्थित होनेसे मनुष्यका बान्धवोंसे वियोग होता है. इसी प्रकार बारहवे वा चौथे होनेसे धनहानि. छठे होनेसे रोग. तीसरे होनेसे कलह और गोचरमे बृहस्पति दशमे स्थानमे स्थित होनेसे मनुष्यका सर्वस्वनाश होजाता है ॥ ५० ॥

इति गुरोर्गोचरफलम् ।

अथ शुक्रस्य ।

स॥॥.

जन्मन्यरिक्षयकरो भृगुजोऽर्थदोऽर्थे ।
दुश्चिक्यगः सुखकरो धनदश्चतुर्थे ॥
स्यात्पुत्रदस्तनयगोऽरिगतोऽरिवृद्ध्यै ।
शोकप्रदो मदनगो निधनेऽर्थदाता ॥ ५१ ॥

जनयति विविधाम्बराणि धर्म्मे ।
न शुभकरो दशमास्थितस्तु शुक्रः ॥
धननिचयकरस्तु लाभसंस्थितो ।
व्ययभवनेऽपि धनागमं करोति ॥ ५२ ॥

इति रत्नकोषे ।

अर्थ–शुक्र जन्मराशिसे नवमें स्थानमें स्थित होनेसे मनुष्यको अनेक प्रकारके वस्त्र प्राप्त होते हैं, दशवें स्थानमें होनेसे अशुभ ग्यारहवें स्थानमे होनेसे विपुल धनलाभ होता है और शुक्र बारहवें स्थानमें स्थित होनेसे मनुष्यको धन प्राप्त होता है ॥ ५२ ॥

इति शुक्रस्य गोचरफलम् ।

अथ शनेः ।

वित्तभ्रंशं सदाहं दिनकरतनयो जन्मराशिप्रपन्नः
चित्ते क्लेशं द्वितीयो रिपुहनकृतं वित्तलाभं तृतीयः ॥
पाताले शत्रुवृद्धिं सुतभवनगतः पुत्रभृत्यार्थनाशं ।
षष्ठस्थानेऽर्थलाभं जनयति मदने दोषसंघातमार्किः ॥ ५३ ॥

इति रत्नकोषे ।

अर्थ–शनि जन्मराशिमें स्थित होनेसे वित्तनाश और सन्ताप होता है, इसीप्रकार दूसरे स्थानमें होनेसे चित्तको क्लेश होता है, तृतीय स्थानमें होनेसे शत्रुका नाश और धन प्राप्त होता है, चौथे स्थानमें स्थित होनेसे शत्रुओंकी वृद्धि होती है, पाँचवें स्थानमे होनेसे पुत्र भृत्य और धनका नाश होजाता है, छठे स्थानमे होनेसे अर्थलाभ होता है और सातवें स्थानमें शनैश्चर स्थित होनेसे मनुष्यको अनेक प्रकारका अनिष्ट होता है ॥ ५३ ॥

शरीरपीडां निधनेऽथ धर्मे धनक्षयं कर्माणि दौर्मनस्यम् ।
उपान्त्यगो वित्तमनर्थमन्ते शनिर्ददातीत्यवदत्सुवृत्तः ॥ ५४ ॥

इति रत्नकोषे ।

अर्थ–शनैश्चर जन्मराशिसे आठवें स्थानमें स्थित होनेसे मनुष्यके शरीरमें पीडा होती है, इसीप्रकार नवमें स्थानमे होनेसे धनकी हानि, दशमे स्थानमे होनेसे

मानसिक उद्वेग, ग्यारहवे स्थानमे होनेसे वित्तलाभ और वारहवें स्थानमे शनैश्चर स्थित होनेसे मनुष्यका अत्यन्त अमंगल होता है ॥ ५४ ॥

इति शनेर्गोचरफलम्।

अथ राहोर्गोचरफलम्।

जन्मान्त्यपञ्चवसुरन्ध्रचतुर्द्विसप्त।
राशौ स्थितो यदि भवेदसुरः कदाचित् ॥
अर्थक्षयं रिपुभयं वहुकार्यहानिं।
रोगप्रवासमरणाग्निभयं करोति ॥ ५५ ॥

इति रत्नकोषे।

अर्थ--राहु गोचरमे जन्मस्थ वारहवे पांचवे आठवें नवमें चौथे, दूसरे सातवे स्थानमे स्थित होनेसे मनुष्यका अर्थक्षय शत्रुभय, वहुकार्यहानि रोग प्रवास मृत्यु और अग्निका भय होता है ॥ ५५ ॥

इति राहोर्गोचरफलम्।

अथ केतोर्गोचरफलम्।

एकादशत्रिदशषष्ठगतोनराणां
सन्मानभोगनृपमानसुखार्थदाता ॥
आज्ञाकराश्च पुरुषाः प्रमदाश्च नित्यं
सौख्योदयं दिशति पुण्यचयञ्च केतुः ॥ ५६ ॥

इति रत्नकोषे।

अर्थ–केतु गोचरमे जन्मराशिसे ग्यारहवे तीसरे. दशवे अथवा छटे स्थानमे स्थित होनेसे मनुष्यको सन्मान भोग राजसन्मान सुख और धन प्राप्त होता है ॥ ५६ ॥

इति केतोर्गोचरफलम्।

अथ गोचरफलकालकथनम्।

दिनकररुधिरौ प्रवेशकाले।
गुरुभृगुजौ भवनस्य मध्यपातौ ॥
रविसुतशशिनौ विनिर्गमस्थौ।
शशितनयः फलदस्तु सर्वकालम् ॥ ५७ ॥ (१)

अर्थ—अब ग्रहोके गोचरफलका समय कहेते हैं दीपिकामें लिखा है कि, सूर्य्य और मंगल राशिके प्रवेशकालमें शुभाशुभ फल प्रदान करते हैं इसीप्रकार बृहस्पति और शुक्र मध्यसमयमें, शनैश्चर और चन्द्रमा शेष समयमें और बुध समस्त समयमेही शुभाशुभ फल प्रदान करता है ॥ ५७ ॥

इति गोचरकालफलकथनम् ।

अन्यच्च ।

गोचरपीडायामपि राशिर्बलिभिः शुभग्रहैर्दृष्टः ।
पीडां न करोति तथा क्रूरैरेवं विपर्य्यासः ॥ ५८ ॥ (×)

इति ग्रन्थान्तरे ।

अर्थ—ग्रन्थान्तरमें लिखा है कि; मनुष्यकी जन्मराशिसे गोचर पीड़ित होकर यदि बलवान् शुभग्रहोकी दृष्टि होय तो पीड़ा नहीं होती है अर्थात् जन्मराशिसे जो जो पीडा कही है वह नहीं होसक्ती है गोचरमे यदि शुभग्रह होय और उनपर शुभग्रहोकीही दृष्टि होय तो अधिक शुभफल प्रदान करते हैं और पापग्रहोंकी दृष्टि होनेसे गोचरमें शुभग्रह होनेसेभी शुभफल नहीं होता है और गोचरमे पापग्रह होय और जो उनपर पाप ग्रहोंकीही दृष्टि होय तो अत्यन्त अशुभफलही न होता है ॥ ५९ ॥

अथ चन्द्रचारवशाद्ग्रहशुद्धिकथनम् ।

यादृशेन शशाङ्केन ग्रहः सञ्चरते नृणाम् ।
तादृशं फलमाप्नोति शुभं वा यदि वाऽशुभम् ॥ ६० ॥ (*)

(×) गोचरापवादमाह—गोचरेति । गोचरपीडायां सत्यां जन्मराशिर्यदि बलिभिः शुभग्रहैर्दृष्टः स्यात्तदा जन्मराशिः पीडां न करोति जन्मराशेः सकाशात् या पीड़ा उक्ता सा न भवतीत्यर्थः । एवञ्च गोचरे शुभे सति शुभैर्दृष्टो जन्मराशिरधिकं शुभं करोति क्रूरैर्दृष्टो जन्मराशिः शुभोऽपि शुभं न जनयति अशुभश्चेदधिकमेवाशुभं करोति पापदृष्टः । इति ।

(*) केतूपप्लवेत्यादिनोक्त गोचरस्याष्टवर्गगोचरस्य च द्वयोरेव चन्द्रचारवशेनापवादमाह—यादृशेनेति । चन्द्रवर्जितो यः कश्चिद्ग्रहो नृणां यादृशेन चन्द्रेण सञ्चरते तादृशं शुभमशुभं वा फलं नरः प्राप्नोति । शुभफलदेन सप्तमोपचयादिस्थेन चन्द्रेण ग्रहाणां सञ्चारः शुभफलदः । अशुभफलदेन चन्द्रेण सञ्चारोऽशुभ फलद इत्यर्थः । सञ्चरत इति समस्तृतीया युक्त इति स्त्रादित्वादात्मनेपदम् । अत्र कश्चित् "यादृशेन हिमरश्मिमालिना संक्रमो भवति तिग्मरोचिषः । तादृशं फलमवाप्यते नरैः साध्वसाध्वपि वशेन शीतगोः ॥" इति रत्नमालावचनमालोक्य ग्रहो रविरेवेति प्रलपति तदशुद्धं सामान्येन सर्वग्रहाणामेव गोचरत्वमुक्त्वा सामान्येनैव तदपवाद उच्यते पश्चात् सामान्येनैव ग्रहपताकाकारं वक्ष्यति अतो न रविमात्रस्यैतत् । तथाच राजमार्तण्डे "आश्रित्य चन्द्रस्य बलाबलानि ग्रहाः प्रयच्छन्ति शुभाशुभानि । मनः समेतानि यथेन्द्रियाणि कर्मण्यता यान्ति न केवलानि । यथा च दशाप्रवेशे चन्द्रस्य शुभाशुभेन ग्रहाणां शुभाशुभफलत्वं दर्शितम् । बृहज्जातके "मित्रस्वोच्च-

अर्थ-सञ्चारकालमे मनुष्यका चन्द्रमा शुद्ध होनेसे ग्रहोके गोचरफलके न्यूनाधिक कहते है। यदि चन्द्रमा भिन्न ग्रहोके सञ्चारसमयमें मनुष्यका चन्द्रमा गोचरमें शुभ होता है अर्थात् शुक्ल और कृष्ण इन दोनों पक्षमे शुभफलप्रदान करता है जन्मराशिसे सातवें तीसरे ग्यारहवें छठे दशवें और जन्मका होनेसे और कृष्णपक्षमे दूसरें पांचवे और नवमस्थानमे चन्द्रमा होय तब ग्रहोंके गोचरमे अशुभ होनेसेभी शुभफल प्रदान करता है और यदि ग्रहोके सञ्चारसमय चन्द्रमा शुद्ध न होय तो अत्यन्त अशुभ फल होता है और गोचरमें ग्रह शुभद होनेसे यदि सञ्चार कालमे चन्द्रमा शुद्ध होय तो अत्यन्त शुभफल होता है ॥ ६० ॥

अथ तारादिशुद्ध्या ग्रहशुद्धिकथनम्।

ताराबलादिन्दुरथेन्दुवीर्य्याद्दिवाकरः संक्रममाण उक्तः ॥
ग्रहाश्च सर्वे सवितुर्बलेन महीसुताद्याः क्रमशः प्रशस्ताः ॥६१॥

इति रत्नमालायाम्।

अर्थ-चन्द्रमाके सञ्चारकालमे ताराशुद्धि होनेसे गोचरमे चन्द्रमा अशुभ होनेसेभी शुभफल प्रदान करता है इसी प्रकार सूर्यके सञ्चारसमय गोचरमे चन्द्रमा शुद्ध होनेसे सूर्य्य गोचरमे अशुभ होनेसेभी शुभफल प्रदान करते है और मगल बुध बृहस्पति, शुक्र और शनैश्चर इन पांच ग्रहोके सञ्चार समय यदि सूर्य्य गोचरमें शुद्ध हो तो गोचरमें यदि उक्त पांचो ग्रह अशुभ होनेसेभी शुभफल प्रदान करते है ॥ ६१ ॥

अथ नाक्षत्रिकीदशाफलम्।

षट्सूर्य्यस्य दशा ज्ञेया शशिनो दशपञ्च च।
अष्टावङ्गारके प्रोक्ता बुधे सप्तदश स्मृताः ॥६२॥
शनैश्चरे दश प्रोक्ता गुरोरेकोनविंशतिः।
राहोर्द्वादश वर्षाणि भृगोरप्येकविंशतिः ॥ ६३

दशाका परिमाण २१ इक्कीस वर्षका होता है । इसी दशाको अष्टोत्तरी दशा कहेते हैं कृष्णपक्षमें जात मनुष्यकी उक्त दशा द्वारा शुभाशुभ फल जानना चाहिये ॥ ६२ ॥ ६३ ॥

अथ दशानिरूपणम् ।

कृत्तिकादित्रये सूर्यः सोमो रौद्रचतुष्टये ।
मघादित्रितये भौमो बुधो हस्ताच्चतुष्टये ॥ ६४ ॥
अनूराधात्रये सौरिर्गुरुः पूर्वाचतुष्टये ।
धनिष्ठादित्रये राहुः शेषे शुक्रः प्रकीर्त्तितः ॥ ६५ ॥

अर्थ–किस नक्षत्रमें जात मनुष्यको किस ग्रहकी दशा पहिले होती है. अब उसको वर्णन करते हैं यथा; कृत्तिका, रोहिणी और मृगाशिर नक्षत्रमें जात मनुष्यको प्रथम सूर्यकी दशा होती है इसी प्रकार आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य और आश्लेषानक्षत्रमें चन्द्रमाकी दशा होती है मघा, पूर्वाफल्गुनी और उत्तराफल्गुनी नक्षत्रमें मंगलकी दशा होती है हस्त, चित्रा, स्वाती और विशाखा नक्षत्रमें बुधकी दशा होती है, अनुराधा, जेष्ठा और मूल नक्षत्रमें शनैश्चरकी दशा होती है पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा अभिजित् (१) और श्रवणक्षत्रमें बृहस्पतिकी दशा होती है धनिष्ठा शतभिषा और पूर्वाभाद्रपदा नक्षत्रमें राहुकी दशा होती है और उत्तराभाद्रपदा रेवती, आश्विनी और भरणी नक्षत्रमें जात मनुष्यको पहिले शुक्रकी दशा होती है दशा जाननेके समय देखना चाहिये कि, किस २ नक्षत्रमें किस ग्रहकी दशा होतीहै प्रत्येक नक्षत्रमे कितनी वर्ष कितने दिनतक दशा रहती है और नक्षत्रका परिमाण कितने दण्ड होता है और जन्मसमयमे इन नक्षत्रोंका भुक्त कितने दण्ड होते इन सबको सूक्ष्मप्रकारसे देखकर दशाकालका भुक्तभोग्य जानना चाहिये ॥६४॥६५।

अथ दशाफलकथनम् ।

सूर्य्यौपप्लवभौमार्किदशातिकष्टदा नृणाम् ।
गुरुज्ञचन्द्रशुक्राणां यथेप्सितफलप्रदा ॥ ६६ ॥

अर्थ–सूर्य्य राहु मंगल और शनिकी दशा मनुष्यको अत्यन्त कष्ट देतीहै और बृहस्पति, बुध, चन्द्रमा और शुक्रकी दशा मनुष्यको अभीष्ट फल प्रदान करतीहै ॥ ६६ ॥

---

(१) उत्तराषाढ़ानक्षत्रके शेष चतुर्थांशका और श्रवणके प्रथम चार दण्डका नाम अभिजित है बृहस्पतिकी दशाके समयको चार भाग करके एक भाग पूर्वाषाढामें, अन्य तीन भागको मर्द्दित करके उत्तराषाढाका और श्रवणका होता है। प्रमाण यथा । "गुरोर्वर्षं चतुर्भाग पूर्वाषाढा [illegible]

अथ दशाफलनिर्णयः।

आदौ शीर्षोदये राशावन्ते पृष्ठोदये ग्रहाः।
उभयोदये मध्यस्थाः फलं दद्युर्बलाबलात् ॥ ६७ ॥ (२)

अर्थ–ग्रह शीर्षोदय राशिमे स्थित होनेसे दशाके प्रथमभागमें फल होता है, पृष्ठोदय राशिमे स्थित होनेसे शेष भागमें फल होता है और शीर्षोदय और पृष्ठोदय इन दोनोराशिमे स्थित होनेसे ग्रहगण दशाके मध्यभागमें बलाबलवशद्वारा शुभाशुभ फल प्राप्त होता है ॥ ६७ ॥

अथाष्टमचन्द्रादिदशाफलम्।

अष्टमेन्दोर्दशा मृत्युं बन्धमस्तसितस्य च।
शुभस्य वक्रिणो राज्यं पापस्य व्यसनाटने ॥ ६८ ॥ (३)

अर्थ--जात मनुष्यकी जन्मलग्नसे आठवें स्थानमे चन्द्रमा स्थित होनेसे चन्द्रमाकी दशामेंही मृत्यु होती है जन्मसमय आठवे स्थानमे जो ग्रह स्थित होय तो इसकी दशामें बन्धन होता है, वक्री शुभग्रहोंकी दशामे राज्यप्राप्त होता है और वक्री पाप ग्रहोंकी दशामे व्यसन, अटन, विपत्ति और विदेशभ्रमण होताहै ॥ ६८ ॥

अथ शिरश्छेदादिकारकदशाकथनम्।

अङ्गप्रत्यङ्गानां छेदं विदधाति षष्ठ शत्रुदशा।
द्यूनारिदशा कोणं निधनारिदशा शिरश्छेदम् ॥ ६९ ॥ (४)

अर्थ–जातमनुष्यकी जन्मलग्नसे छठे स्थानमें स्थित लग्नकी मालिकके शत्रुग्रहकी दशामे हाथ कान इत्यादि अङ्ग प्रत्यङ्गादिमे छेद होता है. सातवें स्थानमे स्थित लग्नाधिपतिके शत्रुग्रहोंकी दशामे मनुष्य पङ्गु होता है और आठवें स्थानमें स्थित लग्नके मालिकके शत्रुग्रहोंकी दशामे मनुष्यका शिरच्छेद होता है ॥ ६९ ॥

अथ दशारिष्टम् ।

क्रूरराशौ स्थितः पापः षष्ठे च निधने तथा ।
तत्स्थितेनारिणा दृष्टः स्वपाके मृत्युदो ग्रहः ॥७०॥ (५)

अर्थ–मनुष्यकी जन्मलग्नसे यदि छठे वा आठवें पापग्रह स्थितहों और वही स्थान पापग्रहोंका घर होय तब अथ च पापग्रहोंके क्षेत्रमें स्थित उक्त ग्रहोंके शत्रुओंकी उसमें दृष्टि होय तब उसी ग्रहकी दशामें मनुष्यकी मृत्यु होती है ॥ ७० ॥

अथ पापग्रहान्तर्दशाकथनम् ।

पापग्रहदशायान्तु पापस्यान्तर्दशा यदि ।
अरियोगे भवेन्मृत्युर्मित्रयोगे च संशयः ॥ ७१ ॥ (६)

अर्थ--पापग्रहोंकी दशामें यदि पापग्रहोंकी ही अन्तर्दशा होय और दशाके मालिकके साथ अन्तर्दशाके मालिककी शत्रुता होय तो मनुष्यकी मृत्यु होती है, पापग्रहोकी दशामें अन्तर्दशाका मालिक पापग्रह होनेसेभी यदि मित्रहो तब मृत्युके समान पीडा होती है ॥ ७१ ॥

अपि च ।

विलग्नाधिपतिः शत्रुर्लग्नस्यान्तर्दशांगतः ।
करोत्यकस्मान्मरणं सत्याचार्य्यः प्रभापते ॥ ७२ ॥ (क)

अर्थ–मनुष्यकी जन्मलग्नके मालिक ग्रहका शत्रु यदि जन्मलग्नके मालिग्रहकी अन्तर्दशामें होय तो मनुष्यकी अकस्मात् मृत्यु होती है इस प्रकार सत्याचार्य्यने कहा है ॥ ७२ ॥

अथ दशान्तर्दशयोरपवादः ।

प्रवेशे बलवान्खेटः शुभैर्वा संनिरीक्षितः ।
सौम्याधिमित्रवर्गस्थो मृत्यवे न भवेत्तदा ॥ ७३ ॥ (ख)

---

(५) पापग्रहदशारिष्टमाहक्रूरेति क्रूरराशौ पापग्रहराशौ लग्नात् षष्ठेऽष्टमे वा स्थितः पापः तत्स्थितेन पापग्रहराशिस्थितेन शत्रुग्रहेण शुभेनाशुभेन वा दृष्टः स्वपाके स्वदशाकाले मृत्युं करोति–इति ॥

(६) अन्तर्दशारिष्टमाह पापग्रहेति । अत्रपापा शनि रवि भौमाः पापग्रहदशायाम् ॥ अन्यान्यपापग्रहस्य शत्रोरन्तर्दशा चेत्तदा मृत्यु पापदशायां पापस्य मित्रस्यान्तर्दशा चेत्तदा संशय इत्यर्थः ॥ इति ।

(क) लग्नान्तर्दशारिष्टमाह–विलग्नेति । स्पष्टार्थम् । इति ।

(ख) दशान्तर्दशारिष्टमाह–प्रवेश इति । दशाप्रवेशकाले अन्तर्दशाप्रवेशकाले वा दशापति·

अर्थ--अब दशादिके रिष्टभंग कहते हैं दशा वा अन्तर्दशाके प्रवेशसमय दशाका मालिक वा अन्तर्दशाका मालिक ग्रह बलवान होय वा उसे शुभग्रह देखते हों अथवा अधिमित्रादि शुभ ग्रहोंके वर्गादिमें स्थित होय तो उसी दशामें मनुष्यको मृत्युके समान पीड़ा होती है ॥ ७३ ॥

अथ रिष्टप्रतीकारः।

गोचरे वा विलग्ने वा ये ग्रहा रिष्टसूचकाः।
पूजयेत्तान्प्रयत्नेन पूजिताः स्युः शुभावहाः ॥ ७४ ॥ (ग)

अर्थ—अब अरिष्टका प्रतीकार कहते हैं मनुष्यके गोचरमें अथवा लग्नमें यदि कोई ग्रह अरिष्ट होय तो यत्नपूर्वक उस ग्रहकी पूजादि करे कारण पूजन करनेसे ग्रह शुभफल करते हैं ॥ ७४ ॥

यो बलवान्स्यात् शुभदृष्टो वा स्यात् शुभवर्गेऽधिमित्रवर्गे वा स्थितः स्यात्तदा मृत्युरेव न भवेत्किन्तु भयम् एव स्यादित्यर्थः। तथा पाकस्वामिनि लग्न इत्यादिना यदुक्तं तस्मिन् योगे सति मृत्युर्न भवेदित्यर्थः। तथाच श्रीपतिः। "दशापतिर्लग्नगतो यदि स्यात्त्रिषडेकादशगश्च लग्नात् " इति। [illegible] स्फुटीक्रियते। [illegible] बुधैः [illegible]। वर्ष [illegible] ५। १०। २९ [illegible] २६। [illegible] विपत्कानि

अथ ग्रहदोषद्रव्यधारणविधिः ।

सूर्यादिदोषशान्त्यै धार्य्याणि भुजेन ताम्रशंखौ च ॥
सकाञ्चनमुक्तारजतत्रपुलोहराज पट्टानि ॥ ७५ ॥ (१)

अर्थ-अब ग्रहोंकी दोषशान्तिके अर्थ धारण करनेका द्रव्य कहते हैं सूर्य्यके विरुद्ध होनेसे ताम्र धारण करना चाहिये, इसी प्रकार चन्द्रमा विरुद्ध होनेसे शङ्ख, मङ्गल विरुद्ध होनेसे प्रवाल, बुध विरुद्ध होनेसे काञ्चन, बृहस्पति विरुद्ध होनेसे मुक्ता, शुक्र विरुद्ध होनेसे चांदी, शनैश्चर विरुद्ध होनेसे सीसक, राहु विरुद्ध होनेसे लोह और केतुके विरुद्ध होनेसे राजपट्ट (मणिविशेष) धारण करना चाहिये ॥ ७५ ॥

अन्यच्च ।

माणिक्यं विगुणे सूर्य्ये वैडूर्य्यं शशलांच्छने ।
प्रवालं भूमिपुत्रे च पद्मरागं शशाङ्कजे ॥ ७६ ॥
गुरौ मुक्तां भृगौ वज्रमिन्द्रनीलं शनैश्चरे ।
राहौ गोमेदकं धार्य्यं केतौ मरकतं तथा ॥ ७७ ॥ (२)

अर्थ-अब अन्यप्रकारसे कहते हैं।सूर्य्य विरुद्ध होनेसे माणिक्य धारण करना चाहिये इसीप्रकार चन्द्रमाके विरुद्ध होनेसे वैडूर्य्यमणि, मङ्गलके विरुद्ध होनेसे प्रवाल बुधके विरुद्ध होनेसे पद्मराग, बृहस्पतिके विरुद्ध होनेसे मुक्ता, शुक्रके विरुद्ध होनेसे हीरक, शनैश्चरके विरुद्ध होनेसे इन्द्रनील राहुके विरुद्ध होनेसे गोमेदक और केतुके विरुद्ध होसे मरकतमणिको धारणकरै ॥ ७६ ॥ ७७ ॥

अपरञ्च ।

सूर्यें ताम्रं विधौ शंखः प्रवालं भूमिनन्दने ।
बुधे च काञ्चनं देयं गुरौ मुक्तां विदुर्बुधाः ॥ ७८ ॥
रजतं भृगुपुत्रे च सूर्यसूनौ त्रपुस्तथा ।
राहौ लोहं राजपट्टं केतौ स्याल्लागणीयकम ॥ ७९ ॥

अर्थ–जातकचंद्रिकामें भी ग्रहोके दोषोकी शान्तिके अर्थ धारण करनेके द्रव्य कहे हैं यथा–सूर्य्य विरुद्ध होनेसे ताम्रधारण करना चाहिये इसीप्रकार चन्द्रमा विरुद्ध होनेसे शङ्ख, मङ्गल विरुद्ध होनेसे प्रवाल, बुध विरुद्ध होनेसे काञ्चन, बृहस्पति विरुद्ध होनेसे मुक्ता, शुक्र विरुद्ध होनेसे चाँदी, शनैश्चर विरुद्ध होनेसे सीषक, राहु विरुद्ध होनेसे लोह और केतु विरुद्ध होनेसे राजपट्ट (मणिविशेष) धारणकरै ॥ ७८ ॥ ७९ ॥

प्रकारान्तरश्च ।

दोषो न स्याद्ग्रहाणामशिशिरकिरणे ताम्रमिन्दौ च शंखः ।
पृथ्वीपुत्रे प्रवालं शशधरतनये शातकुम्भं भुजेन ॥
देवाचार्य्ये च मुक्तामणिरसुरगुरौ सीसकं सूर्य्यसूनौ ।
राहौ सारं गिरीणां कमलजतनये राजपट्टं विधार्यम् ॥ ८० ॥

इति राजमार्तण्डे ।

अर्थ–राजमार्त्तण्डमेभी ताम्रादि धारण करनेका प्रमाण कहाहै जिस मनुष्यके सूर्य्य विरुद्धहो वह ताम्र धारणकरै तो दोष दूर होजाता है, इसीप्रकार चन्द्रमा विरुद्ध होनेसे शङ्ख धारण करै, मङ्गल विरुद्ध होनेसे प्रवाल, बुध विरुद्ध होनेसे सुवर्ण, बृहस्पति विरुद्ध होनेसे मुक्ता, शुक्र विरुद्ध होनेसे मणि, शनैश्चर विरुद्ध होनेसे सीसक, राहु विरुद्ध होनेसे लोह और केतु विरुद्ध होनेसे राजपट्ट (मणिविशेष) धारण करै तो दोष दूर होता है ॥ ८० ॥

अपिच ।

यद्यद्ग्रहस्य यद्द्रव्यं तत्तस्मिन्विषमे स्थिते ।
दद्यात्सत्कृत्य विप्रेभ्यः स्वयञ्च बिभृयात्ततः ॥ ८१ ॥

अर्थ–जिस ग्रहके विरुद्ध होनेमे जो द्रव्य धारण करनेको कहा है, वह द्रव्य ग्रहोकी दोषशान्तिके अर्थ पहिले ब्राह्मणको दान करके देवै पीछेसे धारण करना चाहिये ॥ ८१ ॥

अथ ग्रहदोष मूलादिधारणविधिः ।

मूलं धार्य्यं त्रिशूल्याः सवितरि विगुणे क्षीरिकामूलमिन्दौ ।
जिह्वाहेर्भूमिपुत्रे रजनिकरसुते वृद्धदारस्य मूलम् ॥
भार्ङ्ग्या जीवेऽप शुक्रे भवति शुभकरं सिंहपुच्छस्य मूलं ।
वाट्यालं चार्कपुत्रे तमसि मलयजं केतुदोषेऽश्वगन्धम ॥ ८२ ॥ (३)

अर्थ-ग्रहोंके दोषशान्तिके अर्थ जो मनुष्य ताम्रादिधारण नहीं करसक्तेहैं वे मूलादि (वृक्षोंकी जड) को धारणकरें । यथा सूर्य्यके विरुद्ध होनेसे बलकी जडको धारण करे इसी प्रकार चन्द्रमाके विरुद्ध होनेसे क्षीरिका (खिन्नी) वृक्षकी जड, मङ्गल विरुद्ध होनेसे नागजिह्वा लताकी जड, बुधके विरुद्ध होनेसे वृद्धदारु वृक्षकी जड, बृहस्पतिके विरुद्ध होनेसे ब्राह्मणयष्टि वृक्षकी जड, शुक्रके विरुद्ध होनेसे सिंहपुच्छ (चित्रपर्णिका) वृक्षकी जड, शनैश्चरके विरुद्ध होनेसे वाव्याल (खिरेंटी) वृक्षकी जड राहुके विरुद्ध होनेसे श्वेतचन्दन और केतुके विरुद्ध होनेसे दोषशान्तिके अर्थ अश्वगन्धा (असगन्ध) वृक्षकी जड धारण करना चाहिये ॥ ८२ ॥

अन्यच्च ।

त्रिशूलीं क्षीरकामूलं गोजिह्वां वृद्धदारकम् ।
ब्रह्मयष्टीं सिंहपुच्छं वाव्यालं चन्दनं सितम् ॥ ८३ ॥
अश्वगन्धं क्रमात्सूर्य्याद्ग्रहादोषोपशान्तये ।
ताम्रादीनामभावे तु स्वयञ्च दक्षिणे भुजे ॥ ८४ ॥

इति बुद्धिप्रकाशे ।

अर्थ--बुद्धिप्रकाशमेंभी लिखाहै कि, ग्रहोंकी शान्तिके अर्थ जो मनुष्य ताम्रादिक धारण करनेमें अशक्त हैं अर्थात् नही धारण कर सकेहै वे सूर्य्यग्रहके विरुद्ध होनेसे बेलवृक्षकी जड अपनी दहनी भुजामें धारण करे। इसीप्रकार चन्द्रमाके विरुद्ध होनेसे क्षीरिका (खिन्नी) वृक्षकी जड, मङ्गलके विरुद्ध होनेसे अनन्तमूल (नागफणीकी जड) बुधके विरुद्ध होनेसे वृद्धदारु वृक्षकी जड, बृहस्पतिके विरुद्ध होनेसे श्वेत ब्रह्मयष्टिकी जड, शुक्रके विरुद्ध होनेसे सिंहपुच्छ (चित्रपर्णिका) वृक्षकी जड, शनैश्चरके विरुद्ध होनेसे वाव्याल (खिरेंटी) वृक्षकी जड़, राहुके विरुद्ध होनेसे श्वेतचन्दन और केतुग्रहके विरुद्ध होनेसे मनुष्य अपनी दहनी भुजामें अश्वगन्धा (असगन्ध) वृक्षकी जडको धारण करे ॥ ८३ ॥ ८४ ॥

अथ ग्रहदोषे स्नानविधिः ।

सिद्धार्थलोध्ररजनीद्वयमुस्तधान्यं
लामज्जकं सफलिनी सवचा च मांसी ॥
स्नानं कुरु ग्रहगणप्रशमाय नित्यं
सर्वे रविप्रभृतयः सुमुखीभवन्ति ॥ ८५ ॥ (४)

अर्थ–अब ग्रहोके विरुद्ध होनेसे उनकी शान्तिके निमित्त स्नान कहते हैं सफेद सरसो, हल्दी, दारुहल्दी, मुस्तर, नागरमोथा, धनियां, खसकी जड़, पीपल, वच और बालछड इन सब चीजोको जलमें मिलाकर उस जलद्वारा स्नान करनेसे विरुद्ध ग्रहोंका दोष दूर होजाता है ॥ ८५ ॥

इति वंशबरेल्यांतर्वर्तिकान्यकुब्जकुलभूषणभारद्वाजगोत्रात्रिपाठ्युपनामकेन पण्डित बाँकेलालात्मजेनश्यामसुन्दरशर्म्मणा सम्पादिते भाषाटीकाविभूषिते च ज्योतिषतत्त्वसुधार्णवे नवबध्वागमनादिजातकान्तस्तृतीयस्तरंगः ॥ ३ ॥

चतुर्थस्तरङ्गः ४.

अथ जातकर्म्मकथनम् ।

प्राङ्नाभिवर्द्धना (१) त्पुंसो जातकर्म विधीयते ।
मन्त्रवत्प्राशनञ्चास्य हिरण्यमधुसर्पिषाम् ॥ १ ॥

इति मनुः ।

अर्थ–अब जातकर्म कहते हैं भगवान् मनुजीने कहा है कि, बालकके नाडीछेदनके (नार काटनेके) पूर्वमे जातकर्म करना चाहिये मन्त्रपूर्वक सुवर्णयुक्त घृत और मधु बालकके मुखमे लगानेका नाम जातकर्म है ॥ १ ॥

अपिच ।

जन्मनोऽनन्तरं कार्य्यं जातकर्म यथाविधि । (२)
दैवादतीतःकालश्चेदतीते सूतकं भवेत् ॥ २ ॥

इति ज्योतिस्तत्वे ।

अर्थ–ज्योतिस्तत्वमे लिखा है कि, बालकके जन्मसमय नार कटनेके पहिले विधिपूर्वक जातकर्म करना चाहिये दैवयोगसे पहिले यदि बालकका नार कटजाय तो सूतक होजाता है अत एव सूतकान्तरके सिवाय उक्त बालकका जातकर्म नहीं होसक्ता है ॥ २ ॥

अन्यच्च ।

मृदु ध्रुवचरक्षिप्रभेष्वेषामुदयेऽपि वा ।
गुरु शुक्रेऽथवा केन्द्रे जातकर्म च नाम च ॥ ३ ॥ (+)

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—ज्योतिस्तत्त्वमे लिखा है कि, चित्रा, अनुराधा, मृगशिर, रेवती, उत्तराफाल्गुनी उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, रोहिणी, स्वाति, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पुष्य, अश्विनी और हस्तनक्षत्रमें अथवा इन समस्त नक्षत्रोंके मुहूर्त्तमे बृहस्पति वा शुक्र केन्द्रस्थानमें स्थित होनेसे जातकर्म और नामकरण करना चाहिये ॥ ३ ॥

अथ नामकरणम् ।

ध्रुवचरमृदुवर्ग वाजिहस्तासमेते
क्षणमुदयमथैषां सत्सु केन्द्रस्थितेषु ॥
दिगविशिवशताहे तत्कुलाचारतो वा ।
शुभदिनतिथियोगे नाम कुर्य्यात्प्रशस्तम् ॥ ४ ॥ (क)

(+) इति ज्योतिःशास्त्रोक्तं दैवात्कालेऽकार्यं वेदितव्यम् । अनुक्तेऽपि नक्षत्रादिनियमो न नैमित्तिकस्य निमित्तान्तर्भावित्वेन निरवकाशत्वात । इति ज्योतिस्तत्त्वे स्मार्त्तेनाभिहितम् ॥

अन्यच्च ।

मृदु ध्रुवचरक्षिप्रभेष्वेषामुदयेऽपि वा ।
गुरु शुक्रेऽथवा केन्द्रे जातकर्म च नाम च ॥ ३ ॥ (×)

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—ज्योतिस्तत्त्वमें लिखा है कि, चित्रा, अनुराधा, मृगशिर, रेवती, उत्तराफाल्गुनी उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, रोहिणी, स्वाति, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पुष्य, अश्विनी और हस्तनक्षत्रमें अथवा इन समस्त नक्षत्रोंके मुहूर्त्तमें बृहस्पति वा शुक्र केन्द्रस्थानमें स्थित होनेसे जातकर्म और नामकरण करना चाहिये ॥ ३ ॥

अथ नामकरणम् ।

ध्रुवचरमृदुवर्ग वाजिहस्तासमेते
क्षणमुदयमथैषां सत्सु केन्द्रस्थितेषु ॥
दिगविशिवशताहे तत्कुलाचारतो वा ।
शुभदिनतिथियोगे नाम कुर्य्यात्प्रशस्तम् ॥ ४ ॥ (क)

(+) इति ज्योतिःशास्त्रोक्तं दैवात्कालेऽकार्यं वेदितव्यम् । अनुत्कर्षेऽपि नक्षत्रादिनियमो न नैमित्तिकस्य निमित्तान्तर्भावित्वेन निरवकाशत्वात् । इति ज्योतिस्तत्त्वे स्मार्त्तेनाभिहितम् ॥

(क) नामकरणमाह ×ध्रुवेति । ध्रुववर्गे १२ । २१ । २६ । ४ । मृदुवर्गे १ । ४ । २७ । ५ । २७ । चरवर्गे १५ । ७ । २२ । २३ । २४ । अश्विन्या हस्तायाश्च अथ पक्षान्तरे एषामभावे एषां क्षणं मुहूर्तम् उदयं लग्नं व्याप्य कालकर्माणि द्वितीया एषां मुहूर्ते लग्न कृत्वेत्यर्थः । लग्नात्केन्द्रेषु शुभग्रहेषु सत्सु दिगहे दशाहे अविर्मेषः मेषाद्या राशयो द्वादशेति केचित् । वस्तुतस्तु अविः सूर्यः ' अवयः शैलमेषार्काः इत्यमरः ' द्वादशेति द्वादशाहे शिवाहे एकादशाहे शतपूरणे दिने तत्कुलाचारतः षष्ठमासादौ वा नाम कुर्य्यात् अत्र च दशाह इति विधेयार्थवशादाशौचेऽपि कर्तव्यम् । केचितु दशाहे गते एकादशाहे इति व्याचचक्षिरे तदशुद्धम् । यथा राजमार्तण्डे "दशमे द्वादशके वा शुभवारेऽथवा यथाचारम् ।" तथा पारस्करः "दशम्यामुत्थाप्य ब्राह्मणान्भोजयित्वा पिता नाम करोति ।" अत्र वानेकमुनिवचने गत इत्याध्याहारो न युज्यते दशम इत्यादौ पूरणप्रत्ययवैयर्थ्याच्च । दिगहे गत इतिवद्द्वादशाहे गत इत्यध्याहारेण त्रयोदशाहेऽपि करणप्रसंगात् शास्त्रलोकयोर्विरुद्धता च स्यात् इति । अत्र प्रशस्तमित्यनेन देवतानामाश्रित्य मङ्गलं समाक्षरं सुखोच्चार्य्यं घोषवदक्षरान्तञ्च नाम कार्य्यं यथा पारस्करः द्व्यक्षरं चतुरक्षरं वा घोषवदक्षरान्तञ्च नाम कुर्य्यात् । ओजाक्षरं मकठौवान्तं नाम स्त्रियै दितमिति तथा राजमार्तण्डे "नार्थहीनं न वाशस्तं नापशब्दयुतं तथा । नामंगल्य जुगुप्सं वा नाम कुर्य्यात्समाक्षरम् । नाति दीर्घं न ह्रस्वं वा नातिगुर्वक्षरान्वितम् । सुखोच्चार्यं च तन्नाम कुर्यात्प्रणवाक्षरम् । बीभत्सचण्डनाम्नी च कीर्त्तिता निन्द्यदाङ्गना ॥" इति ।

अर्थ-अब नामकरण कहते हैं-उत्तराफल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, रोहिणी. स्वाती, चित्रा, अनुराधा, मृगशिर, रेवती, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, अश्विनी और हस्तनक्षत्रमे अथवा इन समस्त नक्षत्रोंके असम्भव होनेसे इनके मुहूर्त्तमे लग्न स्थिर करके उसके केन्द्रस्थानमे शुभग्रह होनेसे दशवे बारहवें ग्यारहवें वा शत (सौ) दिनमे अथवा कुलाचार हेतुक षष्ठमासादिमें शुभदिन शुभ तिथि और शुभ योगमे बालकका नामकरण करना चाहिये ॥ ४ ॥

अपिच ।

आदौ घोषवदक्षरं यवरलान्मध्ये पुनः स्थापये-
दन्ते दीर्घविसर्जनीयरहितं नाम प्रयत्नात्कृतम् ॥
ऋक्षे तिष्यकराश्विसौम्यवसुभे चित्राऽनुराधोत्तरे
पौष्णे वादिति रोहणीषु शुभकृत्पुंसां समैरक्षरैः ॥ ५ ॥

इति गर्गः ।

अर्थ-गर्गमुनिने कहा है कि, नामके आदिमें घोषवन्त वर्ण मध्यमें यवरल और अन्तमें दीर्घ वर्ण और विसर्जनीय वर्णको छोडकर अक्षरोको मिलाकर नाम रक्खै.पुष्य, हस्त. अश्विनी. मृगशिर. धनिष्ठा, चित्रा, अनुराधा, उत्तराफल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा. रेवती, पुनर्वसु और रोहिणी यह समस्त नक्षत्र नामकरणमे शुभ है पुरुषका नाम सम (युग्म) अक्षरयुक्त रखना चाहिये ॥ ५ ॥

अन्यच्च ।

नामकरणं स्थिरे लग्ने केन्द्रपञ्चनवमस्थिते सौम्ये ।
त्र्यायषष्ठसमधिष्ठितपापे जीवशुक्रशशिसौम्यदिनेषु ॥ ६ ॥

इति नारायणपद्धतौ ।

अर्थ-नारायणपद्धतिमे लिखा है कि, स्थिरलग्नमे लग्नके केन्द्रस्थानमे पांचवे और नवमें शुभग्रह स्थित होनेसे तीसरे, ग्यारहवे और छठे स्थानमें पाप ग्रह होनेसे बृहस्पति. शुक्र. सोम और बुधवार में नामकरण प्रशस्त है ॥ ६ ॥

अपरञ्च ।

उत्तरा त्रयरोहिण्यौ श्रवणं स्वातिरश्विनी ।
अनुराधा मृगशिरो रेवती च पुनर्वसुः ॥ ७ ॥

धनिष्ठा शुभदा लग्नं यस्य केन्द्रे शुभग्रहाः ।
शशीज्यसौम्यशुक्राहे नाम कुर्य्याच्छुभे तिथौ ॥ ८ ॥

इति ज्योतिःसारे ।

अर्थ–ज्योतिःसारमें लिखा है कि, उत्तराफल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, रोहिणी, श्रवण, स्वाति, अश्विनी, अनुराधा, मृगशिर, रेवती, पुनर्वसु और धनिष्ठा नक्षत्रमें, लग्नके केन्द्रस्थानमें शुभग्रह होनेसे सोम, बृहस्पति, बुध और शुक्रवारमें. शुभ तिथिमें नामकरण प्रशस्त है ॥ ७ ॥ ८ ॥

प्रकारान्तरञ्च ।

शर्म्मान्तं ब्राह्मणस्योक्तं वर्म्मान्तं क्षत्रियस्य च ।
गुप्तदासात्मकं नाम प्रशस्तं वैश्यशूद्रयोः ॥ ९ ॥

अर्थ–नामकरणके समय ब्राह्मणके नामके अन्तमें शर्म्मा पदका प्रयोगकरै, इसीप्रकार क्षत्रियके नामके अन्तमें वर्म्मा, वैश्यके नामके अन्तमें गुप्त और शूद्रके नामके अन्तमें दास पदका प्रयोगकरै ॥ ९ ॥

अथ निष्क्रामणम् ।

आर्द्राधोमुखवर्जितानुपहतेष्वृक्षेष्वरिक्ते तिथौ
वारे भौमशनीतरे घटतुलाकन्यामृगेन्द्रोदये ॥
सद्दृष्टेऽथ चतुर्थमासि यदि वा मासे तृतीये शशि– (+)
न्यक्षीणे शुभदे शिशोरभिनवं निष्क्रामणं कारयेत् ॥ १० ॥

अर्थ–अब निष्क्रामण कहते हैं आर्द्रा, आश्लेषा, कृत्तिका, भरणि, मघा, विशाखा, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा और शतभिषा इन सब नक्षत्रोंको छोडकर

(+) निष्क्रमणमाह–आर्द्रेति । आर्द्रा अधो मुखगणः ९ । ३ । २ । १० । १६ । ११ । २० । २५ । २४ । एभिर्वर्जितेष्वन्येषु नक्षत्रेष्वनुपहतेषु उत्पातपापग्रहाद्यपीडितेषु रिक्तातिरिक्तासु तिथिषु मंगलशनिव्यतिरिक्तेषु वारेषु कुम्भतुलाकन्यासिंहलग्नेषु शुभग्रहदृष्टे तृतीये चतुर्थे वा मासि चन्द्रेऽक्षीणे गोचरशुभदेऽपि शिशोर्गृहात् प्रथम निष्क्रामण कारयेत् । इति अधोमुखानि "आश्लेषवह्नियमपित्र्यविशाखयुक्त पूर्वात्रयं शतभिषा न्वाप्यमूनि । एतान्यधो मुखगणानि शिवानि नित्यं विद्यार्थभूमिमिथुनेषु च भूषितानि ॥ " चतुर्थे मासीति ऋग्वेदियजुर्वेदिनो । यदाह विष्णु– "चतुर्थमास्यादित्यदर्शनम् " इति । शौनकोऽपि । "चतुर्थे मासि पुण्यर्क्षे शुक्ले निष्क्रमण शिशो ।" पारस्करः–"चतुर्थे मासि निष्क्रमणिका सूर्यमुदीक्षयति तच्चक्षुरिति' इति । मासे तृतीये तत्र तु छन्दोगाना गोभिलेन जननानन्तरं तृतीयशुक्लपक्षतृतीयाया चन्द्रदर्शनरूपनिष्क्रामणविधानात् । यथा गोभिल–"जननाद्यस्तृतीयो ज्यौत्स्नस्तत्तृतीयायाम्" इत्यादि । ज्योतिः शुद्धाश । अत्र कृत्यचिन्तामणि.–स्वन्नविधानतोऽर्कस्य शिशोरर्घ्यं दापयेत् । इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अन्य समस्त नक्षत्रोंमें औत्पादिक वा पापग्रहोके पीडा करनेका अधिकार न होनेसे रिक्ताभिन्न तिथिमे, मङ्गल और शनिभिन्न वारमे, कुम्भ, तुला, कन्या और सिंहलग्नमें (शुभग्रहोंकी दृष्टि होनेसे) चौथे महीनेमे वा तीसरे महीनेमे क्षीणचन्द्रमा न होनेसे और चन्द्रमा गोचरमे शुद्ध होनेसे आनन्दपूर्वक बालकको घरसे पहिले बाहर निकाले ॥ १० ॥

अपिच ।

चतुर्थे मासि कर्त्तव्यं शिशोर्निष्क्रमणं गृहात् ॥ ११ ॥

इति विष्णुधर्म्मोत्तरे ।

अर्थ—विष्णुधर्मोत्तरमें लिखाहै कि, चौथे महीनेमे बालकको पहिले घरसे बाहर निकालना चाहिये ॥ ११ ॥

अथ ताम्बूलप्राशनम् ।

विगतवरुणनाथाधोमुखार्द्रान्यभेषु
त्रिभवरिपुगपापैः केन्द्रकोणस्थसौम्यैः ॥
विकुजरविजवारे सार्द्धमासद्वये स्या-
द्वृषझषबुधसौरर्क्षोदये पूगदानम् ॥ १२ ॥ (१)

अर्थ—अब ताम्बूलदान कहते हैं आश्लेषा, कृत्तिका, भरणी, मघा, विशाखा, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा और आर्द्रा नक्षत्रोंको छोडकर अन्य नक्षत्रोंमें, लग्नके तीसरे, ग्यारहवे और छठे स्थानमें पापग्रह और केन्द्र और त्रिकोणस्थानमे शुभग्रह होनेसे, मंगल और शनिभिन्न वारमें जन्मदिनसे अढाई महीनेके मध्यमें वृष, मीन, मिथुन, कन्या मकर और कुम्भ लग्नमे बालकको पहिले ताम्बूल (पान) खिलाना चाहिये ॥ १२ ॥

अथ भूम्युपवेशनम् ।

अश्लोत्तरेन्द्रमृगमैत्रकराश्विनीषु
वारेषु सत्सु विशिष्य कुजस्य वारे ॥

---

(१) अथ ताम्बूलदानमाह विगतेति । विगतवरुणानाथो यत्राधोमुखे नक्षत्रगणे ८ । ३ । २ । १० । १६ । ११ । २० । २५ आर्द्रा च तदन्येषु भेषु वर्जनद्वयेन शतभिषाया ग्रहणं । तथा च राजमार्तण्डे—" मूलस्वातिधनेन्दुमित्रवरुणज्येष्ठाश्विनीरोहिणीपौष्णर्क्षे रविजीवशुक्ररजनीनाथात्मजानां दिने । कन्यामीननृयुग्मगोसमुदये शस्तेषु चन्द्रादिषु प्राक्पूगाशनमिष्यते शिशुजनस्यान्नाशनं चापि च । " तथा । मृद्वादिति श्रवणपुष्यकरोत्तरेषु पौष्णाश्विचित्ररजनीकरशक्रभेषु । वारेषुजीव शशिशुक्रबुधोदितेषु ताम्बूलभक्षणविधि कथित. शिशूनाम् । सौभरिणा तु अन्नतन्वितेति पाठमुक्त्वा अत्र नेव व्याख्यातम् । लग्नात्तृतीयैकादशषष्ठगै. पापैः केन्द्रत्रिकोणगै. शुभैः कुजशनिवर्जितेषु वारेषु सार्धमासद्वये वृषमीनकन्यामिथुनमकरकुम्भलग्ने ताम्बूलदानं प्रशस्तं स्यात् ।

मासेऽथ पञ्चम इह प्रतिमुच्य रिक्तां
शस्तं शिशोर्भवति भूम्युपवेशनं प्राक् ॥ १३ ॥ (२)

अर्थ–अब बालकको पहिले पृथ्वीपर बिठलानेका मुहूर्त्त कहते हैं रोहिणी, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, ज्येष्ठा, मृगशिर, अनुराधा, हस्त और अश्विनी नक्षत्रमें रविप्रभृति सातों वारोंमे विशेषकरके मंगळवारमें, पांचवे महीनेमें रिक्ताभिन्न तिथिमे बालकको पहिले भूमिपर बिठलाना चाहिये ॥ १३ ॥

अथान्नप्राशनम् ।

पूर्वेशान्तकसर्पमूलरहितेष्वृक्षेष्वरिक्ते तिथौ ।
षष्ठे मासि सितेन्दुजीवदिवसे गोज्ञर्क्षमीनोदये ॥
केन्द्राष्टान्त्यत्रिकोणभैः शुभयुतैस्तैरेव पापोज्झितै-
र्हित्वेंदुं रिपुरंध्रगं शिशुजनस्यान्नाशनं शोभनम् ॥१४॥ (३)

अर्थ–अब बालकके अन्नप्राशनका मुहूर्त्त कहते हैं पूर्वाफल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा, आर्द्रा,भरणी, आश्लेषा और मूल इन सब नक्षत्रोंको छोड़कर अन्य समस्त नक्षत्रोंमें, रिक्ताभिन्न तिथिमें छठे महीनेमे, शुक्र, सोम, बृहस्पति, रवि और बुधवारमें, वृष, मिथुन, कन्या और मीन लग्नमें लग्नके केन्द्रस्थानमे आठवे, बारहवे और त्रिकोणमे शुभ ग्रहोंके होनेसे और लग्नके उक्त समस्त स्थानोंमें पापग्रह न होनेसे लग्नसे छठे और आठवे चन्द्रमाको छोड़कर बालकका अन्नप्राशन करना चाहिये ॥ १४ ॥

अपिच ।

एकादश्यां च सप्तम्यां द्वादश्यां पञ्चपर्वसु ।
बलमायुर्यशो हन्याच्छिशूनामन्नभक्षणम् ॥ १५ ॥

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ–दीपिकामें लिखा है कि, एकादशी सप्तमी, द्वादशी और पञ्चपर्वमें बालकको अन्न खिलानेसे उस बालकका बल आयु और यश नष्ट होजाता है ॥ १५ ॥

पञ्च पर्वकथनम् ।

अष्टमी पौर्णमासी च अमावास्या चतुर्दशी ।
पञ्च पर्वाण्यमून्याहुरार्या संक्रमणं रवेः ॥ १६ ॥

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ–अष्टमी, पूर्णिमा, आमावस्या, चतुर्दशी और सूर्यकी संक्रान्तिको पण्डितगण पञ्चपर्व कहते हैं ॥ १६ ॥

अन्यच्च ।

ततोन्नप्राशनं षष्ठे (×) मासि कार्यं यथाविधि ।
अष्टमे वाथ कर्त्तव्यं यद्वेष्टं मङ्गलं कुले ॥ १७ ॥

इति ज्योतिस्तत्वे ।

अर्थ–ज्योतिषतत्वमे लिखा है कि, बालकका अन्नप्राशन छठे महीनेमें विधिपूर्वक करना चाहिये, आठवे महीनेमे भी हो सक्ता है अथवा जिनके पूर्वापर जिसप्रकार कुलका नियम है, उसी समयमेंही अन्नप्राशन होसक्ता है किन्तु स्मार्त्तभट्टाचा[illegible] ज्योतिस्तत्‍छठे महीनेकोही मुख्य समय कहा है वर्त्तमान पण्डित [illegible]ण्डलीके मध्यमें भी पण्डितोका यही मत है, परन्तु कोई २ विद्वान् आठवें [illegible]र्य, इ[illegible]नकोही मुख्य समझते हैं ॥ १७ ॥ मह[illegible]वाजित इत्य[illegible]

अपरञ्च ।

अन्न[illegible] प्रा[illegible] कार्यं मासि षष्ठेऽष्टमे बुधैः ।
स्त्रीणान्तु पञ्चमे मासि सप्तमे प्रजगौ मुनिः ॥ १८ ॥

इति कृत्याचिन्तामणौ ।

अर्थ–कृत्यचिन्तामणिमें लिखा है कि, बालकका अन्नप्राशन छठे वा आठवे महीनेमें करना चाहिये–और कन्याका अन्नप्राशन पांचवें वा सातवें महीनेमे करै इसप्रकार मुनियोने कहा है ॥ १८ ॥

प्रकारान्तरञ्च ।

द्वादशी सप्तमी नन्दा रिक्तासु पञ्चपर्वसु ।
बलमायुर्यशो हन्याच्छिशूनामन्नभक्षणम् ॥ १९ ॥

इति ज्योतिस्तत्वे ।

(×) षष्ट इति मुख्यकल्प. अतनर्भस्य तेनायोगादिति न्यायात् इति ज्योतिस्तत्वे स्मार्तेनाभिहितम् ।

अर्थ—ज्योतिषतत्वमें लिखा है कि, द्वादशी, सप्तमी प्रतिपदा, एकादशी, षष्ठी, रिक्ता तिथि और पंचपर्वमे बालकको अन्नप्राशन करनेसे उसका बल आयु और यशका नाश होता है ॥ १९ ॥

अन्यच्च ।

षष्ठे मासि निशाकरे शुभकरे रिक्तेतरे वा तिथौ
सौम्यादित्यसितेन्दुजीवदिवसे पक्षे च कृष्णेतरे ॥
प्राजेशादितिपौष्णवैष्णवयुगे (क) हस्तादिषट्कोत्तरै-
राग्नेयाप्यतिपित्र्यभैश्च नितरामन्नादिभक्ष्यं शुभम् ॥ २० ॥

इति भुजबलभीमे ।

अर्थ—भुजबलभीमने लिखा है कि, छठे महीनेमें चन्द्रमा शुद्ध होनेसे रिक्ताभिन्न तिथिमें बुध, रवि, सोम और बृहस्पति वारमें, शुक्लपक्षमे, रोहिणी, मृगशिर, पुनर्वसु पुष्य, रेवती, अश्विनी, श्रवण, धनिष्ठा, हस्त चित्रा, स्वाति, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, कृत्तिका, शतभिषा और मघा, नक्षत्रमें बालकका अन्नप्राशन शुभ होता है अन्नप्राशनमें विद्ध [illegible] भंग) देखना चाहिये ॥ २० ॥

अपरञ्च ।

वृषद्वन्द्वधनुर्मीनकन्यालग्नेऽन्नभक्षणम् ।
त्रिकोणाष्टकयुग्मान्त्यग्रहायद्वत्तथा फलम् ॥ २१ ॥ (ख)

अर्थ—वृष, मिथुन, धन, मीन और कन्या लग्नमें अन्नप्राशन करना चाहिये, किन्तु इन सब लग्नोंके मध्यमें जिस २ लग्नमें बालकको अन्न खिलावे उसके नववें, पांचमें, आठवे, दूसरे और बारहवे स्थानमें जो ग्रह जिस प्रकारसे स्थितहों—उसीप्रकार फल होता है अर्थात् शुभ ग्रहोके होनेसे शुभ फल और पापग्रहोके होनेसे अशुभ फल होता है ॥

प्रकारान्तञ्च ।

दुष्टः शशधरो लग्नात्षष्ठाष्टमस्थोऽन्नभक्षणे ॥ २२ ॥

इतिज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—ज्योतिषतत्वमें लिखाहै कि, अन्नप्राशनमे लग्नसे छठे और आठवें चन्द्रमा दूषित होता है अतएव छठे और आठवे चन्द्रमाको परित्याग करनाचाहिये ॥ २२ ॥

इत्यन्नप्राशनम् ।

(क) युगैरिति—प्राजेशादौ प्रत्येकं सम्बध्यते । अत्रापि तिथ्यादिरिद्धमुक्तं विवर्जयेत् ।
(ख) यद्वत्तथा फलमिति शुभयोगे शुभफलं पापयोगेऽशुभफलमित्यर्थः ।

अथ चूडाकरणम् ।

चूडा माघादिषट्के लघुचरमृदुभे मैत्रहीने सशक्रे ।
नानंशे सत्सु केन्द्रेष्वशुभगगनगैर्वृद्धिगैर्विष्णुबोधे ॥
नोरिक्ताद्याष्टषष्ठान्त्यातिथिषु नयमाराहयुग्माब्दमासे ।
नो जन्मर्क्षेन्दुमासे विघटकुजशशीनर्क्षलग्नेऽर्कशुद्धौ ॥२३॥(ग)

अर्थ–अब चूडाकरणका मुहूर्त्त कहते हैं–माघसे आदि लेकर छः महीनोमें पुष्य, अश्विनी, हस्त, स्वाति, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, चित्रा, मृगशिर, रेवती और ज्येष्ठा नक्षत्रमे, ग्रहोंके अनंश दिनमे अर्थात् संक्रान्तिभिन्न दिनमें, केन्द्रस्थानमे शुभग्रह और तीसरे, ग्यारहवे और छठे स्थानमें पापग्रह होनेसे, हरिशयनभिन्न कालमे, रिक्ता, प्रतिपदा, अष्टमी, षष्ठी और पूर्णिमाको छोडकर अन्य तिथियोमे, शुक्लपक्षमे, शनि मगलको छोडकर अन्य वारोमें, युग्म वर्षमें, युग्म मास, जन्म नक्षत्र, जन्मके चन्द्रमा और जन्मके महीनेको छोडकर अन्य महीनेमें तुला, मेष वृश्चिक, कर्क और सिह लग्नको छोडकर अन्य लग्नोंमे सूर्य्य शुद्ध होनेसे चूडाकर्म करना चाहिये ॥२३॥

(ग) चूडाकरणमाह–चूडेति । माघादिषु मासेषु चूडा कार्य्या अत्र च षट्संख्याश्रवणाच्चैत्रेऽपि चूडा कार्य्या चैत्रनिषेधस्तु नित्यक्षौरपरः । तथा च वक्ष्यते । 'नेष्टो हरीज्यभवनोपगतोऽत्र सूर्य्य, इति । लघुगणः । ८ । १ । १३ । चरगणः १५ । ७ । २२ । २३ । २४ । मैत्रहीने अनुराधावर्जिते मृदुगणे १४ । ५ । २७ । सशक्रे ज्येष्ठायाश्चेत्यर्थः । नानंशे ग्रहैर्निरंशीकृते दिने चूडा कार्य्या इत्यर्थः । केन्द्रेषु शुभग्रहेषु सत्सु गगनगो ग्रहः अशुभगगनगैरशुभग्रहैर्वृद्धिगैरुपचयस्थे सद्भि' विष्णुबोधे च चूडा कार्य्येत्यर्थः । तथाच राजमार्त्तण्डे–"क्षौरर्क्षेषु कुलोद्भवेन विधिना चूडा विधेया बुधैर्लग्नस्थे भृगुजे चतुष्टयगते जीवेऽथवा बोधने । मन्दार्कावनिनन्दनैश्च शशिना क्षीणेन युक्तेषु च लाभारातितृतीयभेषु विहिते राश्युद्गमे सर्वदा ॥" इति । सौभरिणा तु अशुभैगर्गन-

किन्तु अन्यान्य मुनियोके मतसे इस समय वा उक्त प्रकारसे हजामत बनवानेमे मनुष्यकी मृत्यु होती है ॥ ३० ॥

मानं हरेत्क्षौरमिहायुषोर्कः शनैश्चरः पञ्च कुजस्तथाष्टौ ।
आचार्यभृग्विन्दुबुधाः क्रमेण (×) दद्युर्दशैकादशसप्तपञ्च ॥ ३१ ॥

इति राजमार्तण्डे ।

अर्थ–राजमार्तण्डमे लिखा है कि, रविवारमे हजामत बनवानेसे सन्मानहानि और आयुःक्षय होता है, रविवारमें हजामत बनवानेसे जो दोष कहा है शनिवारमे बनवानेसे उससे पंच गुण दोष और मंगलवारमें बनवानेसे उससे अठगुना दोष होता है बृहस्पतिवारमे हजामत बनवानेसे दशगुण शुभफल होताहै । इसी प्रकार शुक्रवारमें ग्यारह गुण, सोमवारमें शतगुण और बुधवारमें हजामत बनवानेसें पंचगुण शुभ फल होता है ॥ ३१ ॥

अन्यच्च !

माघादिषट्के (१) समये विशुद्धे हरौ प्रबुद्धे शुभदे खरांशौ ॥
वर्षत्रये वाप्यथ पञ्चमे वा चूडा च कार्या प्रथमं शिशूनाम् ॥ ३२ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ–ज्योतिःसारसंग्रहमे लिखा है कि, माघसे आदि लेकर छः महीनोके मध्यमें शुद्धकालमे, श्रीहरिके जाग्रत्समयमें, सूर्य्य शुद्ध होनेसे, तीनवर्षमे वा पांचवर्षमें बालकका चूडाकर्म (मुण्डन) करावे ॥ ३२ ॥

उत्तरवर्त्मनि सवितरि चूडाकरणं जगुः शुभं यवनाः ॥
चैत्रे मासि दिवाकरवारे शिखिसन्निधाने च ॥ ३३ ॥

इति भोजराजः ।

अर्थ–राजाभोजने कहा है कि, उत्तरायणके मध्यमे चैत्रमासमें रविवारमें अग्निसन्निहितमें चूड़ाकर्म होसक्ता है इस प्रकार यवनमुनिका मत है किन्तु चैत्रके महीनेमें रविवारमेंही चूड़ाकर्म प्रशस्त है ॥ ३३ ॥

(×) जीवादिवारे क्षौरं प्रशस्तमिति स्मार्त्तेनोक्तम् ।
(१) माघादिषट्क इत्युपपादनात् चैत्रेऽपि चूडाकरणे रविवार एव इति हृदयानन्दः ।

जन्मर्क्षे जन्ममासे च युग्ममासे च वत्सरे।
न कुर्यात्प्रथमं क्षौरं विशेषाच्चैत्रपौषयोः ॥ ३४ ॥ (+)

इति गर्गः।

अर्थ–गर्गमुनिने कहा है कि, जन्मके नक्षत्रमे, जन्मके महीनेमें, युग्ममहीने और युग्मवर्षमें विशेषकरके सौर चैत्र और पौषके महीनेमें बालकका प्रथम क्षौरकर्म न कराना चाहिये। चूडाकर्ममें दशयोगभङ्ग, युतवेध और यामित्रवेधका विचार करना चाहिये ॥ ३४ ॥

अथ नित्यक्षौरम्।

चूडोदितर्क्षमुदयः क्षण एव चैषा-
मिष्टौ बुधेन्दुदिवसौ क्षुरकर्मशुद्धौ ॥
नष्टो हरीज्यभवनोपगतोऽत्र सूर्यः।
कालाविशुद्धिरहितं त्वितरत्पुरावत् ॥ ३५ ॥ (*)

अर्थ–अब नित्यक्षौरकर्मको कहते हैं। चूडाकर्ममें कहेहुये नक्षत्रोंमें वा चूडाकर्मके नक्षत्रोंके मुहूर्त्तमें लग्न करके बुधवार अथवा सोमवारमें कालशुद्धिको छोड़कर चूडाकर्मोक्त सभी नित्य क्षौरकर्ममें प्रशस्त है ॥ ३५ ॥

न स्नानमात्रगमनोत्सुकभूषिताना-
मभ्यक्तभुक्तरणकालनिरासनानाम् ॥
सन्ध्यानिशाशनिकुजार्कदिनेषु रिक्ते
क्षौरं हितं प्रतिपदह्नि तथैव विष्ट्याम् ॥ ३६ ॥

इति राजमार्त्तण्डे।

(+) पुत्रकन्ययोस्तु चैत्रे मासि ज्येष्ठपुत्रकन्ययोस्तु मार्गे ज्येष्ठस्य दशाहाभ्यन्तरे च चूडादिनिषेधो विवाहप्रकरणे उक्तः। चूडायांदशयोगभङ्गयुतयामित्रवेधा विचार्याः।

(*) नित्यक्षौरमाह–चूडा इति। चूडोक्तनक्षत्र तदभावविषां चूडोक्तनक्षत्राणां क्षणो मुहूर्त्तमेव उदयो लग्न वा स्यात् बुधेन्दुदिवसौ नित्यक्षुरकर्मशुद्धाविष्टौ अन्ये पञ्च वारा निषिद्धाः। तथा पशुपतिदीपिकायाम्। "शुक्रः शुक्रक्षयं कुर्य्यान्मासं हन्ति गुरोर्दिनम्। शनौ भौमे भवेद्रोगो मनस्तापो रवेर्दिने" अत्र नित्यक्षौरे हरिः सिंहः इज्यभवनं धनुर्मीनौ एषु गतः सूर्य्यो नेष्टः भाद्रपौषचैत्रमासे क्षौरं न कार्य्यमित्यर्थः। अत्राप्यशक्तावग्निसाक्षिकं कृत्वा कर्त्तव्यं तथा–"क्षौरं दिने तीक्ष्णरुचेस्तुचैत्रमासेऽथवा सन्निहिते हुताशे" इति। पुरावच्चूडाकरणवत् अन्यत्सर्वं ज्ञातव्यम्। तत्र कालाविशुद्धिरहितं नित्यक्षौरे शुक्रादिकालाशुद्धिदोषो नास्तीत्यर्थः। अत्र शुक्लकृष्णपक्षव्यवस्था नास्ति किन्तु पूर्वोक्ततिथिमात्रनिषेधः। इति।

किन्तु अन्यान्य मुनियोके मतसे इस समय वा उक्त प्रकारसे हजामत बनवानेमे मनुष्यकी मृत्यु होती है ॥ ३० ॥

मानं हरेत्क्षौरमिहायुषोर्कः शनैश्चरः पञ्च कुजस्तथाष्टौ ।
आचार्यभृग्विन्दुबुधाः क्रमेण (×) दद्युर्दशैकादशसप्तपञ्च ॥ ३१ ॥

इति राजमार्तण्डे ।

अर्थ–राजमार्तण्डमे लिखा है कि, रविवारमे हजामत बनवानेसे सन्मानहानि और आयुःक्षय होता है, रविवारमें हजामत बनवानेसे जो दोष कहा है शनिवारमे बनवानेसे उससे पंच गुण दोष और मंगलवारमें बनवानेसे उससे अठगुना दोष होता है बृहस्पतिवारमे हजामत बनवानेसे दशगुण शुभफल होताहै । इसी प्रकार शुक्रवारमें ग्यारह गुण, सोमवारमें शतगुण और बुधवारमे हजामत बनवानेसें पंचगुण शुभ फल होता है ॥ ३१ ॥

अन्यच्च ।

माघादिषट्के (१) समये विशुद्धे हरौ प्रबुद्धे शुभदे खरांशौ ॥
वर्षत्रये वाप्यथ पञ्चमे वा चूडा च कार्या प्रथमं शिशूनाम् ॥ ३२ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ–ज्योतिःसारसंग्रहमे लिखा है कि, माघसे आदि लेकर छः महीनोके मध्यमें शुद्धकालमे, श्रीहरिके जाग्रत्समयमें, सूर्य्य शुद्ध होनेसे, तीनवर्षमे वा पांचवर्षमें बालकका चूडाकर्म (मुण्डन) करावे ॥ ३२ ॥

उत्तरवर्त्मनि सवितरि चूडाकरणं जगुः शुभं यवनाः ॥
चैत्रे मासि दिवाकरवारे शिखिसन्निधाने च ॥ ३३ ॥

इति भोजराज. ।

अर्थ–राजाभोजने कहा है कि, उत्तरायणके मध्यमे चैत्रमासमें रविवारमें अग्निसन्निहितमें चूडाकर्म होसक्ता है इस प्रकार यवनमुनिका मत है किन्तु चैत्रके महीनेमें रविवारमेंही चूडाकर्म प्रशस्त है ॥ ३३ ॥

(×) जीवादिवारे क्षौरं प्रशस्तमिति स्मार्त्तेनोक्तम् ।
(१) माघादिषट्क इत्युपपादनात् चैत्रेऽपि चूडाकरणे रविवार एव इति हृदयानन्दः ।

जन्मर्क्षे जन्ममासे च युग्ममासे च वत्सरे ।
न कुर्य्यात्प्रथमं क्षौरं विशेषाच्चैत्रपौषयोः ॥ ३४ ॥ (+)

इति गर्गः ।

अर्थ–गर्गमुनिने कहा है कि, जन्मके नक्षत्रमे, जन्मके महीनेमें, युग्ममहीने और युग्मवर्षमें विशेषकरके सौर चैत्र और पौषके महीनेमें बालकका प्रथम क्षौरकर्म न कराना चाहिये । चूडाकर्ममे दशयोगभङ्ग, युतवेध और यामित्रवेधका विचार-करना चाहिये ॥ ३४ ॥

अथ नित्यक्षौरम् ।

चूडोदितर्क्षमुदयः क्षण एव चैषा-
मिष्टौ बुधेन्दुदिवसौ क्षुरकर्मशुद्धौ ॥
नष्टो हरीज्यभवनोपगतोऽत्र सूर्यः ।
कालविशुद्धिरहितं त्वितरत्पुरावत् ॥ ३५ ॥ (*)

अथ–अब नित्यक्षौरकर्मको कहते हैं । चूडाकर्ममें कहेहुये नक्षत्रोंमे वा चूडा कर्मके नक्षत्रोंके मुहूर्त्तमें लग्न करके बुधवार अथवा सोमवारमें कालशुद्धिको छोड़कर चूडाकर्मोक्त सभी नित्य क्षौरकर्ममे प्रशस्त हैं ॥ ३५ ॥

न स्नानमात्रगमनोत्सुकभूषिताना-
मभ्यक्तभुक्तरणकालनिरासनानाम् ॥
सन्ध्यानिशाशनिकुजार्कदिनेषु रिक्ते
क्षौरं हितं प्रतिपदह्नि तथैव विष्ट्याम् ॥ ३६ ॥

इति राजमार्त्तण्डे ।

(+) पुत्रकन्ययोस्तु चैत्रे मासि ज्येष्ठपुत्रकन्ययोस्तु मार्गे ज्येष्ठस्य दशाहाभ्यन्तरे च चूडादि-निषेधो विवाहप्रकरणे उक्तः । चूडायादशयोगभङ्गयुतयामित्रवेधा विचार्याः ।

(*) नित्यक्षौरमाह–चूडा इति । चूडोक्तनक्षत्र तदप्राप्तावेषा चूडोक्तनक्षत्राणां क्षणो मुहूर्त्तमेव उदयो लग्नं वा स्यात् बुधेन्दुदिवसौ नित्यक्षुरकर्मशुद्धाविष्टौ अन्ये पञ्च वारा निषिद्धाः । तथा पशुपति-दीपिकायाम् । "शुक्रः शुक्रक्षयं कुर्य्यान्मानं हन्ति गुरोर्दिनम् । शनौ भौमे भवेद्रोगो मनस्तापो रवेर्दिने" अत्र नित्यक्षौरे हरिः सिंहः इज्यभवनं धनुर्मीनौ एषु गतः सूर्य्यो नेष्टः भाद्रपौषचैत्र-मासे क्षौरं न कार्य्यमित्यर्थः । अत्राप्यशक्तावग्निसाक्षिकं कृत्वा कर्त्तव्यं तथा–"क्षौरं दिने तीक्ष्णरु-चेस्तुचैत्रमासेऽथवा सन्निहिते हुताशे " इति । पुरावच्चूडाकरणवत् अन्यत्सर्वं ज्ञातव्यम् । तच्च कालाविशुद्धिरहितं नित्यक्षौरे शुक्रादिकालाशुद्धिदोषो नास्तीत्यर्थः । अत्र शुक्लकृष्णपक्षव्यवस्था नास्ति किन्तु पूर्वोक्ततिथिमात्रनिषेधः । इति ।

अर्थ–नित्य क्षौरके विषयमें राजमार्त्तण्डमें लिखा है कि, स्नानके अन्तमें यात्रा-करके आभूषण पहिननेके बाद तैल लगाकरके भोजन करनेके बाद रणसमयमें, निरश-नमें, सन्ध्याकालमें और रात्रिमें, शनि, मङ्गल और रविवारमें, रिक्ता, प्रतिपदा और विष्टि भद्रामें क्षौरकर्म करानेसे अमङ्गल होता है ॥ ३६ ॥

चूडोदिते तथा ऋक्षे बुधेन्दुदिवसे नरः ।
नित्यक्षौरं प्रकुर्वीत जन्ममासे विवर्जयेत् ॥ ३७ ॥

इति ज्योति.सारे ।

अर्थ–ज्योतिषसारमें लिखाहै कि, चूडोदित नक्षात्रोंमें बुध और सोमवारमें क्षौर-कर्म प्रशस्त है, किन्तु जन्मके महीनेको छोडदेवै ॥ ३७ ॥

प्राचीमुखः सौम्यमुखोऽपि भूत्वा ।
कुर्य्यान्नरः क्षौरमनुत्कटस्थः ॥ ३८ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ–ज्योतिषतत्वमें लिखा है कि, मनुष्य हजामत बनवानेके समय पूर्व वा उत्तरको मुख करके कोमल आसनपर बैठे ॥ ३८ ॥

उत्तरात्रितययाम्यरोहिणीरौद्रसर्पपितृभेषु चाग्निभे ।
श्मश्रुकर्म सकलं विवर्जयेत्प्रेतकार्य्य (क) मपि बुद्धिमान्नरः॥३९॥

इति ज्योतिस्तत्वे ।

अर्थ–ज्योतिस्तत्वमे लिखा है कि, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपदा, भरणी, रोहिणी, आश्लेषा, आर्द्रा, मघा और कृत्तिका नक्षत्रमे श्मश्रुकर्म (क्षौरकर्म) और प्रेतकार्य्यको बुद्धिमान् मनुष्य परित्यागकरै ॥ ३९ ॥

चन्द्रशुद्धिर्यदा नास्ति तारायाश्च विशेषतः ।
अक्षौरिभेऽपि कर्तव्यं चन्द्रचन्द्रजयोर्दिने ॥ ४० ॥

इति ज्योतिस्तत्वे ।

अर्थ–ज्योतिषतत्वमें लिखा है कि, क्षौर विषयमें विद्धनक्षत्र होनेसे यदि चन्द्रम शुद्धि और ताराशुद्धि न होय तो भी सोमवारमें और बुधवारमे क्षौर सक्ता है ॥ ४० ॥ (ख)

(क) प्रेतकार्य्य पतितप्रेतसम्प्रदानकदासीवटदानविषयकमिति स्मार्त्ताः ।

(ख) इस वचनका तात्पर्य्य यह है कि, निषिद्ध नक्षत्रमें भी यदि चन्द्रशुद्धि और तार शुद्धि होय तो क्षौरकर्ममें दोष नही होता है और सोमवार और बुधवार सर्वापवादक है ।

मानं क्षौरे गुरुर्हन्ति शुक्रं शुक्रो धनं रविः।
आयुरङ्गारको हन्ति सर्वं हन्ति शनैश्चरः॥ ४१॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे।

अर्थ–ज्योतिषतत्वमे लिखा है कि, बृहस्पतिवारमें हजामत बनवानेसे मानहानि होती है, इसीप्रकार शुक्रवारमे शुक्र (वीर्य्य) का नाश होता है, रविवारमे धनकी हानी होती है, मङ्गलवारमे आयुः क्षय होता है और शनिवारमे हजामत बनवानेसे मनुष्यका मान, बल, धन और आयुका नाश होता है॥ ४१॥

अन्यच्च।

रवौ दुःखं सुखं चन्द्रे कुजे मृत्युर्बुधे बलम्।
मानं हन्ति गुरोर्वारे शुक्रे पुत्रक्षयो भवेत्।
शनौ च सर्वे दोषास्युर्वर्जयेत्क्षौरकर्मणि॥ ४२॥

इति ग्रन्थान्तरे।

अर्थ–ग्रन्थान्तरमे लिखा है कि, रविवारमें क्षौर करानेसे दुःख होता है इसीप्रकार सोमवारमे सुख, मंगलमे मृत्यु, बुधमें बलकी वृद्धि, बृहस्पतिवारमे मानहानि, शुक्रमें पुत्रनाश और शनिवारमें क्षौर करानेसे समस्त दोष होते हैं। अत एव उक्त समस्त निषिद्ध वारोमें क्षौरकर्म न करावै किन्तु सामवेदी मङ्गलवारमें, यजुर्वेदी शुक्रवारमें और ऋग्वेदी बृहस्पतिवारमे क्षौरकर्म करासक्ता है, व्यवहार भी इसीप्रकार है॥ ४२॥

देवकार्ये पितृश्राद्धे रवेरंशपरिक्षये।
क्षौरकर्म न कुर्वीत जन्ममासे च जन्मभे॥ ४३॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे।

अर्थ–ज्योतिषतत्वमें लिखा है की देवकार्य्यमे, श्राद्धके दिनमें, संक्रान्तिमें, जन्मके महीनेमें और जन्मके नक्षत्रमे क्षौरकर्म न कराना चाहिये॥ ४३॥

आज्ञया नरपतेर्द्विजन्मनां दारकर्ममृतसूतकेषु च।
बन्धमोक्षमखदीक्षणेष्वपि क्षौरमिष्टमखिलेषु चोडुषु॥४४॥

इति श्रीपतिरत्नमालायाम्।

अर्थ–श्रीपतिकी रत्नमालाग्रन्थमे लिखा है कि, विवाहमे, मृताशौच और जननाशौचके अन्त दिनमे, जेलखानेमेंसे छूटनेसे और यज्ञदीक्षामें, राजा और ब्राह्मणोंकी अनुमति. (आज्ञा) से समस्त नक्षत्रोमें ही क्षौरकर्म होसक्ता है॥ ४४॥

केशवमानर्त्तपुरं पाटलिपुत्रं पुरीमहिच्छत्राम् ।
दितिमदितिञ्च स्मरतां क्षौरविधौ भवति कल्याणम् ॥ ४५

इति वृद्धगार्ग्यमुनिः ।

अर्थ–वृद्धगार्ग्य मुनिने कहाहै कि, केशव, आनर्त्तपुर, अहिच्छत्रापुरि, दिति अदिति इनके नामका स्मरण करनेसे क्षौरकर्ममे मङ्गल होता है ॥ ४५ ॥

श्मश्रुकर्म कारयित्वा नखच्छेदमनन्तरम् ॥ ४६ ॥

इति वराहपुराणे ।

अर्थ–वराहपुराणमें लिखाहै कि, हजामत वनानेके वाद नाखून कटाना चाहिये ॥ ४६ ॥

अथ कर्णवेधः ।

नो जन्मेन्दुभमासरविजक्ष्माजाहसुप्ताच्युते
शस्तेऽर्के लघुविष्णुयुग्ममृदुभस्वात्युत्तरादित्यभैः ॥
सौम्यैरुयायत्रिकोणकण्टकगतैः पापैस्त्रिलाभारिगे –
रोजेऽब्दे श्रुतिवेध इज्यसितभे लग्ने च काले शुभे ॥४७॥ *

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ–अब कर्णवेध (×) (कन् छिदनेका) मुहूर्त्त कहते हैं । दीपिकामे लिखा है कि, जन्मचन्द्रमा, जन्मनक्षत्र और जन्मके महीनेको छोड़ अन्यमें रवि, शनि, मङ्गल वारको छोडकर अन्य वारोंमें श्रीहरिके जाग्रत्कालमें सूर्य्य शुद्ध होनेसे पुष्य, अश्विनी, हस्त, श्रवण, धनिष्ठा, चित्रा, अनुराधा, मृगशिर, रेवती, स्वाति, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा और पुनर्वसु नक्षत्रमें, लग्नके तीसरे, ग्यारहवें, नवमें पांचवे और केन्द्रथानमें शुभ ग्रह होनेसे और तीसरे, ग्यारहवे और छठे स्थानमे पाप ग्रह होनेसे अयुग्मवर्षमें धन, मीन, वृष और तुला लग्नमें; शुद्ध कालमे बालकका कान छिदवाना चाहिये ॥ ४७ ॥

यदापत्यद्वयं तिष्ठेत्सम्भवोऽथ परस्य च ।
षट्कर्णन्तं विजानीयाद्गर्हितञ्च त्रयस्य च ॥ ४८ ॥

---

* कर्णवेधमाह–नोजन्मेति । शुभे काले शुद्धकाले ओजोऽब्दे अयुग्मवर्षे श्रुतिवेधः कर्तव्यः । अत्र निषेधमाह । जन्मचन्द्रे जन्मनक्षत्रे जन्ममासे सूर्यशनिमङ्गलवारेषु च सुप्तेऽच्युते हरिशयने न कर्तव्यमित्यर्थः विधिमाह शस्तेऽर्के गोचरशुद्धेऽर्के लघुगणे ८ । १ । १३ । विष्णुयुग्मे २२ । २३ । मृदुगणे १४ । १७ । ५ । २७ । स्वात्यामुत्तरात्रये १२ । २१ । २६ आदित्यभे पुनर्वसौ इज्यसितभे गुरुशुक्रभे धनुर्मीने वृषे तुलायां च कार्य्यमित्यर्थः । शेषं सुगमम् ।

इत्याशङ्क्य द्वयोर्मध्ये शुचिर्यस्याथ वत्सरे ।
कर्णवेधो हितस्तस्य नात्र ज्येष्ठविचारणा ॥ ४९ ॥
षट्कर्णोत्पत्तिमाशङ्क्य भानोः शुद्ध्या समेऽपि च ।
कर्णवेधे न दोषः स्यादन्यथा मरणं भवेत् ॥ ५० ॥ (×)

इति माण्डव्यादिषु ।

अर्थ–जिसके दो पुत्र है और दोनोमेसे एकका भी कर्णवेध नही हुआ है और इसी अवस्थामे एक पुत्र और होनेकी सम्भावना है तब उसको षट्कर्णवेध कहते है, षट्कर्णवेध होनेसे तीनोका अमङ्गल होता है षट् हो सक्ता है इस शङ्काकरके वर्तमान दोनो पुत्रोके मध्यमें उसी वर्षमे जिसके सूर्यादि शुद्धि होय उसकाही कर्णवेध करावै इसमें ज्येष्ठादिक्रमका विचार न करै षट्कर्णकी शङ्कासे सूर्य्यशुद्धि होनेसेही कर्णवेध कराना चाहिये इसमें युग्मवर्षका विचार न करै उक्त प्रकार कर्णवेध न करानेसे ज्येष्ठपुत्रकी मृत्यु होती है ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥

न जन्ममासे न च चैत्रपौषे न युग्मवर्षे न हरौ प्रसुप्ते ॥
रवौ न दुष्टे न च कृष्णपक्षे न जन्मभे कर्णविधिः प्रशस्तः ५१

इति राजमार्त्तण्डे ।

अर्थ–राजमार्त्तण्डमें लिखा है कि, जन्मके महीनेमें, सौर चैत्र और सौर पौषमें युग्मवर्षमे, श्रीहरिके शयनकालमें, सूर्य्य गोचरमें अशुद्ध होनेसे कृष्णपक्षमें और जन्मनक्षत्रमें कर्णवेध नही होता है ॥ ५१ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

सूर्येऽनुकूले शशिनि प्रशस्ते तारावले चन्द्रविवर्द्धपक्षे ॥
अयुग्मवर्षे शुभदं शिशूनां कर्णस्य वेधं मुनयो वदन्ति ॥ ५२ ॥

अर्थ–ज्योतिःसारसंग्रहमे लिखाहै कि, गोचरमे सूर्य्यशुद्धि चन्द्रशुद्धि, और ताराशुद्धि होनेसे शुक्लपक्षमे और अयुग्मवर्षमें वालकोका कान छिदाना चाहिये, मुनिगणोने इस प्रकार कहा है ॥ ५२ ॥

स्वात्याश्विनीहस्तपुनर्वसौ च चन्द्रेऽनुकूले गुरुशुक्रवारे ॥
कर्णस्य वेधो बुधवासरे वा पुष्येन्दुचित्राहरिरेवतीषु ॥ ५३ ॥

इति ज्योतिःसारे ।

(×) मरणं ज्येष्ठस्य इति हृदयानन्दः । अत्रापि दशयोगभंगो विचार्य्यः । “ कर्णवेधे विवाहे च व्रते पुंसवने तथा । प्राशने चाद्यचूडायां विद्धमृक्षं विवर्जयेत् ” इति वचनात् ।

अर्थ–ज्योतिःसारमें लिखा है कि, स्वाति, अश्विनी, हस्त, पुनर्वसु, पुष्य, मृगशिर, चित्रा, श्रवण और रेवती, नक्षत्रमें, बृहस्पति, शुक्र और बुधवारमें, गोचरमे चन्द्रमा शुद्ध होनेसे बालकोंका कान छिदाना चाहिये ॥ ५३ ॥

अन्यच्च ।

अश्विनी रेवती चैव हस्तश्चित्रा पुनर्वसुः ।
धनिष्ठामृगपुष्याश्च श्रवणं मैत्रमेव च ॥ ५४ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ–ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखाहै कि, अश्विनी, रेवती, हस्त, चित्रा, पुनर्वसु, धनिष्ठा, मृगशिर, पुष्य, श्रवण, और अनुराधा नक्षत्रमें बालकोंका कान छिदाना चाहिये ॥ ५४ ॥

स्थिरे चैवाथ लग्ने च चापे नृमिथुने तथा ।
कर्णवेधंप्रकुर्वीत बालानां शुभदं वरम् ॥ ५५ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे।

अर्थ–ज्योतिःसारसंहमें लिखा है कि, स्थिर अर्थात् वृष, सिंह, वृश्चिक और कुम्भ, लग्नमें धन और मिथुनमें बालकोंका कान छिदाना चाहिये ॥ ५५ ॥

कर्णवेधव्रते कुर्यादुदङ्मार्गस्थिते रवौ ।
दक्षिणाशास्थिते भानौ नैव कुर्यात्कथञ्चन ॥ ५६ ॥

इति गर्गः ।

अर्थ–गर्गमुनिनें कहा है कि, कर्णवेध और उपनयन उत्तरायणमें ही चाहिये उक्त दोनों कार्य कभी दक्षिणायनमें न करे ॥ ५६ ॥

इति कर्णवेधः ।

अथ विद्यारंभः ।

लघुचरशिवमूलाधोमुखत्वाष्ट्रपौष्ण
शशिषु च हरिबोधे शुक्रजीवार्कवारे ॥
उदितवति च जीवे केन्द्रकोणेषु सौम्यै-
रपठनदिनवर्ज्जं पाठयेत्पञ्चमेऽब्दे ॥ ५७ ॥ (क)

इति दीपिकायाम् ।

(क) विद्यारम्भमाह–लघुचर इति । पञ्चमे वर्षे रविजीवशुक्रवारे शिशुं पाठयेत् । अन्यस्मिन् वारे दोषमाह राजमार्त्तण्डे–"प्रज्ञार्कगुरुशुक्रेषु मृत्युर्मन्दमहीज्ञयोः । मन्दता जडता चन्द्रे भौमे

अर्थ–अब विद्यारम्भका मुहूर्त्त कहते है दीपिकामें लिखाहै कि, पुष्य, अश्विनी, हस्त, स्वाति, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, आर्द्रा, मूल, आश्लेषा, कृत्तिका, भरणी, मघा, विशाखा, पूर्वाफल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा, चित्रा, रेवती और मृगाशिर नक्षत्रमें, श्रीहरिके जाग्रत्समयमें शुक्र बृहस्पति और रविवारमे बृहस्पतिके उदयमें केन्द्र और त्रिकोणस्थानमें शुभ ग्रह होनेसे अनध्यायका दिन परित्याग करके पांचवे वर्षमें बालकको विद्यारम्भ करना चाहिये ॥ ५७ ॥

संप्राप्ते पञ्चमे वर्षे अप्रसुते जनार्दने ।
षष्ठीं प्रतिपदञ्चैव वर्जयित्वा तथाष्टमीम् ॥ ५८ ॥
रिक्तां पञ्चदशीञ्चैव सौरिभौमदिने तथा ।
एवं सुनिश्चिते काले विद्यारम्भन्तु कारयेत् ॥ ५९ ॥

इति विष्णुधर्मोत्तरे ।

अर्थ–विष्णुधर्म्मोत्तरमे लिखा है कि पांचवे वर्षमे, श्रीहरिके जाग्रत्समयमे, षष्ठी, प्रतिपदा, अष्टमी रिक्ता, पूर्णिमा और अमावस्याभिन्न तिथिमें और शनि मङ्गल-भिन्न वारमे बालकको विद्यारम्भ करावे ॥ ५८ ॥ ५९ ॥

विद्यारम्भे गुरुः श्रेष्ठो मध्यमौ भृगुभास्करौ ।
मरणं शनिभौमाभ्यामविद्या बुधसोमयोः ॥ ६० ॥ (×)

इति मदनपारिजाते ।

अर्थ–मदनपारिजात ग्रन्थमे लिखा है कि विद्यारम्भमें बृहस्पतिवार ही श्रेष्ठ है.

चानभियोगिता " ॥ अनुदिते जीवे विद्यारम्भो न कार्यः । केन्द्रत्रिकोणे च स्थितैः शुभैरपठनदिनं वर्जयित्वा पाठयेदित्यर्थः । अस्वाधायो राजमार्त्तण्डे उक्तः । "पौषादित्रिषु मासेषु कृष्णे चैवाष्टकात्रयम् । एका ज्ञेयाश्विने मासि हायनश्चतुरष्टक. । अष्टका तु समुद्दिष्टा सप्तम्यादितिथित्रये । नाधीयीतात्र शास्त्राणि वर्जयेद्व्रतबन्धनम् । या काचित्प्रतिपद्विद्धा प्रेतपक्षेऽथवा गते । यातु कोजागरे याते चैत्रवल्या. परेऽपि या । चातुर्मास्यसमाप्तौ च द्वितीया या भवेत्तिथिः । सर्वास्वेतास्वनध्याय पुराणैः परिकीर्त्तितः । अष्टमी हन्त्युपाध्यायं शिष्यं हन्ति चतुर्दशी । अमा राकोभयं हन्ति प्रतिपत्सु न कीर्त्तयेत् ॥ सन्ध्याया गर्जिते मेघे शास्त्रचिन्ता करोति यः । चत्वारि तस्य नश्यन्ति आयुर्विद्या यशो बलम् ॥ चन्द्रसूर्य्योपरागे तु पर्वस्वाशौचकादिषु । पापोत्पातहते चाह्नि अनध्यायो गलग्रहे । उत्पातो भूकम्पोल्कापातादि गलग्रह उक्तस्तत्रैव । आरम्भानन्तरं यत्र प्रत्यारम्भो न सिध्यति । गर्गादिमुनयः सर्वे तमो राहुर्गलग्रहः । अष्टमी सप्तमीविद्धा त्रयोदश्या चतुर्दशी । प्रतिपदा द्वितीया च गलग्रह उदाहृतः । शेषं सुगममिति ।

×) एतद्वचनं धनुर्विद्यापरमितिकेचित् । इति हृदयानन्दः ।

शुक्र और रविवार मध्यम हैं और शनि, मङ्गल वारमे विद्यारम्भ करनेसे मृत्यु होती है और बुध और सोमवारमें विद्यारम्भ करनेसे विद्याहीन (मूर्ख) होता है ॥६०॥

विद्यारम्भः सुरगुरुसितज्ञेष्वभीष्टार्थदायी
कर्तुश्चायुश्चिरमपि करोत्यंशुमान्मध्यमोऽत्र ॥
नीहारांशौ भवति जडता पञ्चता भूमिपुत्रे
छाया सूनावपि च मुनयः कीर्त्तयन्त्येवमाद्याः ॥ ६१ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ–ज्योतिषतत्वमें लिखाहै कि, बृहस्पति शुक्र और बुधवारमें विद्यारम्भ करनेसे अभीष्ट लाभ और वायुकी वृद्धि होती है इसी प्रकार रविवारमें मध्यम, सोमवारमें मूर्खता प्राप्त होती है, मंगलमारमें और शनिवारमें विद्यारम्भ करनेसे पञ्चत्व प्राप्त होता है इस प्रकार मुनियोने कहा है ॥ ६१ ॥

द्वितीया च तृतीया च पञ्चमी दशमी तथा ।
द्वादश्यां स्मृतिशास्त्रञ्च एकादश्यां भवेद्गुणी ॥ ६२ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ–ज्योतिषतत्वमें लिखा है कि, द्वितीया, तृतीया, पञ्चमी और दशमी तिथिमें विद्यारम्भ करै, द्वादशी तिथिमें स्मृतिशास्त्र पढनेको प्रारम्भ करै और एकादशी तिथिमें विद्यारम्भ करनेसे मनुष्य गुणवान् होता है ॥ ६२ ॥

न सप्तमीत्रयोदश्योर्नानध्याये [१] गलग्रेह ।
अभ्यासश्चाशुचिः षष्ठयां जन्मेन्दौ नेति चापरे ॥ ६३ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

---

(१) अनध्यायस्तु–"शुचौ दशम्यां सह पौर्णमासी मधौ नभस्ये च तिथिस्तृतीया । स्यादाश्विने या नवमी तथोर्ज्जे सपूर्णिमा द्वादशिकाथ चैत्री" ज्यैष्ठी च फाल्गुन्यथ सप्तमी स्यान्माघे च पौषस्य च रुद्रसंख्या । मन्वन्तरादिविशदेऽथ कृष्णे नभोऽष्टमी फाल्गुनदर्शसख्या ॥ द्वादशी शुक्लगाषाढमाघ· मार्गोर्जफाल्गुने । प्रतिपत्पूर्णिमादर्शश्चतुर्दश्यष्टमी सदा । तिथिष्वेतास्वनध्यायो विषुवायनयोरपि । प्रतिपत्पलमात्रेण कलामात्रेण चाष्टमी । दिनं दूषयते सर्वं सुराघटं यथा । त्र्यहं प्रेतेष्वनध्यायः शिवर्त्विग्गुरुबन्धुषु । ग्रहणे च तथा प्रातः रुन्ध्यागर्जे त्वहर्निशम् । पशुमण्डूकनकुलश्वाहिमार्जारमूषिके । गतेऽन्तरे त्वहोरात्रं शिष्टे च गृहमागते । आर्द्राद्यपादगे सूर्ये त्र्यहं पृथ्वी रजस्वला । अम्बुवाचीति संज्ञन्तत्स्वाध्यायं तत्र वर्जयेत् । न बीजवपनं कुर्याद्धलानां वाहन तथा । वेदानां पाठनन्तत्र वर्जये-द्दिवसत्रयम् । न स्वाध्यायो वषट्कारो न देवपितृपूजनम् । दिनत्रयं न कुर्वीत यावत्पृथ्वी रजस्वला । सापेक्षे दैवपैत्र्ये च बीजोप्तिहलवाहनम् । विना पर्वण्यनध्यायो न वेदागादिषु स्मृतः । पर्वाणि पूर्णिमा भूताष्टमीदर्शार्कसंक्रमाः । क्षिणोति प्रातिपद्विद्यामायुश्चापि विशेषतः । चैत्रश्रावणमार्गशीर्षाणामादि

अर्थ-ज्योतिषतत्वमें लिखा है कि, त्रयोदशी अनध्याय और गलग्रहोंमे विद्या-
रम्भ न करना चाहिये, षष्ठी तिथिमे विद्यारम्भ करनेसे भार्य्याहीन और अशुचि होता
, जन्मके चन्द्रमामेभी विद्यारम्भ न करै ऐसाभी किसी २ आचार्य्यने
हा है ॥ ६३ ॥

पुष्यार्द्रामूलमाश्लेषाहस्तचित्रमृगस्तथा ।
विद्यारम्भे प्रशस्यन्ते पूर्वात्रितयमेव च ॥ ६४ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-ज्योतिषतत्वमें लिखा है कि, पुष्य, आर्द्रा, मूल, आश्लेषा, हस्त, चित्रा, मृगशिर, पूर्वाफल्गुनी, पूर्वाषाढा, और पूर्वाभाद्रपदा नक्षत्रमे विद्यारम्भ करना चाहिये ॥ ६४ ॥

रवेर्गुरोर्भृगोर्लग्ने तत्स्थेऽर्केपीन्दुवृद्धितः ।
गुर्वर्केन्दूडुशुद्धौ च विद्यारम्भः प्रशस्यते ॥ ६५ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-ज्योतिषतत्वमे लिखा है कि, सिंह, धन, मीन, वृष और तुला लग्नमें और सिंह और तुलाको छोड़कर अन्य समस्त राशियोंमें सूर्य्य स्थित होनेसे, शुक्ल पक्षमे, बृहस्पति, रवि, चन्द्र और ताराशुद्धि होनेसे विद्यारम्भ करै ॥ ६५ ॥

प्राङ्मुखो गुरुरासीनः पश्चिमाभिमुखं शिशुम् ।
पाठयेत्प्रथमं शिष्यमनध्याये विवर्जिते ॥ ६६ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ-ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि, गुरु पूर्वदिशाको मुख करके बैठे और बालकको पश्चिम दिशामे मुख करके अनध्यायवर्जित दिनमे प्रथम विद्यारम्भ करावै ॥ ६६ ॥

प्रतिपदो नित्या इति हारीतवचने एतासामनध्याये नित्यत्वाभिधानादन्यासां कामत्वात् " सा च यौधिष्ठिरी सेना गाङ्गेयशरताडिता । प्रतिपत्पाठशीलानां विद्येव तनुतां गता " इति व्यासवचनमपि तावन्मात्रपरम्। अंगादिषु प्रतिप्रसवमाह मनुः-"वेदोपकरणे चैव स्वाध्याये चैव नित्यके । नानुरोधस्त्वनध्याये होममन्त्रेषु चैव हि ॥" पराशरभाष्ये कूर्मपुराणम् । "अनध्यायस्तु नाङ्गेषु नेतिहासपुराणयोः । न धर्मशास्त्रेष्वन्येषु पर्वस्वेतानि वर्जयेत् । अयने विषुवे चैव शयने बोधने हरेः । अध्यायस्तु न कर्तव्यो मन्वादिषु युगादिषु ॥ " इति नारदवचनात् पर्वस्वित्यनेन संक्रान्तिपरिग्रहे अयनविषुवयोरेव परिग्रह इति स्मार्त्ताः ।

प्राङ्मुखो गुरुरासीनो वरुणाभिमुखं शिशुम्।
अध्यापयेच्च प्रथमं द्विजाशीर्भिः प्रपूजितम् ॥ ६७॥

इति बृहस्पतिः।

अर्थ–बृहस्पतिने कहा है कि, गुरु पूर्वको मुख करके बैठे और ब्राह्मणोंकी पूजा कराकर बालकको पश्चिम दिशामें मुख करके प्रथम विद्यारम्भ कराना चाहिये॥६७॥

इति विद्यारम्भः।

अथोपनयनम्। (क)

जीवार्केन्दूडुशुद्धौ हरिशयनबहिर्भास्करे चोत्तरस्थे
स्वाध्याये वेदवर्णाधिप इह शुभदे क्षौरभे नादितौ च॥
शुक्रार्केज्यर्क्षलग्ने रविमदनतिथी प्रोज्झ्य षष्ठाष्टमेन्दुं (ख)
नो जीवास्वातिचारेऽर्कसितगुरुदिने कालशुद्धौ व्रतं स्यात्॥ ६८॥

इति दीपिकायाम्।

(क) " गृह्योक्तकर्मणा येन समीप नीयते गुरोः। बालो वेदाय तद्योगं बालोपनयनं विदुः॥ " इत्युपनयनलक्षणम्॥

(ख) उपनयनमाह–जीवार्केति। रवि शुक्रगुरुवारे व्रतमुपनयनं स्यात् "जीवार्केन्दूडुशुद्धौ गोचरे जीवशुद्धौ रविशुद्धौ चन्द्रशुद्धौ ताराशुद्धौ च हरिशयनं त्यक्त्वा उत्तरस्थे भास्करे उत्तरायणे सतीत्यर्थः। स्वाध्यायदिने अस्वाध्यायः प्रागुक्तः वक्ष्यते च तथा ग्रहणाकालवृष्ट्यादिषु न कर्तव्यम् राजमार्त्तण्डे–" ग्रहे रवीन्द्वो रजनीप्रकल्पे केतूद्गमोल्कापतनादिदोषे। व्रते दशाहानि वदन्ति तज्ज्ञा वर्ज्यानि सप्ताहमपि प्रयाणे॥ पौषादिचतुरो मासान्प्रोक्ता वृष्टिरकालजा। व्रतं यात्रादिकं तत्र वर्जयेत्सप्तवासरान्। अत्र यदि कर्दमाढ्या वसुधा स्यात्तदैव दोषः। तथा तत्रैव " वृष्टिः करोति दोषं तावन्नाकालसम्भवा राज्ञः। यावन्न भवति गमने नरपशुचरणाङ्किता वसुधा " वेदवर्णाधिप इति शुभदे गोचरशुभदे वेदाधिप ऋग्वेदाधिपतिरित्यादिना प्रागुक्तः वर्णाधिपश्च ब्राह्मणे शुक्रवागीशावित्यादिनोक्तः। क्षौरभे चूडोदितनक्षत्रे तत्र च नादितौ पुनर्वसुं वर्जयित्वा इत्यर्थः। तथा–पुनर्वसौ कृतो विप्रः पुनः संस्कारमर्हति। शुक्रार्केज्यर्क्षलग्न इति शुक्ररविगुरुगृहे लग्ने वृषतुलासिंह धनुर्मीनलग्न इत्यर्थः। अत्र च गुरुयोगादेवातिगुण. राजमार्त्तण्डे–"जीवोदये जीवगृहोदये वा जीवांशके जीवसमीक्षिते वा। अल्पश्रुतोऽपि व्रतबन्धनेषु वागीशतुल्यो भवति द्विजेन्द्रः" रविमदनतिथिसप्तमीत्रयोदश्यो वर्जयित्वा परदिने प्रत्यारम्भाभावादित्यर्थः लग्नात् षष्ठाष्टम च प्रोज्झ्य त्यक्त्वा तथा जीवास्ते जीवातिचारे न कर्त्तव्यः। कालशुद्धावुपनयनं स्यादिति कालशुद्धि द्विविधा मलमासशुक्रास्तादिदोषाभावाच्छुद्धिर्वर्षशुद्धिः तत्र वर्षशुद्धिरुक्ता राजमार्तण्डे। " गर्भाष्टमेऽष्टमे वाब्दे पञ्चमे नवमेऽपि वा। कार्यं विप्रस्य राज्ञस्तु दशाब्दे द्वादशे विशः॥ द्विजस्य षोडशाद्वर्षाद्राज्ञो द्वाविंशतेः परम्। चतुर्विंशाच्च वैश्यस्य सावित्रीपतनं भवेत्॥" अत्र जन्ममासादौ शुद्धश्चातीव फलं यथा राजमार्त्तण्डे–"जन्मोदये जन्मसु तारकासु" इत्यादि॥ इति।

अर्थ—अब उपनयनका मुहूर्त कहते हैं दीपिकामें लिखा है कि, बालकके गोचरमें बृहस्पति, सूर्य्य, चन्द्रमा और ताराशुद्धि होनेसे श्रीहरिके शयनभिन्न कालमें, उत्तरायणमें, स्वाध्यायके दिनमें वेदका मालिक और वर्णका मालिक गोचरमें शुभ होनेसे पुनर्वसुको छोडकर चूडाकर्मके समस्त नक्षत्रोंमें, वृष, तुला, सिंह, धन और मीन लग्नमें, सप्तमी और त्रयोदशीको छोडकर अन्य तिथियोंमें, लग्नके छठे और आठमें चन्द्रमाको छोडकरके बृहस्पतिके अस्त और अतिचार द्वारा अशुद्ध काल न होनेसे सूर्य्य, शुक्र और बृहस्पतिवारमें कालशुद्धि होनेसे उपनयन (यज्ञोपवीत) करना चाहिये ॥ ६८ ॥

अन्यच्च ।

स्वातीशक्रधनाश्विमित्रकरभे पौष्णेज्यचित्राहरि-
ष्विन्दौ तोयपतौ भगेऽदितिसुते भाद्रद्वये सागरे ॥ (+)
केन्द्रस्थे भृगुजेऽङ्गिरःशशिसुते चन्द्रे च तारे शुभे
कर्त्तव्यं व्रतकर्म मंगलतिथौ वाराः सितार्केज्यकाः ॥ ६९ ॥

इति भुजबलभीमकृत्यचिन्तामण्योः ।

अर्थ—भुजबलभीममें और कृत्यचिन्तामणिमें लिखा है कि, स्वाति, ज्येष्ठा, धनिष्ठा, अश्विनी, अनुराधा, हस्त, रेवती, पुष्य, चित्रा, श्रवण, मृगशिर, शतभिषा, पूर्वाफल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा और पूर्वाषाढा नक्षत्रमें, केन्द्र स्थानमें शुक्र बृहस्पति और बुध स्थित होनेसे, शुक्र, रवि और बृहस्पतिवारमें, शुभ तिथिमें, बालकका चन्द्रमा और ताराशुद्धि होनेसे यज्ञोपवीत करना चाहिये ॥ ६९ ॥

अथ प्रशस्तमासकथनम् ।

माघे द्रविणशीलाढ्यः फाल्गुने च दृढव्रतः ।
चैत्रे भवति मेधावी वैशाखे कोविदो भवेत् ॥ ७० ॥
ज्येष्ठे गहननीतिज्ञ आषाढे क्रतुभाजनः ।
शेषेष्वन्येषु रात्रिः स्यान्निषिद्धं निशि च व्रतम् ॥ ७१ ॥

इति कृत्यचिन्तामणौ ।

अर्थ—कृत्यचिन्तामणिमें लिखा है कि, माघके महीनेमें यज्ञोपवीत होनेसे बालक धनवान् होता है इसीप्रकार फाल्गुनमें होनेसे व्रतके रखनेवाला, चैत्रमें मेधावी, वैशाखमें पण्डित, ज्येष्ठमें अत्यन्त नीतिशास्त्रके जाननेवाला और आषाढके महीनेमें यज्ञोपवीत

(×) तोयपतिः शतभिषा, अदितिसुत उत्तराफाल्गुनी, सागरः पूर्वाषाढा, व्रतकर्म उपनयनम् । इति ज्योतिस्तत्त्वे स्मार्त्तेन व्याख्यातम् ।

होनेसे वह बालक याज्ञिक होता है, उक्त महीनोंके सिवाय अन्य महीनोंमें देवता ओंकी रात्रि होती है उनमें यज्ञोपवीत न करना चाहिये ॥ ७० ॥ ७१ ॥

अथ प्रशस्ताप्रशस्ततिथ्यादिकथनम् ।

अनध्यायश्च (१) रिक्ताश्च षष्ठीश्च परिवर्जयेत् ।
चैत्रकृष्णद्वितीयायां तिसृष्वेवाष्टकासु च ॥ ७२ ॥
मार्गे च फाल्गुने चैव आषाढे कार्त्तिके तथा ।
पक्षयोर्माघमासस्य द्वितीयां परिवर्जयेत् ॥
नाकालवृष्टौ कुर्वीत व्रतबन्धशुभक्रियाम् ॥ ७३ ॥

इति भुजबलभीमे ।

अर्थ–भुजबलभीममें लिखा है कि, अनध्याय, रिक्तातिथि, षष्ठी, चैत्र महीनेके कृष्णपक्षकी द्वितीया, तीनों अष्टका और अग्रहायण, फाल्गुन, आषाढ, कार्तिक और माघके महीनेकी दोनों पक्षोंकी द्वितीयाको छोडकर यज्ञोपवीत करना चाहिये और अकाल वृष्टिमें भी यज्ञोपवीत–आदि मङ्गल कार्य्यको न करै ॥ ७२ ॥ ७३ ॥

अपि च ।

स्मृतियुक्ताननध्यायान्सप्तमीश्च त्रयोदशीम् ॥
पक्षयोर्माघमासस्य द्वितीयां परिवर्जयेत् ॥ ७४ ॥ (क)

इति गर्गः ।

अर्थ–गर्ग मुनिने कहा है कि, स्मृतियोंमें कहे हुये अनाध्याय, सप्तमी, त्रयोदशी और माघके महीनेकी दोनों पक्षोंकी द्वितीयाको यज्ञोपवीत में परित्याग करै ॥ ७४ ॥

अन्यच्च ।

द्वितीया पञ्चमी चैव दशम्येकादशी तथा ।
व्रतारम्भे प्रशस्ता स्यादन्या स्यादधमा स्मृता ॥ ७५ ॥

इति ज्योतिःसारे ।

---

(१) "कार्तिकस्याश्विनस्यापि फाल्गुनाषाढयोरपि । कृष्णपक्षे द्वितीयायामनध्याय विदुर्बुधाः।" इति श्रीपतिव्यवहारसमुच्चये ॥

(क) चैत्रशुक्लतृतीया, आषाढशुक्लदशमी, मन्वन्तरादित्वेन निषिद्धा वैशाखशुक्लतृतीया युगादित्वेन निषिद्धेति स्मार्त्ताः । " उदगयने आपूर्यमाणे पक्षे कल्याणनक्षत्रे चूडोपनयनगोदान-विवाहाः " इत्याश्वलायनवचनादुपनयने शुक्लपक्ष एव विहितः । कर्णवेधे विवाहे च व्रते पुंसवने तथा । प्राशने चाद्यचूडाया विद्धमृक्षं विवर्जयेत्" इति वचनादत्रापि दशयोगभङ्गो विचार्यः । व्रते च मरण-मिति वचनात् युतवेधोऽपि इति स्मार्त्तेनोक्तम् ।

अर्थ-ज्योतिःसारमें लिखा है कि, द्वितीया, पञ्चमी, दशमी और एकादशी तिथि उपनयन (यज्ञोपवीत) मे प्रशस्त है. और उक्त तिथियोंके सिवाय अन्य तिथियोको अधम कहा है ॥ ७५ ॥

अपरञ्च ।

तृतीयैकादशी ग्राह्या पञ्चमी द्वादशी तथा ।
द्वितीयायाञ्च मेधावी भवेदर्थबलान्वितः ॥ ७६ ॥

इति ग्रन्थान्तरे ।

अर्थ-ग्रन्थान्तरमे लिखा है कि. तृतीया, एकादशी. पञ्चमी, द्वादशी और द्विती-या तिथिमे उपनयन होनेसे बालक मेधावी होता है ॥ ७६ ॥

षष्ठ्यामशुचिरभार्य्यो रिक्तासु बहुदोषभाक् ॥ ७७ ॥

अर्थ-षष्ठी तिथिमें यज्ञोपवीत होनेसे अशुचि और भार्य्याहीन होता है और रिक्ता तिथिमें अनेक प्रकारके दोष होते है अतएव उक्त दोनों तिथियोंमे यज्ञो-पवीत न करना चाहिये ॥ ७७ ॥

प्रकारान्तरञ्च ।

माघषट्के जन्ममासे शुक्लपक्षे तथैव च ।
गुर्वर्ककालशुद्धौ च तथोपनयनं स्मृतम् ॥ ७८ ॥ (+)

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ-ज्योतिःसारसंग्रहमे लिखा है कि, माघसे आदि लेकर छः महीनोंके मध्यमे, जन्मके महीनेमे, शुक्लपक्षमे, गोचरमें बृहस्पति और सूर्य्य शुद्ध होनेसे यज्ञोपवीत करै ॥ ७८ ॥

अन्यच्च ।

गुरौ शुक्रे रवौ वारे सामगानां कुजेऽपि च ।
उपनयनं प्रकुर्वीत दिनादिप्रहरद्वये ॥ ७९ ॥

इति ज्योतिःसारे ।

अर्थ-ज्योतिःसारमे लिखा है कि, बृहस्पति, शुक्र और रविवारमें दिनके पूर्वार्द्ध-मे यज्ञोपवीत करना चाहिये । सामवेदी मङ्गलवारमे भी यज्ञोपवीत करसक्ते हैं ॥ ७९ ॥

(×) शुचिर्नैव गुरुर्यस्य वर्षे प्राप्तेऽष्टमे यदि । चैत्रे मासि गते भानौ तस्योपनयनं विदुः । इति ग्रन्थान्तरे ।

अपिच ।

क्षिप्रध्रुवाहिचरमूल मृदुत्रिपूर्वा-
राद्रोर्कविद्गुरुसितेन्दुदिने व्रतं स्यात् ॥ ८० ॥

इति मुहूर्त्तचिन्तामणौ ।

अर्थ—मुहूर्त्तचिन्तामाणिमे लिखा है कि, पुष्य, अश्विनी, हस्त, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, रोहिणी, आश्लेषा, स्वाति, पुनर्वसु (×) श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, मूल, चित्रा, अनुराधा, मृगशिर, रेवती, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा पूर्वाभाद्रपदा, और आर्द्रानक्षत्रमें, रवि, बुध, बृहस्पति शुक्र और सोमवारमें यज्ञोपवीत करना चाहिये॥ ८०॥

अपरश्च ।

चन्द्रतारानुकूल्ये च ग्रहाब्देऽ (१) पि शुभे तथा ।
पुनर्वसौ कृतो विप्रः पुनः संस्कारमर्हति ॥ ८१ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—ज्योतिस्तत्वमें लिखा है कि, चन्द्र, तारा और अन्य ग्रहगोचरमें शुद्ध होनेसे आठवें वर्षमें बालकका यज्ञोपवीत करै । पुनर्वसु नक्षत्रमें यज्ञोपवीत करनेसे उसका फिरसे यज्ञोपवीत करना चाहिये ॥ ८१ ॥

अथ जन्मलग्नादिप्रशंसा ।

जन्मोदये जन्मसु तारकासु मासेऽथवा जन्मनि जन्मभे वा ॥
व्रतेन विप्रो न बहुश्रुतोपि विद्याविशेषैः प्रथितः पृथिव्याम् ॥८२॥

इति कृत्यचिन्तामणौ ।

अर्थ—कृत्यचिन्तामणिमें लिखा है कि, जन्मलग्नमे, जन्म नक्षत्रमें, जन्मके महीनेमें और जन्मकी राशिमें यदि बालकका यज्ञोपवीत होय तो वह बालक अल्पविद्यावान् होनेसे भी अत्यन्त विद्याद्वारा पृथिवीमें ख्यात होता है ॥ ८२ ॥

शुक्ले पक्षे शुभस्थे शशिनि दिनकरे देवपूज्ये च सम्य-
ग्वारे भानोःसितस्य त्रिदशपतिगुरोश्चोत्तरे तीक्ष्णरश्मौ ॥
हस्ताश्वित्राश्विशक्रादितिवसुवरुणोपेन्द्रातिष्येन्दुपौष्ण- (२)
स्वातीषुव्याहतासु स्मृतमुपनयनं चौडमाद्यश्च शस्तम् ॥ ८३ ॥

इति सत्कृत्यमुक्तावल्याम् ।

(×) पुनर्वसु नक्षत्रमें क्षत्रिय और वैश्यका यज्ञोपवीत होसक्ता है ।

(१) गृहाब्दे इस शब्दका अर्थ किसी २ ने नवम वर्षमें किया है ।

(२) अत्र वचने पुनर्वसोरुपादानात्क्षत्रियवैश्योपनयनविषयमेव ।

अर्थ—सत्कृत्यमुक्तावलि ग्रन्थमें लिखा है कि, शुक्लपक्षमे गोचरमे चन्द्र सूर्य्य और बृहस्पति शुद्ध होनेसे, रवि, शुक्र और बृहस्पति वारमे, उत्तरायण मे, हस्त, चित्रा, अश्विनी, ज्येष्ठा, पुनर्वसु, धनिष्ठा, शतभिषा, श्रवण, पुष्य, मृगशिर, रेवती और स्वाति नक्षत्रमे यज्ञोपवीत और आद्य (प्रथम) चूडाकर्म प्रशस्त है ॥ ८३ ॥

शाखाधिपे बलिनि केन्द्रगतेऽथवास्मिन्
वारेऽस्य चोपनयनं कथितं द्विजानाम् ॥
नीचस्थितेऽरिगृहगेऽथ पराजिते वा
जीवे भृगावुपनयः स्मृतिकर्महीनः ॥ ८४ ॥ (क)

इति कृत्यचिन्तामणौ वात्स्यः ।

अर्थ—कृत्यचिन्तामणि ग्रन्थमे वात्स्यमुनिने कहा है कि, शाखाके मालिक जो कौन ग्रह यदि बलवान् होय अथवा केन्द्रके स्थानमें स्थित होय तो शाखाके मालिक के वारमे यज्ञोपवीत प्रशस्त है, और बृहस्पति नीच घरमे होय वा शुक्रके घरमे होय अथवा दोनोंके मध्य मे कोई ग्रह पराजित होय और उसमे यज्ञोपवीत किया जाय तो वह बालक स्मार्त्तकर्मका अधिकारी नहीं होता है । किसी २ आचार्य्यने कहा है कि, शाखाका मालिक बलवान् होय वा केन्द्रस्थानमे स्थित होय और कोई न होय तो शाखाके मालिकके वारमे यज्ञोपवीत होसक्ता है । सामवेदियोका मङ्गलवारमे यज्ञोपवीतका व्यवहार है, स्मार्त्तभट्टाचार्य्यने भी इसी प्रकार कहा है ॥ ८४ ॥

नीचस्थानगते जीवे भार्गवेऽरिगृहं गते ।
व्रतकर्म न कुर्वीत तयोरेव पराजये ॥ ८५ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ—ज्योतिःसारसंग्रहमे लिखा है कि, बृहस्पति नीच घरमे स्थित होनेसे वा शुक्र शत्रुके घरमे होनेसे अथवा दोनोके मध्यमें जो कोई ग्रह पराजित होय तो यज्ञोपवीत न करना चाहिये ॥ ८५ ॥

माघादिमासषट्केषु शार्ङ्गिणः शयनावधि ।
चूडाकर्म प्रकुर्वन्ति मुनयो व्रतमेव च ॥ ८६ ॥

इति भोजराजः ।

अर्थ—राजा भोजने कहा है कि, माघ महीनेसे आदि लेकर छः महीनोमें श्रीहरिके जाग्रत्समयमेही चूडाकर्म और यज्ञोपवीत करना चाहिये इसप्रकार मुनियोने कहा है ८६

(क) सामवेदाना कुजवारेऽप्युपनयनमिति स्मार्त्तेनोक्तम् ।

रात्रिभागः समाख्यातः खरांशोर्दक्षिणायनम् ।
व्रतबन्धादिकं तस्माच्चूडाकर्म च वर्जयेत् ॥ ८७ ॥

इति कृत्यचिन्तामणौ ।

अर्थ–कृत्यचिंतामणिमें लिखा है कि, दक्षिणायनमें देवताओंकी रात्रि होती है अतएव उसमें यज्ञोपवीतादि और चूड़ाकर्म न करना चाहिये ॥ ८७ ॥

विप्रस्य क्षत्रियस्यापि मौञ्जी स्यादुत्तरायणे ॥
दक्षिणे च विशां कार्य्यं नानध्याये (१) न संक्रमे ।
अनध्यायेऽपि (२) कुर्वीत यस्य नैमित्तिकं भवेत् ॥ ८८ ॥

इति गर्गः ।

अर्थ–गर्गमुनिने कहा है कि, ब्राह्मण और क्षत्रियका यज्ञोपवीत उत्तरायणमें करै वैश्यका यज्ञोपवीत दक्षिणायनमेंभी होसक्ता है किन्तु अनध्याय और संक्रान्तिका छोड़देवै और यदि प्रायश्चित्त करके यज्ञोपवीत होय तो ब्राह्मणादि वर्णोंका अनध्यायमें दक्षिणायनमें और कृष्णपक्षमें वह यज्ञोपवीत होसक्ता है किन्तु एक दिन (×) परित्याग करनेसेही निषिद्धदिन छूटता हो तो उसीदिन करे ॥ ८८ ॥

शुक्रास्तादिसमये उपनयनादिनिषेधकथनम् ।

अस्तंगते दैत्यगुरौ गुरौ वा ऋक्षेऽपि वा पापयुतेऽप्यनुक्ते ।
व्रतोपनीतो दिवसे प्रणाशं प्रयाति देवैरपि रक्षितो यः ॥ ८९ ॥

इति कृत्यचिन्तामणौ ।

अर्थ–कृत्यचिन्तामणिमे लिखा है कि, शुक्र वा बृहस्पति अस्तगत हो वा पापग्रहोंके साथ होकर यदि किसी राशिमे स्थित हो तो और तिथि नक्षत्रादि अनुक्त दिनमें जिसका यज्ञोपवीत होय वह मनुष्य देवरक्षित होनेसेभी यमालयको जाता है ॥ ८९ ॥

---

(१) चातुर्मास्यद्वितीयासु मन्वादिषु युगादिषु । अष्टकासु च संक्रान्त्या शयने बोधने हरेः । आषाढफाल्गुनोर्ज्जेषु या द्वितीया विधुक्षये । चातुर्मास्यद्वितीयास्ताः प्रवदन्ति महर्षयः । सिता ज्येष्ठे द्वितीया च आश्विने दशमी तथा । चतुर्थी द्वादशी माघ एताः सोपपदास्तथा । अनध्यायं प्रकुर्वीत तथा सोपपदासु च ॥" इति ग्रन्थान्तरे ।

(२) अपिना दक्षिणायनकृष्णपक्षयोः समुच्चयः । नैमित्तिकं प्रायश्चित्तरूपमिति मलमासतत्त्वे स्मार्त्तेनोक्तम् ।

(+) एकदिनस्योपवासेन गमयितुं शक्यत्वादिति स्मार्त्ताः ।

ऋक्षैकमन्दिरगतौ यदि जीवभानू
शुक्रोऽस्तगः सुरवरैकगुरुश्च सिंहे ॥
नारभ्यते व्रतविवाहगृहप्रतिष्ठा
क्षौरादिकर्म गमनागमनञ्च धीरैः ॥ ९० ।

इति काश्यपः ।

अर्थ–काश्यपने कहा है कि, एक राशिमे एकही नक्ष- युक्त होकर यादि बृहस्पति और सूर्य्य स्थित होय अथवा शुक्र अस्तगत होय वा बृहस्पति सिंह राशिमें होय तो पण्डितगण यज्ञोपवीत, विवाह, ग्रहप्रतिष्ठा, चूड़ादि कर्म और गमनागमन परित्याग करै ॥ ९० ॥

इति काश्यपः ।

एकराशिगतौ स्यातामेकर्क्षविषये यदि ।
गुर्वादित्यौ तदा त्याज्या यज्ञोद्वाहादिकाः क्रियाः ॥ ९१ ॥

इति काश्यपः ।

अर्थ–काश्यपने कहा है कि, एक राशिमे एक नक्षत्रयुक्त होकर यादि गुर्वादित्ययोग होय तो उसमे यज्ञ विवाह और यज्ञोपवीतादि न करना चाहिये ॥ ९१ ॥

यात्रां चूडां विवाहं श्रुतिविवरविधिं ग्रामसद्मप्रवेशं
प्रासादोद्यानहर्म्यान्सुरनवभवनारम्भविद्याप्रदानम् ।
मौञ्जीबन्धं प्रतिष्ठां मणिवरकनकाधारणंकुर्वते ये
मृत्युस्तेषाञ्च सिंहे गुरुदिनकरयोरेकराशिस्थयोश्च ॥ ९२ ॥

इति हारीतः ।

अर्थ–हारीतने कहा है कि, बृहस्पति और सूर्य्य यदि सिंहराशिमें स्थित होय वा अन्य किसी राशिमें एक नक्षत्रयुक्त होकर दोनो (बृहस्पति और सूर्य्य) स्थित होंय तो यात्रा, चूड़ा, विवाह, कर्णवेध, ग्रामप्रवेश, गृहप्रवेश, प्रासादारम्भ, उद्यानारम्भ हर्म्यारम्भ, देवगृहारम्भ, विद्याप्रदान, यज्ञोपवीत, प्रतिष्ठा, श्रेष्ठमणिधारण और स्वर्णालङ्कारादि धारण न करना चाहिये उक्त विद्धकालमें उपरोक्त समस्त कार्य्योंके करनेसे उसकी मृत्यु होतीहै ॥ ९२ ॥

नीचस्थः सिंहगो वा यदि भवति गुरुःसूर्यरश्मौ च लीनः
संयुक्तो वा यदि स्याद्दशशतघृणिना क्षीणरूपोऽथ बालः ॥

यात्रा गेहं विवाहो व्रतममरगृहं यज्ञचूडादि सर्वं
वापी चोद्यानकूपं न भवति शुभदं यद्यदिष्टञ्च लोके ॥ ९३ ॥

इति रत्नावल्याम् ।

अर्थ-रत्नवाली ग्रन्थमें लिखा है कि, बृहस्पति यदि नीचस्थानमें स्थित होय, सिंह राशिमें होय, सूर्य्यके साथमे होय, अस्तगत होय अथवा बाल्यावस्थाको धारण करै तो उसमे यात्रा,गृहारम्भ,विवाह, यज्ञोपवीत, देवगृहारम्भ, यज्ञ, चूडाकर्म, वापी (बावडी) खुदाना बगीचा लगाना और कुआँ खुदाना और अन्यान्य मङ्गलकार्य्य न करना चाहिये ॥ ९३ ॥

सर्वं कार्य्यं न कुर्वीत गुरौ सिंहेऽस्तगेऽपि च ।
व्रतदीक्षे न कुर्वीत तमोयुक्ते बृहस्पतौ ॥ ९४ ॥

इति भोजदेवः ।

अर्थ-राजा भोजने कहा है कि, बृहस्पति सिंह राशिमे स्थित होय वा अस्तंगत होय तो उसमें मङ्गलकार्य्य न करना चाहिये और राहुयुक्त होनेसे यज्ञोपवीत और दीक्षादान न करै ॥ ९४ ॥

उल्कापाते भुवः कम्पे ह्यकालवर्षगर्जिते ।
वज्रकेतूद्गमोत्पाते ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ॥ ९५ ॥
प्रयाणन्तु त्यजेत्क्षत्रः सप्तरात्रमतः परम् ।
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यस्त्यजेत्कर्म त्रिरात्रकम् ॥
शूद्रस्त्यक्त्वा चैकरात्रं सर्वकर्म समाचरेत् ॥ ९६ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-ज्योतिषतत्वमें लिखा है कि,उल्कापतनमें,भूकम्पमे, अकाल वर्षण वा गर्जन में, वज्रपातमें, धूमकेतुके उदयमे, अन्य प्रकारसे उत्पातोमे, चन्द्रग्रहणमे और सूर्य्यग्रहण होनेसे क्षत्रिय सात रात्रि परित्याग करके यात्रा करै और ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यके कर्ममात्रमें ही तीन रात्रि परित्याग करनी चाहिये किन्तु शूद्रको एक रात्रि छोडकर समस्त कर्मोंमें अधिकार है ॥ ९५ ॥ ९६ ॥

ग्रहणे विशेषः ।

प्रयाणे सप्तरात्रं स्यात्त्रिरात्रं व्रतबन्धने ।
एकरात्रं परित्यज्य कुर्य्यात्पाणिग्रहं ग्रहे ॥ ९७ ॥

इति पराशरः ।

अर्थ-पराशरने लिखा है कि, ग्रहण होनेसे सात दिनपर्य्यन्त यात्रा परित्याग करनी चाहिये तीन रात्रियोंके बाद यज्ञोपवीत करै और आपत्कालमे विवाह एक रात्रिके बाद ही करसक्ता है ॥ ९७ ॥

कम्पे राजनि सप्ताहो ब्राह्मणानां त्र्यहस्तथा ।
शूद्रस्यार्द्धदिनं (*) प्रोक्तं सर्वकार्य्येषु वै भृगुः ॥ ९८ ॥

इतिभृगुः ।

अर्थ-भृगुने कहा है कि, भूकम्पादि होनेसे क्षत्रिय सात दिन ब्राह्मण तीन दिन ओर शूद्र (आपद्विषयमे) अर्द्ध दिन परित्याग करके समस्त मङ्गल कार्य्य करे॥९८॥

नो सन्ध्यागर्जिते प्राहुर्व्रतोपनयनं बुधाः ।
न च वृष्टावथाकाले वृष्टावासप्तवासरान् ॥ ९९ ॥ (+)

इति व्यासः ।

अर्थ-व्यासने कहा है कि, सन्ध्यागर्जनमे और अकालवृष्टिमे यज्ञोपवीतादि न करना चाहिये इसप्रकार पण्डितोने कहा है परन्तु तीन दिन क्रमसे वृष्टि होनेसे शेष दिनसे सात दिनतक अकाल होता है ॥ ९९ ॥

तथाच ।

एकेनाह्ना चैकदिनं द्वितीयेन दिनत्रयम् ।
तृतीयेन तु सप्ताहं त्यजेदकालवर्षणे ॥ १०० ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ-ज्योतिःसारसंग्रहमे लिखा है कि, अकालवृष्टि एक दिन होनेसे उसी दिन अकाल होता है, इसीप्रकार क्रमानुसार दो दिन होनेसे शेष दिनसे तीन दिन अकाल होता है और क्रमानुसार तीन दिन अकालवृष्टि होनेसे शेष दिनसे सात दिनपर्य्यन्त अकाल होता है ॥ १०० ॥

आकालिकीं वृष्टिमवेक्ष्य गन्ता पदं न गच्छेच्छुभमात्मनीच्छन् ॥
क्षौरं व्रतञ्चापि शुभाभिलाषी कदापि नैवं मनसापि कुर्य्यात् ॥ १ ॥

इति श्रीपतिव्यवहारनिर्णये ।

(*) शूद्रस्यापद्विषयम् । कम्प इत्युपलक्षणं ग्रहणादावप्येवमेवान्यत्रैकत्र पठितत्वात् । इति स्मार्त्ताः ।

(+) आसप्तवासरानित्यत्र उपस्थितत्वाद्वृष्टिकालमादाय सप्ताहगणना (वृष्ट्युत्तरमेव सप्ताहत्यागः) एतद्वचनं तु तृतीयादिदिवसीयाकालवृष्ट्याभिप्रायेण । अतः " दिनेनैकदिनं त्याज्यं द्वितीयेन दिनत्रयम् । तृतीयेन च सप्ताह त्यजेदकालवर्षणे " इति न्यायरत्नपरिगृहीतवाक्येऽपि दिनेन दिनवृत्तिवर्षणेन । एवं द्वितीयेनेत्यादौ ज्ञेयम् ।

अर्थ–श्रीपतिभट्टाचार्य्यने स्वकृत व्यवहारानिर्णय ग्रन्थमे लिखा है कि, अकालवृष्टिको देखकर अपनी कुशल चाहनेवाला मनुष्य एकपदभी गमन न करै अर्थात् यात्रा निषिद्ध है और मंगल अभिलाषी मनुष्य क्षौर (चूडाकर्म) वा यज्ञोपवीतादिको मनमे भी न विचारै अर्थात् उक्त समस्त कार्य्योंका निषेध है ॥ १ ॥

आवैशाखाद्भुजगवनिताचुम्बनायासखिन्नो
देवो दैत्यप्रमथनपटुर्यावदेकान्तशान्तः ॥
अम्भःशय्यापरिगततनुर्योगनिद्रामुपैति
तावद्वृष्टेः समय उचितो ब्रह्मणा भाषितोऽयम् ॥ २ ॥

इति सत्कृत्यमुक्तावल्याम् ।

अर्थ–सत्कृत्यमुक्तावली ग्रन्थमे लिखा है कि, दैत्योंके नाशकरनेवाले विष्णुभगवान् सर्पवानिता (स्त्री) के चुम्बनसे परिश्रान्त होकर (थककर) क्लान्ति (थकावट) दूरकरनेके निमित्त जलशय्यामें जबतक सोतेहुए वैशाखके महीनेसे उसी समय तक अकालवृष्टिका समय होता है ॥ २ ॥

अकालन्तु ततो वृष्टेर्यावद्वह्निमहोत्सवः ॥ ३ ॥

इति सत्कृत्यमुक्तावल्याम् ।

अर्थ–सत्कृत्यमुक्तावली ग्रन्थमे लिखा है कि, श्रीहरिके उत्थानसे दोलपूर्णिमापर्य्यन्त वृष्टि होनेसे उसको अकालवृष्टि कहते हैं अकालवृष्टिमें श्रीहरिके उत्थान समयसे शयनकालपर्य्यन्त प्रथम पक्षको परित्याग करना चाहिये पौषादि चार महीने वा श्रीहरिके उत्थानसमयसे दोलपूर्णिमातक द्वितीयपक्ष आपत्विषयमें और पौषादि दो महीने अत्यन्त आपद्विषयमें त्याज्य हैं ॥ ३ ॥

अकालवृष्टिको विवाहप्रकरणमें कालशुद्धिके प्रसङ्गमें उत्तम प्रकारसे कहा है पाठकगण उसको देखलेगे ।

अथानध्यायकथनम् ।

प्रतिपत्पञ्चपर्वाणि कृष्णा पौषस्य सप्तमी ।
चैत्रे कृष्णद्वितीया च नवमी शुक्लगाश्विने ॥ ४ ॥
द्वे द्वितीये सहोमावोर्जाषाढाश्विनफाल्गुने ।
द्वादशी शयनोत्थानपरिवर्त्तेषु या भवेत् ॥ ५ ॥
मन्वादयो युगाद्याश्च ह्यशौचप्रेतपक्षकौ ।
अनध्यायोऽत्र कर्त्तव्य इति वेदविदां स्मृतिः ॥ ६ ॥

त्र्यहं कुर्य्यादनध्यायमम्बुवाच्युपरागयोः ।
सन्ध्यागर्जश्राद्धभुक्तिभूकम्पादावहर्निशम् ॥ ७ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ--अब अनध्यायोको कहते है, ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि, प्रतिपदा, पञ्चपर्व पौषकी कृष्णा सप्तमी, चैत्रकी कृष्ण द्वितीया, आश्विनकी शुक्ला नवमी, आग्रहायण, माघ, कार्त्तिक, आषाढ, आश्विन और फाल्गुनके महीनेकी दोनो पक्षोंकी द्वितीया, अयन, उत्थान और पार्श्वपरिवर्त्तन द्वादशी, मन्वन्तरादि, युगादि, अशौच और प्रेतपक्ष इन समस्तदिनोमे अनध्याय होता है, यह वेदके जाननेवालोंका मत है और अम्बुवाची और ग्रहणमें तीन दिन, सन्ध्यागर्जनमें और श्राद्धान्नभोजनमे एक दिन और भूकम्पादि होनेसे भी एक दिनका अनध्याय होता है ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥

व्रतेऽह्निपूर्वसन्ध्यायां (क) वारिदो यदि गर्जति ।
व्रतं तत्र तु (ख) नैव स्यादिति धर्म्मो व्यवस्थितः ॥ ८ ॥

अर्थ—व्रतके दिनमें (यज्ञोपवीतके दिनमे) पूर्वसन्ध्यामे, मेघके गर्जनेसे उपनयन न करना चाहिये मुनिगणोंने इसप्रकार धर्मको स्थापित किया है ॥ ८ ॥

कार्त्तिकस्याश्विनस्यापि फाल्गुनाषाढयोरपि ।
कृष्णपक्षे द्वितीयायामनध्यायं विदुर्बुधाः ॥ ९ ॥

इति श्रीपतिव्यवहारसमुच्चये ।

अर्थ—श्रीपतिके व्यवहारसमुच्चयमें लिखा है कि, कार्त्तिक, आश्विन, फाल्गुन और आषाढके कृष्णपक्षकी द्वितीयाको पण्डितोने अनध्याय कहा है ॥ ९ ॥

युगाद्येषु युगान्तेषु तथा मन्वन्तरादिषु ।
सन्ध्यागर्जेऽकालशुद्धौ विद्यारम्भन्न कारयेत् ॥ १० ॥

इति सत्कृत्यमुक्तावल्याम् ।

अर्थ—सत्कृत्यमुक्तावली ग्रन्थमे लिखाहै कि, युगके आदिकी तिथि (१) युगके

(क) पूर्वदिने सायंसन्ध्यागर्जने परदिने व्रतनिषेध इति मैथिलमतम् । पूर्वपदमत्र परसन्ध्याव्यावर्त्तक स्वरूपाख्यानपरं वेति स्मार्त्ताः ।

(ख) "तद्दिनं स्यादनध्यायं व्रतं तत्र नकारयेत्" इति परार्द्धे भीम पराक्रमे ।

(१) युगाद्यामाह—"वैशाखे शुक्लपक्षे तु तृतीयाया कृतं युगम् । कार्त्तिके शुक्लपक्षे तु त्रेताथ नवमेऽहनि । अथ भाद्रपदे कृष्णत्रयो दश्यान्तु द्वापरम् । माघे च पौर्णमास्यां वै घोरं कलियुगं स्मृतम् । युगारम्भास्तु तिथयो युगाद्यास्तेन विश्रुताः " इति ब्रह्मपुराणम् ।

अन्तकी तिथि मन्वन्तरा (२) सन्ध्यागर्जन और अकालशुद्धिमे विद्यारम्भ (वेदरम्भ) न करना चाहिये ॥ ११० ॥

अयने विषुवे चैव शयने बोधने हरेः ।
अनध्यायोऽत्र कर्त्तव्यो मन्वादिषु युगादिषु ॥ ११ ॥

अर्थ–अयन संक्रान्ति, विषुव संक्रान्ति, श्रीहरिका शयनकाल, बोधनकाल और मन्वन्तर और युगाद्या इन सबको अनध्याय कहते हैं ॥ ११ ॥

अथोपनयनकालः ।

गर्भाष्टमेऽष्टमे वाब्दे ब्राह्मणस्योपनायनम् ।
राज्ञामेकादशे सैके (×) विशामेके यथाकुलम् ॥ १२ ॥ (※)

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ–अब उपनयनका काल कहते हैं । ज्योतिषतत्वमें लिखा है कि, गर्भाष्टममें (१) अथवा आठवें वर्षमें ब्राह्मणके बालकका यज्ञोपवीत होना चाहिये और क्षत्रियका ग्यारहवे वर्षमें और वैश्यका बारहवे वर्षमें यज्ञोपवीत होना चाहिये । अथवा कुलकी रीतिसे जितनी वर्षोंमे यज्ञोपवीत होता होय तो उस समयमें भी होसक्ता है ॥ १२ ॥

विप्रस्य षोडशाद्वर्षाद्राज्ञोद्वाविंशतेः परम् ।
वैश्यस्याष्टात्रिकादब्दात्सावित्रीपतनं भवेत् ॥ १३ ॥

इति मार्कण्डेयः ।

---

(२) अथ मन्वन्तराः । "अश्वयुक्शुक्लनवमी द्वादशी कार्त्तिकी तथा । तृतीया चैत्रमासस्य तथा भाद्रपदस्य च । फाल्गुनस्याप्यमावस्या पौषस्यैकादशी तथा ॥ आषाढस्यापि दशमी तथा मावस्य सप्तमी ॥ श्रावणस्याष्टमी कृष्णा तथाषाढस्य पूर्णिमा । कार्त्तिकी फाल्गुनी चैत्री ज्यैष्ठी पञ्चदशी सिता । मन्वन्तरादयस्त्वेता दत्तस्याक्षयकारिका." इति भविष्यमत्स्यपुराणयो. । अत्र अमावस्याष्टमीव्यतिरिक्ताः शुक्लाः पुन. पुनस्तथापदोपादानादुपक्रमोपसंहारयो. शुक्लत्वकीर्त्तनाच । कामधेनौ–"तृतीया चैव मावस्य" इति कल्पतरौ तु–"तृतीया चैत्रमासस्य" इति लिखितम् । अत्र पाठद्वैधे श्रीपातिरत्नमालायाम् । "अश्वयुजि शुक्लनवमी द्वादश्यूर्जे मधौ तृतीया च" इति पाठाच्चैत्रतृतीयैव ग्राह्या श्रीदत्तोऽप्येवम् । इति तिथितत्वे स्मार्त्ता. ।

(+) एकादशे सैके द्वादशे । "गर्भादेकादशे राज्ञो गर्भात्तु द्वादशे विश." इति वचनान्तरश्रवणात् ।

(※) "देशानुशिष्टं कुलधर्म्ममग्र्यं स्वगोत्रधर्म्मं नहि सन्त्यजेच ।" इति वामनपुराणम् ।

(१) जन्म लगिनकर छः वर्ष तीन महीनेके बादको गर्भाष्टमकाल कहते हैं ॥

अर्थ-मार्कण्डेय मुनिने कहा है कि, ब्राह्मणकी सोलह वर्षके बाद क्षत्रियकी बाईस वर्षके बाद और वैश्यकी चौबीस वर्षके बाद सावित्री पतन होती है ॥ १३ ॥

षोडशाब्दे हि विप्रस्य राजन्यस्य द्विविंशतिः।
विंशतिःसचतुर्थी च वैश्यस्य परिकीर्तिता ॥
सावित्री नातिवर्त्तेत अत ऊर्ध्वं निवर्त्तते ॥ १४ ॥ (+)

इति विष्णुधर्मोत्तरे।

अर्थ-विष्णुधर्मोत्तरमे लिखा है कि, सोलहवर्षतक ब्राह्मणका यज्ञोपवीत होसक्ता है, इसीप्रकार क्षत्रियका बाईस वर्षतक और वैश्यका चौवीस वर्षतक यज्ञोपवीत होनेका समय होता है, किन्तु उक्त समयके बाद सावित्री पतन होजाती है ॥ १४ ॥

आषोडशाच्च द्वाविंशाच्चतुर्विंशाच्च वत्सरात्।
ब्रह्मक्षत्रविशां काल औपनायनिकः परः ॥ १५ ॥ (क)

इति याज्ञवल्क्यः।

अर्थ-याज्ञवल्क्यने कहा है कि, ब्राह्मणका सोलह वर्षतक क्षत्रियका बाईस वर्षतक और वैश्यका चौवीस वर्षतक यज्ञोपवीतका समय है ॥ १५ ॥

औपनायनिकः कालः परः (ख) षोडशवार्षिकः।
द्वाविंशतिः परोऽन्यस्य स्याच्चतुर्विंशतिः परः ॥ १६ ॥

इति व्यासः।

अर्थ-व्यासने कहा है कि, ब्राह्मणका सोलह वर्षतक, क्षत्रियका बाईस वर्षतक और वैश्यका चौवीस वर्षतक यज्ञोपवीतका समय है ॥ १६ ॥

(+) आभ्यां (मार्कण्डेयविष्णुधर्मोत्तरवचनाभ्यां) षोडशवर्षाद्युपरि यमेन पञ्चदशवर्षोपरि यत्पतनमभिहितं तद्गर्भजन्मप्रभृति गणनाभ्यामविरुद्धं तथा च कृत्यचिन्तामणौ माण्डव्यः। "व्रतबन्धविवाहौ च वत्सरपरिकल्पनमाहुराचार्याः। आधानपूर्वमेके प्रसूतिपूर्वं सदान्ये तु" एवञ्च व्यासमार्कण्डेयादिवाक्यैकवाक्यतया न्यायसिद्धतया च आषोडशादित्याङोऽभिविध्यर्थतैव। अत्रापि वर्षगणना सावनेनैव। यत्तु द्विजानामुपक्रम्य पैठीनसिवचनम्। "द्वादशषोडशविंशतिश्चेदतीता अवरुद्धकाला भवन्ति" इति। तद्द्वादशवर्षाद्युपरि प्रत्यवायाल्पत्व ज्ञापनपरमिति शूलपाण्युपाध्यायाः। अत्र महाव्याहृतिहोमप्रायश्चित्तं तदुत्तरं व्रात्यप्रायश्चित्तमिति मलमासतत्त्वे स्मार्त्तेनाभिहितम्।

(क) अत्र याज्ञवल्क्यवचने आङः अभिविध्यर्थत्वम्। मर्य्यादाभिविधिसन्देहे कार्य्यान्वितत्वेनाभिविधेरेव बलवत्त्वादिति मलमासतत्त्वे स्मार्त्तेनोक्तम्।

(ख) परोन्त्य षोडशवार्षिकः षोडशवर्षं व्याप्य भूतास्थित इति यावत्। इति मलमासतत्त्वे स्मार्त्तेनोक्तम्।

पतिता यस्य सावित्री दशवर्षाणि पञ्च च ।
ब्राह्मणस्य विशेषेण तथा राजन्यवैश्ययोः ।
प्रायश्चितं भवेदेषां प्रोवाच वदतां वरः ॥ १७ ॥ (ग)

इति यमः ।

अर्थ—यमने कहा है कि, ब्राह्मणका पन्द्रहवर्षके मध्यमें सावित्रीग्रहण अर्थात् यज्ञोपवीत न होय और क्षत्रिय वैश्यकाभी पूर्वोक्त समयमे यज्ञोपवीत न होय तो प्रायश्चित्त करना चाहिये ॥ १७ ॥

आषोडशाद्ब्राह्मणस्य सावित्री नातिरिच्यते ।
आद्विविंशाच्च क्षत्रस्य आचतुर्विंशतेर्विशः ।
अतःपरं नोपनेयो व्रात्यः संस्कारहीनकः ॥ १८ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ—ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि, सोलह वर्षतक ब्राह्मण सावित्री अर्थात् गायत्रीमें अधिकारी होसक्ता है इसी प्रकार बाईस वर्षतक क्षत्रिय और चौवीस वर्षतक वैश्य गायत्रीका अधिकारी होसक्ता है, किन्तु उक्त समयके बाद यज्ञोपवीत नहीं होसक्ता है व्रात्य और संस्कारहीन होजाता है ॥ १८ ॥

मार्कण्डेय, विष्णुधर्म्मोत्तर, याज्ञवल्क्य और यम प्रभृतिके वचनोंका अर्थ अनेक प्रकारसे होसक्ता है अर्थात् किसी वचनमें सोलहवर्षतक यज्ञोपवीतका विधान है और वचनान्तरमें पन्द्रह वर्षके बाद यज्ञोपवीतका निषेध है, अतएव उक्त सब वचनोंकी मीमांसाके निमित्त स्मार्त्तभट्टाचार्यने विषयभेदसे (गर्भग्रहण और जन्म समयसे गिनकर) विधि और निषेधको सार्थक किया है, " गर्भग्रहणसे सोलह वर्षके मध्यमें यज्ञोपवीतका विधान और जन्मसे पन्द्रह वर्षके बाद यज्ञोपवीतका निषेध है " इसप्रकार मीमांसा करी है ॥

इति उपनयनम् ।

अथ समावर्त्तनम् ।

तृतीयलाभारिगतैरसौम्यैःकेन्द्रत्रिकोणोपगतैः शुभैश्च ॥
चूडोदितर्क्षादिविलग्नयोगेमौञ्जीविमोक्षःशुभदोद्विजानाम् ॥ १९ ॥ (×)

इति दीपिकायाम् ।

(ग) पूर्वोक्तविष्णुधर्मोत्तरवचने षोडशवर्षस्योपनयनाङ्गता अत्र यमवचने तदनङ्गता प्रतीयते अनयोर्गर्भजन्मप्रभृतिगणनाभ्यामविरुद्धता । इति ज्योतिस्तत्त्वे स्मार्त्तेन व्याख्यातम् ।

(+) समावर्त्तनमाह—तृतीयेति । चूडाकरणोक्तेषु नक्षत्रादिषु चूडोक्तलग्नयोगे च आदिशब्दात् तिथिवारादिचूडावज्ज्ञातव्यमित्यर्थः । मौञ्जीविमोक्षः समावर्त्तनम् । शेषं सुगमम् ।

अर्थ-अब समावर्तनका मुहूर्त्त कहते हैं दीपिकामें लिखा है कि, लग्नके तीसरे ग्यारहवें और छठे स्थानमे पापग्रह होनेसे और केन्द्र और त्रिकोणस्थानमें शुभ ग्रह होनेसे चूडोदित नक्षत्र, वार, तिथि, योग और लग्नादिमे ब्राह्मणोंका मौञ्जीविमोक्षण शुभ होता है ॥ १९ ॥

भौमभानुजयोर्वारे नक्षत्रे च व्रतोदिते ।
तारा (१) चन्द्रविशुद्धौ च समावर्त्तनमिष्यते ॥ १२० ॥

इति ज्योतिस्तत्वे ।

अर्थ-ज्योतिषतत्वमें लिखा है कि, मंगल और शनिवारमे उपनयनोक्त नक्षत्रमें तारा और चन्द्रमा शुद्ध होनेसे समावर्त्तन होताहै ॥ १२० ॥

इति समावर्तनम् ।

अथाग्निग्रहणम् ।

वह्निग्रहं कुजगुरुज्ञदिनेशवारे
माघादिषट्सु च मृदुध्रुववह्निभेषु ॥
कुम्भाजभांशकविलग्नमशुद्धकालं
लग्नस्थशीतगुसितौ च विहाय कुर्य्यात् ॥ २१ ॥ (२)

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ-अब अग्निग्रहणका मुहूर्त कहते हैं दीपिकामें लिखाहै कि, मंगल, बृहस्पति, बुध और रविवारमे, माघसे आदि लेकर छः महीनोमे चित्रा, अनुराधा, मृगशिर, रेवती, उत्तराफाल्गुनी,उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, रोहिणी और कृत्तिका नक्षत्रमे, कुम्भ मेष और जलराशिके उदय समय और नवांशभिन्न लग्नमे, शुद्ध लग्नमे चन्द्रमा और शुक्र न होनेसे अग्नि ग्रहण करना चाहिये ॥ २१ ॥

अथ धनुर्विद्यारम्भः ।

अदितिगुरुयमार्कस्वातिपित्र्याग्निचित्रा
ध्रुवहरिवसुमूलाश्विन्दुभाग्यान्तभेषु ॥

---

(१) कालचन्द्रविशुद्धौ चेत्यपि पाठान्तरम् ।

(२) अग्निग्रहणपरीक्षायान्तु' विशेषमाह-वह्निग्रहमिति । मङ्गलगुरुरविवारेषु माघादिषट्सु: मृदुध्रुवगण कृत्तिकासु कुम्भस्याजस्य च जलराशेरंशकं नवाशं लग्नञ्च त्यक्त्वा अशुभकालं शुक्रास्तादि -पत्त्वावह्निग्रहणं कुर्य्यात् । शेषं सुगमम् । इति ।

विशनिशशिबुधाहे विष्णुबोधे विपौषे ।
सुसमयतिथियोगे चापविद्याप्रदानम् ॥ २२ ॥ (×)

अर्थ–अब धनुर्विद्यारम्भ करनेका मुहूर्त्त कहते हैं । पुनर्वसु, पुष्य, भरणी, हस्त, स्वाती, मघा, कृत्तिका, चित्रा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, रोहिणी, श्रवण, धनिष्ठा, मूल, अश्विनी, मृगाशिर, पूर्वाफाल्गुनी और रेवती, नक्षत्रमें, शनि सोम और बुधवारको छोडकर अन्यवारोंमें, श्रीहरिके बोधमे, पौष और चैत्रभिन्न महीनोमे कालशुद्धि होनेसे रिक्ताभिन्न शुभतिथि और योगादिमें धनुर्विद्याका मारम्भ करना चाहिये ॥ २२ ॥

अथ मोक्षदीक्षा (संन्यास ग्रहणम्) ।

जीवार्केन्दूडुशुद्धौ ध्रुवमृदुगणभे चोत्तरस्थे दिनेशे
प्रव्रज्येशे सवीर्य्ये स्थिरभवनविलग्नस्थितेऽर्केज्यवारे ॥
प्रव्रज्याख्येषु योगेष्वशुभगगनगैर्वीर्य्यहीनैः सुवीर्ये (क)
जीवे धर्मे स्मरे वा स्थिरभवननवांशोदये मोक्षदीक्षा ॥२३॥

अर्थ–अब मोक्षदीक्षा अर्थात् संन्यासके ग्रहण करनेका मुहूर्त्त कहते है बृहस्पति, रवि, चन्द्र और नक्षत्र गोचरमें शुद्ध होनेसे उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, रोहिणी, चित्रा, अनुराधा, मृगाशिर और रेवती नक्षत्रमें, उत्तरायणमें, प्रव्रज्याधिप ग्रह बलवान् स्थिर लग्नमें होनेसे रवि वा बृहस्पतिवारमे, प्रव्रज्याख्ये योगमे पापग्रह बलहीन होनेसे बलवान् बृहस्पति नवमे वा सातवे स्थानमें होनेसे स्थिर राशिके उदयमे अथवा नवांशमें संन्यासको ग्रहण करै ॥ २३ ॥

(×) धनुर्विद्यारम्भमाह–अदितीति । ध्रुवो ध्रुवगणः १२ । २१ । २६ । ४ भाग्य पूर्वाफाल्गुनीत्यर्थः। शनिबुधचन्द्रवारास्त्यक्त्वा विष्णुबोधे हरेरुत्थाने विपौषे पौषं त्यक्त्वा चापविद्यादानं कुर्यात् । पौष इत्युपलक्षणं चैत्रश्च । यथा राजमार्त्तण्डे–"हरौ सुप्ते तथा पौषे चैत्रे चाप्यसितेतरे । शशिसौम्यशनेर्वारे धनुर्विद्या न शस्यते" सुसमये कालशुद्धौ सुतिथौ अरिक्ते तिथौ सुयोगे च कार्य्यमित्यर्थः ।

(क) मोक्षार्थदीक्षामाह–जीवार्केति । जातकचन्द्रिकादौ तापसबुद्धेनादिना प्रव्रज्येशः उक्तः येन वा प्रव्रज्या कार्या तदीश्वरे बलवति स्थिरलग्ने स्थिते सति प्रव्रज्यायोगे च रविचन्द्रजीवशुद्धौ न ध्रुवमृदुगणनक्षत्रेषु माघादिषट्के स्थिर भवने विलग्ने रवि गुरुवारे प्रव्रज्यायोगेऽशुभग्रहैर्यत्र तत्रस्थैर्बलहीनैः सद्भिः स्ववीर्य्ये बलवति जीवे नवमे सप्तमे वा स्थिते स्थिरनवांशोदये न मोक्षदीक्षा [illegible] वेत्यर्थः । शेषं सुगमम् ।

अथ नृपाभिषेकः ।

पुष्टैः शुक्रेन्दुजीवैर्ध्रुवलघुचलभिद्विष्णुमैत्रेन्दुपौष्णैः
सल्लग्ने पाकजन्मोदयपतिषु विरन्ध्रारिगेन्द्रावसौम्यैः ॥
त्र्यायारिस्थैरथाष्टव्ययगृहरहितैः सद्ग्रहैः केन्द्रकोणे
वीर्याढ्ये क्षत्रियेशे सुदिनतिथिशुभेन्दौ नृपस्याभिषेकः॥२४॥(ख)

अर्थ-अब राजाके अभिषेकका मुहूर्त्त कहते हैं. शुक्र, चन्द्रमा और बृहस्पति पूर्ण बलवान् होनेसे, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, रोहिणी, पुष्य, अश्विनी, हस्त, ज्येष्ठा, अनुराधा, मृगशिर और रेवती नक्षत्रमे तत्कालीन दशाधिपति जन्मराश्यधिपति और जन्मलग्नाधिपति सब शुभग्रह होनेसे गोचरमें छठे और आठवे स्थानको छोडकर चन्द्रमा स्थित होनेसे तीसरे ग्यारहवे और छठे स्थानमे पापग्रह न होनेसे आठवे और बारहवें स्थानमे शुभ ग्रह न होनेसे क्षत्रियेश ग्रह (जिस जातिका अभिषेक होय उसी जातिका मालिक ग्रह) बलवान् होकर केन्द्रस्थानमे स्थित होनेसे शुभ ग्रहोके वारमे, शुभ तिथिमे, शुभ योगमें, गोचरमे चन्द्रमा शुद्ध होनेसे राजाका अभिषेक करना चाहिये ॥ २४ ॥

अथ नववस्त्रपरिधानम् ।

ब्रह्मानुराधवसुतिष्यविशाखहस्त-
चित्रोत्तराश्विपवनादितिरेवतीषु ॥
जन्मर्क्षजीवबुधशुक्रदिनोत्सवादौ
धार्यं नवं वसनमीश्वरविप्रतुष्टौ ॥ २५ ॥ (ग)

इति दीपिकायाम् ।

(ख) राज्याभिषेकमाह-पुष्टैरिति । शुक्रेन्दुजीवै. पुष्टै. स्फुटिकिरणजालैः ध्रुवलघुगणादिनक्षत्रे सल्लग्ने शुभग्रहस्य लग्ने पाकजन्मोदयपतिषु सत्सुपाकप.तिस्तत्कालीनदशेशः जन्मराश्यधिपो जन्म लग्नाधिपतिश्च तेष्वित्यर्थः । विरन्ध्रारिगेन्दौ तत्काललग्नादष्टमषष्ठवर्जिते चन्द्रे त्र्यायारिस्थिरसौम्यैः पापै. शुभैर्वाऽष्टाष्टमरहितै. बलवति क्षत्रियेशे केन्द्रे त्रिकोणे च स्थित इति क्षत्रियेश इत्युपलक्षणं योऽभिषिच्यते तज्जात्यधिप इत्यर्थः । सुदिनतिथिशुभेन्दाविति सुदिने शुभग्रहवारे सुतिथौ रिक्तारहित तिथौ सुयुतौ युतिर्योगो विष्कुम्भादिः सुयुतेष्विन्दौ गोचरशुभे चन्द्रे नृपाभिषेकः । कार्य. । इति ।

(ग) नववस्त्रपरिधानमाह-ब्रह्मेति । रोहिण्यादिनक्षत्रेषु जन्मनक्षत्रे जन्मदिने जीवबुधशुक्रवारे अनुक्तवार नक्षत्रे विवाहाद्युत्सवे ईश्वरविप्रतुष्टौ च नवांशुकं धार्यम् । यथा राजमार्त्तण्डे-"रविणा जुष्यते वस्त्रं सोमे शोकजलप्लुतम् । अङ्गारके भवेन्मृत्युः सर्वं हन्ति शनैश्चरे । भोक्तुर्नवाम्बरं शस्तमृक्षेऽपि गुणवर्जिते । विवाहे राजसन्माने ब्राह्मणानाञ्च सम्मतौ" इति ।

अर्थ—अब नया वस्त्र (कपडा) पहिननेका मुहूर्त्त कहते हैं दीपिकामें लिखा है कि, रोहिणी, अनुराधा, धनिष्ठा, पुष्य, विशाखा, हस्त, चित्रा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, अश्विनी, स्वाति, पुनर्वसु और रेवती नक्षत्रमें बृहस्पति, बुध और शुक्रवारमें नवीन वस्त्र पहनना चाहिये. और विवाहादि उत्सव कार्य्यमें जन्मनक्षत्रमें, जन्मदिनमें अनुक्त वार और अनुक्त नक्षत्रमें ब्राह्मण और ईश्वरकी प्रसन्नताके लिये नये वस्त्रको पहनसक्ता है ॥ २५ ॥

अन्यच्च ।

सूर्ये चाल्पधनं व्रणं शशिदिने क्लेशं सदा भूमिजे
वस्त्राणां बहुधा बुधे सुरगुरौ सौख्यं सदा धारणे ॥
नानाभोगयुतं प्रमोदशयनं दिव्याङ्गना भार्गवे
मन्दे रोगयुतं सदा च कलहो वस्त्रे धृते नूतने ॥ २६ ॥

अर्थ—अब अन्य प्रकारसे नवीन वस्त्र पहिननेका दिन कहते हैं, रविवारके दिन नया वस्त्र पहिननेसे दारिद्री होताहै, इसीप्रकार सोमवारमें मनुष्यको व्रणरोग होताहै, मंगलवारमें क्लेशी होता है, बुध और बृहस्पतिवारमें अनेक प्रकारसे सुखी होताहै, शुक्रवारमें अनेक प्रकारका भोगी, सुनिद्र और उत्तम स्त्रीका पती होता है और शनिवारमें नवीन वस्त्र पाहिननेसे रोगी और सर्वदा कलहकारक होता है ॥ २६ ॥

प्रकारान्तरञ्च ।

धनिष्ठारोहिणीहस्तविशाखोत्तरभाद्रकाः ।
पुष्यः पुनर्वसुः स्वातिश्चित्राश्विनी च रेवती ॥
नववस्त्रपरीधानमेतेषु शुभदं भवेत् ॥ २७ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ—ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि, धनिष्ठा, रोहिणी, हस्त, विशाखा, उत्तराभाद्रपदा, पुष्य, पुनर्वसु, स्वाति, चित्रा, अश्विनी और रेवती नक्षत्रमें नवीन वस्त्रको पहिनना चाहिये ॥ २७ ॥

अपरञ्च ।

अनिष्टेष्वपि ऋक्षेषु शस्तमम्बरधारणम् ।
उद्वाहराजसन्माने ब्राह्मणानाञ्च सम्मतौ ॥ २८ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ-ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि, विवाहमें वा राजसन्मानके समयमें अनुक्त नक्षत्रमेंभी ब्राह्मणोकी आज्ञासे नवीन वस्त्रको पहिन सक्ता है ॥ २८ ॥

अथ वस्त्रक्षारसंयोगनिषेधः ।

मन्दमङ्गलषष्ठीषु द्वादश्यां श्राद्धवासरे ॥
वस्त्राणांक्षारसंयोगे दहत्यासप्तमं कुलम् ॥ २९ ॥

इति स्मृतिसारे ।

अर्थ-अब वस्त्र प्रक्षालनमें निषिद्ध समय कहते हैं,स्मृतिसारमें लिखा है कि, शनिवारमें और मङ्गलवारमे, षष्ठी और द्वादशी तिथिमें, और श्राद्धके दिनमे, वस्त्रोंको क्षारसंयोगसे प्रक्षालन करनेसे अर्थात् धोबीसे धुलानेसे सात कुल दग्ध हो जाते हैं ॥ २९ ॥

अन्यच्च ।

संक्रान्त्यां पक्षयोरन्ते द्वादश्यां श्राद्धवासरे ।
वस्त्रं न पीडयेत्तत्र नच क्षारे तु योजयेत् ॥ ३० ॥

अर्थ-संक्रान्तिके दिनमे, अमावसमें, पूर्णिमामे, द्वादशीमे और श्राद्धके दिनमें वस्त्र निष्पिडन और क्षारसंयोग न करना चाहिये ॥ ३० ॥

अथ रत्नशंखादिधारणम् ।

पुष्यार्कादितिपित्र्यमित्रशशभृद्वित्तध्रुवत्वाष्ट्रषु
मुक्तादन्तसुवर्णविद्रुममणीन्दध्याद्धिबोधेहरेः ॥
पुष्टेन्दौ समये शुभे ध्रुवसुराचार्यादितीशेऽङ्गना
नो रत्नं बिभृयात्प्रवालकमणीञ्छङ्खं हिता स्वामिने ॥ ३१ ॥ (×)

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ-अब रत्नादि शङ्ख धारणकरनेका मुहूर्त्त कहते हैं, दीपिकामें लिखा हैं कि, पुष्य, हस्त, पुनर्वसु, मघा, अनुराधा, मृगशिर, धनिष्ठा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, रोहिणी और चित्रा नक्षत्रमें श्रीहरिके जाग्रतसमयमें मुक्ता

(+) अलङ्कारपरिधानमाह-पुष्येति । पुष्यादिदिननक्षत्रेषु मुक्ताहस्तिदन्तप्रवालादीनि हरिबोधे पुष्टेज्ये स्फुटकिरणे गुरौ कालशुद्धे शुभवारे शुभचन्द्रे दध्यात् परिदध्यात् अत्रैव योगे स्वामिने हिता भर्तुः कुशलकारिणी ध्रुवगणे पुष्यपुनर्वस्वोः शङ्ख रत्नादींश्च न दध्यात् अदितिरीशो यस्य पुनर्वसुरित्यर्थः । रोहिण्युत्तरात्रयपुष्य पुनर्वसूंश्च वर्जयित्वा उक्तेषु विधिषु, शंखादीनि दध्यादित्यर्थः । राजमार्तण्डे-पौष्णेन्द्राश्विधनिष्ठासु हस्तादिषु च पञ्चसु । शंखविद्रुममुक्तानां परिधानं स्त्रिया भवेत्" इति ।

(मोती) दन्तनिर्मित भूषण सुवर्ण और विद्रुम (मूंगा) मणि प्रभृति स्त्री और पुरुष दोनोको ही धारण करना चाहिये किन्तु पतिका हित चाहनेवाली स्त्री तीनों उत्तरामें, रोहीणीमे, पुष्यमें और पुनर्वसुमें, रत्न प्रवाल (मूंगा) मणि और शङ्खको धारण न करे ॥ ३१ ॥

अन्यच्च ।

रेवत्यश्विधनिष्ठासु हस्तादिपञ्चकेषु च ।
शङ्खविद्रुममुक्तानां परिधानं प्रशस्यते ॥ ३२ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ–ज्योतिःसारसंग्रहमे लिखा है कि, रेवती, अश्विनी, धनिष्ठा, हस्त, चित्रा, स्वाति, विशाखा और अनुराधा, नक्षत्रमे शङ्ख विद्रुम और मुक्ताको धारण करे ॥ ३२ ॥

अपरञ्च ।

गुरुबुधसितवारे शोभनस्थे शशाङ्के
पितृकरवसुचित्रामैत्रपौष्णोत्तरासु ॥
कनकरजतरत्नं शङ्खमुक्ताप्रवालं
शुभदमिह समग्रं धार्यमाणं मनुष्यैः ॥ ३३ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ–ज्योतिःसारग्रहमें लिखा है कि, बृहस्पति, बुध और शुक्र वारमें चन्द्रमा शुभ होनेसे मघा, हस्त, धनिष्ठा, चित्रा, अनुराधा, रेवती, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा और उत्तराभाद्रपदा, नक्षत्रमे सोना, चांदी, रत्न, शङ्ख, मोती और मूंगाको मनुष्य धारण करै ॥ ३३ ॥

प्रकारान्तरञ्च ।

धारयेन्न च रोहिण्यां भर्तुर्जीवनकाङ्क्षिणी ।
विष्टियोगे च रिक्तायां शनिभौमदिने तथा ॥ ३४ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ–ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि, रोहिणी नक्षत्रमें, विष्टिभद्रामे, रिक्ता तिथिमें और मङ्गलवारमे पतिका जीवन चाहिनेवाली स्त्रीको शङ्खादि धारण न करना चाहिये ॥ ३४ ॥

अपिच ।

अस्तंगते भृगुसुते शयने च विष्णौ-
जन्माष्टचापझषगे च रवौ न दध्यात् ॥
रिक्तेन्दुहीनदिवसे न च विष्टियोगे
शङ्खादिरत्नवसनं युवती न दध्यात् ॥ ३५ ॥

इति ज्योतिस्तत्वे ।

अर्थ-ज्योतिषतत्वमें लिखा है कि, शुक्रास्तमें अर्थात् अशुद्धि कालमे आहारक शयनकालमे, गोचरमे, जन्मस्थानमें और आठवे सूर्य्यमे चैत्र और पौषके महीने रिक्ता अमावास्या और विष्टि भद्रा तिथिमे युवतीगणको शङ्ख रत्नादि और नवीन वस्त्र धारण करना चाहिये ॥ ३५ ॥

अथ नवशय्याद्युपभोगः ।

मैत्रेन्दुपौष्णपितृभादितिवाजिचित्रा-
हस्तोत्तरात्रयहरीज्यविधातृभानि ॥
एतेष्वभीष्टशयनासनपादुकादि-
सम्भोगकार्यमुदितं मुनिभिः शुभाहे ॥ ३६ ॥ (क)

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ-अब नवीन शय्यादिके प्रथम उपभोगका मुहूर्त्त कहते हैं, दीपिकामें लिखा है कि, अनुराधा, मृगशिर, रेवती, मघा, पुनर्वसु, अश्विनी चित्रा, हस्त, उत्तराफाल्गुनी उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, श्रवण, पुष्य और रोहिणी, नक्षत्रमे शुभवार और शुभ तिथ्यादिमे नवीन शय्यापर नवीन आसनपर, और नवीन पादुकादिपर चढाना चाहिये ॥ ३६ ॥

अन्यच्च ।

हरिकरमरुदनुराधाविधातृपौष्णादितिद्वयोत्तर भे ।
भोजनविधिशय्यासनभोगारम्भो हितार्थाय ॥ ३७ ॥

इति चिन्तामणौ हारीतः ।

अर्थ-चिन्तामणि ग्रन्थमें हारीत मुनिने कहाहै कि, श्रवण, हस्त, स्वाति, अनुराधा, रोहिणी, रेवती, पुनर्वसु, पुष्य, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा और उत्तराभाद्रपदा नक्षत्रमें

(क) शय्यादीना प्रथमभोगमाह-मैत्रेति । आद्यं प्रथममुपभोगं कुर्य्यादित्यर्थः । शेषं सुगमम् । इति ।

भोजन करनेका आसन (पाटा) नवीन शय्या (खाट) पर भोग और नवीन आसनपर बैठनेसे मङ्गल होता है ॥ ३७ ॥

अपरञ्च ।

हस्तादितिब्रह्मगुरूत्तरेषु पौष्णाश्विमूलेन्दुभचित्रभेषु ।
वारेषुजीवेन्दुसितेन्दुजानां (१) शय्यासनादीनिहितप्रदानि॥३८॥

इति श्रीपतिसंहितायाम् ।

अर्थ–श्रीपतिसंहितामें भी लिखाहै कि, हस्त, पुनर्वसु, रोहिणी, पुष्य, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, रेवती, अश्विनी, मूल, मृगाशिर और चित्रानक्षत्रमें बृहस्पति, सोम, शुक्र और बुधवारमें नवीन शय्या और नवीन आसनको ग्रहण करना चाहिये ॥ ३८ ॥

प्रकारान्तरञ्च ।

अनुराधामृगशिरारेवती चोत्तरात्रयम् ।
हस्तचित्रामघापुष्यश्रवणानि पुनर्वसुः ॥ ३९ ॥
रोहिणी नवशय्यायां नवद्रव्यासनादिषु ।
प्रशस्ता नवपीठादौ सम्भोगे ग्रहविद्वदेत् ॥ १४० ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ–ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि, अनुराधा, मृगशिर. रेवती, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, हस्त, चित्रा, मघा, पुष्य, श्रवण, पुनर्वसु और रोहिणी नक्षत्रमें नवीन शय्या, नवीन द्रव्य, नवीनआसन और नवीन पीठादि (पिढियादि) का सम्भोग प्रशस्त है, ग्रहोंके जाननेवाले विद्वानोंने इसप्रकार कहा है ॥ ३९ ॥ १४० ॥

इति नवशय्याद्युपभोगः ।

अथ गजाद्यारोहणम् ।

पौष्णाश्विनीपवनवारुणवासुदेव
चित्रादितिश्रवणहस्तसुरेज्यभेषु ॥
वारे च जीवशशिसूर्यसितेन्दुजाना-
मारोहणं गजतुरङ्गरथेषु शस्तम् ॥ ४१ ॥

इति दीपिकायाम् ।

---

(१) 'वारेन्दुजीवेष्वसितेन्दुजानाम्' । इति पाठान्तरम् ।

अर्थ-अब गजादिपर चढनेका मुहूर्त कहते हैं-दीपिकामें लिखा है कि, रेवती अश्विनी स्वाति, शतभिष, धनिष्ठा, चित्रा, पुनर्वसु, श्रवण हस्त और पुष्य नक्षत्रमें बृहस्पति सोम, रवि, शुक्र और बुधवारमें हाथी, घोडा और रथ आदिपर चढना चाहिये ॥ ४१ ॥

अन्यच्च ।

पुष्यश्रविष्ठाश्विनिसौम्यभेषु पौष्णानिलादित्यकराह्वयेषु ।
सवारुणर्क्षेषु बुधैःस्मृतानि सर्वाणि कार्याणि तुरङ्गमानाम् ॥ ४२ ॥

अर्थ-पुष्य, धनिष्ठा, अश्विनी, मृगशिर, रेवती, स्वाति, पुनर्वसु, हस्त और शतभिषा नक्षत्रमें अश्वसम्बन्धीय समस्त कार्य्य करे ॥ ४२ ॥

अपरञ्च ।

पुष्यहस्ताश्विनीपौष्णधनिष्ठामूलवारुणे ।
स्वात्यादित्येऽश्वकार्यं सन्नरिक्ताकुजवासरे ॥ ४३ ॥

अर्थ-पुष्य, हस्त, अश्विनी, रेवती, धनिष्ठा, मूल, शतभिषा, स्वाति और पुनर्वसु नक्षत्रमें रिक्ताको छोडकर अन्य तिथियोंमें और मंगलको छोडकर अन्य वारोंमें अश्वसम्बन्धीय कार्य्य करे ॥ ४३ ॥

अथ गजवाजिक्रियादन्तकल्पनक्रियानिषेधः ।

स्ववरुगुणरुपार्श्वास्येषु भौमार्किवारे
सुतिथिकरणताराचन्द्रयोगोदयेषु ॥
शुभमिभहयकार्यं चाथ सुप्ते मुरारौ
गुरुगृहगतभानौ कल्पयेन्नेभदन्तान् ॥ ४४ ॥ (अ)

अर्थ-अब हाथी और घोडेके केशच्छेदनादिका मुहूर्त्त कहते हैं, धनिष्ठा, शतभिषा, पुष्य और पार्श्वमुख नक्षत्रोंमें, मङ्गल और शनिवारमें, शुभ तिथि, शुभ करण शुभ तारा, शुभचन्द्रमा और शुभलग्नमें हाथी और घोडेकी जिह्वाका मार्जन रक्तमोक्षण केशच्छेदनादि चिकित्सा और प्रथम दमन प्रशस्त है. किन्तु उक्त योगके होनेसेभी श्रीहरिके शयनकालमें वा सौर चैत्र अथवा पौषके महीनेमें हाथीका दन्तमार्जन और भूषणादि क्रिया न करना चाहिये ॥ ४४ ॥

(अ) गजवाजिकार्य्यमाह-स्ववरुणेति । स्वं धनिष्ठा वरुणः शतभिषा गुरुः पुष्यएषु पार्श्वस्यागणेषु १७ । १८ । ५ । १३ । १४ । १५ । २७ । ७ इभहयकार्य्यं हस्त्यश्वकार्य्यं प्रत्यङ्गं जिह्वामार्जनरक्तमोक्षणखुरच्छेदनादिचिकित्सा प्रथम दमनश्चकार्य्यम् अत्रैव । योगे हरिशयने शुभग्रहे रवौ चैत्रे पौषे इभदन्तान् हस्तिदन्तान् न कल्पयेत् दन्तमार्जनभूषादिकं न कार्य्यमित्यर्थः । शेषं सुगमम् । इति ।

अथ नवदोलाद्यारोहणम् ।

उग्रेन्दुमूलाहिशिवाग्निवर्जे शस्तेन्दुतारातिथिलग्नयोगे ।
विष्टिक्षमापुत्रयमाहवर्जे दोलादिकारोहणमाद्यमिष्टम् ॥४५॥ (आ)

अर्थ–अब नवीन दोलादिमें चढनेका मुहूर्त्त कहते हैं, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा, मघा, भरणी, मृगाशिर, मूल, आश्लेषा, आर्द्रा, और कृत्तिकाभिन्न नक्षत्रमें चन्द्र और तारा शुद्ध होनेसे शुभ तिथि शुभ लग्न और शुभयोगमें विष्टि भद्रा तिथि मंगल और शनिवारको छोडकर अन्य तिथिवारोंमें नवीन दोलादिमें पहिले चढना चाहिये ॥ ४५ ॥

अथ खड्गादिधारणम् ।

मूलेन्दुपूर्वात्रययाम्यपित्र्यशक्राग्निसर्पानलशूलिनश्च ।
खड्गादिसंधारणमेषु कुर्यात्तिथौ विलग्ने च शुभे शुभाहे॥४६॥(+)

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ–अब खड्गादिके धारण करनेका मुहूर्त्त कहते है, दीपिकामे लिखा है कि, मूल, मृगशिर, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा, भरणी, मघा, विशाखा, आश्लेषा कृत्तिका और आर्द्रा नक्षत्रमें शुभतिथि शुभलग्न और शुभदिनमें खड्गादिको धारण करना चाहिये ॥ ४६ ॥

इति खड्गादिधारणम् ।

अथ क्रयविक्रयनक्षत्राणि ।

यमाहिशक्राग्निहुताशपूर्वा नेष्टा क्रये विक्रयणे प्रशस्ताः ।
पौष्णाश्वि चित्राशतविष्णुवाताःक्रये हिते विक्रयणे निषिद्धाः॥४७॥(+)

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ–अब क्रयविक्रयके नक्षत्रोको कहते हैं–दीपिकामे लिखा है कि, भरणी, आश्लेषा, विशाखा, कृत्तिका, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा और पूर्वाभाद्रपदा नक्षत्र द्रव्यादिक्रयमे प्रशस्त नही है, किन्तु विक्रयमें प्रशस्त हैं, रेवती, अश्विनी, चित्रा, शतभिषा, श्रवण और स्वाति नक्षत्र क्रयमे प्रशस्त हैं, किन्तु विक्रयमे प्रशस्त नही हैं ॥ ४७ ॥

(आ) नवदोलाद्यारोहणमाह–उग्रेन्द्विति । उग्रगणादिनक्षत्रवर्जिते [illegible]मङ्गलशनिवारे । दोलाश्वादिवाहनारोहणमाद्यमिष्टं शस्तं शेषं सुगमम् ।

(+) खड्गादिधारणमाह–मूलेति । शूली आर्द्रा खड्गादीनां [illegible] कुर्वीत । शेषं सुगमम् ।

(+) [illegible]विचारमाह–यमेति । शक्राग्निसमुदितो [illegible] शेषं स्पष्टं [illegible] ।

अथ ऋणप्रयोगः ।

आजं यमद्वन्द्वमहित्रयञ्च शक्रत्रयं वातयुगं महेशः ।
कार्यो न चैतेषु धनप्रयोगो मृदौ गणे ग्राह्यमृणं न देयम् ॥४८॥ (१)

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ–अब धनप्रयोगादिका निषेध कहते हैं–दीपिकामे लिखा है कि पूर्वाभाद्रपदा, भरणी, कृत्तिका, आश्लेषा, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढा, स्वाति, विशाखा और आर्द्रा नक्षत्रमे न ऋण देना और न ऋण लेना चाहिये. चित्रा, अनुराधा, मृगशिर और रेवती नक्षत्रमे ऋण लेना चाहिये किन्तु ऋण देनेका निषेध है, इन नक्षत्रोको छोडकर अन्य नक्षत्रोंमें ऋण देना चाहिये ॥ ४८ ॥

इति ऋणप्रयोगः ।

अथ नृपदर्शनम् ।

ध्रुवमृदुलघुवर्गे वासवे विष्णुदेवे
विकुजरविजवारे केन्द्रकोणेषु सत्सु ॥
द्वितनुवृषभपञ्चास्योदये चन्द्रशुद्धौ
सुतिथिकरणयोगे दर्शनंभूमिपानाम् ॥ ४९ ॥ (+)

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ–अब राजाके देखनेका मुहूर्त कहते हैं, दीपिकामें लिखा है कि उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, रोहिणी, चित्रा, अनुराधा, मृगशिर, रेवती, पुष्य, अश्विनी हस्त, ज्येष्ठा और श्रवण नक्षत्रमे मङ्गल और शनिको छोडकर अन्य वारोमें केन्द्र और त्रिकोणमें शुभग्रह होनेसे द्व्यात्मक, वृष और सिंह लग्नमे चन्द्रमा शुद्ध होनेसे शुभतिथि शुभकरण और शुभ योगमें राजाका दर्शन करना चाहिये ॥ ४९ ॥

इति राजदर्शनम् ।

---

(१) ऋणदानग्रहणनिषेधमाह–आजमिति । आजं २५ यमद्वन्द्वं २ । ३ अहित्रयम् ९ । १० । ११ शक्रत्रयं १८ । १९ । २० वायुयुग १५ । १६ । महेश आर्द्रा ६ महेशमीशसहित मिति सौभट्ट. मतापः । एतेषु नक्षत्रेषु ऋणप्रयोग ऋणग्रहणं दानश्च न कर्त्तव्यं । मृदुगणे तु १४ । १७ । ५ । २७ । ऋणग्रहण कार्य्यं न तु देयमित्यर्थः ।

(+) राजदर्शनमाह–ध्रुवेति । ध्रुवगणे मृदुगणे लघुगणे ज्येष्ठा श्रवणयोश्च मङ्गलशनिवारवर्जिते केन्द्रत्रिकोणेषु सत्सु शुभग्रहेषु द्व्यात्मकलग्ने वृषसिंहलग्ने च भूमिपाना दर्शनं कार्यमित्यर्थः ।

अथ नाट्यारम्भः ।

अनुराधा धनिष्ठा च पुष्यहस्तात्रयं तथा ।
ज्येष्ठावारुणपौष्णे च नाट्यारम्भे शुभो गणः ॥ १५० ॥ (१)

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ–अब नृत्यगीतादिकका मुहूर्त्त कहतेहैं–ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखाहै कि, अनुराधा, धनिष्ठा, पुष्य, हस्त, चित्रा, स्वाति, ज्येष्ठा, शतभिषा और रेवती नक्षत्रमे नृत्य गीतादिकका आरम्भ करै ॥ १५० ॥

इति नाट्यारम्भः ।

अथ करग्रहणम् ।

तीक्ष्णोग्रवह्नीतरभेषु लग्ने शीर्षोदये भानुदिने शुभाह्ने ।
कुर्यादनुक्तानि समीहितानि करग्रहारम्भमपि प्रजाभ्यः ॥ ५१ ॥

इति ज्योतिःसारे ।

अर्थ–अब प्रजासे करग्रहण करनेका मुहूर्त्त कहतेहैं–ज्योतिःसारमें लिखा है कि, आश्लेषा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा, मघा, भरणी और कृत्तिका इन सब नक्षत्रोंको छोडकर अन्य समस्त नक्षत्रोंमें, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, कुम्भ, मिथुन और मीन लग्नमें, रविवारमें और शुभ ग्रहके वारमें प्रजासे कर लेना चाहिये ॥ ५१ ॥

अथ वास्तुलक्षणम् ।

स्निग्धा स्थिरा सुरभिगुल्मलतासुगन्धा
शस्ता प्रदक्षिणजला च निवासभूमिः ॥
नेष्टा विपर्ययगुणा कचकर्करास्थि-
वल्मीककण्टकिविभीतकसंकुला च ॥ ५२ ॥ (क)

इति दीपिकायाम् ।

---

(१) नाट्यारम्भे विहितनक्षत्र गणमाह–अनुराधेति स्पष्टार्थम् इति ।

(क) वास्तुलक्षणमाह–स्निग्धेति । स्निग्धा स्तिमिता स्थिरा पराधिकाराद्युपद्रवरहिता सुरभिर्गुल्मलता यत्र सा सुगन्धा प्रशस्तगन्धा प्रदक्षिणमुदारं प्रशस्तजलं यत्र गभीरं प्रशस्तजले-त्यर्थः । "दक्षिणे सरलो दारौ" इत्यमरः । तथाच । "धनिकः श्रोत्रियो राजा नदी वैद्यस्तु पञ्चमः । पञ्च यत्र न विद्यन्ते तत्र वासं न कारयेत् " यद्वा नद्यादौ प्रदक्षिणं जलं वहति ईदृशी निवास-भूमि शस्तेत्यर्थः । एतद्विपर्ययगुणा रूक्षा पराधिकाराद्युपद्रववशेन चञ्चला वृक्षादिभिर्विना दुर्गन्धा निर्जला वामजलवाहिनी वा निवासभूमिर्नकर्त्तव्येत्यर्थः । केशकर्कराास्थिवल्मीकैः कण्टकयुक्तैः शाल्मल्यादिभिर्विभीतकं बहेडेति यस्य प्रसिद्धिः । तेन सङ्कुला व्याप्ता नेष्टेत्यर्थः । तथा पञ्चगुणितैः-

अर्थ–अब वास्तुभूमिका लक्षण कहते हैं–दीपिकामें लिखा है कि स्निग्ध स्थिर अर्थात् पराधिकारजन्य उपद्रवरहित, सुगन्धि गुल्मलतादिद्वारा परिवेष्टित, प्रशस्तजलाशयसे युक्त इस प्रकारकी भूमि वासोपयोगी होती है, उक्तप्रकारके गुण न होकर यदि केश, कर्करास्थि, वल्मीक, कण्टकयुक्त वृक्ष और बहेडा वृक्षमय भूमि होय तो इस भूमिमें कभीभी वास नहीं करना चाहिये ॥ ५२ ॥

अथ वास्तुभूमिप्लवकथनम् ।

पूर्वप्लवो वृद्धिकरो धनदश्चोत्तरःप्लवः ।
दक्षिणे मृत्युदश्चैव धनहा पश्चिमप्लवः ॥ ५३ ॥ (१)

अर्थ–वास्तु भूमिकी पूर्वदिशामें निम्न होनेसे वंशकी वृद्धि होती है इसी प्रकार उत्तरदिशामें निम्न होनेसे धनकी वृद्धि होती है, दक्षिणमें निम्न होनेसे मृत्यु होती है और पश्चिममें निम्न होनेसे धनकी हानि होती है ॥ ५३ ॥

–पिकायाम् । "वर्जयेत्पूर्वतोऽश्वत्थं प्लक्षञ्च दक्षिणे तथा । वटञ्च पश्चिमे भागे उत्तरे चाप्युदुम्बरम् ॥" तथा–"निशानीली पलाशश्च चिञ्चा श्वेतापराजिता । कोविदारश्च सर्वत्र सर्वे निघ्नन्ति मङ्गलम् ॥" निशा दारुहरिद्रा । तत्र षोडश प्रकारं वास्तु । यथा राजमार्तण्डे–"आयतं चतुरस्रञ्च वृत्तं भद्रासनं तथा । चक्रं विषमबाहुश्च त्रिकोणं शकटाकृति । दण्डं प्रणवसंस्थानं मुरजञ्च गृहन्मुखम् । व्यजनं कूर्मपृष्ठञ्च धनुः शूर्पञ्च षोडश । आयते मुनिदिक्प्रोक्तं चतुरस्रेन वाष्टकम् । तिथिरन्ध्रयोर्दश वृत्ते भद्रे रुद्रदिवाकरौ । आयते सिद्धयः सर्वाश्चतुरस्रे धनागमः । भद्रासने कृतार्थत्वं वृत्ते पुष्टिविवर्धनम् । चक्रे दारिद्र्यमेवोक्तं शोको विषम बाहुके । नृपाद्भीतिस्त्रिकोणे स्याच्छकटे च धनक्षयः । नश्यन्ति पशवो दण्डे प्रणवे लोचनक्षतिः । मुरजे म्रियते भार्या अर्थनाशो गृहन्मुखे । व्यजने वित्तनाशः स्यात्कूर्मे बन्धनपीडनम् । शूर्पे धान्यक्षयं विद्याच्चापे चौरभयं भवेत् ।" तथा–"गजवाजिक्षयं कुर्याद्विस्ताराद्द्विगुणायता । तथा वास्तुनिर्णये" "हलेन चासयेद्वास्तु गोष्ठं तत्र तु कारयेत् । गोमूत्रगोमयाभ्याञ्च पूतं वास्तु भवेद्ध्रुवम् । शोधयेद्वास्तुपर्यन्तं गृहस्थानं प्रयत्नतः । तदा तत्र गृहं कुर्याद्वास्तुना शोधने कृते । शोधने प्राप्यते रत्नं ताम्रादि प्राप्यते यदा । मुक्ताविद्रुमवज्रं वा विपुलं शुभमादिशेत् । शोधने स्वर्णरौप्यादीॅल्लभन्ते विपुलं शुभम् । पद्मरागादि सम्प्राप्य लभन्ते विपुलां श्रियम् । कार्पासबीजतूषञ्च वल्मीकं कण्टकं तथा । अस्थिभस्मनखश्चैव केशश्च शर्करां त्यजेत् । न कोणे च गृहं कुर्य्यान्नाप्यन्ते नापि मध्यतः । नवमे प्रविभागे तु गृहं कुर्याद्विचक्षणः ।

(१) वास्तूनां पूर्वादिक्रमेण प्लवमाह–पूर्वेति । पूर्वप्लवः पूर्वभागे नीचः यथा पूर्वभागे जलं निःसरति वास्तूनां पूर्वनम्रता वृद्धिकरी, उत्तरनम्रता धनदा, दक्षिणनम्रता मृत्युदा, पश्चिमनम्रता धनहानिकरी । राजमार्तण्डे–"स्यादुन्नतिः पूर्वनते नराणां वास्तौ धनं दक्षिणभागतुङ्गे । क्षयो धनानां त्विनते प्रतीच्यामुच्चे विनाशो ध्रुवमुत्तरेण ।" उत्तरेणोच्चैरुत्तरतुङ्गे अर्थाद्दक्षिणनम्रता इत्यर्थः ।

अथ वास्तुभूमेः पूर्वादिदिक्षु जलाशयकथनम् ।

प्रागादिस्थे सलिले सुतहानिः शिखिभयं रिपुभयञ्च ।
स्त्रीकलहः स्त्रीदौष्ट्यं नैस्वं वित्तात्मजविवृद्धिः ॥५४॥ (२)

अर्थ–वासभूमिके पूर्वदिशामें जलाशय होनेसे पुत्रकी हानि होती है. इसीप्रकार उत्तर दिशामें होनेसे अग्निका भय, शत्रुका भय और स्त्री कलहकारिणी होती है, पश्चिमदिशामें होनेसे भार्य्या दुश्चरित्रा और पुत्रहीना होती है और वासस्थानसे दक्षिण दिशामें जलाशय होनेसे वित्त और पुत्रादिकोंकी वृद्धि होती है ॥ ५४ ॥

अथ पुष्करिण्यारम्भः ।

पुष्योमैत्रकरोत्तरस्ववरुणब्रह्माम्बुपित्र्येन्दुभैः
शस्तेऽर्के शुभवारयोगतिथिषु क्रूरेष्ववीर्येषु च ॥
पुष्टेन्दौ जलराशिगे दशमगे शुक्रे शुभांशोदये । (३)
प्रारम्भः सलिलाशयस्य शुभदो जीवेन्दुशुक्रोदये ॥ ५५ ॥

अर्थ–अब पुष्करिणी (नदी) के बनवानेका मुहूर्त्त कहते हैं–पुष्य, अनुराधा, हस्त, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, धनिष्ठा, शतभिषा, रोहिणी, पूर्वाषाढा, मघा और मृगशिर, नक्षत्रमे गोचरमें सूर्य्य शुद्ध होनेसे, शुभवारमे शुभयोगमें और शुभ तिथिमें, क्रूरग्रह बलहीन होनेसे पूर्णचन्द्रमा जलज राशिमे (×) स्थित होनेसे लग्नके दशवे स्थानमें शुक्र होनेसे, धन मीन कर्क वृष और तुला लग्नमे, शुभग्रहोंके नवांशमे नदी खुदवाना चाहिये ॥ ५५ ॥

अथ पुष्करिण्यादिप्रतिष्ठा ।

प्राप्य पक्षं शुभं शुक्रमतीते (१) चोत्तरायणे ।
आषाढे द्वे तथा मूलमुत्तरात्रयमेव च ॥ ५६ ॥

---

(२) वास्तुभूमेः पूर्वाद्यष्टदिक्स्थजलस्य यथाक्रमं फलमाह–प्रागादिस्थ इति स्पष्टार्थं । एतेनोत्तरेशानयोर्जलं कर्त्तव्यमित्यर्थः ।

(३) पुष्करिण्यारम्भमाह–पुष्यादिद्वादशनक्षत्रेषु शस्ते रवौ शुभग्रहस्य वारे शुभतिथौ शुभयोगे पापग्रहेषु बलहीनेषु सत्सु पूर्णचन्द्रे जलराशिस्थिते सति शुक्रे च दशमस्थे जीवेन्दुशुक्रोदये धनुर्मीनकर्कटवृषतुलालग्ने शुभांशोदये शुभग्रहस्य नवांशोदये सलिलाशयस्यारम्भः शुभदः स्यात् । अग्निनैर्ऋतवायुकोणे जलाशयनिषेधमाह–राजमार्तण्डे– "आग्नेये यदि कोणे ग्रामस्य पुरस्य वा भवति कूपः । नित्यं स करोति भयं दाहं वा मानसं प्रायः । नैर्ऋतकोणे बालक्षय वनिताभय । वायव्ये " जीवेन्दुशुक्रोदय इत्यत्र जीवेन्दु पुत्रोदय इति केचिद्वदन्ति ।

(+) कर्क, मीन, कुम्भ और मकरराशिके शेषार्द्धको जलजराशि कहते है ।

(१) अतीते मासे गत्यर्थस्यप्राप्त्यर्थत्वादिति ज्योतिस्तत्वे स्मार्त्तेनोक्तम् ।

ज्येष्ठाश्रवणरोहिण्यः पूर्वाभाद्रपदे तथा ।
हस्ताश्विनीरेवती च पुष्यौ मृगशिरस्तथा ।
अनुराधा तथा स्वाति प्रतिष्ठादिषु शस्यते ॥ ५७ ॥

इति मत्स्यपुराणे ।

अर्थ–अब पुष्करिण्यादिकी प्रतिष्ठाका मुहूर्त्त कहतेहै. मत्स्यपुराणमें लिखा है कि. शुक्लपक्षमें, उत्तरायणमे, पूर्वाषाढा, मूल, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा. ज्येष्ठा, श्रवण, रोहिणी, पूर्वाभाद्रपदा, हस्त, अश्विनी, रेवती, मृगशिर, अनुराधा और स्वाति नक्षत्रमे प्रतिष्ठा करना चाहिये ॥ ५६ ॥ ५७ ॥

अपिच ।

प्रतिपच्च द्वितीया च तृतीया पञ्चमी तथा ।
दशमी त्रयोदशी चैव पौर्णमासी च कीर्त्तिता ॥ ५८ ॥
सोमो बृहस्पतिश्चैव शुक्रश्चैव तथा बुधः ।
एते सौम्यग्रहाः प्रोक्ताः प्रतिष्ठायागकर्मणि ॥ ५९ ॥

इति भविष्यपुराणे ।

अर्थ–भविष्यपुराणमे लिखा है कि, प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया, पञ्चमी, दशमी त्रयोदशी और पौर्णिमा तिथिमे सोम, बृहस्पति, शुक्र और बुध इन सब शुभ ग्रहोंके वारोमे प्रतिष्ठा और यागादिकर्म प्रशस्त हैं ॥ ५८ ॥ ५९ ॥

अपरञ्च ।

मैत्रोत्तरापुष्यधनिष्ठधातृपित्र्याशुगर्क्षे वरुणे शुभेर्के ॥
वारे ज्ञशुक्रेन्दुबृहस्पतीनां शुभप्रदा स्यात्सरसां प्रतिष्ठा॥१६०॥

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ–दीपिकामें लिखा है कि, अनुराधा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा. पुष्य, धनिष्ठा, रोहिणी, मघा, स्वाति और शतभिषा नक्षत्रमें गोचरमें सूर्य्य शुद्ध होनेसे, बुध, शुक्र, सोम और बृहस्पतिवारमे सरोवर (तालाब) की प्रतिष्ठा शुभदायक होती है ॥ १६० ॥

अथ वृक्षादिरोपणम् ।

वारुणमूलविशाखासौम्यध्रुवहस्तपुष्यपौष्णेषु ।
तरुगुल्मलतादीनामारोपणं शस्तम् ॥ ६१ ॥ (क)

(क) वृक्षाद्यारोपणमाह–वारुणेति । आरामे उद्याने भाव्यर्थस्य भूतवत्वात् निमित्तसप्तमी वा आरामार्थमित्यर्थः । शेषं सुगममिति ।

अर्थ–अब वृक्षादिके बोनेका मुहूर्त्त कहते हैं, शतभिषा, मूल, विशाखा, मृगशिर, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, रोहिणी, हस्त, पुष्य और रेवती नक्षत्रमें वृक्ष, गुल्म और लतादिको लगाना चाहिये ॥ ६१ ॥

अथ गृहप्रशस्तवृक्षारोपणम् ।

पूगश्रीफलनारिकेललवलीजम्बीरकण्टाफला-
श्चूतादाडिमनागरंगमधुकारम्भाशिरीपामलाः ॥
जातीचम्पकमल्लिकावकुलकाः शोभाञ्जनः पाटलो
देवाशोकजयन्तिका तगरिका नित्यं श्रियं कुर्वते ॥ ६२ ॥

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ–घरमें कौनसे वृक्ष लगाना चाहिये अब उनको कहते हैं–दीपिकामे लिखा है कि, सुपारी, श्रीफल (गोला) नारिकेल, लवनी (नोना) जामुन, कांटाल, आम, दाडिम नारङ्गी, निबु, मधुपर्णी, केला, शिरीष, आमला, जाती, चम्पक, मल्लिका, बकुल, सैंजना, पाटल, देवदारु, अशोक, जयन्ती और तगर इन सब वृक्षोंको घरमें लगानेसे श्रीकी वृद्धि होती है ॥ ६२ ॥

अपिच ।

जम्बीरपूगपनसाम्रककेतकीभि-
र्जातीसरोजतगरत्वचमल्लिकाभिः ॥
यन्नारिकेलकदलीदलपाटलाभि-
र्युक्तं तदाश्रमपदं श्रियमातनोति ॥ ६३ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ–ज्योतिस्तत्वमें लिखा है कि; जामुन, सुपारी, कांटाल, आम, केतकी, जाती, पद्म, तगर, दालचिनी, मल्लिका, नारिकेल, कदली और पाटल इन सब वृक्षोंको जो मनुष्य घरमे लगाता है उसके घरमे लक्ष्मी वास करती है ॥ ६३ ॥

अन्यच्च ।

भवनस्य वटः पूर्वे जातः स्यात्सार्वकामिकः ।
औदुम्बरस्तथा याम्ये वारुणे पिप्पलः शुभः ॥
प्लक्षचोत्तरतो धन्यो विपरीतो विपर्यये ॥ ६४ ॥

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ–दीपिकामें लिखाहै कि, घरकी पूर्वदिशामें वटका वृक्ष होनेसे कामना सिद्धि होती है इसीप्रकार दक्षिणदिशामें औदुम्बर वृक्ष, पश्चिमदिशामें पीपल और उत्तर दिशामें पाकडका वृक्ष होनेसे मङ्गल होता है; किन्तु यह समस्त वृक्ष विपरीतदिशामें होनेसे अमङ्गल होता है ॥ ६४ ॥

अपरञ्च ।

शोभना दाडिमाशोकपुन्नागबिल्वकेसराः ।
रक्तपुष्पाद्भयं राज्ञः क्षीरिणा च पशोर्भयम् ।
कण्टकारिभयं कुर्याद्गृहभेदश्च शाल्मलिः ॥ ६५ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ–ज्योतिस्तत्त्वमें लिखा है कि, दाडिम, अशोक, पुन्नाग, बिल्व और केशरका वृक्ष घरमें लगानेसे मङ्गल होता है । और रक्तपुष्पका वृक्ष घरमें लगानेसे राजभय होता है । इसी प्रकार क्षीरिवृक्षसे पशुभय, काटेदार वृक्षसे भय और शाल्मलीका वृक्ष घरमें लगानेसे गृहविच्छेद होता है ॥ ६५ ॥

अथ वास्तुभूम्यनारोपणवृक्षकथनम् ।

धवखदिरपलाशा निम्बखर्जूरजम्बू
सरललकुचचिञ्चाकाञ्चनस्थूलशिम्बाः ॥
कलिविटपिकपित्थैरण्डधत्तूरपथ्या
विदधति धनहानिं सप्तपर्णः स्नुही च ॥ ६६ ॥

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ–जिन वृक्षोंको घरमें न लगाना चाहिये, अब उनको कहते हैं,–दीपिकामें लिखाहै कि, धव, खदिर, पलाश, नीम, खजूर, जाम, सरल, लकुच, तैंतुल, काञ्चन, स्थूलशिम्ब, बहेडा, कपित्थ, धतूरा, हरीतकी, सप्तपर्ण और मनसा इन समस्त वृक्षोंको घरमें लगानेसे धनकी हानि होती है ॥ ६६ ॥

अथ गृहारम्भः ।

आदित्ये तूलकर्कक्रियमिथुनघटालिस्थिते सत्समेतैः
केन्द्राद्यान्त्यैरसौम्यैस्त्रिभवरिपुगतैः स्वस्थिरग्राम्यलग्ने ॥

भेषु स्वाराङ्‌विशाखादितिफणिदहनोग्रेतरेष्वर्कशुद्धौ
वेश्मारम्भः शुभः स्यात्सुतिथिशुभविधौ भौमसूर्येतरेह्नि ॥ ६७ ॥(+)

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ--अब घर बनानेका मुहूर्त्त कहते हैं, दीपिकामें लिखा है कि, सौर कार्तिक. श्रावण, वैशाख, आषाढ, फाल्गुन और अग्रहायण मासमें, लग्नका केन्द्र आठवें और बारहवे स्थानमें शुभग्रह होनेसे, तीसरे, ग्यारहवें और छठे स्थानमे पापग्रह स्थित होनेसे अपनी जन्मलग्नमें और वृष, सिंह, वृश्चिक, कुम्भ, मिथुन, तुला और कन्या लग्नमें और धनलग्नके पूर्वार्द्धमें, ज्येष्ठा, विशाखा, पुनर्वसु, आश्लेषा, कृत्तिका, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा, मघा और भरणी इन सब नक्षत्रोंको छोडकर अन्य नक्षत्रोंमें मंगल और रविवार भिन्न वारमें गोचरमे सूर्य्य शुद्ध होनेसे शुभतिथिमे घर बनवानेकी निहको लगावै ॥ ६७ ॥

अथ गृहारम्भे निषिद्धानिषिद्धमासादिकथनम् ।

चैत्रे व्याधिमवाप्नोति यो गृहं कारयेन्नरः ।
वैशाखे धनरत्नानि ज्येष्ठे मृत्युस्तथैव च ॥ ६८ ॥
आषाढे धनरत्नानि पशुवर्जमवाप्नुयात् ।
श्रावणे काञ्चनं पुत्रान्हानिं भाद्रपदे तथा ॥ ६९ ॥
पत्नीनाश इषे मासि कार्तिके धनधान्यभाक् ।
मार्गशीर्षे तथा भक्तं पौषे तस्करतो भयम् ।
माघे चाग्निभयं विद्यात्फाल्गुने कांचनं सुतान् ॥ १७० ॥

इति मत्स्यपुराणे ।

(×) गृहारम्भमाह—आदित्य इति । सर्य्ये तुलाकर्कटमेषमिथुनकुम्भवृश्चिकराशिस्थिते कार्तिक श्रावण वैशाखाषाढ फाल्गुन मार्गशीर्षेष्वित्यर्थः । लग्नस्य केन्द्राष्टमद्वादशैः । शुभग्रहसमेते. पौ। तृतीयेकादशषष्ठस्थैः स्वकीयजन्मलग्ने स्थिर लग्ने वृषसिंहवृश्चिककुम्भलग्नेषु ग्राम्यलग्ने मिथुन-तुलाघटकन्याधनुःपूर्वार्धलग्नेषु ज्येष्ठादिवर्जितेष्वन्येषु भेषु गोचरशुद्धे रवौ सुतिथौ शुभचन्द्रे च मङ्गलरविवारेतरेषु वेश्यारम्भः शुभः स्यात् । अत्र च भौम सूर्येति पापवारोपलक्षण तेन शनि-वारेऽपि निषेधः । यथा राजमार्तण्डे—"रवावग्निः कुजे नाशः शशिन्यर्थः शनौ भयम् । सुरेज्ये भार्गवे सौम्ये गृहमाद्यं मनोहरम् " तथा तत्रैव "सौम्यानां दिवसेऽथ पापवर्जिते योगे " । तथा गर्ग—"बुधे लाभस्तथारोग्यं मरणं भास्करात्मजे" इति। प्रवेशे तु शनिवार निहित एव "स्थाप्य समान्य कृतयूपकाष्ठं वेश्मप्रवेशं गजवाहनञ्च" इत्यादिलिखितन्पशुपतिर्दीपिका वचनात् ।

अर्थ–अब घर बनवानेके महीनोका फल कहते है–मत्स्यपुराणमे लिखा है कि-चैत्रके महीनेमे घर बनवानेसे रोगी होता है, इसीप्रकार वैशाखके महीनेमे धन रत्नादिका लाभ होता है, ज्येष्ठमे मृत्यु होती है और आषाढके महीनेमे भी धनरत्नादिका लाभ होता है, किन्तु उसके घरमे पशु नही पालाजाता है और श्रावणके महीनेमे काञ्चन और पुत्र लाभ होता है, भाद्रपदमे हानि होती है, आश्विनमे स्त्रीकी मृत्यु होती है, कार्तिकमे धनधान्यका मालिक होता है, अग्रहायणमे अन्नका मालिक होता है. पौषमे चोरोका भय होता है, माघमे अग्निका भय होता है और फाल्गुनके महीनेमे घर बनवानेसे काञ्चन और पुत्रलाभ होता है ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ १७० ॥

वैशाखश्रावणाषाढमार्गफाल्गुनकार्तिकाः ।
सुप्रशस्ता गृहारम्भे भार्यापुत्रसमृद्धिदाः ॥ ७१ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे।

अर्थ–ज्योतिषतत्त्वमे लिखा है कि– वैशाख, श्रावण, आषाढ, अग्रहायण. फाल्गुन और कार्तिक के महीनेमे घर बनवानेसे स्त्री, पुत्र और धनादि द्वारा सुख प्राप्त होता है ॥ ७१ ॥

आदित्यभौमवर्ज्यास्तु सर्व वाराः शुभावहाः ।
प्रासादेऽप्येवमेव स्यात्कूपवापीषु चैव हि ॥ ७२ ॥

इति मत्स्यपुराणे ।

अर्थ–मत्स्यपुराणमें लिखा है कि, रवि और मङ्गलवारको छोडकर अन्य समस्त वारोमे गृह, प्रसाद, कूप और वापी बनवानेसे शुभ फल होता है ॥ ७२ ॥

शुक्लपक्षे भवेत्सौख्यं कृष्णे तस्करतो भयम् ॥ ७३ ॥

अर्थ–शुक्लपक्षमे घर बनवानेसे सुख होता है और कृष्णपक्षमे बनवानेसे चौरका भय होता है ॥ ७३ ॥

प्रतिपदि गृहं कृत्वा दुःखमाप्नोति मानवः ।
अर्थनाशो भवेत्षष्ठ्यामेकादश्यां विघट्टनम् ॥ ७४ ॥
पञ्चम्यां चौरभीतिः स्याद्दशम्यान्तु नृपाद्भयम् ।
पौर्णमास्यां चार्थनाशो भार्यानाशस्तथैव च ॥ ७५ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ–ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि, प्रतिपदा तिथिमें घर बनवानेसे दुःख होता है इसीप्रकार षष्ठीमे धनका नाश होता है, एकादशीमे अनेक प्रकारके विघाट, पञ्च-

मीमें चौरका भय होता है, दशमीमें राजाका भय होता है और पूर्णिमा तिथिमें घर बनवानेसे अर्थ हानि और स्त्रीकी मृत्यु होती है ॥ ७४ ॥ ७५ ॥

अश्विनीरोहिणीमूलमुत्तरात्रयमिन्दुभम् ।
स्वातिहस्तानुराधा च गृहारम्भे प्रशस्यते ॥ ७६ ॥

इति मत्स्यपुराणे ।

अर्थ–मत्स्यपुराणमें लिखा है कि, अश्विनी, रोहिणी, मूल, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, मृगशिर, स्वाती, हस्त और अनुराधा नक्षत्रमे घर बनवाना चाहिये ॥ ७६ ॥

वज्रव्याघातशूलेषु व्यतीपातेतिगण्डके ।
विष्कुम्भगण्डपरिघवर्ज्जं योगेषु कारयेत् ॥ ७७ ॥

इति मत्स्यपुराणे ।

अर्थ–वज्र, व्याघात, शूल, व्यतीपात, अतिगण्ड, विष्कुम्भ, गण्ड और परिघ योगको छोडकर अन्य योगोमें घरको बनवावै इसप्रकार मत्स्यपुराणेमे कहा है ॥७७॥

चन्द्रादित्यबलंलब्ध्वा लग्नं शुभनिरीक्षितम् ।
स्तम्भोच्छ्रायादि कर्त्तव्यमन्यत्र परिवर्ज्जयेत् ॥ ७८ ॥

इति मत्स्यपुराणे ।

अर्थ-- मत्स्यपुराणमे लिखा है कि, गोचरमे चन्द्रमा और सूर्य्य शुद्ध होनेसे और शुभ ग्रह लग्नको देखता होय तो तभी स्तम्भरोपण करै किन्तु सूर्य्य और चन्द्रमा शुद्ध न होय और पापग्रह लग्नको देखते हैं तो स्तम्भरोपण न करना चाहिये ॥ ७८ ॥

आदित्येज्यभरोहिणीमृगशिरश्चित्राधनिष्ठोत्तरा
पौष्णीविष्णुशतानुराधपवनैः शुद्धैः सुतारान्वितैः ॥
सौम्यानां दिवसेऽथ पापरहिते योगे विरक्ते तिथौ ।
विष्टित्यक्तदिने वदन्ति मुनयो वेश्मादिकार्यं शुभम् ॥ ७९ ॥

इति राजमार्त्तण्डे ।

अर्थ–राजमार्त्तण्डमे लिखा है कि, हस्त, पुष्य, रोहिणी, मृगशिर, चित्रा, धनिष्ठा उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, रेवती, श्रवण, शतभिषा, अनुराधा और स्वाती नक्षत्रमे ताराशुद्धि होनेसे, शुभग्रहोंके वारमे, शुभयोगमें रिक्ता और भद्राभिन्न शुभतिथिमे गृहारम्भ शुभदायक होता है ऐसामुनियोंने कहा है ॥ ७९ ॥

उग्रं विशाखामदितिश्च शक्रं भुजङ्गमग्निश्च विहाय गेहम् ।
ग्राम्यस्वलग्नस्थिरमन्दिरेषु कुर्याच्छुभैर्युक्तनिरीक्षितेषु ॥ १८० ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ–ज्योतिस्तत्त्वमे लिखा है कि, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा पूर्वाभाद्रपदा, मघा, भरणी, विशाखा, पुनर्वसु, ज्येष्ठा, आश्लेषा, और कृत्तिका इन सब नक्षत्रोंको छोडकर अन्य नक्षत्रोमे मिथुन, तुला, कुम्भ, कन्या और धनके पूर्वार्द्धमें और अपनी जन्मलग्नमें और स्थिर (वृष, सिंह, वृश्चिक, कुम्भ) लग्नमे शुभग्रह होय वा शुभग्रहोंकी दृष्टि होय तो घर बनवाना चाहिये ॥ १८० ॥

नवग्रहा भवेयुश्च यदि केन्द्रत्रिकोणगाः ।
दोपस्तदा क्षयं याति तमः सूर्योदये यथा ॥ ८१ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ–अब लग्नके दोषनाशक योग कहते हैं–ज्योतिस्तत्त्वमे लिखा है कि, नवों ग्रह यदि लग्नके केन्द्रस्थानमे और त्रिकोणमे स्थित होय तो सूर्य्योदयसे जिसप्रकार अन्धकारका नाश होजाता है ऊसीप्रकार लग्नके समस्त दोष दूर होजाते हैं ॥ १८० ॥

कुम्भाजालिकुलीरतौलिमिथुनस्थार्के कुजार्केतरे
वारे भद्रजये तिथौ शुभरवौ स्वग्राम्ययुग्मोदये ॥ (१)
भेषूग्रादितिशक्रपावकविशाखासर्पभिन्नेषु च ।
प्रारम्भः शुभदो गृहस्य शुभरात्रीशर्क्षयोगेष्वपि ॥ ८१ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ–ज्योतिःसारसंग्रहमे लिखा है कि, सौर फाल्गुन, वैशाख, अग्रहायण, श्रावण, कार्त्तिक और आषाढके महीनेमें, मङ्गल और रविवारको छोडकर अन्य वारोंमे द्वितीया, द्वादशी, सप्तमी, त्रयोदशी, अष्टमी और तृतीया तिथिमे, सूर्य्य शुद्ध होनेसे अपनी जन्म-लग्नमे, और ग्राम्य और स्थिर लग्नमे, पूर्वाफलगुनी पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा, मघा, भरणी, पुनर्वसु, ज्येष्ठा, कृत्तिका, विशाखा और आश्लेषा इन नक्षत्रोंको छोडकर अन्य नक्षत्रोंमे, चन्द्रमा और तारा शुद्ध होनेसे शुभ योगमे घर बनवाना चाहिये ॥ ८२ ॥

अथ नक्षत्रशुद्ध्या वासगृहनिर्णयः ।

कृत्तिकाद्यास्तु पूर्वादौ सप्तसप्तोदिताः क्रमात् ।
यद्दिश्यं यस्य नक्षत्रं तस्य तत्र गृहं शुभम् ॥ ८३ ॥ (क)

(१) वचनान्तरैकवाक्यत्वाद् युग्मोदये स्थिर लग्ने इत्यर्थः ।

(क) स्वनक्षत्र क्रमेण पूर्वादिषु चतुर्दिक्षु गृहस्थानमाह–कृत्तिकेति । पूर्वादौ दिशि कृत्तिकाद्याः–

अर्थ–अब नक्षत्रशुद्धिद्वारा वासस्थान घरका स्थान निर्णय करते हैं–दीपिकामें लिखा है कि, कृत्तिकादि सात नक्षत्र पूर्वादि चारों दिशामें रक्खे, घरके मालिकका जन्मनक्षत्र जिस दिशामें पडे उसी दिशामें घर बनवानेसे शुभदायक होता है ॥ ८३ ॥

अथ नागशुद्ध्या गृहस्थाननिर्णयः ।

पूर्वादिषु शिरः कृत्वा नागः शेतेत्रिभिस्त्रिभिः ।
भाद्राद्यैर्वामपार्श्वेन तस्य क्रोडे गृहं शुभम् ॥ ८४ ॥ (ख)

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ–नागशुद्धिद्वारा घरका स्थान कहते हैं दीपिकामें लिखा है कि, भाद्रादिकरके तीन ३ महीनेमें पूर्वादिक्रमसे मस्तक रखकर नाग वामपार्श्वमें शयन करता है इस नागके वामपार्श्वमें (क्रोडदेशमे) घर बनवानेसे शुभदायक होताहै ॥ ८४ ॥

अपिच ।

वास्तुप्रमाणेन तु गात्रकेण वामेन शेते खलु नित्यकालम् ।
त्रिभिस्तु मासैः परिवृत्य भूमौ तं वास्तुनागं प्रवदन्ति सिद्धाः ८५

इति ज्योतिस्तत्वे ।

सप्त सप्त ताराः क्रमादुदिताः तत्र च याद्दिश्यं यद्दिक्स्थितं यस्य नक्षत्रं स्यात्तस्य तत्र दिशि गृहं शुभं स्यात्तत्र च विशेषमाह–गर्गः–"ध्वजं पूर्वगृहं प्रोक्तमाग्नेय्यां धूममुच्यते । सिंहन्तु दक्षिणागारं नैर्ऋत्यां स्वगृहं तथा । वृषस्तु पश्चिमागारं वायव्यां खरमेव च । उत्तरन्तु गजागार ध्वाङ्क्षमैशानकं गृहम् " राजमार्तण्डेऽप्येवम् । तथा पशुपतिदीपिकायाम्–"गृहमष्टविधं प्रोक्तं पूर्वादिषु यथाक्रमम् । ध्वजो धूमश्च सिंहश्च श्वा वृषः खर एव च । गजो ध्वाङ्क्षस्तथैतानि स्थानानि क्रमतो विदुः " एतेन राशिचक्रवद्भागं कृत्वा पूर्वादितो ध्वजादिस्थानं प्रकल्प्य नैर्ऋत्यैशानयोराग्नेयवायव्ययोश्च मध्ये दण्डद्वयं दत्वा स्पृष्टमध्यभागं दण्डस्पर्शनञ्च विहाय चतुर्दिक्षु गृहं कार्य्यम् । तथाच राजमार्तण्डे–"न कोणेषु गृहं कुर्य्यान्न मध्ये नान्त एव च । तथा नवपदे भागे ज्ञात्वा गेहञ्च कारयेत्" । ध्वजादिस्थानानां फलमाहगर्गः– "ध्वजे विभूतिर्म्मरणञ्च धूमे सिंहे जयः श्वा च करोत्यनर्थम् । भोगो वृषे रोग धनक्षयौ खरे पुष्टिर्गजे काकादे च दुःखम् ।

(ख) नागशुद्ध्या गृहस्थानमाह–पूर्वादिष्विति । भाद्राद्यैस्त्रिभिस्त्रिभिर्मासैः पूर्वादिषु चतुर्दिक्षु शिरः कृत्वा वामपार्श्वेन नागः शेते भाद्रादिमासत्रये पूर्वशिरा अग्निकोणाभिमुखः दक्षिणक्रोडः उत्तर पृष्ठः पश्चिमपुच्छः शेते तदा अस्यक्रोडे दक्षिणे सिंहस्थाने शुभं गृहमिति यर्थः एवमन्यत्रापि दिक्षु बोद्धव्यम् । यथा पशुपतिदीपिकायाम् । "प्राच्यां दिशि शिरोन्यस्य नागो भाद्रपदादिषु । याम्या मार्गादिमासेषु वारुण्या फाल्गुनादिषु । कौबेर्यां वामपार्श्वेन शेते ज्येष्ठादिषु त्रिषु । क्रोडे तु क्रियते नित्यं हिताय सदनं बुधैः । न शिरः पृष्ठपुच्छे तु आत्मनः शुभमिच्छता " तथा गर्गः "भाद्रादिषु च मासेषु कर्तव्यं सिंहमन्दिरम् । वृषागारं तु कर्तव्य मार्गशीर्षादिषु त्रिषु । फाल्गुनादित्रिषु गजागारन्तु कारयेत् । ध्वजागारन्तु कर्त्तव्यं ज्येष्ठमासादिषु त्रिषु " इति ।

अर्थ-ज्योतिषतत्वमें लिखाहै कि, वास्तुपरिमित गात्रविशिष्ट नाग सर्वदा वामपार्श्वमें सोता है, तीन २ महीनेके बाद उक्त वास्तुनागका मस्तक क्रमसे पूर्वादि दिशामें होता है, सिद्धगणोने इसप्रकार कहा है ॥ ८५ ॥

अन्यच्च ।

भाद्रादिके वासवदिक्छिराः स्या-
न्मार्गादिकेषु त्रिषु याम्यमूर्धा ॥
प्रत्यक्छिराः स्यात्खलु फाल्गुनादौ ।
ज्येष्ठादिकौबेरशिराः स नागः ॥ ८६ ॥

इति ज्योतिस्तत्वे ।

अर्थ-ज्योतिषतत्वमे लिखा है कि, भाद्रादि तीन महीनमें वास्तुनाग पूर्वदिशामें मस्त रखकर सोते हैं, इसीप्रकार अग्रहायणादि तीन महीनेमे वास्तुनाग दक्षिणमे शिर रखकर सोते है, फाल्गुनादि तीन महीनेमें पश्चिममे शिर रखकर वास्तुनाग सोते हैं और ज्येष्ठादि तीन महीनेमे उत्तर दिशामे शिर रखकर वास्तुनाग सोते हैं ॥ ८६ ॥

अथ नागशीर्षादौ गृहकरणफलम् ।

स्वामिनो हि भवेन्मृत्युर्नागमूर्ध्नि गृहे कृते ।
पुत्रस्य च कलत्रस्य नागपृष्ठे गृहे कृते ।
पुच्छे चार्थक्षयं विद्यात्क्रोडे गृहे समृद्धिवान् ॥ ८६ ॥

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ-अब नागके शिरादिमे घर बनवानेका फल कहते हैं, दीपिकामे लिखा है कि, नागके शिरमे घर बनवानेसे घरके मालिककी मृत्यु होती है, इसीप्रकार पृष्ठ (पीठ) में घर बनवानेसे पुत्र और स्त्रीकी मृत्यु होती है, पुच्छदेशमें घर बनवानेसे अर्थकी हानि होती है और नागके क्रोडदेशमे घर बनवानेसे घरका मालिक समृद्धिशाली होता है ॥ ८७ ॥

अपिच ।

मूर्ध्नि खाते भवेन्मृत्युः पृष्ठे स्यात्सुतभार्ययोः ।
जघनेऽर्थक्षयं विद्यात्सर्वसम्पत्तथोदरे ॥ ८८ ॥

इति ज्योतिस्तत्वे ।

अर्थ-ज्योतिषतत्वमे लिखा है कि, वास्तुनागके शिरमे मकान बनानेसें घरके मालिककी मृत्यु होती है, इसी प्रकार पृष्ठ (पीठ) में घर बनानेसे पुत्र और स्त्रीकी

मृत्यु होती है, जाँघमे बनानेसे धनकी हानि होती है और क्रोडदेशमे घर बनानेसे सर्व सम्पद् प्राप्त होती है ॥ ८७ ॥

अथैकशालादिव्यवस्था ।

एकं नागोरुसंशुद्धौ द्वे चेद्दक्षिणपश्चिमे ।
त्रिशालं पूर्वतो हीनं कार्यं वा सौम्यवर्जितम् ॥ ८९ ॥
केचिद्दक्षिणभागे तु वदन्त्येकं गृहं बुधाः ॥ ९० ॥ (क)

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ–अब एकसे आदि लेकर घर बनवानेको कहते हैं दीपिकामे लिखा है कि वास्तुभूमिमें नवीन एक घर बनाना हो तो नाग और नक्षत्र शुद्धिमे बनावै, दो घर बनाना होतो वास्तुके दक्षिण और पश्चिम भागमें बनावै, तीन घर बनाना हो तो पूर्व दिशाको अथवा उत्तर दिशाको परित्याग करके घर बनाना चाहिये, किसी २ आचार्यका मत है कि, जो एक मात्र घर बनाना हो तो वास्तुके दक्षिणांशमे ही बनाना चाहिये ॥ ८९ ॥ ९० ॥

अपिच ।

ऐश्यान्यां देवशालास्यादाग्नेय्याश्च महानसम् ।
अवस्करन्तु नैर्ऋत्यां वायव्यां कोशमन्दिरम् ॥ ९१ ॥

अर्थ–ज्योतिषतत्वमें लिखा है कि, ईशानकोणमे देवगृहको बनावै, इसी मत अग्निकोणमें रसोईका स्थान बनावै, नैर्ऋत कोणमें मलमूत्रादि परित्याग करने स्थान बनावै और वायुकोणमें धन रखनेका स्थान बनाना चाहिये ॥ ९१ ॥

अन्यच्च ।

कर्ककुम्भहरिनक्रगतेऽर्के पूर्वपश्चिममुखानि गृहाणि ।
तौलिमेषवृषवृश्चिकयाते दक्षिणोत्तरमुखानि कुर्यात् ॥ ९२

(क) एकादिगृहव्यवस्थामाह–एकमिति । एक गृहं नागोडुशुद्धौ यस्या दिशि स्वकीयजन्मनक्षत्रं तद्दिशि नागोडुशुद्धिः कर्त्तव्या नास्त्यत्र दिङ्नियमः । यदि द्वे गृहे स्याता तदा दक्षिणपश्चिमयोरेकत्रकर्त्तव्ये नान्यत्र । किन्त्वत्रापि नागोडुशुद्धौ मुख्यं गृह कर्त्तव्यमित्यर्थः । त्रिशाल पूर्वतो हीनम् उत्तरतो वा हीनं कर्त्तव्यं न कदापि दक्षिण पश्चिमहीनं कर्त्तव्यमित्यर्थ । "याम्यहीनं त्रिशालञ्च वित्तनाशकर भवेत् । अवस्करञ्च पश्चाहीनं वैरकर मतम्" [illegible] राजमार्त्तण्डे–"ऐशान्यां देवानिलयश्चाग्नेयाञ्च महानसम् । अवस्करन्तु नैर्ऋत्यां वायव्यां कोशमन्दिरम्" महानसं पाकशाला, अवस्करं मलमूत्रपुरीषोत्सर्गशाला–इति ।

अन्यथा यदि करोति दुर्म्मतिर्व्याधिशोकधनहानिमश्नुते ।
मीनचापमिथुनाङ्गनागते कारयेन्न गृहमेव भास्करे ॥ ९३ ॥

इति भोजवचनम् ।

अर्थ-राजा भोजने कहा है कि, सौर श्रावण, फाल्गुन, भाद्रपद और माघके महीनेमें पूर्व पश्चिमाभिमुखका घर बनावै, और कार्तिक, वैशाख, ज्येष्ठ, अग्रहायणके महीनेमे दक्षिण और उत्तरमुखका मकान बनवाना चाहिये, घरका मालिक यदि बुद्धिहीन होकर इसके अन्यथा बनावै तो उसको रोग, शोक और धनकी हानि होती है, सौर चैत्र, पौष, आषाढ और आश्विनके महीनेमे कभी भी घरको न बनवावै ॥ ९२ ॥ ९३ ॥

अपरञ्च ।

न प्रधानं गृहारम्भं कुर्यात्पौषे शुचावपि ।
यदि कुर्यात्सोऽचिरेण महतीमापदं व्रजेत् ॥ ९४ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-ज्योतिषतत्वमे लिखा है कि, प्रधान घर बनानेमे पौष और चैत्र महीनेको छोड़देवे जो मनुष्य पौष और चैत्रके महीनेमे घर बनवाते हैं उनको शीघ्रही आपदायें घेरलेती हैं ॥ ९४ ॥

प्रकारान्तरञ्च ।

निषिद्धेऽपि हि काले तु स्वानुकूले शुभे दिने ।
तृणवस्त्रगृहारम्भे मासदोषो न विद्यते ॥ ९५ ॥

इति महाभारते ।

अर्थ-महाभारतमे लिखा है कि, निषिद्ध कालमें यदि शुभदिन होय और उसमें सूर्य्य चन्द्रमादि अनुकूल होय तब तृण और वस्त्र घर बनवानेमें महीनेका दोष ग्राह्य नही होता है ॥ ९५ ॥

अपिच ।

पूर्णिमातोऽष्टमी यावत्पूर्वास्यं वर्ज्जयेद्गृहम् ।
उत्तरास्यं न कुर्वीत नवम्यादिचतुर्दशीम् ॥ ९६ ॥
अमावस्याष्टमीमध्ये पश्चिमास्यं विवर्जयेत् ॥
नवमीतश्च याम्यास्यं यावच्छुक्लचतुर्दशीम् ॥ ९७ ॥

इति राजमार्तण्डे ।

अर्थ–राजमार्त्तण्डमे लिखा है कि, पूर्णिमासे कृष्णपक्षकी अष्टमीतक पूर्वास्य घर न बनवाना चाहिये इसीप्रकार कृष्णपक्षकी नवमीसे कृष्णपक्षकी चतुर्दशीतक उत्तरास्य घरका निषेध है और अमावास्यासे शुक्लपक्षकी अष्टमीतक पश्चिमास्य घरको न बनवावै और शुक्लपक्षकी नवमीसे शुक्लपक्षकी चतुर्दशीतक दक्षिणास्य गृह बनवानेका निषेध है ॥ ९६॥९७

अथ देवगृहारम्भे विशेषः ।

यस्य देवस्य यः कालः प्रतिष्ठाध्वजरोपणे ।
गर्त्तापूरशिलान्यासे शुभदस्तस्य पूजितः ॥ ९८ ॥ (क)

इति देवीपुराणे ।

अर्थ–अब देवगृह (ठाकुरद्वारा) बनवानेका मुहूर्त्त कहते हैं, देवीपुराणमे लिखा है कि, जिस देवताकी प्रतिष्ठा और ध्वजारोपणके विषयमें जो काल विहित है उस देवताके मान्दिर बनवानेमें वही काल शुभदायक होता है ॥ ९८ ॥

अपिच ।

चैत्रेऽथ फाल्गुने वापि ज्येष्ठे वा माधवेऽपि वा ।
माघे वा सर्वदेवानां प्रतिष्ठा शुभदा भवेत् ॥ ९९ ॥ (ख)

इति मत्स्यपुराणे ।

अर्थ–मत्स्यपुराणमें लिखा है कि, चैत्र, फाल्गुन, वैशाख, और माघ इन महीनोंमे सब देवताओंकी प्रतिष्ठा शुभदायक होती है ॥ ९९ ॥

अन्यच्च ।

महिषासुरहन्त्र्याश्च प्रतिष्ठा दक्षिणायने ॥ २०० ॥

इति देवीपुराणे ।

अर्थ–देवीपुराणमें लिखा है कि, महिषासुरनाशिनी भगवती दुर्गादेवीकी प्रतिष्ठा दक्षिणायनमें करनी चाहिये ॥ २०० ॥

अपरञ्च ।

गृहेषु यो विधिः प्रोक्तो विनिवेशप्रवेशयोः ॥
स एव विदुषा कार्यो देवतायतनेष्वपि ॥ १ ॥ (ग)

इति कृत्यचिन्तामणौ ।

(क) यस्य देवस्य प्रतिष्ठाध्वजरोपणे यः कालः शुभदस्तस्य गर्त्तापूरशिलान्यासे स काल पूजित इत्यर्थः ।

(ख) प्रतिष्ठासमुच्चये–'ज्येष्ठाषाढकयोर्वापि' इत्युक्तेराषाढे. दक्षिणायनेऽपि दुर्गाप्रतिष्ठाऽभिहिता ।

(ग) एतत्तु मासव्यतिरिक्तशुभचन्द्रादिविषयम् । अन्यथा प्रागुक्तविरोधापत्तेरिति ज्योतिस्तत्त्वे स्मार्त्तेनाभिहितम् ।

अर्थ—कृत्यचिन्तामणिमें लिखा है कि, पूर्वमें जो सब विषय घर बनवानेमें कहे हैं उनमेंसे महीनोंको छोडकर शुभ चन्द्रादि और नक्षत्रप्रभृति सभी देवमन्दिरके बनवानेमें प्रशस्त हैं ॥ १ ॥

अथ तृणकाष्ठादिसञ्चयनिषेधः।

छेदनं संग्रहश्चैव काष्ठादीनां न कारयेत्।
श्रवणादौ बुधः षट्के न गच्छेद्दक्षिणां दिशम् ॥
नाहरेत्तृणकाष्ठानि न कुर्याद्दृढबन्धनम् ॥ २ ॥ (घ)

इति दीपिकायाम्।

अर्थ—अब घरोंके लिये तृणकाष्ठादिसञ्चय करनेका निषेध कहते हैं, दीपिकामें लिखा है कि, श्रवणसे आदि लेकर छः नक्षत्रोंमें पण्डितगण घर बनानेके अर्थ काष्ठादिका छेदन वा ग्रहण न करें और उक्त छः नक्षत्रोंमें दक्षिणको जाना भी न चाहिये विशेष करके इन सब नक्षत्रोंमें तृणआहरण और दृढ बन्धनको सर्वदा परित्याग करै ॥ २ ॥

अपिच।

अग्निदाहो भयं शोको राजपीडा धनक्षयः।
संग्रहे तृणकाष्ठानां कृते द्रविणपञ्चके ॥ ३ ॥

अर्थ—धनिष्ठासे आदि लेकर पांच नक्षत्रोंमें तृणकाष्ठादिका संग्रह करनेसे वा दृढ बन्धन करनेसे अग्निदाह, भय, शोक, राजपीडा और धनका नाश होता है ॥ ३ ॥

अथ वास्तुग्रहकरणकथनम्।

ध्वजो धूमश्च सिंहश्च श्वा वृषः खर एव च।
गजः काकपदश्चैव स्थानान्यष्टौ च वास्तुनि ॥ ४ ॥

इति दीपिकायाम्।

अर्थ—अब वास्तुग्रहकरण कहते हैं दीपिकामें लिखा है कि, ध्वजा, धूम्र, सिंह, श्वान वृष, खर, गज और काकपद इन आठोंको वास्तुका स्थान कहते हैं ॥ ४ ॥

(घ) श्रवणादिषट्के काष्ठादिछेदननिषेधमाह—छेदनमिति। काष्ठादीनां तृणादीनां छेदनं संग्रहं समानयनञ्च श्रवणादौ रेवत्यन्ते नक्षत्रषट्के न कारयेत् तथा श्रवणादिषट्के दक्षिणदिशं न गच्छेत्। तथा राजमार्त्तण्डे—"छेदनं तृणकाष्ठानां सदतञ्च विशेषतः। भूतिकामो न कुर्वीत षट्केन श्रवणादिना" अत्रोत्तराषाढाशेषपादतो दोष इति लोकाचारस्तत्रेयं युक्तिः उत्तराषाढायाः शेषपादे श्रवणतारा तिष्ठति तत्सम्पर्कात्तत्र दोष इति। यथा सूर्य्यसिद्धान्ते तारानिर्णयाध्याये। "आप्यस्यैवाभिजित्प्रान्ते वैश्वान्ते श्रवणस्थित." इति। "वल्मीको मूषिको नागो व्याघ्रचौराग्निज भयम्। रेवत्यां निर्मिता लङ्का तेन दग्धा हनूमता" इति सारसंग्रहे। "वह्नितस्कराराजानो मूषिको मशकः फणी" इति सत्कृत्यमुक्तावल्याम्॥ इति।

अपिच ।

चतुरस्रं कृतं वास्तु सूत्राभ्यां तीर्यगूर्द्ध्वतः ।
कोणसूत्रद्वयेनापि विभजेदष्टधा ततः ॥
ईशानतो ध्वजाद्याः स्युस्तत्र वेश्मफलं यथा ॥ ५ ॥

अर्थ–वास्तुभूमिको चतुरस्र करके तिर्य्यक् और ऊर्ध्व भावमें दो रेखा खीचे, अनन्तर दो कोणके अंकित करनेसेही आठभागमें विभक्त होजाताहै, अनन्तर ईशान कोणसे ध्वजादि गिनना चाहिये, फलको नीचे लिखते हैं ॥ ५ ॥

अन्यच्च ।

ध्वजे विभूतिर्मरणञ्च धूम्रे सिंहे यशः श्वानकरोत्यनर्थम् ।
वृषे च भोगी खरदेहपीडा सिद्धिर्गजे काकपदे च मृत्युः ॥६॥

अर्थ–अब ध्वजादिका फल कहते हैं । ध्वजाके स्थानमें घर बनानेसे ऐश्वर्य प्राप्त होता है इसीप्रकार धूम्रस्थानमें बनानेसे मृत्यु होती है, सिंहमें बनानेसे यशका लाभ होता है, श्वानमें बनानेसे अनर्थ होताहै, वृषमें बनानेसे भोगी होता है, खरमें बनानेसे देहको पीडा होतीहै, गजमें बनानेसे सिद्धि प्राप्त होती है और काकपदमें मकान बनानेसे घरके मालिककी मृत्यु होतीहै ॥ ६ ॥

अपरञ्च ।

पूर्वद्वारं गवां स्थानं कुर्याद्वारं तु पश्चिमम् ।
गजे सिंहे न कुर्वीत गृहस्थः पशुवृद्धये ॥ ७ ॥

अर्थ–गोशालाका द्वार पूर्वमें वा पश्चिममें करना चाहिये, पशुवृद्धिकी इच्छा करनेवाले गृहस्थ गजमें वा सिंहमें पशुओंका घर न बनावे ॥ ७ ॥

प्रकारान्तरञ्च ।

वास्तु षोड़शविधं तत्रायतादिचतुष्कं प्रशस्तम् ।
चक्रादिद्वादशप्रकारं निषिद्धम् ॥ ८ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे हृदयानन्दः ।

अर्थ–ज्योतिःसारसंग्रहनामक ग्रन्थमें हृदयानन्दने कहाहै कि वास्तु सोलह प्रकारके हैं तिनके मध्यमें आयतादि चार प्रकारके प्रशस्त हैं और चक्रादि द्वादश प्रकारके निषिद्ध है ॥ ८ ॥

अपिच।

आयते सिद्धयः सर्वाश्चतुरस्रे धनागमः।
भद्रासने कृतार्थत्वं वृत्ते पुष्टिविवर्द्धनम् ॥ ९ ॥

अर्थ–आयतवास्तुमे सर्वार्थ सिद्धि होती है. इसीप्रकार चतुरस्र वास्तुमे धन प्राप्त होता है, भद्रासनमें कृतार्थता और वृत्त वास्तुमें पुष्टिकी वृद्धि होतीहै ॥ ९ ॥

अथायतादिलक्षणम्।

आयते मुनिदिक्प्रोक्तं चतुरस्रे नवाष्टकम्।
तिथिस्त्रयोदशं वृत्ते भद्रे रुद्रदिवाकरे ॥ २१० ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे।

अर्थ–अब आयतादि वास्तुके लक्षण कहते हैं, ज्योतिःसारसंग्रहमे लिखाहै कि दश दण्ड (क) दीर्घमे सात दण्ड प्रस्थमें जो भूमि होय उसको आयत कहतेहैं, नौ दण्ड दीर्घमें और आठ दण्ड प्रस्थमे जो भूमि होय उसको चतुरस्र कहते है, पांचदण्ड दीर्घ और त्रयोदश दण्ड प्रस्थको वृत्त कहतेहै और द्वादश दण्ड परिमित दीर्घ और एकादश दण्डपरिमित प्रस्थ इसप्रकारकी भूमिको भद्रासन कहतेहैं ॥२१० ॥

अथ वास्तुनक्षत्रकथनम्।

प्रस्तारदैर्घ्ययोर्म्मानं (ख) त्रिघ्नं चैकेन वर्जितम्।
हरेद्वै सप्तविंशेन शेषमृक्षन्तु वास्तुनः ॥ ११ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे।

अर्थ–आठ हस्त परिमाण दण्ड द्वारा वास्तुभूमिको नापनेसे दीर्घ और प्रस्थमें जितने दण्डहोय उनको मिलाकर तिगुना करनेसे जितने संख्यक अंक होय उन अंकोको तीन भागमे विभक्त करै और तीन भागमे से एक भागको छोड देवै। अनन्तर शेष दोनों भागोंमे जितने अंक होय उनको सत्ताइससे भाग करनेसे ही वास्तुके नक्षत्र जाने जाते है ॥ ११ ॥

अथ वास्तुराशिकथनम्। (×)

अश्विन्यादित्रयंमेषे सिंहे प्रोक्तं मघात्रयम्।
मूलादित्रितयं चापे द्वौ द्वौ तु नवराशिषु ॥ १२ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे।

(क) अष्टहस्तदण्डेन गृहमापनम्। यथा–"वसुहस्तो भवेद्दण्डो वाटा तेनैव मापयेत्। चतुर्हस्तेन वा स्वल्पा मापयेदिच्छया बुधः" इति ज्योतिःसारसंग्रहे हृदयानन्द.।

(ख) मानं दण्डमानमित्यर्थ.।

(+) नक्षत्रानरोधेन राशितः कन्यावरयोरिव गृहपुरुषयोर्योटकशुद्धिर्ज्ञेया। इति ज्योतिःसारसं- [-ग्रहे हृदयानन्दः।

अर्थ-अब वास्तुभूमिकी राशिका निर्णय करते है ज्योतिःसारसंग्रह नामक ग्रन्थमें लिखा है कि, अश्विनी, भरणी और कृत्तिका इन नक्षत्रोंमें मेष राशि होती है, मघा, पूर्वाफाल्गुनी और उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रमें सिंह राशि होती है, मूल, पूर्वाषाढा और उत्तराषाढा, इन नक्षत्रोंमे धन राशि होती है, और शेष नौ राशिये दो दो नक्षत्रोंमें होती हैं, वास्तुभूमिकी राशि और वास्तुके मालिककी राशिसे " कन्या और वरकी राशिसे विवाहप्रकरणमें जिस प्रकार योटक शुद्धि कही है " उसी प्रकार देखना चाहिये ॥ १२ ॥

अथ गृहारम्भे लोकपालादिपूजा ।

बलिभिःपुष्पधूपाद्यैर्लोकपालानथ ग्रहान् ।
पूजयेत्क्षेत्रपालांश्च क्रूरभूतांश्च बाह्यतः ॥ १३ ॥ (१)

अर्थ-घर बनवानेके समय लोकपालादिकी पूजा कहते हैं पूजोपहार पुष्प और धूपादि द्वारा लोकपाल नवग्रह और क्षेत्रपाल गणकी पूजा करे और घरके बहिर्देशमे क्रूरभूतगणोंकी पूजा करनी चाहिये ॥ १३ ॥

अथ गृहारम्भे ब्रह्मादिपूजा ।

कुशपुष्पैस्तथा लाजैस्तिलतण्डुलमिश्रितैः ।
ब्राह्मणं वास्तुपुरुषं तद्देशस्थाश्च देवताः ॥ १४ ॥

अर्थ-ब्रह्मा, वास्तुपुरुष और उस देशमें वास करनेवाले समस्त देवताओंक पुष्प, तिल और तिल तण्डुल मिलाकर खैरसे पूजा करै ॥ १४ ॥

---

(१) गृहारम्भकाले लोकपालादिपूजां श्लोकद्वयेनाह-बलिभिरिति । कुशपुष्पैरिति च पुष्पधूपाद्यैर्बलिभिः पूजोपहारैरित्यर्थः । बाह्यतः गृहस्थानबाह्ये क्रूरभूतान् पूजयेत् । तद्देशस्थास्तद्देशग्रामेष्वधिपदेवता इत्यर्थः । शेषं सुगमम् । अत्र विशेषमाह-गर्गः-"पूर्णकुम्भं समारोप्य चतपल्लवसंयुतम् । गन्धपुष्पादिभिर्लक्ष्मीं श्रीसूक्तेन प्रपूजयेत् । इन्द्रादिलोकपालांश्च स्वस्वदिक्षु वटे यजेत् । अष्टौ वसूंश्च संपूज्य मातृकाश्च प्रपूजयेत् । अनन्तं वास्तुपुरुषं कूर्म्मं पृथ्वीं प्रहासन । वासुकिं तक्षकं चैव कर्कटं कुलिर तथा । पद्मश्च शङ्खचूडश्च महापद्मं धनञ्जयम् । पूजयेद्गन्धपुष्पाद्यैर्नागानपि प्रयत्नतः । हस्तमात्रमिते गर्त्ते सपद्म सहिरण्यकम् । वास्तोष्पतेतिमन्त्रेण दद्यादर्घ्यं नदाम्बुभिः । ततः पृथिव्यै कूर्म्माय अनन्ताय पृथक् पृथक् । ओं वसुधे हेमगर्भासि शेषस्योपरिशायिनि । तव पुत्रे ददाम्येतद्गृहाणार्घ्यं धरित्रि मे । ओं सर्व्वलक्षणसम्पन्न सर्व्वेश कमठाकृते । स्थानं देहि गृहं कर्तुं विष्णुरूपिन्नमोऽस्तु ते । ततोऽनन्ताय । ओं हिमकुन्द मृणालाभ नागानन्त महाफणिन् । स्थानं देहि गृहं कर्तुं गृहाणार्घ्यं नमो नमः" ॥

पूर्वादिचतुर्दिक्षु गृहबन्धध्रुवाः।

पूर्वादिषु चतुर्दिक्षु वाममेकादयो ध्रुवाः।
प्रस्तारस्याथ दैर्घ्यस्य तत्रैवैकसमन्विताः॥ १५॥ (क)

अर्थ–अब पूर्वादिचारो दिशाओंके गृहबन्धके ध्रुवांकको कहते हैं वामावर्त्तसे क्रमानुसार मस्थका परिमाण पूर्वादि चारों दिशाओंमे एकादि अंक ध्रुवांक होताहै अर्थात् पूर्वमें एक, उत्तरमे दो, पश्चिममे तीन और दक्षिणमे चार और दीर्घका परिमाण पूर्वादिक्रमसे वामावर्त्तमे एकाधिक एकादि अङ्क ध्रुवांक होता है अर्थात् पूर्वमें दो, उत्तरमे तीन, पश्चिममें चार और दक्षिणमें पाच॥ १५॥

अथवायव्यादिचतुष्कोणे गृहबन्धध्रुवकथनम्।

वामं वातादिकोणेषु ध्रुवाः प्रस्तारदैर्घ्ययोः।
एकाद्याः स्वेच्छया (×) सर्वे कार्य्याः वेदसमन्विताः॥ १६॥ (ख)

अर्थ–वामावर्त्तमें वायव्यादि चारो कोनोमे मस्थके परिमाणमे एकादि अक और दीर्घके परिमाणमे एकादि अङ्कके योग करनेसे जो परिमाण होताहै उसकोही ध्रुवाङ्क कहते है॥ १६॥

अथ गृहाणामायकथनम्।

व्यासेन गुणिते दैर्घ्ये वसुभिर्विहृते ततः।
यच्छेषमायं तद्विद्यात्पूर्वादिभवनाष्टके॥ १७॥ (ग)

अर्थ–अब घरकी आयका ज्ञान कहतेहै, मस्थको हस्तपरिमित अंकद्वारा दीर्घके हस्त परिमित अंकको गुणकरके आठसे भाग करनेमें जो अंक शेष बचें उनकोही पूर्वादि आठों कोनोंकी आय जानना चाहिये॥ १७॥

(क) गृहबन्धनस्य व्यवस्थामाह–पूर्वादिष्विति। पूर्वादिषु चतुर्दिक्षु वामं विपरीतेन पूर्वोत्तरक्रमेणैकादयः प्रस्तारस्य ध्रुवा. एकं पूर्वे द्वावुत्तरे त्रयः पश्चिमाया चत्वारो दक्षिणस्याम्। अथ दैर्घ्यस्य ध्रुवास्त एव पूर्वोत्तरक्रमेणैकादयः एकयुक्ता. द्वौ पूर्वे त्रयः उत्तरे चत्वारः पश्चिमे पञ्च दक्षिणे। इति।

(×) उभयतः स्वेच्छयानुरूपतश्चतुःसख्यादानेन ध्रुवशुद्धिश्च इति दीपिकायां मूलम्।

(ख) वायव्यादिकोणेषु गृहबन्धस्य व्यवस्थामाह वाममिति। वातादिकोणेषु वामं विपरीतेन वायुनैर्ऋताग्नीशानक्रमेण प्रस्तारदैर्घ्ययोस्त एवोक्ता एकाद्या ध्रुवाः प्रस्तारे एको द्वौ त्रयश्चत्वारः दैर्घ्ये एकसमन्विता द्वौ त्रयश्चत्वार. पञ्च इत्यर्थः। अथ सर्वे एवाष्टगृहध्रुवाः प्रस्तारे दैर्घ्ये च स्वेच्छया वेदसमन्विता. कार्य्याः युक्त्यनुरूपं यावद्भिर्वा गृहाः शोभन्ते तावद्भिश्चतुर्भिर्युक्ता ध्रुवाः कार्य्या इत्यर्थः।

(ग) गृहायज्ञानमाह व्यासेनेति। व्यासेन प्रस्तारहस्तप्रमाणेन दैर्घ्ये दैर्घ्यहस्तप्रमाणे पूरितेऽष्टाभिर्हृते सति यच्छेषं तिष्ठति तदायं विद्यात्। यथा पशुपतिदीपिकायाम् " आयामेन च ये हस्ताः प्रस्तारेण च तान्गुणेत्। अष्टाभिर्भागमाहृत्य शेषमायं प्रकल्पयेत्।

अथ गृहाणां सामान्यनक्षत्रकथनम् ।

तस्माद्व्यासगुणाद्दैर्घ्यात्पुनर्म्मङ्गलताडितात् ।
त्रिघनेन हृताच्छेषं नक्षत्रं तस्य वेश्मनः ॥ १८ ॥ (घ)

अर्थ–अब घरके सामान्य नक्षत्रोंको कहतेहैं । मस्थांकद्वारा गुणित दीर्घ परिमित अंकको पुनः आठसे पूरण करै, अनन्तर सत्ताईससे भाग करनेमे जो अङ्क शेष बचैं उनकोही उस घरके नक्षत्र जानना चाहिये ॥ १८ ॥

अथ गृहाणामायज्ञानमायव्ययफलञ्च ।

वसुशिष्टं यदा जातं नक्षत्रं भवतिव्ययः ।
व्ययाधिकं न कर्त्तव्यं गृहमायाधिकं शुभम् ॥ १९ ॥ (ङ)

अर्थ–पूर्वोक्तवचनके अनुसार घरके नक्षत्र निर्णय करके उनको आठसे भाग करनेमें जो अङ्क शेष बचैं उनको व्यय कहते है दीर्घ और मस्थके परिमित अङ्कोको मिलानेसे जो अङ्क हों उनको पिण्ड कहतेहैं उक्त पिण्डाङ्कको आठसे गुणकरके बारहसे भाग करनेमें जो अंक शेष बचैं उनको आय कहतेहैं, आयके अंकोसे व्ययके अंक अधिक होनेसे घरको न बनवावै और यदि व्ययके अंकोसे आयाङ्क अधिक होय तभी घर बनवाना चाहिये ॥ १९ ॥

(घ) गृहस्य नक्षत्रज्ञानमाह तस्मादिति । तस्मादुक्ताद्व्यासप्रमाणपूरितात् दैर्घ्यप्रमाणात् पुनरपि मङ्गलेनाष्टभिस्ताडितात्पूरितात् त्रिघ्नेन सप्तविंशत्या हृतात् यच्छेषं स्यात्तस्य वेश्मनो नक्षत्र स्यात् यथा राजमार्तण्डे–" पिण्डमष्टगुणं कृत्वा त्रिघनेन विभाजयेत् । शेष नक्षत्रमादिष्ट कृत्तिकादिव्यवस्थया " पिण्डमुक्तं तत्रैव " आयामसंगुणिताविस्तारहस्ताः पिण्डम् " इति ।

(ङ) गृहाणां व्ययज्ञानमाह वस्विति । तस्माद् व्यासगुणिताादिति वचनोक्तं त्रिघनेन हृताच्छेषमङ्कं यन्नक्षत्रसञ्ज्ञकं आयातं तद्वसुशिष्टं अष्टहृतशेषं व्यय. स्यात् । यथा पशुपतिदीपिकायाम् । " पिण्डमष्टगणं कृत्वा त्रिघनेन विभाजयेत् । शेष नक्षत्रमुद्दिष्टमष्टाभिर्हरणाद्व्यय " इति । ततश्च व्ययाधिकं न कर्त्तव्यम् । आयाधिकन्तु शुभ समे सम् " इति । केनचितु आयादिज्ञानप्रकारान्तरेणोक्तम् । यथा "गृहभूमिसमाहतपिण्डपदं वसुलोचनरन्ध्रगजैर्गुणितम् । रविभुवरत्रिंशयोगहृतं भवनव्यवस्थिति ऋक्षपदम् " अस्यार्थ –गृहभूमिप्रमाणस्य समाहत प्रस्तारदैर्घ्याभ्याम् अन्योऽन्येन पूरित पिण्डपदं पिण्डसञ्ज्ञकम् । यथा राजमार्त्तण्डे–आयामसगुणितविस्तारहस्त' पिण्डमिति तच्च पिण्डे पृथक्पृथक् स्थानचतुष्टये कृत्वा वसुलोचनरन्ध्रगजैर्गुणित यथाक्रम द्वादशमतत्रिंशत् सप्तविंशतिभिर्हृतशेषं गृहस्यायव्ययस्थितिनक्षत्राणि स्युः । यथाक्रमम । अन्येऽस्यार्थं न बुध्वा अन्यथा व्याचक्षते तद्धेयम् । एतत्तु प्रकारमात्रं दैवात्क्वापि दृश्यते किन्तु ग्रन्थकारमतमेव राजमार्त्तण्डादीना बहूना सम्मतं सप्रमाणकञ्च । इति ।

अथ ग्रहाणां नक्षत्रव्यवस्था।

प्रत्यग्दक्षिणयोर्भं द्रविणाद्यं विदिक्षु दहनादि।
पूर्वोत्तरयोर्गृहयोरश्विन्यादीनि भानि स्युः ॥ २२० ॥ (१)

अर्थ–अब गृहनक्षत्रोंके विषयमें विशेष कहते हैं। पश्चिम और दक्षिण दिक्स्थित घरके नक्षत्र धनिष्ठादि होते हैं, इसीप्रकार विदिक्स्थित (कोणस्थित) घरोंके नक्षत्र कृत्तिकादि होते हैं और पूर्व और उत्तरदिक्स्थित घरके नक्षत्र अश्विन्यादि होते हैं ॥ २२० ॥

अथ शल्योद्धारादि कथनम्।

सुनिश्चितां मन्दिरभूमिमादौ निखाय तोयावधि यत्नतस्ताम्।
कुर्याद्विशल्यामथवा नृमानं खात्वाथवा प्रश्नवशाद्विधिज्ञः ॥ २१ ॥
दूर्वाप्रवालाक्षतपुष्पपाणिः शुचिः शुचिं दैवविदं नमित्वा।
पृच्छेद्विनीतो मधुरस्वरेण शल्यस्य तत्त्वं भवने तदीशः ॥२२॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे।

अर्थ–अब शल्योद्धारादि कहते हैं, ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, घर बनानेके अर्थ भूमि स्थिर करके जितनी खोदनेसे जल दिखलाई देवै उतनीही खोदै अथवा मनुष्यकी बराबर खोदकरके घरका मालिक शुद्ध होकर दूर्वा, प्रवाल, आतप, तण्डुल और पुष्प, हाथमें लेकर दैवज्ञको नमस्कार करके विनयपूर्वक मधुर वाक्यसे शल्यके वृत्तान्तकी जिज्ञासा करनी चाहिये ॥ २१ ॥ २२ ॥

ततः प्रश्नादिमो वर्णः सन्धार्यो यत्नतोऽथवा।
क्रमात्पुष्पनदीदेवफलानां ब्राह्मणादितः ॥ २३ ॥
प्रणवो धरणीधारिणी करौ च तदनन्तरम्।
न भूत्यै नम इत्येष मन्त्रो वह्निप्रियान्तकः ॥ २४ ॥
मन्त्रेणानेन कठिनीमभिमन्त्र्य विभाजयेत् ॥
नवधा सदनक्षेत्रं तथा पश्चाद्विलेखयेत् ॥ २५ ॥

(१) प्रासस्य ग्रहनक्षत्रस्य व्यवस्थामाह प्रत्यगिति। पश्चिमदक्षिणगृहयोर्नक्षत्रं द्रविणाद्यं धनिष्ठाद्यं स्यात् धनिष्ठामारभ्य गणयेदित्यर्थः. विदिक्षु कोणस्थग्रहाणां दहनादि कृत्तिकादि स्यात् पूर्वोत्तरग्रहयोरश्विन्यादीनि नक्षत्राणि स्युः। एतत्तु नक्षत्रज्ञानं वक्ष्यमाणव्ययज्ञानार्थं ग्रहपतिनक्षत्रेण सार्द्धं विवाहवद्योटकनाडीनक्षत्रादिशुद्ध्या शुभाशुभज्ञानार्थञ्चेति बोद्धव्यमिति।

वकचतएहाः शपया नव चेत्प्रश्नाक्षराणि जायन्ते ।
प्रागादिकोष्ठनवके वर्णास्ते शल्यमाख्यान्ति ॥ २६ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—अनन्तर दैवज्ञ क्रमानुसार घरके मालिकके प्रश्नका आद्यक्षर द्वारा शल्य है वा नहीं तिसको देखे । प्रश्नके विषयमें ब्राह्मणादि क्रमसे द्रव्यादि ग्रहण करना चाहिये, उसका नियम इस प्रकारसे है कि, ब्राह्मण पुष्प, क्षत्रिय, नदी, वैश्य, देवता और शूद्रको फल ग्रहण करे, तदनन्तर प्रणवका उच्चारण करके " धरणी " इत्यादि मन्त्रद्वारा कठिनी अर्थात् खडि अभिमन्त्रित करके उसके द्वारा गृहभूमिको नौ अंश (भाग) में विभक्त करे । अनन्तर व, क, च, त, ए, ह, श, प, य, इन नौ अक्षरोंके मध्यमें जो वर्ण प्रश्नका अक्षर होय उसको पूर्वोक्त नौ कोठोंमें पूर्वादिक्रमसे विन्यस्त करके शल्यको जानना चाहिये ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥

प्रश्ने वकारः पुरतो नरास्थि ब्रवीति शल्यं मरणप्रदायि ।
क्षोणीशदण्डोरगहेतुमृत्युप्रदं ककारः खरशल्यमग्नौ ॥२७ ॥
याम्यां चकारः प्लवगास्थिवेश्मप्रभोर्विनाशावहमाह शल्यम्
रक्षोदिशि श्वास्थि गृहस्थितानां महद्भयं वक्ति सुनिश्चितं ताः॥२८॥
एः पाशिदिश्यस्थि शिशोर्ब्रवीति मृत्युं प्रवासाद्गृहमेत्य शल्यम् ।
हो वायुकोणे नररूपमस्थि दारिद्र्यमित्रक्षयकृद्विधत्ते ॥ २९ ॥
धनपदिशिशकारः प्राह विप्रास्थि वित्त-
क्षयकृदथपकारो वक्ति ऋक्षास्थि शम्भौ ।
तदिह कुलविनाशं गोधनानाञ्च हानिं
वितरति गृहनाथस्यापि गुप्तस्य दैवैः ॥ २३० ॥
यो मध्यभागेभ्यसितं कपालं कालासयश्चायकुलक्षयाय ।
यत्नादपास्यान्यधुना प्रमाणं सर्वत्र तथ्यं कथयामि शल्ये ॥२३१॥

अर्थ—पूर्वोक्त प्रश्नका पहिला अक्षर ' व ' होनेसे पूर्व दिशामे घरके मालिकका मृत्युदायक मनुष्यास्थि होताहै इसीप्रकार प्रश्नका अक्षर ' क ' होनेसे राजदण्ड अथवा सर्पदंशनद्वारा मृत्युप्रद गर्दभअस्थि अग्निकोणमे, ' च ' दक्षिणदिशामे वानरास्थि घरके मालिकका विनाश कर्ता है, ' त ' नैर्ऋतकोणमे कुत्तेकी अस्थि महद्भयजनक होता है, ' ए ' पश्चिम दिशामें बालकास्थिरूप शल्य प्रवासमें मृत्युदायक

होता है, 'ह' वायुकोणमे मनुष्यके सर्वावयवकी अस्थि दारिद्र्यप्रद और बान्धवोंका नाश करनेवाला होता है, 'श' उत्तर दिशामे ब्राह्मणास्थि धनका नाशकारक होताहै. 'ष' ईशान कोणमे भल्लूकास्थि देवताओंकी रक्षा होनेसेभी घरके मालिकका नाश करनेवाला और गोधनादि विनाशक होता है और 'य' मध्यभाग नृकपालरूप शल्य घरके मालिकका और उसके वंशका नाश करनेवाला होता है। अतएव यत्नपूर्वक उक्त प्रकार शल्य वास्तुभूमिसे उखाड करके एकान्तमे करना चाहिये ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥

अथ दिग्विशेषे शल्यस्थितिकथनम् ।

इन्द्ररक्षोजलेशाने शल्यं सार्द्धकरे कटौ ।
वह्न्यन्तककुबेरेषु पुरुषे मध्यवातयोः ॥ ३२ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-अब दिग्विशेषमें शल्यकी स्थिति निर्णय करतेहैं, ज्योतिषतत्त्वमें लिखाहै कि, पूर्व, नैर्ऋत, पश्चिम और ईशान कोणमें डेढ हाथ भूमिके मध्यमे शल्य होताहै. और अग्निकोणमे, दक्षिणमें और उत्तर दिशामे कटिपरिमित भूमिके मध्यमें शल्य होताहै और मध्यस्थानमें और वायुकोणमे पुरुष परिमित भूमिके मध्यमें शल्यका स्थान होताहै ॥ ३२ ॥

अपिच ।

पुरुषाधःस्थितं शल्यं न गृहे दोषदं भवेत् ।
प्रासादे दोषदं शल्यं भवेद्यावज्जलान्तकम् ॥ ३३ ॥

इति देवीपुराणे ।

अर्थ-देवीपुराणमे लिखाहै कि, पुरुषप्रमाण भूमिके निम्नमे स्थित शल्य घरके मध्यमे दोषकारक नही होताहै, किन्तु मनुष्य परिमित भूमिके मध्यमें स्थित शल्यही घरके मध्यमे दोष कारक होताहै, और जलान्तक शल्य प्रासादमें (अट्टालिका प्रभृतिमे) दोषकारक होताहै ॥ ३३ ॥

अन्यच्च ।

गृहारम्भेऽपि कण्डूतिः स्वाम्यङ्गे यदि जायते ।
शल्यं त्वपनयेत्तत्र प्रासादे भवने पि वा ॥ ३४ ॥

इति देवीपुराणे ।

अर्थ-देवीपुराणमे लिखाहै कि, घर बनवानेमें यदि घरके मालिकका शरीर खुजलाय तो जानना चाहिये कि घरमें वा प्रासादमें शल्य है, अतएव यह शल्य जिस प्रकारसें निकलसके उसमें अवश्यही यत्न करना चाहिये ॥ ३४ ॥

अथ गृहारम्भे हस्तप्रमाणम् । (१)

स्वामीहस्तप्रमाणेन धर्मपत्नीकरेण वा ।
मापयेद्गर्भमात्रंतु गृहकर्मणि कोविदः ॥ ३५ ॥

अर्थ–अब घर बनवानेमें हाथका प्रमाण कहतेहैं, घरके मालिकके हाथसे अथवा धर्म्मपत्नीके हाथसे घरको नापना चाहिये ॥ ३५ ॥

अथ गृहारम्भे सूत्रादीनामारोपणस्थानम् ।

ईशाने सूत्रपातः स्यादाग्नेये स्तम्भरोपणम् ।
द्वारं नवमभागे तु कार्यं वामात्प्रदक्षिणम् ॥ ३६ ॥ (२)

अर्थ–गृहारम्भमें ईशान कोणमें सूत्रपात करै, अग्निकोणमें स्तम्भ रोपण और वाम वर्त्तमें क्रमानुसार अष्टमभागके एकभागका द्वारकरै ॥ ३६ ॥

अथ गृहस्य वामस्य द्वारकरणव्यवस्था ।

तृतीयतुर्ययोः प्राच्यां याम्ये तुर्येऽथ पश्चिमे ।
तुर्यपञ्चमयोः पञ्चत्रिश्चतुर्थेऽपि चोत्तरे ॥ ३७ ॥ (३)

---

(१) हस्तोऽप्यत्र कफोण्युपक्रममध्यमाङ्गुल्यग्रपर्य्यन्तम् । " मध्यमाङ्गुलीकूर्पयोर्मध्ये प्रामाणिक कर: " इत्यभियुक्तस्मरणादिति कल्पतरुरत्नाकरौ । इति स्मार्त्तेनोक्तम् ।

(२) सूत्राद्यारोपणमाह–ईशान इति । ईशानकोणे सूत्रपातः कार्य्यः अग्निकोणत्वर्ग्यादिक दत्वा गर्त्ते स्तम्भारोपणञ्च स्तम्भे वास्तुपुरुषं पूजयित्वा पठेत् । " ओं यथाचलो गिरिर्मेरुर्हिमवांश्च यथाचलः । शुभप्रदमहास्तम्भ तथा त्वमचलो भव " अत्र च मासादिविलम्बे पुन कर्त्तव्यमिदम् तथा–" मासान्तरेत्वनारम्भे ईशानारोपणं पुनः " इति गृहद्वारञ्चाष्टभागीकृतस्य गृहस्यैक भागे वक्ष्यमाणश्लोकेन विशिष्योक्ते कर्त्तव्यम् । तच्च ग्रहस्य वामपार्श्वत्वात्प्रदक्षिणक्रमेण कर्तव्यमेतदुक्तं भवति निर्गच्छतः पुंसो वामभागो गृहस्य वामपार्श्वः । तदादित आरभ्य प्रदक्षिणक्रमेणाष्टौ भागान्कृत्वा वक्ष्यमाणश्लोकैकभागैकद्वारं कार्य्यमित्यर्थ. । इति । वामात्प्रदक्षिण वामापेक्षया प्रकृष्ट दक्षिणम् । तथा च दक्षिणेऽधिकांश स्थापयित्वा द्वार कुर्य्यादित्यर्थः । विस्ताराद्द्विगुणोच्छ्राय द्वार कुर्य्यात्तथा गृहे " इति हृदयानन्द. ।

(३) पूर्वादिदिक्षु स्थितानां गृहाणामष्टभागीकृताना द्वारव्यवस्थामाह–तृतीयेति । प्राच्या दिशि स्थितस्य गृहस्य तृतीयचतुर्थभागयोर्द्वारं शुभदं दक्षिणदिशि स्थितस्य गृहस्य चतुर्थभाग द्वार शुभदं पश्चिमगृहस्य चतुर्थपञ्चमभागयोर्द्वारं शुभदम् । उत्तरगृहस्य पञ्चमतृतीय चतुर्थभागेषु द्वारं शुभदमिति एतदेव व्यक्तीकृत्योक्तं राजमार्तण्डे–"अनलभय स्त्रीजन्म प्रभूतधनत नरेन्द्रसायुज्यम् । क्रोधपरतानृतत्वं क्रौर्य्यं चौर्य्यं च पूर्वेण । अल्पसुतत्व प्रैष्यं नीचत्व भक्ष्यपानसुतवृद्धिः । रौद्रं स्वनिधनमवनं सुतवीर्य्यघ्नञ्च याम्येन । सुतपीडारिपुवृद्धिर्धनसुतनाश. सुतार्थ बलसम्पत् । धनसम्पन्नृपतिभयं धनक्षयो रोग इत्यपरे । वधबन्धो रिपुवृद्धिर्धनसुतलाभः समस्त गणसम्पत् । पुत्र धनाप्तिर्वैर सौम्येन दोषाकिया नैःस्वम्" इति ।

अर्थ–किस दीवालके कितने अंशमें घरका दरवाजा लगावे अत्र उसको वर्णन करते हैं , पूर्वदिशाके घरमे तीसरे अथवा चौथे भागके एकभागमे द्वार करना चाहिये, इसीप्रकार दक्षिण दिशाके घरके चौथे भागमे दरवाजा शुभ होताहै, पश्चिमदिशाके घरका चौथे वा पांचवे भागके एक भागमे दरवाजा लगावे और उत्तरदिशाके घरका पांचवे तीसरे वा चौथे भागके एक भागमे दरवाजा लगाना चाहिये ॥ ३७ ॥

अथ गृहारम्भे सूत्रच्छेदादिदोषकथनम् ।

सूत्रच्छेदे भवेन्मृत्युः कीले चावाङ्मुखे महान्रोगः ।
गृहनाथस्थपतीनां स्मृतिलोपे मृत्युर्वादेश्यः ॥ ३८ ॥ (क)

अर्थ–घर बनवानेके समयमें सूत्रादि छिन्न होनेसे जो फल होता है अब उसको वर्णन करते हैं सूत्र छिन्न होनेसे घरके मालिककी मृत्यु होती है कीलके उखडनेसे महारोग, होता है और घरके नापनके समयमें यदि गिनती भूलजाय तो घरके मालिककी और घरवनानेवालेको मृत्यु होती है ॥ ३८ ॥

अथ गृहार्घ्यदानोपस्थापितकुम्भभंगादिदोषः ।

स्कन्धाच्युते शिरोरुग्गलोपसर्गोऽपवर्जिते कुम्भे ।
भग्नेऽपि च कर्मिवधः कराच्युते गृहपतेर्मृत्युः ॥ ३९ ॥ (ख)

अर्थ–अब अर्घ्यके निमित्त स्थापित घटभंगआदि होनेसे जो दोष होता है उसको कहते हैं जल आते समयमे कुम्भ स्कन्धदेशसे स्खलित होनेमे घरके मालिकके शिरमें पीडा होती है, स्थापित कुम्भ किसी प्रकार अधोमुख होनेसे गलेमें रोग होता है घट भग्न होनेसे कुम्हारकी मृत्यु होती है और यदि कुम्भ हाथसे गिरजावे तो घरके मालिककी मृत्यु होती है ॥ ३८ ॥

अथ सूत्रदाने कुब्जादिदर्शननिषेधः ।

कुब्जं वामनकं भिक्षुं वैद्यं रोगातुरानपि ।
दर्शने सूत्रकाले तु संत्यजेत्क्षेमहेतवे ॥ २४० ॥ (ग)

(क) सूत्रच्छेदादिफलमाह–सूत्रेति । सूत्रे छिन्ने गृहपतेर्मृत्युः स्यात् आरोपिते कीलके सूत्राकर्षणेरवाङ्मुखे उत्पाटिते वा महान् रोगः स्यात् । मानकाले हस्तप्रमाणस्य स्मृतिलोपे भ्रान्ते गृहिणः कर्मिणश्च मृत्युः स्यात् ।

(ख) अर्घ्यार्थोपस्थापितस्य कलशस्य भङ्गादिफलमाह–स्कन्धादीति । जलानयनसमये स्कन्धाच्युते कुम्भे सति गृहपतेः शिरोरुक् अर्घ्यार्थस्थापिते कुम्भे अपवार्जिते किञ्चिदासङ्गादिना पतितत्वादवाङ्मुखे गृहपतेर्गलोपसर्गो गलरोगः स्यात् शेषं सुगमामीति ।

(ग) सूत्रपातादिकाले कुब्जादिदर्शननिषेधमाह–कुब्जमिति । स्पष्टार्थम् ।

अर्थ–घर बनवानेके समय कुब्जादि दर्शनमें सूत्रपातादिका निषेध कहते है घरका मालिक यदि मङ्गलकी इच्छा करे तो घरके सूत्रपात समयमे कुब्ज, वामन, भिक्षुक, वैद्य और रोगी मनुष्यका दर्शन न करे ॥ २४० ॥

अथ सूत्रदानकाले हुलहुलादिश्रवणफलम् ।

श्रुतौ हुलहुलानाञ्च मेघानां गर्जितेन च ।
गजानामपि हंसानां ध्वनितं धनदं भवेत् ॥ ४१ ॥ (घ)

अर्थ–सूत्रपातसमयमें हुलहुलि ध्वनि (स्त्रियोंके मङ्गलजनक मुखकी ध्वनि)मेघोंकी गर्ज्जना और हाथी और हंसकी ध्वनि श्रवण गोचर होनेसे धनप्रद होता है ॥ ४१ ॥

इति गृहारम्भ. ।

अथ गृहप्रवेशः ।

ज्येष्ठापुनर्वसु (+) वर्ज्जं गृहारम्भोदितञ्च यत् ।
तत्सर्वं चिन्तयेद्वेश्मप्रवेशे दैवचिन्तकः ॥ ४२ ॥

अर्थ–अब गृहप्रवेशका मुहूर्त्त कहते हैं, जेष्ठा और पुनर्वसु, नक्षत्रको छोडकरके जो गृहारम्भोक्त नक्षत्र हैं उनमेही गृहप्रवेश करना चाहिये इस वचनमें ज्येष्ठा और पुनर्वसु वर्जित इस व्यर्थ निषेधसे गृहप्रवेशमें उक्त दोनों नक्षत्र प्रशस्त हैं ॥ ४२ ॥

अपिच ।

हस्तेपुष्यपुनर्वसौशतभिषाज्येष्ठास्वस्थो धातृभे ।
रेवत्युत्तरविष्णुभाग (१) शशभृन्मूलेधनिष्ठासु च ॥

(घ) सूत्रदानकाले हुलहुलादि श्रुतिफलमाह–श्रुताविति हुलहुलाना स्त्रीकपोलध्वनीना मेघ-गर्ज्जितस्य श्रुतौ सत्यां धनं स्यात् । शेष सुगमम् । राजमार्त्तण्डे । " सूत्रे विस्तार्य्यमाणे तु दीप्तोऽग्निर्यदि दृश्यते । नरो वा घोटकारूढो लभेद्राज्यं न संशयः । शंखतूर्य्यादिनिर्घोषे वसतिर्विपुला गृहे । योषितां कन्यकानाञ्च क्रीडिते वित्तवर्द्धनम् ।

(+) ज्येष्ठादितिभ्यां संयुक्तमित्यपि पाठान्तरमस्ति तदा व्यक्त एवार्थः ।

(ङ) गृहप्रवेशमाह–ज्येष्ठेति । गृहारम्भोक्तं यद्विधानं तत्सर्वं ज्येष्ठापुनर्वसू च वर्जयित्वा गृहप्रवेशे दैवज्ञो योजयेत् । अयमर्थः । अत्र ज्येष्ठा पुनर्वस्वोर्निषेध उक्तः । अत्र निषेधस्य निषेधाद्विधिरिति अतो ज्येष्ठा पुनर्वस्वोः गृहप्रवेशः कार्य्यः । कश्चित्तु ज्येष्ठापुनर्व्वसू वर्जयित्वा सामान्य नक्षत्रं यत् अन्यच्च गृहारम्भोक्तं यत् तत्सर्व्वं योजयेत् । तत्र । ज्येष्ठा पुनर्वस्वोः पार्श्वास्यगणोक्तेन गृहप्रवेशे विहितत्वात् । तथाच राजमार्तण्डे–"ज्येष्ठा पुष्य पुनर्व्वसू शतभिषा स्वाती तथा रोहिणी रेवत्युत्तरभत्रयं हरिमृगौ मूलाधनिष्ठाकरः । कन्या कुम्भ मृगालिसिंह मिथुनस्वर्क्षद्विराश्युद्गमे आर जीव सुधांशुसौम्यभृगुजा वेश्मप्रवेशे हिताः " इति ।

(१) रतिशशभृदित्यत्र भागशभृदिति पाठो न्याय्य एव ।भाग नगोदेवता अस्येति पूर्वाफाल्गुन्यर्थः । उग्रगणत्वेन पूर्वाफाल्गुन्या गृहारम्भे वर्जनादिति साम्प्रदायिकाः ।

कन्याकुम्भवृषालिसिंहमिथुनेष्वृक्षोदयेऽर्केशुभे।
शुक्रेज्येन्दुजशीतरश्मिदिवसे वेश्मप्रवेशः शुभः॥ ४३॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे।

अर्थ–ज्योतिःसारसंग्रहमे लिखा है कि, हस्त, पुष्य, पुनर्वसु, शतभिषा, ज्येष्ठा रोहिणी, रेवती, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, श्रवण, पूर्वाफाल्गुनी, मृगशिर, मूल और धनिष्ठा नक्षत्रमे, कन्या, कुम्भ, वृष, वृश्चिक, सिंह और मिथुन लग्नमे, गोचरमे सूर्य्य शुद्ध होनेसे शुक्र बृहस्पति, बुध और सोमवारमे गृहप्रवेश शुभ होता है॥ ४३॥

अन्यच्च।

सकलं हन्ति सा रिक्ता देवैरपि विनिन्दिता।
इति वचनात्तिस्थितु रिक्ताभिन्न एव॥ ४४॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे हृदयानन्दः।

अर्थ–ज्योतिःसारसंग्रह ग्रन्थमे हृदयानन्दने कहा है कि, रिक्तातिथिमे कर्म्म नष्ट होता है, विशेषकरके देवताओंनेभी रिक्ता तिथिकी निन्दा करी है, अतएव रिक्ता-भिन्न तिथिमेही गृहप्रवेश करना चाहिये॥ ४४॥

अपरञ्च।

स्थाप्यं समाप्यं क्रतुयूपकाष्ठं गृहप्रवेशो गजवाजिबन्धः।
ग्रामे प्रवेशो नगरे पुरे वा दिने प्रशस्तानि शनैश्चरस्य॥४५॥

अर्थ–यज्ञीय यूपकाष्ठका स्थापन वा विसर्ज्जन, गृहप्रवेश, हाथी और घोडे आदिका प्रथम खरीदना, ग्राममे वा नगरमें प्रवेश करना इन सब कार्य्योंमें शनिवार प्रशस्त है॥ ४५॥

प्रकारान्तरञ्च।

गोपुच्छविन्यस्तकरः प्रविशेच्च गृहं गृही।
अनुलिप्तः सुखी स्रग्वी सपत्नीकस्तथैव च॥ ४६॥

इति विष्णुधर्मोत्तरे।

अर्थ–विष्णुधर्मोत्तरमे लिखा है कि, चन्दनादिको लगाकर हर्षचित्तसे पुष्पोंकी मालाको धारण करके घरका मालिक पत्नीके साथ गौकी पूछ पकडकर घरमें प्रवेश करे॥ ४६॥

अथ गृहप्रवेशविधिः ।

कृत्वाग्रतो द्विजवरानथ पूर्णकुम्भं दध्यक्षताम्रदल-
पुष्पफलोप शोभम् ॥ दत्वा हिरण्यवसनानि तथा
द्विजेभ्यो माङ्गल्यशान्तिनिलयं निलयं विशेच्च ॥ ४७ ॥ (×

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ—अब गृहप्रवेशकी विधि कहते हैं दीपिकामें लिखा है कि, घरका मालिक ब्राह्मण और दध्यक्षत (दही और चावल) आम्रकी शाखा, पुष्प, और फलसे उपशोभित पूर्णकुम्भको आगे करके ब्राह्मणको सुवर्ण और वस्त्रादि दान करके नवीन घरमें प्रवेश करे ॥ ४७ ॥

अथ पारावतादिपोषणम् ।

पारावतमयूराश्च शुका वै सारिकास्तथा ।
गृहस्थेन सदा पोष्या आत्मनः श्रेय इच्छता ॥ ४८ ॥

इति महाभारते ।

अर्थ—महाभारतमें लिखा है कि, गृहस्थ मनुष्य अपने मङ्गलकी इच्छा करे तो पारावत (कबूतर) मयूर (मोर) शुक (तोता) और सारिका (मयना) को सर्वदा खिलावे ॥ ४८ ॥

सूर्यास्तात्परं गवादीनां गृहाद्बहिर्निष्कासननिषेधः ।

गोगजाश्वाविशालासु तत्पुरीषस्य निर्गमम् ।
अस्तं गते न कर्त्तव्यं देवदेवे दिवाकरे ॥ ४९ ॥

इति मत्स्यपुराणे ।

अर्थ—मत्स्यपुराणमे लिखा है कि, भगवान् सूर्य्यदेवके अस्त होजानेपर गाय हाथी, घोडा और बकरी इनको घरके बाहर न निकलना चाहिये ॥ ४९ ॥

गृहपार्श्वेनिषिद्धवृक्षाः ।

वर्ज्जयेत्पूर्वतोऽश्वत्थं प्लक्षं (+) दक्षिणतस्तथा ।
न्यग्रोधमपरादेशादुत्तराच्चाप्युदुंम्बरम् ॥ २५० ॥

इति गोभिल. ।

(×) गृहप्रवेशविधिमाह—कृत्वेति । अग्रतो ब्राह्मणान् कृत्वा दध्यादिशोभित पूर्णकुम्भं चाग्रे कृत्वा पूजिताद्द्विजेभ्यो हिरण्यं वस्त्राणि दत्वा माङ्गल्यकर्मणः शान्तिकर्मणश्च निलय स्थानं गृहं प्रविशेत् । (+ प्लक्षः पर्कटी ।

अर्थ-गोभिलने कहा है कि, घरके पूर्व दिशामे पीपल, दक्षिणमें पाकड, पश्चिममें वट और उत्तरमे उदुम्बरके वृक्षको परित्याग करे ॥ २५० ॥

फलम् ।

अश्वत्थोऽग्निभयं कुर्यात्प्लक्षो ब्रूयात्प्रमायुकान् ।
न्यग्रोधो राजसंपीडां कुक्ष्यामयमुदुम्बरः ॥ २५१ ॥

इति गोभिलः ।

अर्थ-घरकी पूर्वदिशामे पीपलका वृक्ष होनेसे अग्निका भय होता है, दक्षिणमें पाकडका वृक्ष होनेसे पित्तकी वृद्धि होती है, पश्चिममे वटका वृक्षहोनेसे राजपीडा होती है और घरके उत्तरमे गूलरका वृक्ष होनेसे उदरामय रोग होता है ॥ २५१ ॥

इति वंशावरेल्यांतर्वर्तिकान्यकुब्जकुलभूषणभारद्वाजगोत्रे त्रिपाठ्युपनामकेन पण्डित बाँकेलालात्मजेन श्यामसुन्दरशर्म्मणा सम्पादिते भाषाटीका विभूषिते च ज्योतिषतत्त्वसुधार्णवे जातककर्म्मादि गृहप्रवेशान्तश्चतुर्थस्तरङ्गः ॥ ४ ॥

पञ्चमस्तरङ्गः ५.

अथ देवताघटनम् ।

ध्रुवलघुमृदुवर्गे वारुणे विष्णुदेवे मरुददितिधनिष्ठे शोभने वासरे च ॥ त्रिदशमदनजन्मैकादशे शीतरश्मौविबुधकृतिरभीष्टा नाडिनक्षत्रहीने ॥ १ ॥ (क)

अर्थ-अब देवताओकी प्रतिमा बनानेका मुहूर्त्त कहतेहै-उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, रोहिणी, पुष्य, अश्विनी, हस्त, चित्रा, अनुराधा, मृगशिर, रेवती, शतभिषा, श्रवण, स्वाति, पुनर्वसु और धनिष्ठा नक्षत्रमे, शुभग्रहोके वारमें गोचरमें चन्द्रमा तीसरे, दशवे, सातवें, जन्मका अथवा ग्यारहवे स्थानमे स्थित होनेसे, नाडी नक्षत्रहीन दिनमे देवताओकी प्रतिमाको निर्माण करना चाहिये ॥ १ ॥

(क) देवताघटनमाह-ध्रुवेति । विष्णुर्देवो यस्य स विष्णुदेवः श्रवणः शोभने वासरे शुभग्रहस्य वारे जन्मराशेः सकाशात् त्रिदशसप्तजन्मैकादशस्थे जन्मादिनाडीनक्षत्रहीने च चन्द्रे विबुधकृतिर्देवताकरणमिष्टा । इति ।

अथ सामान्यदेवताप्रतिष्ठा ।

शस्तेन्दौ माघषट्के शुभदिवसतिथौ गोगुरुज्ञर्क्षज्ञलग्ने
वित्ताद्द्वन्द्वाहियुग्मादितिहयभरणीयुग्विशाखान्यभेषु ॥
क्षीणं षष्ठाष्टमेन्दुं हरिशयनमसद्युक्तलग्नञ्च हित्वा
केन्द्रे जीवे च शुक्रे त्रिभवरिपुगृहेऽसत्सु देवप्रतिष्ठा ॥२॥ (ख)

अर्थ—अब सामान्यदेवताओंकी प्रतिष्ठाका मुहूर्त्त कहतेहैं—गोचरमें चन्द्रमा शुद्ध होनेसे, माघादि छः महीनोंके मध्यमें, शुभग्रहोंके वारमें, शुभतिथिमें, वृष, धन, मीन, मिथुन और कन्यालग्नमे, धनिष्ठा, शतभिषा, आश्लेषा, मघा, पुनर्वसु, अश्विनी, भरणी, कृत्तिका और विशाखा इन सब नक्षत्रोको छोड़कर अन्य नक्षत्रोंमे, लग्नके छठे आठवें और क्षीण चन्द्रमाको छोडकर, श्रीहरिका शयनसमय और पापयुक्त लग्नको परित्याग करके केन्द्रस्थानमें बृहस्पति और शुक्र स्थित होनेसे और तीसरे ग्यारहवें और छठे स्थानमें पापग्रहोंके होनेसे देवताओंकी प्रतिष्ठा करनी चाहिये ॥ २ ॥

अपि च ।

प्रतिष्ठा सर्वदेवानां केशवस्य विशेषतः ।
उत्तरायण आपन्ने शुक्लपक्षे शुभे दिने ॥
कृष्णपक्षे च पञ्चम्यामष्टम्याञ्चैव शस्यते ॥ ३ ॥

इति व्यवहारसमुच्चये ।

अर्थ—व्यवहारसमुच्चय ग्रन्थमें लिखाहै कि, उत्तरायणमें, शुक्लपक्षमें, शुभ दिनमे और कृष्णपक्षकी पञ्चमी और अष्टमीतिथिमे सब देवताओंकी प्रतिष्ठा करी जाम-क्तीहै, किन्तु विशेषकरके उक्त दिनोंमें विष्णुकीही प्रतिष्ठा प्रशस्त है ॥ ३ ॥

अन्यच्च ।

युगादावयने पुण्ये कर्त्तव्यं विषुवद्वये ।
चन्द्रसूर्यग्रहे वापि दिने पुण्येऽथ पर्वसु ॥ ४ ॥

(ख) समान्यदेवताप्रतिष्ठामाह—शस्तेन्दाविति । गोचरशुद्धे चन्द्रे माघादौ षट्के च मासि शुभवारे शुभतिथौ वृषधनुर्मीनमिथुनकन्यालग्ने वित्तद्वन्द्व धनिष्ठाशतभिषा अहियुग्मे आश्लेषामघा याम् अदितिः पुनर्वसुः हयोऽश्विनी भरणी युग् भरणी कृत्तिका विशाखा एतदन्येषु भेषु लग्नात् षष्ठाष्टमस्थं चन्द्रं क्षीणचन्द्रञ्च हित्वा हरिशयन पापयुक्तलग्नञ्च हित्वा तृतीयैकादशषष्ठेषु पापेषु देवप्रतिष्ठा कार्य्या । इति ।

या तिथि (×) र्यस्य देवस्य तस्यां वा तस्य दीक्षणे ।
गृह्यागमविशेषेण प्रतिष्ठा मुक्तिदायिनी ॥ ५ ॥

इति भुजबलभीमपराक्रमे ।

अर्थ-भुजबलभीमपराक्रममे लिखाहै कि-युगादिमें, दोनों अयन संक्रान्तिमें, दोनो विषुव संक्रान्तिमे चन्द्रसूर्यके ग्रहणमे पुण्याहमें, पर्वके दिनमे और जिस देवताकी जो तिथि कहीहै उसमे और दीक्षा देनेके दिनमे अपनी अपनी गृह्योक्त प्रतिष्ठा मुक्तिकी देनेवाली होतीहै ॥ ४ ॥ ५ ॥

अथ वासुदेवप्रतिष्ठा ।

प्राजेशवासवकरादितिभाश्विनीषु (+) पौष्णामरेज्यशशिभेषुतथोत्तरासु ॥ कर्तुः शुभे शशिनि केन्द्रगते च जीवे ।
कार्या हरेः शुभतिथौ विधिवत्प्रतिष्ठा ॥ ६ ॥ (क)

अर्थ-अब विष्णुभगवान्‌की प्रतिष्ठाका मुहूर्त्त कहतेहै रोहिणी, ज्येष्ठा, हस्त, पुनर्वसु, अश्विनी, रेवती, पुष्य, मृगशिर उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा और उत्तराभाद्रपदा नक्षत्रमें कर्त्ताके गोचरमे चन्द्रमा शुद्ध होनेसे बृहस्पति केन्द्रस्थानमे होनेसे शुभतिथिमे विष्णुभगवान्‌की प्रतिष्ठा करनी चाहिये ॥ ६ ॥

हरेः प्रतिष्ठायां तिथिविशेषकथनम् ।

द्वादश्येकादशीराका शुक्ले शुक्ले च पञ्चमी ।
अष्टमी च विशेषेण प्रतिष्ठायां हरेः शुभा ॥ ७ ॥ (ख)

(+) प्रतिपद्धनदस्योक्ता पवित्रारोहणे तिथिः ।
श्रिया देव्या द्वितीया च तिथीनामुत्तमा स्मृता ॥ १ ॥
तृतीया तु भवान्याश्च चतुर्थी तत्सुतस्य च ।
पञ्चमी सोमराजस्य षष्ठी प्रोक्ता गुहस्य च ॥ २ ॥
सप्तमी भास्करस्योक्ता दुर्गायाश्चाष्टमी तिथिः ।
मातॄणां नवमी प्रोक्ता दशमी वासुकेस्तथा ॥ ३ ॥
एकादशी ऋषीणाञ्च द्वादशी चक्रपाणिनः ।
त्रयोदशी त्वनङ्गस्य शिवस्य च चतुर्दशी ॥ ४ ॥
मम चापि मुनिश्रेष्ठ पौर्णमासी तिथिः स्मृता ॥ ५ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे ।

(×) अश्विनीश इति पाठान्तरम् ।

(क) विष्णुप्रतिष्ठामाह-प्राजेशेति । प्राजेशो रोहिणी आदितिभं पुनर्वसुः अमरेज्यः पुष्यः लग्नात्केन्द्रस्थे जीवे शेषं स्पष्टमिति । [शस्ता इत्यर्थः ।

(ख) हरिप्रतिष्ठाया तिथिविशेषमाह-द्वादशीति । राका पूर्णिमा पञ्चमी अष्टमी च पक्षद्वयेऽपि-

अर्थ–विष्णुकी प्रतिष्ठामें तिथिविशेष कहतेहैं, द्वादशी, एकादशी, पूर्णिमा, दोना पक्षोंकी पञ्चमी और अष्टमी इन सब तिथियोमें विष्णुकी प्रतिष्ठा करनी चाहिये ॥ ७ ॥

अथ महेशादिप्रतिष्ठा ।

पुष्याश्विशक्रभगदैवतवासवेषुसौम्यानिलेशमघ
रोहिणिमूलहस्ते ॥ पौष्णानुराधहरिभेषु पुनर्वसौ च
कार्योभिषेकतरुभूतपतिप्रतिष्ठा ॥ ८ ॥ (ग)

अर्थ–वृक्ष और शिवादिकी प्रतिष्ठाका मुहूर्त्त कहतेहैं–पुष्य, अश्विनी, ज्येष्ठा, पूर्वाफाल्गुनी, धनिष्ठा, मृगशिर, स्वाति, आर्द्रा, मघा, रोहिणी मूल, हस्त, रेवती अनुराधा, श्रवण और पुनर्वसु नक्षत्रमे अभिषेक, वृक्षकी प्रतिष्ठा और शिवकी प्रतिष्ठा करनी चाहिये ॥ ८ ॥

अथ परीक्षाकरणम् ।

नो शुक्रास्तेऽष्टमेर्के गुरुसहितरवौ जन्ममासेऽष्टमेन्दौ
विष्टौ मासे मलाख्ये कुजशनिदिवसे जन्मताराम्रु चाथ ॥
नाडीनक्षत्रहीने गुरुरविरजनीनाथताराविशुद्धौ
प्रातः कार्या परीक्षा द्वितनुचरगृहांशोदये शस्तलग्ने ॥ ९ ॥

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ–अब परीक्षा करनेका मुहूर्त कहतेहैं–दीपिकामे लिखाहै कि, शुक्रके अस्त न होनेसे और गोचरमें सूर्य्य आठमें न होय, गुर्वादित्ययोग, जन्ममास, अष्टमचन्द्रमा, विष्टि, (भद्रा) मलमास, मङ्गल और शनिवार, जन्मतारा और नाडीके नक्षत्रोंको छोडकर अन्य नक्षत्रोंमे, बृहस्पति, सूर्य्य, चन्द्रमा और तारा शुद्ध होनेसे द्व्यात्मक और चरलग्नके नवांशमे प्रशस्त लग्नमे प्रातःकालके समय परीक्षा करनी चाहिये ॥ ९ ॥

अपिच ।

नाष्टम्यां न चतुर्दश्यां प्रायश्चित्तपरीक्षणे ।
न परीक्षा विवाहश्च शनिभौमदिने तथा ॥ १० ॥

इति व्यवहारचिन्तामणौ ज्योतिषतत्त्वे च ।

(ग) वृक्षादिप्रतिष्ठामाह–पुष्येति । भगदैवतं पूर्वाफाल्गुनी वसु दैवजमरन्निति नामतो धनिष्ठा अभिषेकयुक्त। तरुभूतपति प्रतिष्ठा कार्य्या शिवाभिषेक तरुप्रतिष्ठा भूतपति प्रतिष्ठा च भूतपतिर्महेशस्तस्य प्रतिष्ठा कार्य्या एवं पुष्करिणीसेतुमठादिप्रतिष्ठा शेष स्पष्टम् । इति । अत्र केचित्तु तरुकूपलिपिप्रतिष्ठाद्याः पठन्ति ।

अर्थ-व्यवहारचिन्तामणिग्रन्थमे और ज्योतिषतत्त्वमे लिखाहै कि, अष्टमी और चतुर्दशी तिथिमे प्रायश्चित्त और परीक्षा निषिद्ध है, शनि और मङ्गलवारमे विवाह और परीक्षा न करनी चाहिये किसी २ आचार्यके मतसे शनि और मङ्गलवारमे प्रायश्चित्तकाभी निषध है ॥ १० ॥

अथ दीक्षाग्रहणम् ।

ध्रुवमृदुनक्षत्रगणो रवि शुभवारे सत्तिथौ दीक्षा ।
स्थिरलग्ने शुभचन्द्रे केन्द्रे कोणे शुभे गुरौ धर्मे ॥ ११ ॥ (×)

अर्थ--अब दीक्षा ग्रहण करनेका मुहूर्त्त कहतेहैं-उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, रोहिणी, चित्रा, अनुराधा, मृगशिर और रेवतीनक्षत्रमें रवि, सोम, बुध, बृहस्पति और शुक्रवारमे, शुभतिथिमे, स्थिरलग्नमें, चन्द्रमा शुद्ध होनेसे लग्नके केन्द्रस्थानमे और त्रिकोणमे शुभग्रह होनेसे और बृहस्पतिके नववे स्थानमें स्थित होनेसे दीक्षा ग्रहण करनी चाहिये ॥ ११ ॥

अथ दीक्षाया मासकथनम् ।

मधुमासे भवेद्दुःखं माधवे रत्नसञ्चयः
मरणम्भवति ज्येष्ठे आषाढे बन्धुनाशनम् ॥ १२ ॥
समृद्धिः श्रावणे नूनं भवेद्भाद्रपदे क्षयः ।
प्रजानामाश्विने मासि सर्वतः शुभमेव हि ॥ १३ ॥
ज्ञानं स्यात्कार्त्तिके सौख्यं मार्गशीर्षे भवत्यपि ।
पौषे ज्ञानक्षयो माघे भवेन्मेधाविवर्द्धनम् ॥
फाल्गुनेऽपि विवृद्धिः स्यान्मलमासं विवर्ज्जयेत् ॥ १४ ॥

इति दीक्षामलमासतत्त्वयोः ।

अर्थ-अब दीक्षाग्रहण करनेके महीनोंका फल कहते हैं-चैत्रके महीनेमें दीक्षा ग्रहण करनेसे दुःख प्राप्त होता है । इसीप्रकार वैशाखमे रत्नोंका सञ्चय, ज्येष्ठमे मरण, आषाढमे बान्धवोंका नाश, श्रावणमें समृद्धिलाभ, भाद्रपदमें प्रजाका नाश, आश्विनमे सर्वप्रकारसे शुभ, कार्तिकमे सुख, अग्रहायणमें भी सुख, पौषमे ज्ञानका नाश, माघमे मेधाकी वृद्धि और फाल्गुनके महीनेमे मन्त्रग्रहण करनेसे शुभ होता

(×) दीक्षाग्रहणमाह-ध्रुवेति । रविवारे शुभग्रहवारे च गोचरशुभे चन्द्रे लग्नात् केन्द्रत्रिकोणे शुभग्रहे नवमस्थे गुरौ दीक्षा कार्य्येत्यर्थः । दीक्षाविचारस्तु तन्त्रप्रसिद्धत्वान्नलिखितः । इति ।

है किन्तु इन महीनोंके मध्यमे जो किसी महीनेमें मलमास होय तो उसमें दीक्षा ग्रहण न करना चाहिये ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥

अथ दीक्षायाःवारादिकथनम् ।

गुरौ रवौ दिने (१) शुक्रे कर्त्तव्यं बुधसोमयोः ।
अश्विनीरोहिणी (२) स्वातिविशाखाहस्तभेषु च ।
ज्येष्ठोत्तर (३) त्रयेष्वेवं कुर्यान्मन्त्राभिषेचनम् ॥ १५ ॥

इति मलमासतत्त्वे ।

अर्थ—अब दीक्षाग्रहण करनेके वारादि कहते हैं—मलमासतत्वमें लिखाहै कि बृहस्पति, रवि, शुक्र, बुध और सोमवारमें अश्विनी, रोहिणी, स्वाति, विशाखा, हस्त, ज्येष्ठा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा और उत्तराभाद्रपदा, नक्षत्रमे मन्त्रग्रहण करना चाहिये ॥ १५ ॥

अपिच ।

शुक्लपक्षे च कृष्णे वा दीक्षा सर्वसुखावहा ।
पूर्णिमा पञ्चमी चैव द्वितीया सप्तमी तथा ।
त्रयोदशी च दशमी प्रशस्ता सर्वकामदा ॥ १६ ॥

इति दीक्षातत्वे ।

अर्थ—दीक्षातत्वमे लिखा है कि—शुक्लपक्षमें वा कृष्णपक्षमें दीक्षाग्रहण करनेसें सुख होता है. पूर्णिमा, पञ्चमी द्वितीया, सप्तमी, त्रयोदशी और दशमी तिथिमे दीक्षा ग्रहण करना चाहिये ॥ १६ ॥

पञ्चाङ्गशुद्धिदिवसे सोदये शशितारयोः ।
गुरुशुक्रोदये शुद्धलग्ने द्वादशशोधिते ॥ (+)
चन्द्रतारानुकूल्ये च शस्यते सर्वकर्म च ॥ १७ ॥

इति दीक्षातत्वे ।

---

(१) 'गुरौ रवौ शनौ सोमे कर्त्तव्यं बुधशुक्रयोः' । इति पाठान्तरम् ।

(२) 'अश्विनी भरणी स्वाति' इति पाठान्तरम् ।

(३) 'ज्येष्ठोत्तरार्द्रयोश्चैव' इत्यपि दीक्षातत्वे पाठान्तरम् ।

(+) पञ्चाङ्गशुद्धदिवसे तिथिवारनक्षत्रकरणयोगशुद्धदिवसे । तथा च महाकपिल पञ्चरात्रम् । [illegible] नक्षत्रतिथ्यादौ करणे योगवासरे । मन्त्रोपदेशो गुरुणा साधकस्य शुभावहः । सोदये शशितारयोरिति जन्मचन्द्राद्यतारयोरानुकूल्यसहिते गुरुशुक्रोदये गुरुशुक्रानस्तसमये एतत्तु समयशुद्ध्यान्तरोप[illegible] द्वादश शोधिते द्वादशांशशोधिते इति मलमासतत्वे स्मार्त्तेनाभिहितम् ।

अर्थ-दीक्षातत्वमे लिखा है कि--तिथि, वार, नक्षत्र, करण, योग और चन्द्रमा जन्मतारा शुद्ध होनेसे कालशुद्धिमे, शुद्ध लग्नके द्वादशांशमें सब कर्म्मही प्रशस्त है अतएव इसमें दीक्षाग्रहण करनी चाहिये ॥ १७ ॥

सूर्यग्रहणकालेन समानो नास्ति कश्चन ।
तत्र यद्यत्कृतं सर्वमनन्तफलदं भवेत् ॥ १८ ॥
न मासतिथिवारादिशोधनं सूर्यपर्वणि । (१)
ददातीष्टं गृहीतं यत्तस्मिन्काले गुरोर्नृषु ॥
सिद्धिर्भवति मन्त्रस्य विनायासेन सेव्यतः ॥ १९ ॥

इति दीक्षातत्वे ।

अर्थ-दीक्षातत्वमे लिखा है कि- सूर्य्य ग्रहणके समान दूसरा कोई समय नहीं है, इस समयमें जो कार्य्य करै उसका अनन्त फल होता है और संक्रान्तिमे भी मास, तिथि, वार, नक्षत्र, योग, करण प्रभृतिका शुद्ध अशुद्ध विचार नही होता है उक्त समयमे गुरुके निकटसे इष्टमन्त्र ग्रहणकरनेसे अनायासमेही सिद्धि प्राप्त हो जाती है ॥ १८ ॥ १९ ॥

रोहिणीश्रवणार्द्रा च धनिष्ठा चोत्तरात्रयम् ।
पुष्या शतभिषार्कौ (२) च दीक्षानक्षत्रमुच्यते ॥ २० ॥

इति वीरतन्त्रे ।

अर्थ-वीरतन्त्रमें लिखा है कि-रोहिणी, श्रवण, आर्द्रा, धनिष्ठा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, पुष्य, शतभिषा और हस्तनक्षत्र दीक्षाविषयमें प्रशस्त है ॥ २० ॥

योगाश्च प्रीतिरायुष्मान्सौभाग्यः शोभनो धृतिः ।
वृद्धिर्ध्रुवः सुकर्म्मा च साध्यः शुक्लश्च हर्षणः ॥ २१ ॥
वरीयांश्च शिवः सिद्धो ब्रह्म इन्द्रश्च षोडश ।
शुभानि करणानि स्युर्दीक्षायां तु विशेषतः ।
शकुन्यादीनि विष्टिश्च विशेषेण विवर्ज्जयेत् ॥ २२ ॥

इति रत्नावल्याम् ।

(१) "अमा वै सोमवारे च भौमवारे चतुर्दशी । चतुर्थ्यङ्गारवारे च सूर्यपर्वशतैः समा"
(२) अर्को हस्तः ।

अर्थ—रत्नावलीग्रन्थमें लिखा है कि—प्रीति, आयुष्मान्, सौभाग्य, शोभन, धृति, वृद्धि, ध्रुव, सुकर्म्मा, साध्य, शुक्ल, हर्षण, वरीयान्, सिद्ध, ब्रह्मा और ऐन्द्र इन सोलहं योगोंमें, शकुनि, चतुष्पाद, नाग, किंस्तुघ्न और विष्टि भिन्नकरणमें दीक्षाकर्म्म प्रशस्त है ॥ २१ ॥ २२ ॥

कृष्णाष्टम्यां चतुर्दश्यां पूर्व्वपञ्चदिने तथा ॥ २३ ॥ (×)

अर्थ—कृष्णपक्षकी अष्टमी और चतुर्दशी तिथि और प्रतिपदासे पञ्चमीतक तिथियोंमें दीक्षाकर्म्म प्रशस्त है ॥ २३ ॥

रविसंक्रमणे चैव सूर्यस्य ग्रहणे तथा ।
अत्र लग्नादिकं किञ्चिदविचार्यं कथञ्चन ॥ २४ ॥

इति ज्ञानमालायाम् ।

अर्थ—ज्ञानमालामें लिखा है कि—संक्रान्तिमें और सूर्य्यग्रहणमे दीक्षाग्रहण करनेसे लग्नादि कुछ भी नही देखा जाता है ॥ २४ ॥

यदैवेच्छा तदा दीक्षा गुरोराज्ञानुरूपतः ।
न तिथिर्न व्रतं होमो न स्नानं न जपक्रिया ।
दीक्षायां कारणं किन्तु स्वेच्छावाप्ते तु सद्गुरौ ॥ २५ ॥

इति तत्त्वसागरे ।

अर्थ—तत्त्वसागरमें लिखा है कि, जिस समय इच्छा होय तभी गुरुकी आज्ञासे क्रमानुसार मन्त्रको ग्रहण करसक्ता है. तिथि, व्रत, होम, स्नान और जपादि कुछभी दीक्षामें कारण नहीं है, केवल सद्गुरुकी इच्छानुसारही मन्त्रग्रहण करना चाहिये ॥ २५ ॥

शिष्यत्रिजन्मदिवसे संप्राप्ते विषुवायने ।
सत्तीर्थेऽर्कविधुग्रासे तन्तुदामन पर्वणोः । (+)
मन्त्रदीक्षां प्रकुर्वाणो मासर्क्षादीन्न शोधयेत् ॥ २६ ॥

इति ज्यो॰ति॰सारसंग्रहे ।

अर्थ—ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखाहै कि—शिष्यके त्रिजन्मादिनमें, विषुवसंक्रान्तिमे और अयनसंक्रान्तिमें, महातीर्थमे, सूर्य्य और चन्द्र ग्रहणमे, श्रावणी पूर्णिमामे और चैत्रशुद्ध चतुर्दशी तिथिमें मन्त्रग्रहण करनेसे मास, नक्षत्र, तिथ्यादिकाविचार नहीहोताहै ॥ २६ ॥

इति स्मार्त्तधृतदीक्षाकाल ।

(+) कृष्णपक्षे इति शेषः ।

(+) तन्तुपर्व्व परमेश्वरोपरि तद्दानतिथिः श्रावणी पूर्णिमा । दामनपर्व्व मदनभञ्जनतिथिश्चैत्रशुद्ध चतुर्दशीति स्मार्त्तेनाभिहितम् ।

अथ तन्त्रसारोक्तदीक्षाकालकथनम् ।

तत्र मासनिर्णयः ।

मन्त्रारम्भस्तु चैत्रे स्यात्समस्तपुरुषार्थदः ।
वैशाखे रत्नलाभः स्याज्ज्येष्ठे तु मरणं भवेत् ॥ २७ ॥
आषाढे (अ) बन्धुनाशः स्यात्पूर्णायुः श्रावणे भवेत् ।
प्रजानाशो भवेद्भाद्रे आश्विने रत्नसञ्चयः ॥ २८ ॥
कार्त्तिके मन्त्रसिद्धिः स्यान्मार्गशीर्षे तथा भवेत् ।
पौषे तु शत्रुपीडा स्यान्माघे मेधाविवर्द्धनम् ।
फाल्गुने सर्वकामाः स्युर्म्मलमासं विवर्जयेत् ॥ २९ ॥ (आ)

इति गौतमीये ।

अर्थ-अब तन्त्रशास्त्रकी रीतिसे दीक्षा ग्रहण करनेके महीनोको कहते हैं-गौतमीतन्त्रमे लिखा है कि, चैत्रके महीनेमें गोपालका मन्त्र ग्रहण करनेसे समस्त पुरुषार्थ सिद्ध होते हैं. वैशाखमे मन्त्र ग्रहण करनेसे रत्न प्राप्त होते है. इसी प्रकार ज्येष्ठमे मन्त्रग्रहण करनेसे मृत्यु होती है, आषाढ़में बान्धवोंका नाश होता है, आश्विनमे रत्नोंका सञ्चय होता है, कार्तिकमें और अग्रहायणमें मन्त्रसिद्धि होजाती है, पौषमे शत्रुद्वारा पीडा होती है, माघमे मेधाकी वृद्धि होती है और फाल्गुनके महीनेमे मन्त्रके ग्रहणकरनेसे सम्पूर्ण कामना पूर्ण होती है, किन्तु मलमासके महीनेमें मन्त्रको ग्रहण न करना चाहिये ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥

अपिच ।

मन्त्राद्यारम्भणं मेषे धनधान्यप्रदं भवेत् ।
वृषे मरणमाप्नोति मिथुनेऽपत्यनाशनम् ॥ ३० ॥
कर्कटे सर्वसिद्धिः स्यात्सिंहे मेधाविनाशनम् ।
कन्या लक्ष्मीप्रदा नित्यं तुलायां सर्वसिद्धयः ॥ ३१ ॥

(अ) 'ज्येष्ठे मृत्युप्रदा चैव आषाढे सुखसम्पदः' इति योगिनीहृदयात् आषाढे दीक्षाग्रहणे निन्दा श्रीविद्यायांनास्ति ।

(आ) चैत्रे तु गोपालविषयं गौतमीयोक्तत्वात् यथा "मधुमासे भवेद्दीक्षा दुःखाय मरणाय च" इति वचनान्नान्यत्र । अत्र च मासः 'सौर एव सौरे मासि शुभा दीक्षा न चान्द्रे न तारके' इति गौतमीयात् ।

वृश्चिके स्वर्णलाभः स्याद्धनुर्मानविनाशकः ।
मकरः पुण्यदः प्रोक्तः कुम्भो धनसमृद्धिदः ।
मीनो दुःखप्रदो नित्यमेवं मासविधिक्रमः ॥ ३२ ॥

इति वैशम्पायनसंहितायाम् ।

अर्थ--वैशम्पायन संहितामे लिखा है कि--वैशाखमे मंत्रग्रहण करनेसे धनधान्यका लाभ होता है, इसीप्रकार ज्येष्ठमें मृत्यु होती है. आषाढमे सन्ततिका नाश होता है, श्रावणमे सब सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं, भाद्रपदमे मेधाका नाश होता है, श्रावणमें दीर्घायु होती है, भादोंमें सन्ततिका नाश होता है आश्विनमे लक्ष्मीकी वृद्धि होती है, कार्तिकमें सब सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं, अग्रहायणमे स्वर्णलाभ होताहै, पौषमें मानहानि होती है, माघमे पुण्यका सञ्चय होता है, फाल्गुनमे धन मिलता है और चैत्रके महीनेमें मन्त्रग्रहण करनेसे सर्वदा दुःखभागी होता है ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

अथ दीक्षायास्तिथिनिर्णयः ।

प्रतिपदि कृता दीक्षा ज्ञानकाशकरी मता ।
प्रतिपत्तिर्द्वितीयायां (१) तृतीयायां शुचिर्भवेत् ॥ ३३ ॥
चतुर्थ्यां वित्तनाशः स्यात्पञ्चम्यां बुद्धिवर्धनम् ।
षष्ठ्यां ज्ञानक्षयं सौख्यं लभते सप्तमीदिने ॥ ३४ ॥
अष्टम्यां बुद्धिनाशः स्यान्नवम्यां वपुषः क्षयः ।
दशम्यां राजसौभाग्यमेकादश्यां शुचिर्भवेत् ॥ ३५ ॥
द्वादश्यां सर्वसिद्धिः स्यात्त्रयोदश्यां दरिद्रता ।
तिर्य्यग्योनिश्चतुर्दश्यां शनिर्म्मासावसानके ॥ ३६ ॥
पक्षान्ते धर्म्मवृद्धिः स्यादस्वाध्यायं (२) विवर्जयेत् ॥ ३७ ॥

अर्थ--अब दीक्षाका तिथिनिर्णय कहते हैं--प्रतिपदा तिथिमे मन्त्रग्रहण करनेसे ज्ञानका नाश होताहै, इसीप्रकार द्वितीयामे प्रतिपत्ति (लाभ) होताहै, तृतीयामे पवित्रता प्राप्तहोतीहै, चतुर्थीमें अर्थका नाश होताहै, पञ्चमीमें बुद्धि बढतीहै, षष्ठीमे ज्ञानका नाश होताहै सप्तमीमे सुख प्राप्त होता है, अष्टमीमें बुद्धिका नाश होता है

(१) द्वितीयायां भवेज्ज्ञानम् इत्यपि पाठ । [वर्जयेत्" ॥
(२) "सन्ध्यागर्जितनिर्घोष भूकम्पोल्कानिपातने । एतानन्यांश्च दिवसान्[illegible]

नवमीमे देहका नाश होताहै. दशमीमे राजसौभाग्य प्राप्ति होतीहै, एकादशीमें पवित्रता प्राप्त होती है, द्वादशीमें सर्व सिद्धियां करतलगत होजातीहै, त्रयोदशीमें दरिद्रता प्राप्त होतीहै, चतुर्दशीमे तिर्यग्योनि प्राप्त होतीहै, अमावास्यामे नाश होजाताहै और पूर्णिमातिथिमे मन्त्रग्रहणकरनेसे धर्मकी वृद्धि होतीहै, किन्तु उक्त तिथि यदि मास-विशेषमे वा अन्य किसी कारणसे अस्वाध्यायमे निन्दित होय तो उसमें मन्त्रग्रहण न करना चाहिये ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

अपिच।

द्वितीया पञ्चमीचैव षष्ठी चैव विशेषतः। (क)
द्वादश्यामपि कर्त्तव्यं त्रयोदश्यामथापि वा ॥ ३८ ॥

इति रामार्चनचन्द्रिकायाम्।

अर्थ--द्वितीया, पञ्चमी, षष्ठी, द्वादशी और त्रयोदशी तिथिमे मन्त्रग्रहण करै किन्तु इनके मध्यमें विशेष यहीहै कि, षष्ठी और त्रयोदशी तिथि विष्णुके मन्त्र-ग्रहण करनेमेही प्रशस्त है. इसप्रकार रामार्चनचन्द्रिकामे लिखाहै ॥ ३८ ॥

अन्यच्च।

पञ्चमी सप्तमी षष्ठी द्वितीया पूर्णिमा सिता।
त्रयोदशी च दशमी प्रशस्ता सर्वकामदा ॥ ३९ ॥

इति सनत्कुमारतन्त्रे।

अर्थ–सनत्कुमारतन्त्रमें लिखाहै कि, पञ्चमी, सप्तमी षष्ठी, द्वितीया, पूर्णिमा और शुक्लपक्षकी त्रयोशी और दशमी तिथिमें मन्त्रग्रहण करना चाहिये उक्त समस्त तिथियोंमे मन्त्रग्रहण करनेसे सम्पूर्ण कामनाये पूर्ण होती हैं ॥ ३९ ॥

अपरञ्च।

चतुर्थी पञ्चमी चैव चतुर्दश्यष्टमी तथा।
तिथयः शुभदाः प्रोक्ता दीक्षाग्रहणकर्मणि ॥ ४० ॥ (ख)

इति तन्त्रान्तरे।

अर्थ–तन्त्रान्तरमे लिखा है कि–चतुर्थी, पञ्चमी, चतुर्दशी और अष्टमी तिथि दीक्षा-विषयमें शुभदायक होती है. किन्तु इनके मध्यमे विशेष यही है कि, चतुर्दशी

(क) इति यत् षष्ठीत्रयोदशीविधानं तद्विष्णु विषयं रामार्चनचन्द्रिकाधृतत्वात्। इति कृष्णानन्दः।

(ख) अत्र वचने चतुर्दश्यष्टमीति शक्तिविषयं चतुर्थी तु गणेशविषयं तत्तत्कल्पोक्तत्वात्। इति तन्त्रसारे कृष्णानन्दः ॥

और अष्टमी तिथि शक्तिदीक्षामें प्रशस्त हैं और चतुर्थी तिथिमे गणेशका मन्त्रग्रहण करनेसे शुभफल प्राप्त होता है ॥ ४० ॥

प्रकारान्तरञ्च ।

शुक्लपक्षस्य दशमी सप्तमी च विशेषतः ।
निन्द्या सदैव षष्ठी स्यादिति शैवागमान्तरे ॥ ४१ ॥

अर्थ-शुक्लपक्षकी दशमी, सप्तमी और षष्ठी तिथि दीक्षाविषयमें निन्दित है, इस प्रकार शैवागममें लिखा है अत एव इन सब तिथियोंमें शिवमन्त्र ग्रहण न करना चाहिये ॥ ४१ ॥

अथ दीक्षायाः वारनिर्णयः ।

रविवारे भवेद्वित्तं सोमे शान्तिर्भवेत्किल ।
आयुरङ्गारके हन्ति तत्र दीक्षां विवर्जयेत् ॥ ४२ ॥
बुधे सौन्दर्य्यमाप्नोति ज्ञानं स्याच्चु बृहस्पतौ ।
शुक्रे सौभाग्यमाप्नोति यशोहानिः शनैश्वरे ॥ ४३ ॥

इति तन्त्रान्तरे ।

अर्थ-दीक्षाके वार कहते हैं-तन्त्रान्तरमें लिखा है कि, रविवारमे मन्त्रग्रहण करनेसे धन प्राप्त होता है. इसी प्रकार सोमवारमें शान्ति प्राप्त होती है, मङ्गलवारमे आयुका नाश होता है, बुधवारमे सौन्दर्य प्राप्त होता है, बृहस्पतिवारमें ज्ञान प्राप्त होता है, शुक्रवारमें सौभाग्यकी प्राप्ति होती है और शनिवारमें मन्त्रग्रहण करनेसे यशकी हानि होती है ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

अथ दीक्षायाः नक्षत्रनिर्णयः ।

अश्विन्यां सुखमाप्नोति भरण्यां मरणं ध्रुवम् ।
कृत्तिकायां भवेद्दुःखी रोहिण्यां वाक्पतिर्भवेत् ॥ ४४ ॥
मृगशीर्षे सुखावाप्तिरार्द्रायां बन्धुनाशनम् ।
पुनर्वसौ धनाढ्यः स्यात्पुष्ये शत्रुविनाशनम् ॥ ४५ ॥
आश्लेषायां भवेन्मृत्युर्मघायां दुःखमोचनम् ।
सौन्दर्यं पूर्वफाल्गुन्यां प्राप्नोति च न संशयः ॥ ४६ ॥
ज्ञानञ्चोत्तरफाल्गुन्यां हस्तायाञ्च धनी भवेत् ।
चित्रायां ज्ञानसिद्धिः स्यात्स्वात्यां शत्रुविनाशनम् ॥ ४७ ॥

विशाखायां सुखं चानुराधायां बन्धुवर्द्धनम्।
ज्येष्ठायां सुतहानिः स्यान्मूलायां कीर्तिवर्द्धनम्॥ ४८॥
पूर्वाषाढोत्तराषाढे भवेतां कीर्तिदायिके।
श्रवणायां भवेद्दुःखी धनिष्ठायां दरिद्रता॥ ४९॥
बुद्धिः शतभिषायां स्यात्पुर्वभाद्रे सुखी भवेत्।
सौख्यञ्चोत्तरभाद्रे च रेवत्यां कीर्तिवर्धनम्॥ ५०॥

अर्थ--अब दीक्षाके नक्षत्र कहते है-अश्विनी नक्षत्रमे मन्त्रग्रहण करनेसे सुख प्राप्त होता है, इसीप्रकार भरणीमें मृत्यु होती है, कृत्तिकामे दुःख होता है, रोहिणीमें बृहस्पतिके तुल्य होता है, मृगशिरमे सुख होता है, आर्द्रामे बुद्धिका नाश होता है, पुनर्वसुमे धन प्राप्त होता है, पुष्यमे शत्रुओंका नाश होता है, आश्लेषामे मृत्यु होती है मघामे दुःखकी शान्ति होती है, पूर्वाफाल्गुनीमे सौंदर्यलाभ होता है, उत्तराफाल्गुनी-मे ज्ञानका उदय होता है, हस्तमे धनप्राप्ति होतीहै, चित्रामे ज्ञानकी सिद्धि होती है स्वातिमे शत्रुओका नाश होता है. विशाखामें सुख प्राप्त होता है, अनुराधामे बान्धवोकी वृद्धि होती है. ज्येष्ठामे सुतकी हानि होती है, मूल, पूर्वाषाढा और उत्तराषाढा में कीर्तिकी वृद्धि होती है, श्रवणमे दुःख होता है, धनिष्ठामें दरिद्रता प्राप्त होती है, शतभिषामें बुद्धिकी वृद्धि होती है, पूर्वाभाद्रपदामे और उत्तराभाद्र-पदामे सुख प्राप्त होता है और रेवती नक्षत्रमे मन्त्रग्रहण करनेसे प्रतिष्ठा बढती है॥ ४४॥ ४५॥ ४६॥ ४७॥ ४८॥ ४९॥ ५०॥

अपिच।

आर्द्रायां कृत्तिकायाञ्च मन्त्रारम्भः प्रशस्यते।
यदीशस्य कृशानोर्वा मन्त्रारम्भौ यथाक्रमात्॥ ५१॥

अर्थ-आर्द्रा और कृत्तिका नक्षत्रमे मन्त्रको ग्रहण न करै, किन्तु आर्द्रा नक्षत्रमें शिवमन्त्र और कृत्तिकानक्षत्रमे अग्निके मन्त्रको ग्रहण करना चाहिये॥ ५१॥

अपरञ्च।

अश्विनीभरणीस्वातिविशाखाहस्तभेषु च।
ज्येष्ठोत्तरात्रये चैवंकुर्यान्मन्त्राभिषेचनम्॥ ५२॥ (+)

(+) इति ज्येष्ठा भरण्योर्विधानं तदगस्त्यसंहितोक्तत्वात्।

अर्थ–अश्विनी, भरणी, स्वाति, विशाखा, हस्त, ज्येष्ठा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा और उत्तराभाद्रपदा नक्षत्रमे मन्त्रग्रहण करना चाहिये, इस वचनमें जो ज्येष्ठा और भरणी नक्षत्रमें मन्त्रग्रहण करनेका विधान है उसको अगस्त्यसंहितोक्त जानना चाहिये ॥ ५२ ॥

अथ दीक्षायाः योगकथनम् ।

शुभः सिद्धस्तथायुष्मान्ध्रुवयोगस्ततः परम् ।
प्रीतिःसौभाग्ययोगश्च वृद्धियोगस्ततः परम् ।
हर्षणश्च तथा योगाः सर्वतन्त्रे शुभावहाः ॥ ५३ ॥

इति विश्वसारतन्त्रे ।

अर्थ- विश्वसारतन्त्रमें लिखा है कि--शुभ, सिद्ध, आयुष्मान् , ध्रुव, प्रीति, सौभाग्य, वृद्धि और हर्षण इन सब योगोंमे दीक्षा प्रशस्त है ॥ ५३ ॥

अथ दीक्षायाः करणनिर्णयः ।

ववबालवकौलवतैतिल (१) स्तदनन्तरम् ।
करणानि शुभान्येव सर्वतन्त्रेषु भाषितम् ॥ ५४ ॥

अर्थ–अब दीक्षाविषयमें प्रशस्तकरण कहते हैं– बव, बालव, कौलव, तैतिल यह सब करण दीक्षाविषयमे प्रशस्त हैं.किसी २ आचार्य्यके मतसे गर और वणिज करण भी दीक्षामें प्रशस्त हैं ॥ ५४ ॥

अथ दीक्षायाः लग्ननिर्णयः ।

वृषे सिंहे च कन्यायां धनुर्मीनाख्यलग्नके ।
चन्द्रतारानुकूल्ये च कुर्यादीक्षाप्रवर्त्तनम् ॥ ५५ ॥

अर्थ–अब दीक्षामें प्रशस्तलग्नोंको कहते हैं--वृष, सिंह, कन्या, धनु और मीनलग्नमें चन्द्रमा और ताराके शुद्ध होनेसे दीक्षाग्रहण करनी चाहिये ॥ ५५ ॥

अपिच ।

स्थिरलग्नं विष्णुमन्त्रे शिवमन्त्रे चरं शुभम् ।
द्विस्वभावगतं लग्नं शक्तिमन्त्रे प्रशस्यते ॥ ५६ ॥

अर्थ–अब लग्नसम्बन्धमें विशेष कहते हैं वृष. सिंह. वृश्चिक और कुम्भ इनमें विष्णुके मन्त्रको ग्रहण करै. मेष, कर्क, तुला और मकर इन सब लग्नोंमें शिवमन्त्र

(१) गरवणजस्तदनन्तरम् । इति क्वचित्पुस्तके पाठ. ।

ग्रहण करनेसे शुभदायक होता है और मिथुन, कन्या, धनु और मीन लग्नोंमें शक्ति (देवी) का मन्त्रग्रहण करना चाहिये ॥ ५६ ॥

अपरञ्च ।

त्रिषडायगताः पापाः शुभाः केन्द्रत्रिकोणगाः ।
दीक्षायान्तु शुभाः सर्वे रन्ध्रस्थाः सर्वनाशकाः ॥ ५७ ॥

इत्यगस्त्यसंहितायाम् ।

अर्थ–अगस्त्यसंहितामें लिखा है कि–लग्नके तीसरे, छठे, ग्यारहवे स्थानमे पाप ग्रह और लग्नमे वा लग्नके चौथे, सातवें, दशवें, नववे और पांचवे स्थानमें शुभ ग्रह स्थित होनेसे दीक्षा प्रशस्त है किन्तु उक्त सब ग्रहोके आठवें स्थानमे होनेसे दीक्षा अनिष्टदायिका होती है ॥ ५७ ॥

अथ दीक्षायाः पक्षनिर्णयः ।

शुक्लपक्षे शुभा दीक्षा कृष्णेऽप्यापञ्चमादिनात् ॥ ५८ ॥

इति तन्त्रान्तरे ।

अर्थ–तन्त्रान्तरमे लिखा है कि, शुक्लपक्षमे दीक्षाग्रहण शुभदायक होता है और कृष्णपक्षकी पञ्चमी तिथितक दीक्षाग्रहणमे प्रशस्त है ॥ ५८ ॥

शुक्लपक्षे तु कृष्णे वा दीक्षा सर्वशुभावहा ॥ ५९ ॥

इति अगस्त्यसंहितायाम् ।

अर्थ–अगस्त्यसंहितामे लिखा है कि, शुक्लपक्ष वा कृष्णपक्ष इन दोनो पक्षोमेही दीक्षाग्रहण करनी चाहिये ॥ ५९ ॥

मुक्तिकामैः कृष्णपक्षे भूतिकामैः सितेसदा ॥ ६० ॥

इति कालोत्तरे ।

अर्थ–कालोत्तरमे लिखा है कि, ऐश्वर्य्यकी इच्छा करनेवाले मनुष्यको शुक्लपक्षमे दीक्षा ग्रहण करनी चाहिये और मुक्तिकी कामना करनेवाला मनुष्य कृष्णपक्षमेही दीक्षाग्रहण करै ॥ ६० ॥

निषिद्धमासादौ तिथिविशेषाणां प्राशस्त्यमाह ।

षष्ठी भाद्रपदे मासि इषे कृष्णा चतुर्दशी ।
कार्तिके नवमी शुक्ला मार्गे शुक्ला तृतीयका ॥ ६१ ॥

पौषे च नवमी शुक्ला माघे शुक्ला चतुर्थिका ।
फाल्गुने नवमी (क) शुक्ला चैत्रे कामचतुर्दशी ॥ ६२ ॥ (ख)

इति रत्नावल्याम् ।

अर्थ–अब निषिद्ध मासादिमें तिथिविशेषकी प्रशस्तता कहते हैं--भादोंकी षष्ठी तिथि, आश्विनके कृष्णपक्षकी चतुर्दशी, कार्तिकके शुक्लपक्षकी नवमी, अग्रहायणके शुक्लपक्षकी तृतीया, पौषकी शुक्लनवमी, माघके शुक्लपक्षकी चतुर्थी, फाल्गुनके शुक्लपक्षकी नवमी और चैत्रमासके शुक्लपक्षकी (काम) चतुर्दशी तिथि, मन्त्रग्रहणमें प्रशस्त हैं अर्थात् उक्त सबतिथियोमें मासादिका विचार नही होता है ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

अन्यच्च ।

वैशाखे चाक्षया चैव ज्येष्ठे दशहरा तिथिः ।
आषाढे नवमी शुक्ला श्रावणे कृष्णपञ्चमी ॥ ६३ ॥
एतानि देवपर्वाणि तीर्थकोटिफलं लभेत् ।
अत्र दीक्षा प्रकर्त्तव्या न मासञ्च परीक्षयेत् ॥ ६४ ॥
नवारं न च नक्षत्रं न तिथ्यादिकदूषणम् ।
न योगकरणञ्चैव शङ्करेणेति भाषितम् ॥ ६५ ॥

अर्थ–अब देवपर्वको वर्णन करते हैं–वैशाखके शुक्लपक्षकी तृतीया, (अक्षय्य तृतीया) ज्येष्ठका दशहरा, (शुक्लपक्षकी दशमी) आषाढके शुक्लपक्षकी नवमी और श्रावणके कृष्णपक्षकी पञ्चमी इन (नागपञ्चमी) सब तिथियोको देवपर्व कहतेहै, उक्त सब तिथियोंमे पुण्यकर्म्म करनेसे कोटितीर्थोंका फल प्राप्त होताहै और यह सब तिथिये दीक्षाविषयमें अतिप्रशस्त हैं इनमें दीक्षाग्रहण करनेसे मासपरीक्षा नही होतीहै और वार, नक्षत्र, तिथि, योग और करण इनके विचार करनेकाभी प्रयोजन नही होताहै इस प्रकार देवादिदेव महादेवजीने कहाहै ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥

चैत्रे त्रयोदशी शुक्ला वैशाखैकादशी सिता ।
ज्येष्ठे चतुर्दशी कृष्णा आषाढे नागपञ्चमी ॥ ६६ ॥
श्रावणैकादशी भाद्रे रोहिणी सहिताष्टमी ।
आश्विने च महापुण्या महाष्टम्यप्यभीष्टदा ॥ ६७ ॥

(क) फाल्गुने दशमी शुक्लेति पाठः ।
(ख) चैत्रे कामत्रयोदशी इति क्वचित्पाठः ।

कार्त्तिके नवमी शुक्ला मार्गशीर्षे तथा सिता।
षष्ठी चतुर्दशी पौषे माघेऽप्येकादशी सिता ॥
फाल्गुने च सिता षष्ठी चेति कालविनिर्णयः ॥ ६८ ॥

अर्थ--ग्रन्थान्तरमे लिखाहै कि, चैत्रके शुक्लपक्षकी त्रयोदशी, (कामत्रयोदशी) वैशाखके शुक्लपक्षकी एकादशी, ज्येष्ठके कृष्णपक्षकी चतुर्दशी, आषाढकी नागपञ्चमी- (कृष्णपक्षकी पञ्चमी) श्रावणकी एकादशी,भादोंकी रोहिणी युक्त अष्टमी(जन्माष्टमी) आश्वि-नकी महाष्टमी (शुक्लपक्षकी अष्टमी) कार्त्तिकके शुक्लपक्षकी नवमी (जगद्धात्री नवमी) अग्रहायणके शुक्ल पक्षकी षष्ठी, पौषकी चतुर्दशी. माघके शुक्लपक्षकी एकादशी और फाल्गुनके शुक्लपक्षकी षष्ठी यह सब तिथिये दीक्षाविषयमे प्रशस्त है और इनमे दीक्षा ग्रहण करनेसे मास तिथि और नक्षत्रादिके विचार करनेकी आवश्यकता नहीं होतीहै ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ ६८ ॥

अपरञ्च।

अयने विषुवे चैव ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः।
रविसंक्रान्तिदिवसे युगाद्यायां सुरेश्वरि।
मन्वन्तरासु सर्वासु महापूजादिने तथा ॥ ६९ ॥

इति योगिनीतन्त्रे।

अर्थ—योगिनीतन्त्रमें महादेवजीने पार्वतीके प्रति कहाहै कि, हेसुरेश्वरि ! दक्षिणायन और उत्तरायणकी संक्रान्तिमें, विषुव और जलविषुव संक्रान्तिमें, चन्द्र और सूर्य्यके ग्रहणमे. अन्य साधारण संक्रान्तिमे, युगाद्यामें, सब मन्वन्तरोमे और महाष्टमी और महानवमीमें दीक्षाग्रहण अतिपुनीत होताहै. इसमे भी मास, तिथि, नक्षत्रादिका विचार नही होताहै, परन्तु साधारण संक्रान्तिसे अयन और विषुव संक्रान्तिमें मन्त्र-ग्रहण अधिक पुनीत होताहै ॥ ६९ ॥

अपिच।

निन्दितेष्वपि कालेषु दीक्षोक्ता ग्रहणे तु वा।
सूर्यग्रहणकालस्य समानो नास्तिभूतले ॥ ७० ॥
विशेषतो महादेवि दीक्षाग्रहणकर्मणि।
तत्र यद्यत्कृतं सर्वमनन्तफलदं भवेत् ॥ ७१ ॥

अर्थ—शिवजीने कहाहै कि, हे देवि ! निन्दित कालमे भी ग्रहणके समान दूसरा

कार्त्तिके नवमी शुक्ला मार्गशीर्षे तथा सिता ।
षष्ठी चतुर्दशी पौषे माघेऽप्येकादशी सिता ॥
फाल्गुने च सिता षष्ठी चेति कालविनिर्णयः ॥ ६८ ॥

अर्थ--ग्रन्थान्तरमे लिखाहै कि, चैत्रके शुक्लपक्षकी त्रयोदशी. (कामत्रयोदशी) वैशाखके शुक्लपक्षकी एकादशी, ज्येष्ठके कृष्णपक्षकी चतुर्दशी. आषाढकी नागपञ्चमी-(कृष्णपक्षकी पञ्चमी) श्रावणकी एकादशी,भादोंकी रोहिणी युक्त अष्टमी(जन्माष्टमी) आश्विनकी महाष्टमी (शुक्लपक्षकी अष्टमी) कार्त्तिकके शुक्लपक्षकी नवमी (जगद्धात्री नवमी) अग्रहायणके शुक्ल पक्षकी षष्ठी. पौषकी चतुर्दशी. माघके शुक्लपक्षकी एकादशी और फाल्गुनके शुक्लपक्षकी षष्ठी यह सब तिथियें दीक्षाविषयमे प्रशस्त है और इनमे दीक्षा ग्रहण करनेसे मास तिथि और नक्षत्रादिके विचार करनेकी आवश्यकता नहीं होतीहै ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ ६८ ॥

अपरञ्च ।

अयने विषुवे चैव ग्रहणे चन्द्रसूर्य्ययोः ।
रविसंक्रान्तिदिवसे युगाद्यायां सुरेश्वरि ।
मन्वन्तरासु सर्वासु महापूजादिने तथा ॥ ६९ ॥

इति योगिनीतन्त्रे ।

अर्थ–योगिनीतन्त्रमे महादेवजीने पार्वतीके प्रति कहाहै कि, हेसुरेश्वरि ! दक्षिणायन और उत्तरायणकी संक्रान्तिमें, विषुव और जलविषुव संक्रान्तिमें, चन्द्र और सूर्य्यके ग्रहणमे. अन्य साधारण संक्रान्तिमे, युगाद्यामें, सब मन्वन्तरोमे और महाष्टमी और महानवमीमें दीक्षाग्रहण अतिपुनीत होताहै. इसमे भी मास, तिथि, नक्षत्रादिका विचार नही होताहै, परन्तु साधारण संक्रान्तिसे अयन और विषुव संक्रान्तिमें मन्त्रग्रहण अधिक पुनीत होताहै ॥ ६९ ॥

अपिच ।

निन्दितेष्वपि कालेषु दीक्षोक्ता ग्रहणे तु वा ।
सूर्य्यग्रहणकालस्य समानो नास्तिभूतले ॥ ७० ॥
विशेषतो महादेवि दीक्षाग्रहणकर्मणि ।
तत्र यद्यत्कृतं सर्वमनन्तफलदं भवेत् ॥ ७१ ॥

अर्थ–शिवजीने कहाहै कि, हे देवि ! निन्दित कालमे भी ग्रहणके समान दूसरा

पौषे च नवमी शुक्ला माघे शुक्ला चतुर्थिका ।
फाल्गुने नवमी (क) शुक्ला चैत्रे कामचतुर्दशी ॥ ६२ ॥ (ख)

इति रत्नावल्याम् ।

अर्थ–अब निषिद्ध मासादिमे तिथिविशेषकी प्रशस्तता कहते है--भादोंकी षष्ठी तिथि, आश्विनके कृष्णपक्षकी चतुर्दशी, कार्तिकके शुक्लपक्षकी नवमी, अग्रहायणके शुक्लपक्षकी तृतीया, पौषकी शुक्लनवमी, माघके शुक्लपक्षकी चतुर्थी, फाल्गुनके शुक्लपक्षकी नवमी और चैत्रमासके शुक्लपक्षकी (काम) चतुर्दशी तिथि, मन्त्रग्रहणमें प्रशस्त हैं अर्थात् उक्त सबतिथियोमे मासादिका विचार नही होता है ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

अन्यच्च ।

वैशाखे चाक्षया चैव ज्येष्ठे दशहरा तिथिः ।
आषाढे नवमी शुक्ला श्रावणे कृष्णपञ्चमी ॥ ६३ ॥
एतानि देवपर्वाणि तीर्थकोटिफलं लभेत् ।
अत्र दीक्षा प्रकर्त्तव्या न मासञ्च परीक्षयेत् ॥ ६४ ॥
नवारं न च नक्षत्रं न तिथ्यादिकदूषणम् ।
न योगकरणञ्चैव शङ्करेणेति भाषितम् ॥ ६५ ॥

अर्थ–अब देवपर्वको वर्णन करते हैं–वैशाखके शुक्लपक्षकी तृतीया, (अक्षय्य तृतीया) ज्येष्ठका दशहरा, (शुक्लपक्षकी दशमी) आषाढके शुक्लपक्षकी नवमी और श्रावणके कृष्णपक्षकी पञ्चमी इन (नागपञ्चमी) सब तिथियोको देवपर्व कहतेहैं, उक्त सब तिथियोंमे पुण्यकर्म्म करनेसे कोटितीर्थोंका फल प्राप्त होताहै और यह सब तिथिये दीक्षाविषयमें अतिप्रशस्त हैं इनमे दीक्षाग्रहण करनेसे मासपरीक्षा नही होतीहै और वार, नक्षत्र, तिथि, योग और करण इनके विचार करनेकाभी प्रयोजन नही होताहै इस प्रकार देवादिदेव महादेवजीने कहाहै ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥

चैत्रे त्रयोदशी शुक्ला वैशाखैकादशी सिता ।
ज्येष्ठे चतुर्दशी कृष्णा आषाढे नागपञ्चमी ॥ ६६ ॥
श्रावणैकादशी भाद्रे रोहिणी सहिताष्टमी ।
आश्विने च महापुण्या महाष्टम्यप्यभीष्टदा ॥ ६७ ॥

(क) फाल्गुने दशमी शुक्लेति पाठः ।
(ख) चैत्रे कामत्रयोदशी इति क्वचित्पाठः ।

पौषे च नवमी शुक्का माघे शुक्का चतुर्थिका ।
फाल्गुने नवमी (क) शुक्का चैत्रे कामचतुर्दशी ॥ ६२ ॥ (ख)

इति रत्नावल्याम् ।

अर्थ–अब निषिद्ध मासादिमें तिथिविशेषकी प्रशस्तता कहते हैं--भादोंकी षष्ठी तिथि, आश्विनके कृष्णपक्षकी चतुर्दशी, कार्तिकके शुक्लपक्षकी नवमी, अग्रहायणके शुक्लपक्षकी तृतीया, पौषकी शुक्लनवमी, माघके शुक्लपक्षकी चतुर्थी, फाल्गुनके शुक्लपक्षकी नवमी और चैत्रमासके शुक्लपक्षकी (काम) चतुर्दशी तिथि, मन्त्रग्रहणमें प्रशस्त हैं अर्थात् उक्त सबतिथियोमें मासादिका विचार नहीं होता है ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

अन्यच्च ।

वैशाखे चाक्षया चैव ज्येष्ठे दशहरा तिथिः ।
आषाढे नवमी शुक्का श्रावणे कृष्णपञ्चमी ॥ ६३ ॥
एतानि देवपर्वाणि तीर्थकोटिफलं लभेत् ।
अत्र दीक्षा प्रकर्त्तव्या न मासञ्च परीक्षयेत् ॥ ६४ ॥
नवारं न च नक्षत्रं न तिथ्यादिकदूषणम् ।
न योगकरणञ्चैव शङ्करेणेति भाषितम् ॥ ६५ ॥

अर्थ–अब देवपर्वको वर्णन करते हैं–वैशाखके शुक्लपक्षकी तृतीया, (अक्षय्य तृतीया) ज्येष्ठका दशहरा, (शुक्लपक्षकी दशमी) आषाढके शुक्लपक्षकी नवमी और श्रावणके कृष्णपक्षकी पञ्चमी इन (नागपञ्चमी) सब तिथियोको देवपर्व कहतेहैं, उक्त सब तिथियोंमें पुण्यकर्म्म करनेसे कोटितीर्थोंका फल प्राप्त होताहै और यह सब तिथिये दीक्षाविषयमें अतिप्रशस्त हैं इनमें दीक्षाग्रहण करनेसे मासपरीक्षा नहीं होतीहै और वार, नक्षत्र, तिथि, योग और करण इनके विचार करनेकाभी प्रयोजन नहीं होताहै इस प्रकार देवादिदेव महादेवजीने कहाहै ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥

चैत्रे त्रयोदशी शुक्का वैशाखैकादशी सिता ।
ज्येष्ठे चतुर्दशी कृष्णा आषाढे नागपञ्चमी ॥ ६६ ॥
श्रावणैकादशी भाद्रे रोहिणी सहिताष्टमी ।
आश्विने च महापुण्या महाष्टम्यप्यभीष्टदा ॥ ६७ ॥

(क) फाल्गुने दशमी शुक्लेति पाठ. ।

(ख) चैत्रे कामत्रयोदशी इति क्वचित्पाठः ।

कार्त्तिके नवमी शुक्ला मार्गशीर्षे तथा सिता।
षष्ठी चतुर्दशी पौषे माघेऽप्येकादशी सिता॥
फाल्गुने च सिता षष्ठी चेति कालविनिर्णयः॥ ६८॥

अर्थ--ग्रन्थान्तरमे लिखाहै कि, चैत्रके शुक्लपक्षकी त्रयोदशी, (कामत्रयोदशी) वैशाखके शुक्लपक्षकी एकादशी, ज्येष्ठके कृष्णपक्षकी चतुर्दशी. आषाढकी नागपञ्चमी-(कृष्णपक्षकी पञ्चमी) श्रावणकी एकादशी,भादोंकी रोहिणी युक्त अष्टमी(जन्माष्टमी) आश्विनकी महाष्टमी (शुक्लपक्षकी अष्टमी) कार्त्तिकके शुक्लपक्षकी नवमी (जगद्धात्री नवमी) अग्रहायणके शुक्ल पक्षकी षष्ठी. पौषकी चतुर्दशी. माघके शुक्लपक्षकी एकादशी और फाल्गुनके शुक्लपक्षकी षष्ठी यह सब तिथियें दीक्षाविषयमें प्रशस्त हैं और इनमें दीक्षा ग्रहण करनेसे मास तिथि और नक्षत्रादिके विचार करनेकी आवश्यकता नहीं होतीहै॥ ६६॥ ६७॥ ६८॥

अपरञ्च।

अयने विषुवे चैव ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः।
रविसंक्रान्तिदिवसे युगाद्यायां सुरेश्वरि।
मन्वन्तरासु सर्वासु महापूजादिने तथा॥ ६९॥

इति योगिनीतन्त्रे।

अर्थ-योगिनीतन्त्रमे महादेवजीने पार्वतीके प्रति कहाहै कि, हेसुरेश्वरि ! दक्षिणायन और उत्तरायणकी संक्रान्तिमें, विषुव और जलविषुव संक्रान्तिमें, चन्द्र और सूर्यके ग्रहणमे. अन्य साधारण संक्रान्तिमे, युगाद्यामें, सब मन्वन्तरोमे और महाष्टमी और महानवमीमें दीक्षाग्रहण अतिपुनीत होताहै. इसमें भी मास, तिथि, नक्षत्रादिका विचार नहीं होताहै, परन्तु साधारण संक्रान्तिसे अयन और विषुव संक्रान्तिमें मन्त्र-ग्रहण अधिक पुनीत होताहै॥ ६९॥

अपिच।

निन्दितेष्वपि कालेषु दीक्षोक्ता ग्रहणे तु वा।
सूर्यग्रहणकालस्य समानो नास्तिभूतले॥ ७०॥
विशेषतो महादेवि दीक्षाग्रहणकर्मणि।
तत्र यद्यत्कृतं सर्वमनन्तफलदं भवेत्॥ ७१॥

अर्थ-शिवजीने कहाहै कि, हे देवि ! निन्दित कालमे भी ग्रहणके समान दूसरा

काल मन्त्रग्रहणमें नहीं है, विशेषकरके दीक्षामे सूर्य्यग्रहणके समान पुण्यकाल पृथिवीमे और नहीं है. सूर्य्यग्रहणके समय जिस किसी पुण्यकर्म्मका अनुष्ठान किया जाय तो उसमें अनन्तफल प्राप्त होताहै ॥ ७० ॥ ७१ ॥

अन्यच्च ।

रविसंक्रमणे चैव सूर्यस्य ग्रहणे तथा ।
तत्र लग्नादिकं किञ्चिन्न विचार्यं कथञ्चन ॥ ७२ ॥

अर्थ—संक्रान्तिके पुण्यकालसमयमें और सूर्य्यग्रहणके कालमें दीक्षाग्रहण करनेसे लग्नादि कुछभी विचार नहीं होताहै ॥ ७२ ॥

अपरञ्च ।

रविसंक्रमणे चैव नान्यदन्वेषितं भवेत् ।
न वारतिथिमासादिशोधनं सूर्यपर्वणि ॥ ७३ ॥

अर्थ—संक्रान्तिके पुण्यकालमे और ग्रहणसमयके कालमें मन्त्र ग्रहण करनेसे मास तिथि और वारादिके शुभाशुभ देखनेकी आवश्यकता नही है ॥ ७३ ॥

प्रकारान्तरञ्च ।

देव्याबोधं समारभ्य यावत्स्यान्नवमीतिथिः ।
कृते तासु शुभा दीक्षा सर्वाभीष्टफलप्रदा ॥ ७४ ॥

इति विष्णुयामले ।

अर्थ—विष्णुयामलमे लिखाहै कि, भगवती दुर्गा देवीके बोधनसे महानवमीतक जो पन्द्रह तिथि हैं उनमे दीक्षाग्रहण करनेसे सम्पूर्ण अभीष्टसिद्धि होती है ॥ ७४ ॥

तत्रापि शावरीपूजा यत्र देवि गृहे गृहे ।
तत्र दीक्षा प्रकर्त्तव्या मासर्क्षादीन्न शोधयेत् ॥ ७५ ॥

इति विष्णुयामले ।

अर्थ--विष्णुयामलमे लिखा है कि, जिस समयमें घर २ के मतो भगवती शारदा देवीका पूजन होवै उस समयमें भी दीक्षाग्रहणकरनेसे मास, नक्षत्र और तिथ्या-दिका विचार नही होता है ॥ ७५ ॥

अन्यच्च ।

शुक्लपक्षे विशेषेण तत्रापि तिथिरष्टमी ।
बोधने चैव दुर्गायाः कालाकालं न शोधयेत् ॥ ७६ ॥

इति [illegible] ।

अर्थ–रुद्रयामलमें लिखाहै कि, भगवती दुर्गादेवीके बोधनमे विशेषकरके महाष्टमी तिथिमें मन्त्रग्रहण करनेसे कालाकालका विचार नहीं होता है ॥ ७६ ॥

अपरञ्च ।

न कुर्याच्छाक्तिकीं दीक्षामुपरक्ते विभावसौ ।
न कुर्याद्वैष्णवीन्तान्तु यदि चन्द्रमसो ग्रहः ॥ ७७ ॥ (क)

इति रुद्रयामले ।

अर्थ–रुद्रयामलमे लिखा है कि, सूर्य्यग्रहणमे शक्तिमन्त्र न ग्रहण करे और चन्द्रग्रहणमें विष्णुमन्त्रका निषेध है ॥ ७७ ॥

किन्तु गौतमीयतन्त्रमे लिखा है कि, चन्द्रग्रहणमें और सूर्य्यग्रहणमें विष्णुका मन्त्र ग्रहणकरना चाहिये और योगिनी हृदयमें भी सूर्य्यग्रहणके समय शक्तिमन्त्रके ग्रहणकरनेको कहा है इस विरोधकी मीमांसा तन्त्रसारमे कृष्णानन्दभट्टाचार्यने इस प्रकार करी है कि, सूर्य्यग्रहणमें श्रीविद्याका मन्त्र ग्रहण करे और चन्द्रग्रहणमें गोपालमन्त्रका ग्रहणकरना चाहिये. इसके अतिरिक्तमे निषेधका सार्थक होता है ॥

सूर्यग्रहणे विशेषमाह ।

श्रीपराकालीबीजानि लोपादौर्गश्च यो मनुः ।
सूर्यस्योपग्रहे लब्धो नृणां शीघ्रफलप्रदः ॥ ७८ ॥

अर्थ–मन्त्रग्रहणके विषयमे सूर्य्यग्रहणमें, विशेष कहते हैं, यथा–श्रीबीज, मायाबीज, कालीबीज, लोपादुर्गाका मन्त्र यदि भाग्यवशसे किसी मनुष्यको सूर्य्यग्रहणकालमें प्राप्त होय तब वह मन्त्र शीघ्र फलदान करता है ॥ ७८ ॥

अथ तारादिविद्यायांविशेषः ।

दीक्षाकालं प्रवक्ष्यामि नीलतन्त्रानुसारतः ।
कृष्णपक्षस्य चाष्टम्यां शुभे लग्ने शुभे क्षणे ॥ ७९ ॥
पूर्वाभाद्रपदायुक्ते मित्रताशादिसंयुते ।
अथवा ह्यनुराधायां रेवत्यां वा प्रशस्यते ॥ ८० ॥

अर्थ–अब तारादिविद्याकी दीक्षाविषयमें नीलतन्त्रोक्त काल कहते हैं, कृष्णपकी अष्टमी तिथिमे शुभलग्नमे 'शुभ घडीमें' पूर्वाभाद्रपदा, अनुराधा, अथवा रेवती नक्षत्रमे मित्रादि ताराहोनेसे दीक्षा प्रशस्त है ॥ ७९ ॥ ८० ॥

(क) एतच्च गोपालश्रीविद्येतराविषयम् । अन्येषु पुण्ययोगेषु ग्रहणे चन्द्र सूर्य्ययोरिति गौतमीयात् । सूर्य्यग्रहणकाले तु नान्यदन्वेषित नेवेदिति योगिनीहृदयाच्च । इति तन्त्रसारे कृष्णानन्देनोक्तम् ॥

अन्यच्च ।

जानीयाच्छोभनं कालं मन्त्रस्य ग्रहणं प्रति ।
इषे चैव विशेषेण कार्त्तिके च विशेषतः ॥ ८१ ॥

अर्थ–वचनान्तरमें कहा है कि, मन्त्रके ग्रहणविषयमें आश्विन और कार्तिक मास ही अधिक प्रशस्त है ॥ ८१ ॥

सूर्यग्रहणसमकालकथनम् ।

अमावस्या सोमवारे भौमवारे चतुर्दशी ।
सप्तमी रविवारे च सूर्यग्रहशतैः समा ॥ ८२ ॥

अर्थ–अब सूर्य्यग्रहणके समानकाल कहते हैं– सोमवारमें अमावस तिथि मङ्गलवारमें चतुर्दशी और रविवारमें सप्तमी तिथि होनेसे शत (१००) सूर्य्य ग्रहणके समान काल होता है ॥ ८२ ॥

अशोकाष्टम्यां विशेषमाह ।

अशोकाख्याष्टमी यत्र रामाख्या नवमी तथा ।
लग्ने वाप्यथवाऽलग्ने यत्र तत्र तिथावपि ॥ ८३ ॥
गुरोराज्ञानुसारेण दीक्षा कार्या विशेषतः ॥ ८४ ॥

इति विष्णुयामले ।

अर्थ–विष्णुयामलमें लिखा है कि, अशोकाष्टमी तिथि वा श्रीरामनवमी तिथिमें लग्नके शुद्ध होनेसे वा अशुद्ध होनेसे भी दीक्षाग्रहण कीजाती है और विशेषकरके गुरुकी आज्ञानुसार हरेक तिथिमें दीक्षा हो सक्ती है ॥ ८३ ॥ ८४ ॥

अन्यच्च ।

ग्रहणे च महातीर्थे नास्ति कालस्य निर्णयः ॥ ८५ ॥

इति योगिनीतन्त्रे ।

अर्थ–योगिनीतन्त्रमें लिखा है कि, महातीर्थमें और ग्रहणसमयमें कालाकालका विचार नहीं होता है ॥ ८५ ॥

अपिच ।

पुण्यतीर्थे कुरुक्षेत्रे देवीपीठचतुष्टये ।
प्रयागे श्रीगिरौ काश्यां कालाकालं न शोधयेत ॥ ८६ ॥

इति मत्रे ।

अर्थ-यामलमे लिखाहै कि, पुण्यतीर्थमे, कुरुक्षेत्रमे, महादेवीकी पीठचतुष्टयमे, प्रयागमे, श्रीशैलपर्वतमें और काशीधाममें कालाकालका विचार नहीं होता है ॥ ८६ ॥

युगाद्यायां विशेषः ।

युगाद्यायां जन्मदिने विवाहदिवसे तथा ।
विषुवायनयोर्द्वन्द्वे नैव किञ्चिद्विचारयेत् ॥ ८७ ॥

इति समयातन्त्रे ।

अर्थ-समयातन्त्रमे लिखाहै कि, चारो युगोके आदिकी तिथिमे, जन्मदिनमे, विवाहके दिनमे, विषुवसंक्रान्ति और अयनसंक्रान्तिमे, मन्त्रादिके ग्रहणमें कुछभी विचार नहीं होताहै ॥ ८७ ॥

अकालादौ दीक्षानिषेधः ।

अस्तंगते दैत्यगुरौ शिशौ च वृद्धेऽथ बाले च गुरौ तथैव ।
भवेन्न दीक्षाग्रहणं शुभाय जीवातिचारे मलमाससंज्ञे ॥ ८८ ॥

इत्यागमार्णवे ।

अर्थ-आगमार्णवमे लिखाहै कि, शुक्र, बुध वा बृहस्पतिके अस्त, वृद्ध अथवा बाल्य होनेसे और बृहस्पतिके वक्री होनेसे वा मलमासमे दीक्षाग्रहण न करना चाहिये ॥ ८८ ॥

अन्यच्च ।

जीवे हरौ दैत्यगुरौ ससूर्ये केतूद्गमे भूचलनादिदोषे ।
अकालवृष्टौ जलदे सगर्ज्जे दीक्षा भवेन्नैव च साधकानाम् ॥ ८९ ॥ (१)

इत्यागमार्णवे ।

अर्थ-आगमार्णवमे लिखा है कि, बृहस्पति सिंहराशिमे स्थित होनेसे अथवा शुक्र वा सूर्य्यके साथ स्थित होनेसे, धूमकेतुके उदयमे, भूमिकम्पादिमे, अकालवृष्टिमें और सन्ध्यागर्जनमे वा अकालमे मेघके गर्ज्जनेसे साधकको दीक्षाग्रहण न करनी चाहिये ॥ ८९ ॥

अकाले प्रतिप्रसवमाह ।

शुक्रोऽस्ते यदि वा वृद्धौ गुर्वादित्यो भवेद्यदि ।
मेषवृश्चिकसिंहेषु यदा दोषो न विद्यते ॥ ९० ॥

इति वाराहीतन्त्रे ।

---

(१) एतत्सर्वं कालाशुद्धिप्रदर्शकम् । अशुद्धकालमुक्ता । 'परीक्षारामयज्ञाश्च पुरश्चरणदीक्षणे" इत्यनेन ज्योतिषे दीक्षानिषेधदर्शनात् ।

अर्थ—पूर्वोक्त अकालके प्रतिप्रसव कहते हैं—वाराहीतन्त्रमें लिखा है कि, मेष, वृष वा सिंहराशिमें शुक्र अस्त वा वृद्ध होनेसे और उक्त सब राशियोंमे गुर्वादित्ययोगकेलिये अकाल नहीं होता है ॥ ९० ॥

अन्यच्च ।

श्रीगुरोर्दर्शनाद्देवि ग्रहणे चन्द्रसूर्य्ययोः ।
न चात्र नियमं कुर्याद्दीक्षायाः कालदेशयोः ॥ ९१ ॥ (२)

इति यामले ।

अर्थ—यामलमें लिखा है कि, गुरुके दर्शन पानेसे, चन्द्र और सूर्य्यके ग्रहणमें दीक्षाका काल और देशका नियम प्रतिपालन न करनेसे भी दोष नही होताहै ॥९१॥

अथ महाविद्याविषये विशेषफलकथनम् ।

महाविद्यासु सर्वासु कालादिविचारो नास्ति
तदुक्तं दश महाविद्यामधिकृत्य ।
कालादिशोधनं नास्ति न चामित्रादिदूषणम् ॥ ९२ ॥

इति मुण्डमालातन्त्रे ।

अर्थ—मुण्डमालातन्त्रमें लिखा है कि, दशमहाविद्याके मन्त्रग्रहणकरनेमे कालाकालको न देखना चाहिये और अमित्रादिकाभी विचार न करना चाहिये ॥ ९२ ॥

अथ दशमहाविद्याकथनम् ।

काली तारा महाविद्या षोडशी भुवनेश्वरी ।
भैरवी छिन्नमस्ता च विद्या धूमावती तथा ॥ ९३ ॥
बगला सिद्धविद्या च मातङ्गी कमलात्मिका ।
एता दशमहाविद्याः सिद्धविद्याः प्रकीर्त्तिताः ॥ ९४ ॥

इति निरुत्तरतन्त्रे चामुण्डातन्त्रे च ।

अर्थ—अब दशमहाविद्याको वर्णन करतेहैं, निरुत्तर और चामुण्डातन्त्रमे लिखाहै कि, काली, तारा, षोडशी, भुवनेश्वरी, भैरवी, छिन्नमस्ता, धूमावती बगलामुखी, मातङ्गी और कमला, इनकोही दशमहाविद्या और सिद्धविद्या कहतेहैं किन्तु इनके मध्यमे विशेष यही है कि, काली और ताराको महामहाविद्या और सिद्धविद्या कहते हैं और बगलाको सिद्धसिद्धविद्या और महाविद्यानामसे कहतेहैं ॥ ९३ ॥ ९४ ॥

(२) निषिद्धदेशमाह—"गयायां भास्करक्षेत्रे विरजे चन्द्रपर्वते । चट्टले च मतङ्गे च तथा कन्याश्रमेषु च । न गृह्णीयात्ततो दीक्षां तीर्थक्षेत्रेषु पार्वति " इति ।

नात्र कालविशुद्धिः स्यात्समयासमयादिकम् ।
न वारतिथिनक्षत्रं न योगः करणं तथा
सिद्धविद्यामहाविद्यायुगसेवाः प्रकीर्त्तिताः ॥ ९५ ॥

इति निरुत्तरतन्त्रे ।

अर्थ-निरुत्तरतन्त्रमे लिखा है कि, अठारह महाविद्या सिद्धविद्या इत्यादिके मन्त्र ग्रहण करनेमे कालाकाल न देखना चाहिये. वार, तिथि और नक्षत्र देखनेकीभी आवश्यकता नही और योगकरणादिके शुद्धाशुद्ध विचार करनेका प्रयोजन नही है । किन्तु सिद्धविद्या और महाविद्याकी युगसेवा करनी चाहिये ॥ ९५ ॥

अष्टादशमहाविद्यामाह ।

काली तारा तथा छिन्ना मातङ्गी भुवनेश्वरी ।
अन्नपूर्णा तथा नित्या दुर्गा महिषमर्दिनी ॥ ९६ ॥
त्वरिता त्रिपुरा त्रिपुटा भैरवी बगला तथा ।
धूमावती तथा ज्ञेया कमला च सरस्वती ॥ ९७ ॥
जयदुर्गा तथा भद्रा तथा त्रिपुरसुन्दरी ।
अष्टादश महाविद्यास्तन्त्रादौ कथिताः प्रिये ॥ ९८ ॥

इति निरुत्तरतन्त्रे ।

अर्थ-अब अष्टादश महाविद्याको कीर्तन करते हैं-निरुत्तरतन्त्रमे सदाशिव महादेवजीने स्वयं पार्वतीके प्रति कहा है कि, हे प्रिये ! काली, तारा, छिन्नमता, मातङ्गी, भुवनेश्वरी. अन्नपूर्णा, नित्या, दूर्गा, महिषमर्दिनी, त्वरिता, त्रिपुरभैरवी, त्रिपुटाभैरवी बगला, धूमावती, कमला, सरस्वती, जयदुर्गा और त्रिपुरसुन्दरी (षोडशी) इन अठारह महाविद्याओंको मैंने तुम्हारे निकट अन्यान्य तन्त्रमें भी कही है ॥ ९६ ॥ ९७ ॥ ९८ ॥

गुरुकृपाऽयं दीक्षाकालः ।

शिष्यानाहूय गुरुणा कृपया दीयते यदि ।
तदा लग्नादिकं किञ्चिन्न विचार्यं कथञ्चन ॥ ९९ ॥

इति विष्णुयामले ।

अर्थ-विष्णुयामलमे लिखा है कि, जिस किसी कालमें दीक्षाग्रहण करनेको कहा है गुरुदेव कृपाकर जिस समयमे शिष्यको मन्त्रग्रहण करावै उसी कालमे

वह मन्त्र शुभदायक होता है इसमें लग्नादि किसीका भी विचार न करना चाहिये ॥ ९९ ॥

अपिच ।

सर्वे वारा ग्रहाःसर्वे नक्षत्राणि च राशयः ।
यस्मिन्नहनि सन्तुष्टो गुरुः सर्वे शुभावहाः ॥ १०० ॥

इति समयातन्त्रे ।

अर्थ—समयातन्त्रमे लिखा है कि, गुरुदेव प्रसन्न होकर जिस दिन शिष्यको मन्त्र प्रदान करे उसी समयसे वार, तिथि, ग्रह और नक्षत्रादि सभी शुभफल प्रदान करते हैं ॥ १०० ॥

इति तन्त्रशास्त्रोक्तदीक्षाकालकथनम् ।

अथ पुरश्चरणकालः ।

चैत्रे मास्यथवा कुर्याच्छुभर्क्षे गुरुशासनात् ।
द्वादश्यां शुक्लपक्षे च माधवे मासि तत्तिथौ ।
आरभेदमलायां वै पुरश्चर्यां सुसिद्धये ॥ १ ॥

इति गौतमीये ।

अर्थ—अब पुरश्चरण करनेका समय कहते हैं—गौतमीयतन्त्रमे लिखा है कि, चैत्र-के महीनेमें, शुभ नक्षत्रमें, गुरुकी आज्ञानुसार अथवा वैशाखके महीनेकी शुक्लाद्वादशी तिथिमें गुरुकी आज्ञानुसार पुरश्चरणका आरम्भ करना चाहिये ॥ १ ॥

चन्द्रतारानुकूल्येच शुक्लपक्षे शुभेऽहनि ।
आरभेन्मकरादौ च सुप्ते विष्णौ जपेन्नच ॥ २ ॥

इति वैशम्पायनसंहितायाम् ।

अर्थ—वैशंपायनसंहितामे लिखा है कि, चन्द्रमा और ताराके शुद्ध होनेमे शुक्ल पक्षमें शुभदिनमे माघसे आदि लेकर छह महीनोमे पुरश्चरणका आरम्भ करना चाहिये, किन्तु श्रीहरिके शयनकालमें पुरश्चरणका आरम्भ न करे ॥ २ ॥

चन्द्रतारानुकूल्ये च शुक्लपक्षे शुभेऽहनि ।
आरभेयुः पुरश्चर्यां हरौ सुप्ते न चाचरेत् ॥ ३ ॥

इति वाराहीतन्त्रे ।

अर्थ—वाराहीतन्त्रमें लिखा है कि, चन्द्रमा और ताराके शुभ होनेमे शुक्लपक्षमें, शुभ दिनमें, श्रीहरिके जाग्रत्कालमे पुरश्चरणका आरम्भ करना चाहिये ॥ ३ ॥

अन्यच्च ।

कार्त्तिकाश्विनवैशाखमाघे वा मार्गशीर्षके ।
फाल्गुने श्रावणे दीक्षा पुरश्चर्या प्रशस्यते ॥ ४ ॥

इति वाराहीतन्त्रे ।

अर्थ–वाराहीतन्त्रमे लिखा है कि, कार्तिक, आश्विन, वैशाख, माघ, अग्रहायण, फाल्गुन और श्रावणमासमे दीक्षा और पुरश्चरण प्रशस्त है ॥ ४ ॥

अपरञ्च ।

रवौ गुरौ सिते सोमे कर्त्तव्यं बुधवासरे ।
चन्द्रतारानुकूल्ये च पुरश्चरणमाचरेत् ॥ ५ ॥

इति वाराहीतन्त्रे ।

अर्थ–रवि, बृहस्पति, शुक्र, सोम और बुधवारमे चन्द्रमा और ताराके शुद्ध होनेसे पुरश्चरण करना चाहिये । वाराहीतन्त्रके वचनान्तरमे इसप्रकार कहा है ॥५॥

प्रकारान्तरञ्च ।

रोहिणी श्रवणार्द्रा च धनिष्ठा चोत्तरात्रयम् ।
पुष्या शतभिषा शस्ता पुरश्चरणकर्मसु ॥ ६ ॥

इति नारदतन्त्रे ।

अर्थ–नारदतन्त्रमें लिखा है कि–रोहिणी, श्रवण, आर्द्रा, धनिष्ठा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा. उत्तराभाद्रपदा, पुष्य और शतभिषा नक्षत्रमें पुरश्चरणका प्रारम्भ करना चाहिये ॥ ६ ॥

पूर्णिमा पञ्चमी चैव द्वितीया सप्तमी तथा ।
त्रयोदशी च दशमी प्रशस्ता सर्वकर्मणि ॥ ७ ॥

इति नारदतन्त्रे ।

अर्थ–नारदतन्त्रके वचनान्तरमे कहा है कि–पूर्णिमा, पञ्चमी, द्वितीया, सप्तमी, त्रयोदशी और दशमी तिथिमे सभी कर्म्म प्रशस्त हैं ॥ ७ ॥

सत्तीर्थेऽर्कविधुग्रासे तन्तुदामनपर्वणोः ।
पुरश्चर्यां प्रकुर्वाणो मासर्क्षादीन्न शोधयेत् ॥ ८ ॥

अर्थ–सुन्दर तीर्थमें, सूर्य्य और चन्द्रमाके ग्रहणमे, श्रावणी. पूर्णिमामे और चैत्रके शुक्लपक्षकी चतुर्दशीमे पुरश्चरणके प्रारम्भ करनेसे मास और नक्षत्रादिका विचार नही होता है ॥ ८ ॥

अन्यच्च ।

ग्रहणे च महातीर्थे न कालमवधारयेत् ॥ ९ ॥

अर्थ—वचनान्तरमें कहा है कि, ग्रहणमें और महातीर्थमे (गङ्गादिमें) पुरश्चरणका आरम्भ करनेसे कालाकालका कुछ प्रयोजन नहीं होता है ॥ ९ ॥

इति पुरश्चरणकालः ।

अथ शान्तिपुष्टि कथनम् ।

शुभग्रहार्कवारेषु मृदुक्षिप्रध्रुवेषु च ।
शुभराशीन्दुलग्नेषु शुभं शान्तिकपौष्टिकम् ॥ ११० ॥ (क)

अर्थ—अब शान्ति और पुष्टिकर्मको कहते हैं—शुभग्रहोके वारमे, रविवारमे, चित्रा, अनुराधा, मृगशिर, रेवती, पुष्य, अश्विनी, हस्त, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा और रोहिणीनक्षत्रमे, शुभराशिमें, गोचरमे चन्द्रमा शुद्ध होनेसे और शुभलग्नमें शान्तिक और पौष्टिक कर्म्म करना चाहिये ॥ ११० ॥

अथ हलप्रवाहः ।

पूर्वाग्नियाम्यफणिचित्रशिवान्यभेषु
रिक्ताष्टमीविगतचन्द्रतिथिं विहाय ॥
द्व्यङ्गालिगोससुदये विकुजार्किवारे
शान्तेन्दुयोगकरणेषु हलप्रवाहः ॥ ११ ॥ (ख)

अर्थ—अब हलारम्भ करनेका मुहूर्त्त कहते हैं—पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा, कृत्तिका, भरणी, आश्लेषा चित्रा और आर्द्रा, इन सब नक्षत्रोंको छोडकर अन्य नक्षत्रोंमे, रिक्ता, अष्टमी और अमावास्या भिन्नतिथिमे, मङ्गल और शनिवारको छोडकर अन्यवारोमें, शुभचन्द्रमा, शुभयोग और शुभकरणमे, द्व्यात्मक, वृश्चिक और वृष लग्नमे हल प्रवाह करना अर्थात् हल चलाना चाहिये ॥ ११ ॥

(क) शान्ति कर्म्मणः पुष्टिकर्म्मणश्च विधिमाह—शुभेति । शुभग्रहवारे रविवारे च मृदुक्षिप्रध्रुवगणेषु शुभराशौ गोचरशुद्धे चन्द्रे शुभलग्ने शान्तिकं पौष्टिकञ्च कुर्यादिति ।

(ख) हलप्रवाहमाह—पूर्वेति । पूर्वात्रितयं कृत्तिकाभरण्याश्लेषाचित्रार्द्राव्यतिरिक्तेषु नक्षत्रेषु रिक्ताष्टमीं विगतचन्द्रममावस्याञ्च त्यक्त्वा अन्यतिथौ द्व्यात्मकलग्ने वृश्चिकवृषलग्ने च [illegible] त्यक्त्वा हलप्रवाहः कार्य्यः । तिथिदोषमाह—कृषिपराशरे "शस्यक्षयं प्रतिपदि [illegible] बहुविघ्नकरी षष्ठी कुहूः कृषकनाशिनी । हन्त्यष्टमी बलीवर्दान्नवमी शस्यनाशिनी । [illegible] कीटजननी पति हन्ति चतुर्दशी " अथ शुभतिथिमाह—"दशम्येकादशी [illegible] द्वितीया [illegible] तथा । त्रयोदशी तृतीया च सप्तमी च शुभावहा " अथ वारानाह—"सोमादित्ये [illegible]

अपिच ।

संक्रान्त्यां पौर्णमास्याञ्च ह्यमावास्यां तथैव च ।
हलस्य वाहनात्पापं गवामयुतहत्यया ॥ १२ ॥

इति स्मृतिः ।

अर्थ–स्मृतिमें लिखाहै कि, संक्रान्ति, पूर्णिमा और अमावस्या तिथिमे हलको न चलाना चाहिये जो मनुष्य उक्तसमयमे, हल चलातेहै उनको अयुत (दश हजार) गोहत्याका पाप होताहै ॥ १२ ॥

अन्यच्च ।

रिक्ताष्टमीविष्टिषु नष्टचन्द्रे क्षीणेन्दुभौमार्कजवासरेषु ।
निरंशके वा निशि सन्ध्ययोर्वा कृता कृषिः पूर्वफलं निहन्ति॥१३॥

अर्थ–रिक्ता. अष्टमी, विष्टि (भद्रा) और अमावस्या तिथिमें, क्षीण चन्द्रमामें, मङ्गल और शनिवारमे. संक्रान्तिमे, रात्रिमे वा सन्ध्यासमयमें कृषिकार्य्य करनेसे पूर्वके अनुसार फल होता है (अर्थात्) अयुत गोहत्याका पातक लगता है ॥ १३ ॥

अपरञ्च ।

वामे कृष्णं बलीवर्द्धं दक्षिणे लोहितं न्यसेत् ।
उत्तराभिमुखो भूत्वा कर्षकः कृषिमारभेत् ॥ १४ ॥

इति भीमपराक्रमे ।

–शनिवासरे । कृषिकर्म्मसमारम्भे राजोपद्रवमा[दि]शेत्" अत्र च नक्षत्रमाह पराशरः–"अनिलोत्तर रोहिण्या मृगमूल पुनर्वसौ । पुष्यश्रवणहस्तासु कुर्य्याद्धलप्रसारणम्" अथ लग्नमाह–" वृषे मीने च कन्यायां युग्मे धनुषि वृश्चिके । एतेषु शुभलग्नेषु कुर्य्याद्धलप्रसारणम्" तथा पाराशर–"मेषलग्न पशु हन्यात्कर्कटे जलजं भयम् । सिंहे सर्पभयं चैव कुम्भे चौरभय भवेत् । मकरे शस्यनाशः स्यात्तुलायां प्राणसंशय. । तस्माल्लग्न प्रयत्नेन कृष्णारम्भे विचारयेत्" तथा–"स्नात्वा गन्धैश्च पुष्पैश्च पूजयित्वा यथाविधि । पृथिवी ग्रहसंयुक्ता पृथुं चैव प्रजापतिम् । सम्पूज्याग्नि द्विजं देवं कुर्य्याद्धलप्रसारणम् । छिन्नरेखा न कर्त्तव्या यथा प्राह पराशर. । एका तिस्रस्तथा पञ्च हलरेखाः प्रकीर्तिताः । एका जयकरी रेखा तृतीया चार्थसिद्धिदा । पञ्चसंख्या त या रेखा बहुसस्यप्रदायिनी । हल-

अर्थ–भीमपराक्रममें लिखाहै कि, वामदिशामे कृष्णवर्णका बैल और दक्षिणदिशामे लोहित वर्णके बैलको खाडाकरके हल जोतनेवाला मनुष्य उत्तरको मुख करके कृषिकार्यका आरम्भ करै ॥ १४ ॥

प्रकारान्तरञ्च ।

हले तु योजिते यत्र क्षेत्रे ग्रासं करोति गौः ।
तत्र स्याद्द्विगुणं शस्यमवश्यं गर्गभाषितम् ॥ १५ ॥

इति भीमपराक्रमे ।

अर्थ–भीमपराक्रममें लिखाहै कि, हलमे जुतकर बैल यदि खेतमें घासको खाय तो उस खेतमें दूना नाज उत्पन्न होताहै, गर्गमुनिने इसप्रकार कहा है ॥ १५ ॥

अथ बीजवपनम् ।

हलप्रवाहवद्बीजवपनस्य विधिः स्मृतः ।
चित्रायांचशुभे केन्द्रे स्थिरस्वमनुजोदये ॥ १६ ॥ (१)

अर्थ–अब बीज बोनेकी विधि कहतेहैं, हलमें कहे हुए नक्षत्रोमे और चित्रानक्षत्रमें, लग्नके केन्द्रस्थानमें शुभग्रह होनेसे वृष, सिंह, वृश्चिक और कुम्भलग्नमें, अपनी जन्मलग्नमें और मिथुन, तुला, कन्या और धन लग्नके पूर्वार्द्धमे बीज बोना चाहिये ॥ १६ ॥

अपिच ।

सुखदा प्रतिपच्चैव द्वितीया कार्यसाधिनी ।
आरोग्यदा तृतीया च चतुर्थी कीटकृत्सदा ॥ १७ ॥

---

(१) बीजवपनमाह–हलेति । हल प्रसारणे यो विधिः बीजवपनेऽपि सः किन्तु हल प्रसारे चित्रायां निषिद्धः बीजवपनं कार्य्यमित्यर्थः । केन्द्रस्थे शुभग्रहे स्थिरलग्ने वृषसिंहवृश्चिककुम्भलग्ने मिथुनतुलाघटकन्याधनुः पूर्वार्द्धेषु कर्त्तव्यमित्यर्थः । विशेषमाह पराशरः– "वैशाखे वपनं श्रेष्ठं ज्येष्ठे च रोहिणी रवौ । आषाढे चाधमं प्राहुः श्रावणे चाधमाधमम् । रोपणं सर्वसस्यानां श्रेष्ठं हि मिथुने रवौ । श्रावणे मध्यमं प्रोक्तं भाद्रे मध्यममध्यमम् " वपनविधिमाह पराशरः–"क्षेत्रमध्य [illegible] गत्वा द्विराचम्य समाहितः । संकल्पं कारयेद्धीमान्स्वस्तिवाचनपूर्वकम् । गणनाथादिक [illegible] विधानतः । प्राङ्मुखः कलशं धृत्वा पठेन्मन्त्रं विधानतः । ओं वसुन्धरेऽसिते देवि [illegible] देवराज्ञि नमस्तुभ्यं सुभगे सस्यकारिणि । रोपणे सर्वसस्यानां काले मेघः प्रवर्षतु । सुस्था [illegible] कृषका धनधान्यसमृद्धिभिः । तथा "हिमवारिणि सिक्तस्य बीजस्य तन्मनाः शुचि [illegible] चित्ते समाधाय स्वयं मुष्टित्रयं वपेत् । कृत्वा धान्यस्य पुण्याहं कृषका हृष्टमानसाः । [illegible] पुष्पैश्च तदलङ्कृतवान्गृही । कृत्वा तं वपनं क्षेत्रे कृषाणा वृतपायसैः । [illegible] जायते कृषिः " इति ।

पञ्चमी श्रीप्रदा नूनं षष्ठी च कलहप्रिया ।
सप्तमी स्थानदा भोग्या वृषं हन्ति तथाष्टमी ॥ १८ ॥
नवमी शस्यनाशाय दशमी भूतिदा सदा ।
एकादशी तथा कुर्याद्धनं धान्यं मनोरथम् ॥ १९ ॥
द्वादशी प्राणसन्देहा सर्वसिद्धा त्रयोदशी ।
चतुर्दशी पतिं हन्ति पञ्चदश्येव निष्फला ॥ २० ॥

इति कृत्यचिन्तामणौ ।

अर्थ-कृत्यचिन्तामणिमे लिखा है कि, प्रतिपदामें कृषिकर्म्म आरम्भ करनेसे सुख प्राप्त होता है, इसीप्रकार द्वितीयामे कार्य्यका साधन होता है, तृतीयामे आरोग्यताप्राप्ति होती है, चतुर्थीमे कीटद्वारा नाजका नाश होता है, पञ्चमीमें श्री (लक्ष्मी) प्राप्ति होती है, षष्ठीमे कलह होता है, सप्तमीमें स्थान और भोगकी वृद्धि होती है, अष्टमीमे बैलकी मृत्यु होती है, नवमीमे नाजका नाश होता है, दशमीमे ऐश्वर्य्यलाभ होता है, एकादशीमें धन धान्य और मनोरथसिद्धि होती है, द्वादशीमें प्राणका सशय होता है, त्रयोदशीमे सर्वप्रकारकी सिद्धियां प्राप्ति होती हैं, चतुर्दशीमें खेतके मालिककी मृत्यु होती है और पूर्णिमा और आमावस्यामे खेती आरम्भ करनेसे निष्फल होजाती है ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥

अन्यञ्च ।

अमावास्याष्टमीषष्ठीरिक्ताश्च परिवर्ज्जयेत् ।
सौरिभौमदिने चैव कृष्यारम्भे धनक्षयः ॥ २१ ॥

इति बलभद्रः ।

अर्थ-बलभद्रने कहा है कि, अमावस्या, अष्टमी, षष्ठी और रिक्ता तिथिमे, शनि और मङ्गलवारमे कृषिकर्म्म आरम्भ करनेसे धनका नाश होता है ॥ २१ ॥

अपरञ्च ।

प्राजेशविष्णुतिष्येषु पितृहस्तोत्तरासु च ।
अश्विनीवातपौष्णेषु मूलादित्येन्दुभे तथा ॥ २२ ॥
वारे भानुजशुक्रे च जीवे शीतकरे तथा ।
लग्ने स्त्रीगोमीनयुग्मे कृष्णारम्भं शुभं विदुः ॥ २३ ॥

इति ज्योतिस्तत्वे ।

अर्थ–ज्योतिषतत्वमें लिखा है कि–रोहिणी, श्रवण, पुष्य, मघा, हस्त, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, अश्विनी, स्वाति, रेवती, मूल, पुनर्वसु और मृगशिर नक्षत्रमें शनि, शुक्र, बृहस्पति और सोमवारमें, कन्या, वृष, मीन और मिथुन लग्नमें कृषिकर्म्म आरम्भ करनेसे शुभ होता है ॥ २२ ॥ २३ ॥

प्रकारान्तरञ्च ।

पूर्वाभाद्रपदा मूलं रोहिण्युत्तरफाल्गुनी ।
विशाखा शतभिषा वाथ धान्यानां रोपणे वराः ॥ २४ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ–ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि–पूर्वाभाद्रपदा, मूल, रोहिणी, उत्तराफाल्गुनी, विशाखा और शतभिषा नक्षत्र बीज बोनेमे प्रशस्त हैं ॥ २४ ॥

अन्यच्च ।

हस्ताश्वितिष्यचन्द्रेषु ब्रह्मेन्द्रविष्णु वारुणे ।
वायव्येन्द्राग्निभे चैव रोहिण्यामुत्तरासु च ॥ २५ ॥
वारे जीवे च शुक्रे च सोमे दिनकरे तथा ।
युग्मे युवतिगोमीने शस्तं स्याद्बीजवापनम् ॥ २६ ॥

इति ज्योतिस्तत्वे ।

अर्थ–ज्योतिषतत्वमें लिखा है कि–हस्त, अश्विनी, पुष्य, मृगशिर, ज्येष्ठा, श्रवण, शतभिषा, स्वाति, विशाखा, रोहिणी, और तीनो उत्तरा नक्षत्रमे बृहस्पति, बुध, शुक्र, सोम और रविवारमे, मिथुन, कन्या, वृष और मीन लग्नमे बीज बोना चाहिये ॥ २५ ॥ २६ ॥

अपिच ।

प्राजेशश्रवणोत्तरादितिमघामार्तण्डतिष्याश्विनी ।
पौष्णानुष्णमरीचयः शतभिषास्वातिर्विशाखा तथा ॥
जीवार्केन्दुसितेन्दुनन्दनदिने वारे स्थिरस्योदये ।
शस्यानां वपने भवन्ति लवने शस्ते तिथौ रोपणे ॥ २७ ॥

इति राजमार्तण्डे ।

अर्थ–राजमार्त्तण्डमें लिखा है कि, रोहिणी, श्रवण, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा उत्तराभाद्रपदा, पुनर्वसु, मघा, हस्त, पुष्य, अश्विनी रेवती, मृगशिर, शतभिषा, स्वाति

और विशाखा, इन नक्षत्रोमें, बृहस्पति, रवि, सोम, शुक्र और बुधवारमें और स्थिरलग्नमें नाज बोना और काटना चाहिये ॥ २७ ॥

अपरञ्च ।

गुरुसोमसूर्यशुक्राः क्षेम्याः सम्पत्कराः शुभाः ।
बुधार्किभूसिपुत्राश्च न भवन्ति फलप्रदाः ॥ २८ ॥

इति भैरवाचार्य्यः ।

अर्थ—भैरवाचार्य्यने कहा है कि, बृहस्पति, सोम, रवि और शुक्रवारमे कृषि आरम्भ करनेसे मङ्गल और सम्पत्की वृद्धि होती है और बुध, शनि और मंगळवारमें कृष्यारम्भ करनेसे निष्फल होती है ॥ २८ ॥

प्रकारान्तरञ्च ।

हन्ति मेषः पशून्सर्वान्स्वभावेनाथ वृश्चिकः ।
कर्कटेन भवेत्सौख्यं तुलायां न प्ररोहति ॥ २९ ॥
केसरी शस्यघाती स्यात्पार्थिवोपद्रवं धनुः ।
मकरे चैव कुम्भे च भयमेव विनिर्दिशेत् ॥ ३० ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—ज्योतिषतत्वमे लिखा है कि, मेषलग्नमे खेती आरम्भ करनेसे पशुओंका नाश होता है. इसीप्रकार वृश्चिक लग्नमे कर्त्ताको बीछू काटता है कर्क लग्नमे सुखहीन होताहै, तुला लग्नमें खेतीके आरम्भ करनेका निषेध है, सिंह लग्नमे नाजका नाश होताहै, धनमें पार्थिवका उपद्रव होताहै मकर और कुम्भ लग्नमें खेतीके आरम्भ करनेसे भय होता है ॥ २९ ॥ ३० ॥

अन्यच्च ।

गोस्त्रीमन्मथमीनेषु शस्यं सम्पद्यते महत् ।
प्रशस्ते चन्द्रतारे च शुचिः शुक्के न वाससा ॥ ३१ ॥ (क)

(क) स्नात्वा गन्धैश्च पुष्पैश्च पूजयित्वा विधानतः । पृथ्वीञ्च ग्रहसंयुक्तां पूजयित्वा प्रजापतिम् । अग्निं प्रदक्षिणीकृत्य दीयते भूरिदक्षिणा । कृष्णौ वृषौ नियोक्तव्यौ नवनीतैर्घृतेन वा । मुखपार्श्वे तयोर्लिप्त्वोत्फालाग्रं कनकैः स्पृशेत् । उत्तराभिमुखो भूत्वा क्षीरेणार्घ्यं प्रदापयेत् । ततः शुभकरः श्रीमान्कृषिकर्म्म समाचरेत् । वर्जयेद्रमश्मश्रुञ्च खरभग्नञ्च वर्जयेत् । विकलं छिन्नलाङ्गूलं कपिलं वृषभं तथा । हलप्रवाहनं कार्य्यं नीरोगैः कृषिकर्म्मकैः । हलादिभिर्दृढैः क्षेमं कुदृढैर्न शुभं वदेत् । वृषभा यदि मुह्यन्ति तस्य विघ्नप्रदा भवेत् ” कृषिरिति शेषः । “तस्मात्सर्व्वप्रयत्नेन निर्विघ्नं कारयेत्सदा । एका जयकरी रेखा तृतीया चार्थदायिका । पञ्चमी या भवेद्रेखा बहुशस्यफला हि सा । अत-

अर्थ—वृष, कन्या, मिथुन और मीन लग्नमें बीज बोनेसे बहुत नाज उत्पन्न होता है, अतएव चन्द्रमा और ताराके शुद्ध होनेसे उक्त लग्नोंमें पवित्र होकर सफेद वस्त्रको पहिरकर खेतीका आरम्भ करना चाहिये ॥ ३१ ॥

अथ धान्यच्छेदनम् ।

याम्याजपादऽहिधनानलतोयशक्र
चित्रोत्तरोडुषु कुजार्कजवारवर्ज्यम् ॥
शस्तेन्दुयोगकरणेषु तिथावरिक्ते
धान्यच्छिदिः स्थिरनरस्वमृगोदयेषु ॥ ३२ ॥ (१)

अर्थ—अब खेतमेंसे नाज काठनेका मुहूर्त कहते हैं । भरणी, पूर्वाभाद्रपदा, आश्लेषा, धनिष्ठा, कृत्तिका, पूर्वाषाढा, ज्येष्ठा, चित्रा और तीनो उत्तरा इन सब नक्षत्रोंमें मङ्गल और शनिवारको छोडकर अन्यवारोंमें, योग और करण शुभ होनेसे, रिक्ताभिन्न तिथियोंमे, स्थिर, द्विपद, अपने जन्मकी लग्न और मकर लग्नमे खेतका नाज करना चाहिये ॥ ३२ ॥

अपिच ।

रोहिणीरेवतीमूलस्वातिहस्तमृगास्तथा ।
फाल्गुन्यौ श्रवणे चैव पूर्वाभाद्रपदा तथा ।
बन्धने सर्वबीजानां तथा गोलीप्रवेशने ॥ ३३ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

—ऊर्ध्वं न कर्त्तव्य महादोषस्तदा भवेत् । सम्पूज्याग्निं द्विजं देवं कुर्य्याद्धलप्रवर्तनम् । हेमनिर्मुक्तफालाग्रं छिन्नरेखां न कारयेत् । स्मर्त्तव्या वसवश्चैन्द्र. सर्वविघ्नोपशान्तये । हले प्रचाल्यमाणे तु कूर्म्म उत्पाद्यते यदि । गृहणी म्रियते तस्य ततोऽग्नेश्च भय भवेत् । लाङ्गूल भिद्यते चापि प्रभुस्तत्र विनश्यति । ईशानभङ्गश्चेत्कर्त्तुः सशयो जीवितस्य च । सुतनाशो युगाभङ्गे सर्मीने म्रियते सुत ” सर्मीने योक्त्रबन्धनकाष्ठद्वये । “योक्त्रच्छेदे तु व्यासङ्ग. सस्यहानिश्च जायते । हल प्रचाल्यमाने तु गौरेकः प्रपतेद्यदि । प्रपतेन्मुक्तमात्रस्तु बन्धन स प्रपद्यते । ज्वरातिसाररोगेण कृषिभङ्ग विनिर्दिशेत् । प्रवाहमुक्तमात्रस्तु ततो गौः प्रपतेद्यदि । वत्सालीडेननर्द्दन्ति तत. सस्य चतुर्गुणम । हेमनारिविनिक्षिप्तस्य बीजस्योन्नयतः शुचिः । इन्द्र चित्ते निधायाथ स्वय मुष्टित्रयं वपेत् ” इत्यादि । “नैव न [illegible] पञ्चम्या काश्मीरा न रजस्वला । नित्यं भवति तस्मात्ता स्मृत्वा सिद्धिमवाप्नुयात” इत्यादि । “अष्टम्याश्च ततः स्थाप्य ताभिरेव गृहे गृहे” इत्यादि च ज्योतिषतत्त्वेऽनुसन्धेयम् ॥ [illegible] ।

(१) धान्यच्छेदनमाह—याम्येति । याम्यादिषु नक्षत्रेषु रिक्तावर्ज्जिते तिथौ [illegible] स्वलग्ने स्वकीयजन्मलग्ने मकरलग्ने च धान्यच्छिदिः कार्य्या शेष सुगमम् । [illegible] “न्यग्रोधः सप्तपर्णो वा गाम्भारो शाल्मली तथा । उदुम्बरो [illegible] चान्ये [illegible] प्रभिमेधि नरो मार्गे कुर्य्यात्तोषे विवर्ज्जयेत् । [illegible]

अर्थ-ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि-रोहिणी, रेवती, मूल,स्वाति, हस्त मृगशिर, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, श्रवण और पूर्वाभाद्रपदा नक्षत्रमें बीजबन्धन और गोला प्रवेश करना चाहिये ॥ ३३ ॥

अथ धान्यादिसंस्थापनम् ।

याम्याग्निरुद्राहिविशाखपूर्वामाहेन्द्रपित्र्येतरभैः शुभाहे ।
धान्यादिसंस्थापनमेव कुर्यान्मृगास्थिरद्व्यङ्गगृहोदयेषु ॥३४॥ (क)

अर्थ-अब नाजके रखनेका मुहूर्त्त कहते हैं-भरणी, कृत्तिका, आर्द्रा, आश्लेषा, विशाखा, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा, ज्येष्ठा और मघा इन सब नक्षत्रोंको छोडकर अन्य नक्षत्रोमे, शुभ दिनमें, शुभ ग्रहोके वारमें, स्थिर और द्व्यात्मक लग्नमें नाज रखना चाहिये ॥ ३४ ॥

अथ धान्यादिविवर्द्धनज्ञानम् ।

श्रवणत्रयविशाखाध्रुवपौष्णपुनर्वसूनि पुष्यं च ।
अश्विन्यथ च ज्येष्ठा धनधान्यविवर्द्धने कथिता ॥ ३५ ॥ (ख)

अर्थ-अब नाजके बढनेका प्रयोग कहतेहै, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, विशाखा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, रोहिणी, रेवती, पुनर्वसु, पुष्य, अश्विनी और ज्येष्ठा नक्षत्र नाजके वृद्धि होनेके विषयमे प्रशस्त हैं ॥ ३५ ॥

अथ धान्यमहार्घ्यादिकथनम् ।

हशपूरोरवं मूल्यं पक्षादौ लक्षयेद्बुधः ।
उकृमूरे समं विद्याच्छेषे धान्यमधः क्रमम् ॥ ३६ ॥ (ग)

(क) धान्यादीनां स्थापनमाह-याम्येति । याम्यादिवर्जितैर्नक्षत्रैः मकरलग्ने स्थिरलग्ने द्व्यात्मकलग्ने च शुभग्रहवारे धान्यतिलमुद्गादीना स्थापनं कार्य्यम् विशेषमाह पराशरः-"लिखित्वा द्वाविमौ मन्त्रौ धान्यागारेषु निःक्षिपेत् । "ओं धनदाय सर्वलोकहिताय देहि मे धन स्वाहा । ओं नवे हार्य्यें नवे देवि सर्वलोकविवर्द्धिनि । कामरूपिणि सुभगे धनं मे देहि स्वाहा " इति ।

(ख) वृद्धिनिमित्तं धनधान्यदाने विहितनक्षत्रमाह श्रवणेति स्पष्टार्थम् ।

(ग) धान्यमूल्यज्ञानमाह-हशेति । आद्यक्षरसङ्केतेन नक्षत्रकथनं हस्तशतभिषापूर्वात्रयं रोहिणी पक्षादौ प्रतिपदारम्भकाले एतानि नक्षत्राणि यदि स्युः तदा वरम् अधिकं मूल्यं धान्यस्य लक्षयेत्।एवम् 'उकृमूरे' उत्तरात्रयं कृत्तिका मूल रेवती प्रतिपदारम्भकाले यदि स्यात्तदाधान्यमूल्यं समं गतपक्षे यन्मूल्य तदेव वर्त्तमानेऽपि न साहाय्यं नच माहार्घ्यमित्यर्थः।एतेषा शेषनक्षत्रे प्रतिपदारम्भकाले धान्यानामधः क्रमोऽल्पमूल्य स्यात्तदा शुक्ले कृष्णे चात्र च प्रतिपदारम्भकाले तन्मुहूर्त्ताधिपनक्षत्रं ज्ञात्वा अतिशय समार्घं ज्ञातव्यमिति श्रीमत्पितृचरणाः ॥ इति ।

अर्थ—अब नाजके मूल्य जाननेकी रीति कहते हैं— हस्त, शतभिषा, तीनो अथवा रोहिणी नक्षत्र यदि प्रतिपदाके आरम्भकालमें होय तब नाज महँगा बिकत तीनों उत्तरा, कृत्तिका, मूल अथवा रेवती नक्षत्र यदि प्रतिपदाके आरम्भकालमें तो नाज समान मूल्यमें बिकता है और उक्त नक्षत्रोंको छोडकर अन्य नक्षत्र यदि पदाके कालमें होय तो धान्य (नाज) सस्ता बिकताहै ॥ ३६ ॥

इति पाक्षिकधान्यमूल्यज्ञानम् ।

अपिच ।

यदाह्नि मेषसंक्रांतिस्तुलासंक्रमणं निशि ।
तदा प्रजा विवर्द्धन्ते धनधान्यसमृद्धिभिः ॥ ३७ ॥

इति सत्कृत्यमुक्तावल्याम् ।

अर्थ—सत्कृत्यमुक्तावलीमें लिखाहै कि—यदि मेषकी सक्रान्ति दिनमें और तुला संक्रान्ति रातमें लगै तो प्रजा धनधान्यसे सुखी होती है ॥ ३७ ॥

अन्यच्च ।

कुजार्कशनिवारेण महासंक्रमणं यदा ।
भवेत्तदा प्रजाहानिर्दुर्भिक्षादिभयं तदा ॥ ३८ ॥

इति सत्कृत्यमुक्तावल्याम् ।

अर्थ—सत्कृत्यमुक्तावलीमें लिखाहै कि—मङ्गल, रवि वा शनिवारमें यदि सक्रान्ति होय तो प्रजाका नाश और अत्यन्त दुर्भिक्षादिका भय होताहै ॥ ३८ ॥

अथ वार्षिकधान्यमूल्यज्ञानम् ।

रवौ शनौ कुजे चैव पौषे दर्शो भवेद्यदा ।
तदा धान्यस्य मूल्यं स्यादेकद्वित्रिगुणं क्रमात् ॥ ३९ ॥

इति सत्कृत्यमुक्तावल्याम् ।

अर्थ—अब वार्षिक नाजका मूल्य जाननेकी रीति कहतेहैं— सत्कृत्यमुक्तावलीमें लिखाहै कि, पौषके महीनेमें रविवारके दिन यदि अमावस्या तिथि होय तो नाजका मूल्य एक गुण बढजाता है, इसीप्रकार शनिवारमें होनेसे नाज दूना महँगा होजाताहै और मङ्गलवारमें पौष महीनेकी अमावस हो तो नाजका मूल्य तिगुना होजाताहै॥ ३९ ॥

अपिच ।

दर्शो पौषस्य रात्रौ चेज्ज्येष्ठामूलजलानि च ।
क्रमान्मूलस्य वृद्धिः स्याद्धान्यानां वत्सरे तदा ॥ ४० ॥

इति सत्कृत्यमुक्तावल्याम् ।

अर्थ-सत्कृत्यमुक्तावलीमें लिखाहै कि-पौष महीनेकी अमावस्या तिथिकी रातमें ज्येष्ठा, मूल वा पूर्वाषाढा नक्षत्र होय तो उस वर्षमें उत्तरोत्तर नाजका मूल्य बढजाताहै ॥ ४० ॥

अन्यच्च।

संक्रान्तिऋक्षं तिथिवारयुक्तं द्रव्याक्षरं वामहतं भवेत्तु ॥
एके समर्घ्यं समतां द्वितीये शून्ये महर्घ्यंमुनयो वदन्ति ॥ ४१ ॥

इति सत्कृत्यमुक्तावल्याम्।

अर्थ-अब प्रकारान्तरसे नाजका मूल्य निर्णय करतेहैं-सत्कृत्यमुक्तावलीग्रन्थमें लिखाहै कि, संक्रान्तिसमय जो नक्षत्र होय उसकी संख्या उस दिनकी तिथिकी संख्या, वारकी संख्या और द्रव्यके अक्षरोंकी संख्याको मिलाकर जितनी संख्या होय उनको तीनसे भाग करै भाग करनेसे यदि एक बचै तो पूर्वके भावसे कुछ महँगा नाज होजाताहै इस प्रकार दो बचनेसे पहिलेके समान भाव रहता है और कुछ न बचनेसे पहलेके भावसे अत्यन्त महँगा नाज होता है, इस प्रकार मुनियोंने कहा है ॥ ४१ ॥

अथ गोशालाप्रवेशः।

पूर्वात्रये धनिष्ठायां पौष्णे सौम्यविशाखयोः।
आश्लेषा चाश्विनी चैव यात्रा सिद्धिश्चतुष्पदाम् ॥ ४२ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे।

अर्थ-ज्योतिःसारसंग्रहके वचनानुसार गौआदिका शाला (घर) मे जानेका मुहूर्त्त कहते हैं-तीनों पूर्वा, धनिष्ठा, रेवती, मृगशिर, विशाखा, आश्लेषा और अश्विनी नक्षत्रमे चतुष्पद (गो) इत्यादिके गृहप्रवेशकी यात्रा सिद्ध होती है ॥ ४२ ॥

अथ गोयात्रादिनिषेधः।

त्रिषूत्तरासु रोहिण्यां सिनीवाली चतुर्दशी।
श्रवणा चैव हस्ता च चित्रा चैव तथाष्टमी।
गवां यात्रां न कुर्वीत प्रवेशान्नापि कारयेत् ॥ ४३ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे।

अर्थ-उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, रोहिणी, श्रवण, हस्त चित्रा. नक्षत्रमे, अमावस्या. चतुर्दशी और अष्टमी तिथिमे. गोयात्रा वा गोप्रवेश न करावै इस प्रकार ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है ॥ ४३ ॥

अथ गवामानयनादि ।

दर्शाष्टमीभूततिथिप्रजेशपूर्वोत्तराकेशवयाम्यचित्राः ॥
क्रूराहविष्टिव्यतिपातयोगा नेष्टा गवाश्वानलविक्रयादौ ॥ ४४ ॥(क)

अर्थ–अमावस्या अष्टमी और चतुर्दशी तिथिमें रोहिणी, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा पूर्वाभाद्रपदा, तीनों उत्तरा, श्रवण, भरणी और चित्रा नक्षत्रमें, रवि, मङ्गल और शनिवारमें, विष्टि भद्रा तिथिमें और व्यतीपातयोगमें गोचालन और बेचनेसे शुभफल नहीं होता है ॥ ४४ ॥

अथ वृष्टिज्ञानम् ।

वर्षप्रश्ने सलिलनिलयं राशिमाश्रित्य चन्द्रो
लग्ने यातो भवति यदि वा केन्द्रगः शुक्लपक्षे ॥
सौम्यैर्दृष्टः प्रचुरमुदकं पापदृष्टोऽल्पमम्भः
प्रावृट्काले सृजति न चिराच्चन्द्रवद्भार्गवोऽपि ॥ ४५ ॥ (ख)

इति प्रश्नाद्वृष्टिज्ञानम् ।

अर्थ–अब प्रश्नद्वारा वृष्टि (वर्षा) जाननेकी रीति कहते हैं–कर्क, मकर वा मीन यदि प्रश्नकी लग्न होय और उसमें चन्द्रमा स्थित होय अथवा चन्द्रमा यदि शुक्लपक्षमें लग्नके केन्द्रस्थानमें होय और उस चन्द्रमाको शुभ ग्रह देखते होय

(क) गवां यात्राप्रवेशक्रयविक्रयेषु निषेधमाह–दर्शेति । अमावस्याष्टमी चतुर्दशी तिथिर्नेष्टा । रोहिणी पूर्वात्रयोत्तरात्रयश्रवणभरणीचित्रा रविशनिमङ्गलवाराः विष्टिव्यतीपातयोगाश्च नेष्टाः । गवामित्युपलक्षणं सर्वेषां पशूनामिति राजमार्त्तण्डे–"त्र्युत्तरेषु च रोहिण्यां सिनीवाली चतुर्दशी । श्रवणेपि न नक्षत्रे चित्रायामष्टमीषु च । गोषु कार्य्यं न कुर्वीत प्रनयश्च प्रवेशनम् । पशवस्तस्य नश्यन्ति ये चान्ये तृणचारिणः " इति–

(ख) प्रश्नाद्वृष्टिज्ञानमाह–वर्षेति । वृष्टिप्रश्ने चन्द्रो यदि सलिलनिलयराशि कर्कटमकरमीनमाश्रित्य लग्नमुदयं प्राप्तः स्यात् यदि वा केन्द्रगश्चन्द्रः शुक्लपक्षे स्यात्तदा शुभग्रहदृष्टः प्रचुरमुदकं जलं सृजति पापदृष्टोऽल्पजलं एवं शुक्रोऽपि । वर्षाकाले जलराशिगः जलराशिलग्ने स्यात् शुक्रो वा केन्द्रगो वा स्यात्तदा शुभदृष्टः–प्रचुरं जलं पापदृष्टोऽल्पजलं सृजति वर्षति । सौभरिस्तु जलराशिमाश्रित्य चन्द्रस्तिष्ठति, यत्किञ्चिद्वा लग्नं वा प्रश्ने भवति केन्द्रगो वा स्यादिति व्याचष्टे तदशुद्ध निश्चतीति क्रियान्तराव्याहारात् तथा दैवज्ञवल्लभायाम् "कर्कटमृगमीनानामुदये चन्द्रः सितो वा वृष्टिः [illegible] । [illegible] त्केन्द्रोपगतौ सितश्चन्द्रश्च शुभदृष्टौ " योगान्तरमुक्तं तत्र "पक्षे सिते सलिलराशिगता [illegible] श्च केन्द्राद्वितीयसलिलालयगाश्च सम्यक् । चन्द्रोऽथवा सलिलराशिस्थितश्च वृष्टिं [illegible] ततो धरित्र्याम् " तथा कृषिपराशरे–" जलस्थो जलदृस्तो वा निकटे च [illegible] । [illegible] च वृष्ट्यर्थं वृष्टिः सञ्जायतेऽचिरात् " इति ।

तो प्रचुर (इच्छानुसार) वर्षा होती है और चन्द्रमाको यदि पापग्रह देखते हो तब अल्प (थोडी) वर्षा होती है वर्षा समयमें कर्क, मकर वा मीन लग्नमें यदि शुक्र स्थित होय अथवा शुक्लपक्षमे लग्नके केन्द्रस्थानमें होय और शुक्रपर शुभग्रहोंकी दृष्टि होय तो इच्छानुसार जलकी वर्षा होती है और यदि शुक्रपर पापग्रहोंकी दृष्टि होय तो अल्प वर्षा होती है ॥ ४५ ॥

अथ ग्रहसंस्थानेन सद्योवृष्टिज्ञानम्।

प्रावृषि शीतकरो भृगुपुत्रात्सप्तमराशिगतः शुभदृष्टः।
सूर्य्यसुतान्नवपञ्चमगो वा सप्तमगोऽपि जलागमनाय ॥४६॥ (१)

अर्थ–वर्षाकालमे ग्रहसंस्थापनद्वारा वृष्टि (वर्षा) जाननेकी रीति कहते हैं, वर्षाकालमे यदि शुक्रसे सातवें स्थानमें चन्द्रमा स्थित होय और चन्द्रमाको शुभग्रह देखते होंय तो उसी दिनमे वर्षा होती है और शनिसे नवमे, पांचवें, वा सातवें, चन्द्रमा होय और उसको शुभग्रह देखतेहोय तो उसी दिन वर्षा होती है ॥ ४६ ॥

अथ नवान्नम्।

भेषुग्राहिशिवान्येषु विभौमशनिवासरे ॥
अन्नप्राशनवत्कुर्यान्नवान्नफलभक्षणम् ॥ ४७ ॥ (२)

अर्थ–अब नये नाजके तथा नये फलके खानेका मुहूर्त्त कहते हैं– तीनों पूर्वा, मघा, भरणी, आश्लेषा और आर्द्रा इन सब नक्षत्रोंको छोडकर अन्य नक्षत्रोंमें, मंगल

---

(१) वर्षाकाले ग्रहसंस्थानवशेन वृष्टिज्ञानमाह–प्रावृषीति। यस्मिन्दिने चन्द्रः शुक्रात्सप्तमगः शुभदृष्टः स्यात्तस्मिन् दिने जलागमनाय वर्षाकाले स्यात्। तथा सूर्य्यसुतान्नवपञ्चमगः सप्तमगो वा चन्द्रः शुभदृष्टो यत्र दिने तस्मिन्दिने वृष्टिर्भवतीत्यर्थः। इति।

(२) पूर्वोक्तान्नप्राशनप्रकरणप्रासं नवान्नफलभक्षणमाह–भेष्विति। उग्रगणः ११।२०।२५।१०।२ अहिः ९ शिव. ६ एतदन्येषु नक्षत्रेषु मङ्गलशनिवर्जितेषु वारेषु नवान्नस्य नवफलस्याम्रादेश्च भक्षणं कुर्य्यात्। अन्नप्राशनवदितिएतदतिरिक्ते पूर्वस्मिन् अन्नप्राशनोक्तश्लोके योऽन्न प्राशनविधिः "गे. ज्ञर्क्षमीनोदय" इत्यादिरुक्तः सोऽत्रैव विधेय इत्यर्थः। एतच्च कृष्णपक्षादौ न कर्त्तव्यमिति। तथाच–"नवान्नं नैव नन्दाया न च सुप्ते जनार्दने। न कृष्णपक्षे धनुषि तुलायां न कदाचन। तथा च वराहः–"वृश्चिके शुक्लपक्षे तु नवान्न शस्यते बुधैः। अपरे क्रियमाणं हि धनुष्येव कृतं भवेत्। यत्कृत धनुषि श्राद्ध मृगनेत्रासु रात्रिषु। पितरस्तत्र गृह्णन्ति नवान्नामिषकाङ्क्षिणः" अपरे कृष्णपक्षे मृगनेत्रा ज्येष्ठानक्षत्र परार्द्धगते सूर्य्ये भवति। शुक्रवारे तु सावकाशश्राद्धनिषेधादेव मासोऽत्र निषेधः। स च त्रयोदशी जन्मदिनश्चेत्यादिना वक्ष्यते। इति। नवान्न मलमासेऽपि कार्य्यम्। "गर्हितो मल मासः स्यादुत्तरे मासि तत्क्रिया। नित्यश्राद्धं नवान्नञ्च विना निरवकाशतः" इति स्मृतिसागरधृतवचनात्।

और शनिभिन्न वारमें, शुक्लपक्षमें, अन्नप्राशनकी लग्नोंमें नया अन्न और नया फल खाना चाहिये ॥ ४७ ॥

द्वितीया च तृतीया च पञ्चमी सप्तमी तथा ।
दशमी च प्रशस्यन्ते नवान्नाशनकर्मणि ॥ ४८ ॥

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ–अब नये अन्न खानेकी तिथियें कहते है– दीपिकामे लिखा है कि, द्वितीया, तृतीया, पञ्चमी, सप्तमी और दशमी तिथि नये अन्नके खानेमें प्रशस्त हैं ॥ ४८ ॥

हरियुगलेऽदितिपूष्ययुगले विरिञ्चियुगले च ।
करपञ्चोत्तरेष्विनबुधगुरुशशिषु नवान्नभक्षणम् ॥ ४९ ॥

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ–दीपिकामें लिखा है कि, श्रवण, धनिष्ठा, पुनर्वसु, पुष्य, रेवती, अश्विनी, रोहिणी, मृगशिर, हस्त, चित्रा, स्वाति, विशाखा, अनुराधा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा और उत्तराभाद्रपदा नक्षत्रमें, रवि, बुध, बृहस्पति और सोमवारमे नया अन्न खाना चाहिये ॥ ४९ ॥

अपिच ।

सूर्ये चैव विशाखगे (१) स्मरतिथौ पापे त्रिजन्मान्विते
नन्दामन्दमहीजकाव्यदिवसे पौषे मधौ कार्तिके ॥
भपूर्व्वाहिशिवेषु विष्णुशयने कृष्णे शशिन्यष्टमे
श्राद्धं भोजनकं नवान्नविहितं पुत्रार्थनाशप्रदम् ॥ ५० ॥

इति ज्योतिस्तत्वे श्राद्धतत्वे च ।

अर्थ–ज्योतिषतत्वमे और श्राद्धतत्वमे लिखा है कि, सूर्य्य विशाखा नक्षत्रगत होनेसे त्रयोदशी और नन्दा तिथिमे, तीनो जन्मतारा (२) और तीनो प्रत्यरि (३) तारामे, सौर पौष चैत्र और कार्तिकके महीनेमें, शनि मंगळ और शुक्रवारमे

(१) सूर्य्ये चैव विशाखगे मार्गशीर्षस्य विंशतिदण्डाधिकपञ्चपञ्चदिनत्रयात्मकस्थिते सूर्य्ये स्मरतिथौ त्रयोदश्यां पापे पञ्चम तारात्रये त्रिजन्मान्वित इत्यत्र त्रिजन्मपदं जन्मनक्षत्रजन्मतिथि जन्मनक्षत्रपरमिति श्राद्धतत्वे स्मार्त्तेनाभिहितम् ।

(२) स्मार्त्तभट्टाचार्य्यने जन्मराशि, जन्मतिथि और जन्मनक्षत्रकोही त्रिजन्मपदका अर्थ करा है ।

(३) जन्मनक्षत्रसे पांचवे नक्षत्रको पापतारा वा प्रत्यरितारा कहते है । अन ... नक्षत्रोंको जन्म, सम्पत् इत्यादिसे गिननेमें ही तीन प्रत्यरितारा होते है ।

विष्णुके शयनकालमें, कृष्णपक्षमे, आठवे चन्द्रमामें और तीनो पूर्वा, मघा, भरणी, आश्लेषा और आर्द्रा नक्षत्रमें जो मनुष्य नया अन्न श्राद्धकर्म्ममें वा भोजनमें स्वीकार करता है उसके पुत्र और धन आदिका नाश हो जाता है ॥ ५० ॥

अन्यच्च ।

पौषे चैत्रे कृष्णपक्षे नवान्नं नाचरेद्बुधः ।
भवेज्जन्मान्तरे रोगी पितॄणां नोपतिष्ठते ॥ ५१ ॥

इति भोजराजः ।

अर्थ—भोजराजने कहा है कि—सौर पौषमे, सौर चैत्रमें और कृष्णपक्षमे नए अन्नसे श्राद्ध न करना चाहिये, जो मनुष्य उक्तकालमें नये अन्नसे श्राद्ध करता है वह जन्मान्तरमे रोगी होता है और उक्त श्राद्धमें पितृगण नहीं स्थित होते हैं ॥ ५१ ॥

अपरञ्च ।

ज्येष्ठाशेषार्द्धगे सूर्य्यें मृगनेत्रानिशात्मके । (क)
नवान्नैर्भोजनं श्राद्धं जन्मचन्द्रे तिथौ न च ॥ ५२ ॥

इति ज्योतिस्तत्वे ।

अर्थ—ज्योतिषतत्वमें लिखा है कि, ज्येष्ठानक्षत्रके शेषार्द्धमे सूर्य्यके होनेसे अर्थात् सौर अग्रहायणके २३ दिन २० दण्डके गतमे मृगनेत्रा रात्रि होती है, उसमें और जन्मराशिमे और जन्मतिथिमें नये अन्नसे श्राद्ध और नये अन्नका भोजन न करना चाहिये ॥ ५२ ॥

प्रकारान्तरञ्च ।

ब्रह्मा विष्णुबृहस्पती शशधरो मार्त्तण्डपौष्णादितौ
मैत्रे चित्रविशाखवायुधनभे मूलाश्विवह्नौ तथा ॥
शाक्रे वारुणऋक्षके शुभदिने श्राद्धं नवं शस्यते
नन्दाभार्गवभूमिजेषु न भवेच्छ्राद्धं नवान्नोद्भवम् ॥ ५३ ॥ (ख)

इति भोजराज. ।

(क) "दिनत्रयाधिके विंशे मार्गशीर्षस्य वै गते । मृगनेत्रास्मृता रात्रिः श्राद्ध तत्र न कारयेत् " इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

(ख) अत्र वचने नवान्नश्राद्धे मूलकृत्तिकाज्येष्ठाविधानात्तच्छेषनक्षत्रमात्रे वर्ज्यमाणाश्लेषा-कृत्तिकाज्येष्ठामूलाजपादकेषु च इत्यादि वचनं श्राद्धशेषाभोजिमात्रपरम् । इति श्राद्धतत्वे स्मार्त्तेनाभिहितम् ।

अर्थ–राजा भोजने कहा है कि, रोहिणी, श्रवण, मृगशिर, हस्त, रेवती, पुनर्वसु अनुराधा, चित्रा, विशाखा, स्वाति, धनिष्ठा, मूल, अश्विनी, कृत्तिका, ज्येष्ठा और शतभिषा नक्षत्रमें, शुभदिनमें, नये अन्नसे श्राद्धकरना चाहिये किन्तु (प्रतिपदा, एकादशी और षष्ठी) तिथिमें, शुक्र और मङ्गलवारमें, नए अन्नसे श्राद्ध न करै ॥ ५३ ॥

अपिच ।

आश्लेषाकृत्तिकाज्येष्ठामूलाजपादकेषु च ।
भृगुभौमदिने रिक्तातिथौ नाद्यान्नवौदनम् ॥ ५४ ॥

अर्थ–आश्लेषा, कृत्तिका, ज्येष्ठा, मूल और पूर्वाभाद्रपदा नक्षत्रमें, शुक्र और मङ्गलवारमें और रिक्तातिथिमें नया अन्न न खाना चाहिये ॥ ५४ ॥

इस वचनमें जो नये अन्नके खानेमें मूल कृत्तिका और ज्येष्ठा, नक्षत्रका निषेध होनेसे नये अन्नद्वारा श्राद्ध न करके जो मनुष्य नया अन्न खाते हैं उन्हीके पक्षमें जानना जाहिये॥

अन्यच्च।

रवौ बुधे गुरौ चन्द्रे नवान्नस्य च भक्षणम् ।
भक्षयेन्न शनौ शुक्रे तथा भूमिजवासरे ॥ ५५ ॥

अर्थ–ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि–रवि, बुध, बृहस्पति और सोमवारमे नया अन्न खाना चाहिये शनि और शुक्र और मंगलवारमें नये अन्नको न खावै ॥ ५५ ॥

अपरञ्च ।

वृषे मिथुनकन्यायां मीनलग्ने शुभान्विते ।
भक्षणं स्यान्नवान्नस्य ददात्यायुर्बलं धनम् ॥ ५६ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ–ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखाहै कि–वृष, मिथुन, कन्या और मीन लग्न शुभग्रहयुक्त होनेसे यदि उसमें नया अन्न खायाजाय तो खानेवालेकी आयु बल और धनकी वृद्धि होती है ॥ ५६ ॥

नन्दायां भार्गवदिने त्रयोदश्यां त्रिजन्मनि ।
अत्र श्राद्धं न कुर्वीत पुत्रदारधनक्षयात् ॥ ५७ ॥ (१)

---

(१) अत्र त्रिजन्मनीत्यस्य जन्मतिथिः जन्मतारा जन्मराशिरूप इत्यर्थः । [illegible] वक्ष्यमाणोक्तत्रयोदशीम् । जन्मदिनश्च नन्दामित्यत्र दिनपद तिथिपर तिथिसंदर्शनादान् त्रिजन्मनि त्रिजन्म नक्षत्रामिति व्याख्यानं गुरुचरणानामपि प्रामाणिकं राजमार्तण्डात् यथा [illegible] "सर्वमङ्गलकार्य्याणि त्रिषु जन्मसु कारयेत् । विवादश्राद्धमैथुनयात्राक्षौराणि [illegible]" मलमासतत्वे स्मार्त्तेन लिखितम् ।

अर्थ--नन्दातिथि, जन्मतिथि, त्रयोदशी, शुक्रवार, जन्मराशि और जन्मतारामें श्राद्ध करनेसे पुत्र भार्य्या और धनकी हानि होती है ॥ ५७ ॥

नक्षत्रेऽपि न कुर्वीत यस्मिञ्जातो भवेन्नरः ।
न प्रौष्ठपदयोः (+) कार्यं न चाग्नेये च भारतः ॥
दारुणेषु (क) च सर्वेषु प्रत्यरौ च विवर्जयेत् ॥ ५८ ॥

इति महाभारते ।

अर्थ–महाभारतमे लिखा है कि– मनुष्यका जिस नक्षत्रमे जन्म होय उसमें श्राद्ध न करै और पूर्वाभाद्रपदा, कृत्तिका, आश्लेषा, आर्द्रा, ज्येष्ठा और मूल नक्षत्रमे भी श्राद्ध न करना चाहिये ॥ ५८ ॥

फल यह है कि, "ब्रह्मा विष्णुर्बृहस्पती शशधरः" इत्यादि वचनसे नये अन्नसे श्राद्ध करनेमे मूल, कृत्तिका और ज्येष्ठा नक्षत्र विहित है । उक्त वचनमे मूल कृत्तिका और ज्येष्ठानक्षत्रका श्राद्धमे निषेध है अतएव उसको नये अन्नके श्राद्धमे कहाहै ॥

वृश्चिके शुक्लपक्षे तु नवान्नं शस्यते बुधैः ।
अपरे क्रियमाणं हि धनुष्येव कृतं भवेत् ॥ ५९ ॥

इति वराहमिहिराचार्यः ।

अर्थ–वराहमिहिराचार्य्यने कहाहै कि, सौर अग्रहायणके महीनेमे विशाखा नक्षत्र और ज्येष्ठानक्षत्रमे और ज्येष्ठानक्षत्रके शेषार्द्धमे सूर्य्य स्थित न होनेसे शुक्लपक्षमें नया अन्न खाना चाहिये, किन्तु कृष्णपक्षमे नये अन्नसे श्राद्धकरनेसे धनुमे (सौर पौषमे) नवान्नश्राद्ध जिसप्रकार निष्फल होताहै उसीप्रकार होताहै ॥ ५९ ॥

यत्कृतं धनुषि श्राद्धं मृगनेत्रासु रात्रिषु ।
पितरस्तन्न गृह्णन्ति नवान्नामिषकाङ्क्षिणः ॥ ६० ॥

इति वराहमिहिराचार्य्यः ।

अर्थ–वराहमिहिराचार्य्यने कहाहै कि, सौर पौषके महीनेमे वा मृगनेत्रामे (ज्येष्ठाके शेषार्द्धमे सूर्य्य होनेसे) जो मनुष्य नये अन्नसे श्राद्ध करताहै, उसके पितृगण उस श्राद्धके अन्नको ग्रहण नही करते हैं ॥ ६० ॥

(+) प्रौष्ठपदा पूर्वाभाद्रपदा द्वितारकत्वाद् द्विवचनम् । इति श्राद्धविवेककृत ।
(क) "दारुणश्चोरगं रौद्रमैन्द्रं नैर्ऋतमेव च " इति श्राद्धविवेककृद्धृतवचनम् ।

अनावश्यकश्राद्धकालकथनम् ।

नवान्नं नैव नन्दायां न च सुप्ते जनार्दने ।
न कृष्णपक्षे धनुषि तुलायां नैव कारयेत् ॥ ६१ ॥ (क)

इति ज्योतिस्तत्वे ।

अर्थ—ज्योतिषतत्वमें लिखाहै कि, नन्दातिथिमें, श्रीहरिके शयनमें, कृष्णपक्षमें, सौर पौषमें और सौर कार्त्तिकमें नये अन्नसे श्राद्ध न करना चाहिये ॥ ६१ ॥

इतिज्योतिषसारसंग्रहे ।

अपिच ।

शुक्लपक्षे नवं धान्यं पक्कं ज्ञात्वा सुशोभनम् ।
गच्छेत्क्षेत्री विधानेन गीतवाद्यपुरःसरः ॥ ६२ ॥

इत्यभिधाय ।

तेन देवान्पितॄंश्चैव तर्पयेदर्चयेत्तथा ॥ ६३ ॥

इत्याश्विनाधिकारे ब्रह्मपुराणम् ।

अर्थ—ब्रह्मपुराणमे लिखाहै कि, आश्विनके महीनेमें शुक्लपक्षमें, धान पकताहै उस समय खेतका मालिक गीतवाद्यादिको आगे करके खेतमें जाकर नाजको कटावे, पीछे उस धानके चावलोंसे देवताओंकी और पितरोंकी पूजा करनी चाहिये ॥ ६२ ॥ ६३ ॥

इस ब्रह्मपुराणके वचनसे प्रतीत होताहै कि, पूर्ववचनमें श्रीहरिके शयन कालमें, जो नये अन्नसे श्राद्धकरनेका निषेध है उसको आश्विनमासके शुक्लपक्षके इतर जानना चाहिये ।

अन्यच्च ।

त्रयोदशीं जन्मदिनञ्च (×) नन्दां
जन्मर्क्षतारां सितवासरञ्च ॥
त्यक्त्वा हरीशेन्दु (१) करान्त्यमैत्र
ध्रुवेषु च श्राद्धविधानमिष्टम् ॥ ६४ ॥ (२)

(क) न च सुप्ते जनार्दने इति आश्विनशुक्लपक्षेतरपरम् । इति श्राद्धतत्त्वे स्मार्तेनोक्तम् ।

(×) जन्मतिथिश्चेति पाठान्तरम् ।

(१) हरीज्येन्द्विति मलमासतत्वादौ पाठः । तत्र हरिः श्रवणः इन्द्रः पुष्य इति स्मार्तेन व्याख्यातम् ।

(२) अनावश्यकश्राद्धमाह—त्रयोदशीमिति । त्रयोदशीं जन्मदिनं नन्दातिथिं जन्मराशिं जन्मतारां शुक्रवारञ्च त्यक्त्वा हरिरीशो यस्य स हरीशः श्रवणः इन्दुर्मृगशिरः करो हस्तः अन्त्यं

अर्थ-अब अनियत अर्थात अनावश्यक श्राद्धका समय कहतेहैं, त्रयोदशी, जन्मतिथि, नन्दातिथि, जन्मराशि, जन्मतारा और शुक्रवारको छोडकरके श्रवण, मृगशिर, हस्त, रेवती, अनुराधा, तीनो उत्तरा और रोहिणी नक्षत्रमें श्राद्ध करना चाहिये ॥ ६४॥

नवान्नाकरणेनिन्दाकथनम् ।

नवं (अ) कृशरपूपानि पायसं मधुसर्पिषी ।
वृथा मांसं न चाश्नीयात्पितृदेवविवर्ज्जितम् ॥ ६५ ॥ (+)

इति देवीपुराणम् ।

अर्थ-देवीपुराणमें लिखाहै कि, नये धानोके चांवल, कृशर (गुडयुक्ततिलचाँवल) पिष्टक, पायस, मधु, घृत और मांस इन सब वस्तुओसे पहिले पितरोकी और देवताओकी पुजाकरके पीछेसे खाना चाहिये ॥ ६५ ॥

अपिच ।

वृथा कृशरसंयावपायसापूपशष्कुलीः ॥
भुक्त्वा त्रिरात्रं कुर्वीत व्रतमेतत्समाहितः ॥ ६६ ॥ (क)

इति शङ्खः ।

अर्थ-कसार, सयाव (घृतक्षीरादिद्वारा पक्व गोधूमचूर्ण) पायस, पिष्टक, और शष्कुली

-रेवती मैत्रम् अनुराधा एषु ध्रुव गणेषु च श्राद्धमिष्टम् । एतच्च सावकाशश्राद्धविषयं यच्छ्राद्धमन्यादिने कर्त्तुं शक्यते यदकरणे प्रत्यवायाभावः यथा व्रीहियवपाकश्राद्धं द्रव्यब्राह्मणप्राप्तिश्राद्धं सक्रान्त्यादिकाम्यतिथिश्राद्धश्चेति अमावस्यादिनि श्राद्धन्तु तद्दिनाकरणे प्रत्यवायादवश्यकर्त्तव्यत्वेन नास्य विषय इति सौभरिणा तु हरिः श्रवण ईश आर्द्रा इति व्याख्यात तदशुद्धम् आर्द्रायां निषेधश्रवणात् । यथा विष्णुधर्म्मोत्तरे-"नक्षत्राणि तथैवात्र दारुणोग्राणि वर्जयेत्" दारुणगण उक्तः "दारुणश्चोरग रौद्रमैन्द्रं नैर्ऋतमेव च" इति । उरगमाश्लेषा रौद्रमार्द्रा ऐन्द्रं ज्येष्ठानैर्ऋतं मूलेति । उग्रगणन्तु उग्र पर्वमवान्तकेति । तथा महाभारते-"नक्षत्रे न च कुर्वीत यस्मिञ्जातो भवेन्नरः । न प्रोष्ठपद्यो कार्य्यं तथाग्नेये च भारत । दारुणेषु च सर्व्वेषु प्रत्यरौ च विवर्ज्जयेत्" प्रौष्ठपदा पूर्वाभाद्रपदा आग्नेयं कृत्तिका प्रत्यरिः पञ्चतारा अत्र यत्र च साक्षाच्छब्दोच्चारणेन विशेषविधिरस्ति तत्र विधिवैयर्थ्यभयान्नानेन निषेध इति यथान्नप्राशने सितेन्दुजीवदिवस इति । शुक्रवारेऽपि कण्ठोक्तत्वात् विधानमेव । कुर्य्यात्पुंसवनं सुयोगकरणे नन्दे सभद्रे तिथाविति वचनान्नन्दायामपि पुंसवन कर्त्तव्यमेव । तथा च मूलानुराधा मघेति वचनाद्दारुणोग्रगणत्वेन निषिद्धयोरपि मूलमघयोर्विवाहः कर्त्तव्य एवान्यथा । विधिवैयर्थ्यापत्तेः एवमन्यत्राप्युक्तः । इति ।

(अ) नव नवान्नम् ।

(+) पितृदेवविवर्जित पितृदेवोद्देश विना कृतम् नवान्नादि मासास्तं अतएव वृथा कृतमिति ।

(क) तेन देवपित्रतिथिवर्ज्जं कामतः सकृदमीषा भक्षणे त्रिरात्र कृशरादिसाहचर्येण नवान्नेऽपि तथा । इति मलमासतत्वे स्मार्त्तेनोक्तम् ।

(तिलतण्डुलादिमिश्रित यवागुविशेष) जो मनुष्य इन सब वस्तुओंको देवताओंको और पितरोंको निवेदन न करके वृथा भोजन करताहै तो उसको त्रिरात्रि उपवासका प्रायश्चित्त होताहै अथवा तदनुकल्प दान करना चाहिये । और नया अन्नभी जो देवताओंको और पितरोंको विना निवेदन किये भोजन करनेसे इसी प्रकारका प्रायश्चित्त करना चाहिये ॥ ६६ ॥

नवान्न भोजनविधिः ।

प्राश्नीयाद्दधिसंयुक्तं नवं विप्राभिमन्त्रितम् ॥ ६७ ॥ (ख)

इति ब्रह्मपुराणम् ।

अर्थ–ब्रह्मपुराणमें लिखाहै कि, नये अन्नमें दही मिलाकर ब्राह्मणसे गायत्री मन्त्रद्वारा अभिमन्त्रित कराकर भोजन करना चाहिये ॥ ६७ ॥

अपिच ।

गृहीत्वा ब्राह्मणानुज्ञां स दधि प्राशयेन्नवम् ॥ ६८ ॥

इति स्मृतिः ।

अर्थ–स्मृतिमें लिखाहै कि, ब्राह्मणकी आज्ञासे दधिमे मिलाकर नये अन्नको खाना चाहिये ॥ ६८ ॥

अन्यच्च ।

अत्र व्रीह्यभावे शालिना नूतनाभावे पुरातनेनापि श्राद्धादिकमाह भट्टभाष्ये स्मृतिः । गृहमेधी व्रीहियवाभ्यां शरद्वसन्तयोर्यजेत । श्यामाकैर्वनीवर्षासु आपत्कल्पे अन्येन पुरातनैर्वेति ॥ ६९ ॥

अर्थ–नवान्नश्राद्ध नये व्रीहिनामक धानोंके चावलोंसे करना चाहिये, उसके अभाव होनेसे साँठीके चावलोसेभी किया जासक्ताहै, नये धानोका अभाव होनेसे नया श्राद्ध पुराने धानोंके चावलोसे करना चाहिये भट्टभाष्यधृत स्मृतिके वचनमें इसीप्रकार लिखाहै कि, गृहस्थमनुष्य व्रीहिके चावलोंसे शरत्कालमें श्राद्ध करे और यवद्वारा वसन्तकालमें श्राद्धकरे, वानप्रस्थाश्रमीको श्यामाकधान्यके चावलोंसे वर्षाकालमें श्राद्ध करना चाहिये, किन्तु आपत्कालमें पुराने धानोंके चावलोसेही श्राद्धकी सिद्धि होजाताहै ॥ ६९ ॥

(ख) अभिमन्त्रितम् । "मन्त्रानादेशे गायत्री" इति वचनाद्गायत्र्या इति श्राद्धतत्त्वम् ।

अपरश्च ।

प्रेतमातापितृकस्य पुरातनधान्यालाभे नवेनैव वैश्वदेवं कृत्वा । नवञ्च ब्राह्मणेयो दत्वा ब्राह्मणानुज्ञां गृहीत्वा भोजनादिकं कर्त्तव्यम् ॥ ७० ॥

अर्थ—माता वा पिताके प्रेत होनेसे पुराने धानोके चावलोका अभाव होनेसे नये धानोके चावलोंसे विश्वेदेवका बलि देकर नया अन्न ब्राह्मणोंको दान करके और ब्राह्मणोंकी आज्ञासे नये अन्नका भोजन करे इसका प्रमाण नीचे लिखाहै ॥ ७० ॥

दत्वैवं ब्राह्मणेभ्यश्च हुत्वा वा वैश्वदेविकम् ।
अन्यो (+) नवान्नमश्नीयादिति बौधायनोऽब्रवीत् ॥ ७१ ॥

इति नव्यवर्धमानधृतास्मृतिः।

अर्थ—नवीन वर्द्धमानकी स्मृतिमें लिखाहै कि, श्राद्धके करनेमें असमर्थ मनुष्य-वैश्वदेवकी आहुति और ब्राह्मणोको दानकरके स्वयं नया अन्न खाना चाहिये ॥ ७१ ॥

इति नवान्नम् ।

अथ जन्मदिनकृत्यम् । (क)

सर्वैश्च जन्मदिवसे स्नातैर्मङ्गलपाणिभिः ।
गुरुदेवाग्निविप्राश्च पूजनीयाः प्रयत्नतः ॥ ७२ ॥
स्वनक्षत्रञ्च पितरौ तथा देवः प्रजापतिः ।
प्रतिसंवत्सरञ्चैव कर्त्तव्यश्च महोत्सवः ॥ ७३ ॥

इति ब्रह्मपुराणे ।

अर्थ—मनुष्यकी जन्मतिथिके दिनमे जलमें तिल मिलाकर उससे स्नान करके नये वस्त्रको पहनकर दूर्वा गोरोचनादियुक्त जन्मग्रन्थि दहिने हाथमें धारण करके गुरु देवता, अग्नि बाह्मण, स्वीय जन्मनक्षत्र, पिता, माता, और प्रजापति देवताकी (ब्रह्माकी) विधानपूर्वक पूजा करनी चाहिये । प्रतिवर्षकी जन्मातिथिमेही उक्तप्रकारसे महोत्सव करना चाहिये ॥ ७२ ॥ ७३ ॥

(+) अन्य श्राद्धाकरणसमर्थ श्राद्धानधिकारी च अत एव विधया नवमेकोद्दिष्टे दीयते भुज्यते च । इति श्राद्धतत्वे स्मार्त्ता. ।

(क) जन्मतिथिकृत्यं मलमासे न कर्त्तव्य चान्द्रमासीयत्वेन सावकाशत्वात् । न च तस्य सौरमासीयत्व तथात्वे तन्मासे तत्तिथेः कदाचिदप्राप्तौ तद्वर्षे तत्कृत्यलोपापत्ते. । नचेष्टापत्ति. प्रतिसंवत्सरे तद्विधानात् । इति तिथितत्वे स्मार्त्तेनाभिहितम् ।

अपिच ।

तिलोद्वर्त्तीतिलस्नायितिलहोमी तिलप्रदः ।
तिलभुक्तिलवापी च षट्तिली नावसीदति ॥ ७४ ॥

इति तिथितत्त्वे ।

अर्थ–तिथितत्वमें लिखा है कि–जन्मतिथिमें तिलोद्वर्तन, तिलस्नान, तिलहोम तिलप्रदान, तिलभोजन और तिल बोनेसे उस मनुष्यको अवसन्नताप्राप्ति नही' होती है ॥ ७४ ॥

अन्यच्च ।

गुडदुग्धतिलानद्याज्जन्मग्रन्थेश्च बंधनम् ।
गुग्गुलं निम्बसिद्धार्थं दूर्वागोरोचनायुतम् ॥ ७५ ॥

इति कृत्यचिन्तामणौ ।

अर्थ–कृत्यचिन्तामणिमें लिखा है कि, जन्म तिथिमें दूधमें गुड और तिल मिलाकर खाय और गुगुग्ल, निम्ब, श्वेतसर्षप, दूर्वा और गोरोचना युक्त सूत्रसे दहने हाथमे ग्रन्थि बन्धन करे ॥ ७५ ॥

अपरश्च ।

खण्डनं नखकेशानांमैथुनाध्वानमेव च ।
आमिषं कलहं हिंसां वर्षवृद्धौ विवर्ज्जयेत् ॥ ७६ ॥

इति स्कन्दपुराणे ।

अर्थ–स्कंदपुराणमें लिखा है कि–जन्मातिथिमें नाखून और बालोंका कटाना मैथुन, अध्वगमन (यात्रा) आमिषभक्षण, कलह और हिंसा इन सब कार्योंको न करना चाहिये ॥ ७६ ॥

प्रकारान्तरश्च ।

स्नात्वा जन्मदिने स्त्रियं परिहरन्प्राप्नोत्यभीष्टां श्रियं
मत्स्यान्मोचयतो द्विजाय ददतोऽप्यायुश्चिरं वर्द्धते ॥
सक्तून्खादति यस्तु तस्य रिपवो नाशं प्रयान्ति ध्रुवं
भुङ्क्ते यस्तु निरामिषं स हि भवेज्जन्मान्तरे पण्डितः ॥ ७७ ॥

इति ज्योतिर्निबन्धे ।

अर्थ-ज्योतिषतत्वमें लिखा है कि- जन्मतिथिमे स्नान करके और स्त्रीसंसर्ग-परित्यागकरनेसे अतुल श्री (लक्ष्मी) प्राप्ति होती है और मत्स्यमोचनपूर्वक ब्राह्मणको दान करनेसे आयुकी वृद्धि होती है जन्मतिथिमे सक्तु (भर्जितयवादिचूर्ण सतुआ) खानेवाले मनुष्यके शत्रुओंका नाश होता है, और निरामिष (मांसरहित) भोजनकरनेसे जन्मान्तरमे पण्डित होता है ॥ ७७ ॥

अन्यच्च ।

मृते जन्मनि संक्रान्तौ श्राद्धे जन्मदिने तथा ।
अस्पृश्यस्पर्शने चैव न स्नायादुष्णवारिणा ॥ ७८ ॥

इति वृद्धमनुः ।

अर्थ-वृद्धमनुने कहा है कि- मृतक शरीरको छूनेसे, पुत्रके होनेसे, संक्रान्तिके निमित्त, श्राद्धके दिन, जन्मातिथिके दिन और न छूनेकी वस्तुको छूनेसे गरमपानीसे स्नान करना चाहिये ॥ ७८ ॥

अथ जन्मतिथिरुभयदिने लाभे व्यवस्थामाह ।

युगाद्या वर्षवृद्धिश्च सप्तमी पार्वतीप्रिया ।
रवेरुदयमीक्षन्ते न तत्र तिथियुग्मता ॥ ७९ ॥

इति देवीपुराणम् ।

अर्थ-देवीपुराणमें लिखा है कि, युगाद्या जन्मतिथि और आश्विनके महीनेकी शुक्लासप्तमी यदि उभयदिन पूर्वाह्णमे प्राप्ति होय तव उदयगामिनी तिथिकोही ग्रहणकरै अतएव जन्मतिथि दो दिनके पूर्वाह्णमे होय तो परदिनमे कृत्य करना चाहिये ॥ ७९ ॥

अपिच ।

वस्रद्वये जन्मतिथिर्यदि स्यात्पूज्या तदा
जन्मभसंयुतैव ॥ असंयुता भेन दिनद्वयेऽपि
पूज्या परा या भवतीह यत्नात् ॥ ८० ॥

इद वचनं बृहद्राजमार्त्तण्डेपि ।

अर्थ-बृहद्राजमार्त्तण्डमे लिखा है कि-दोनों दिनके पूर्वाह्णमें जन्मतिथि होनेसे जिस दिन जन्मका नक्षत्र पूर्वाह्णमे होय तो उसी दिन जन्मतिथिका कृत्य करना चाहिये और दोनो दिन पूर्वाह्णमे जन्मनक्षत्र होनेसे वा एकदिन भी न

होनेसे परदिनमें जन्मातिथिका कृत्य करना चाहिये । पूर्वाह्नके इतर कालमें जन्म-नक्षत्र होनेसे भी ग्रहण न करै ॥ ८० ॥

विस्तरेणालं प्रकृतमनुसरामः ।

अथ स्वनक्षत्रे जन्मतिथिफलम् ।

जन्मर्क्षयुक्ता यदि जन्ममासे यस्य ध्रुवं जन्मतिथिर्भवेच्च ।
भवन्ति संवत्सरमेव यावन्नैरुज्यसन्मानसुखानि तस्य ॥८१॥(+)

अर्थ–जन्मनक्षत्रका जन्मातिथिमें होनेसे फळ कहते हैं–यदि किसी मनुष्यके जन्म महीनेमें जन्मनक्षत्रयुक्त जन्मतिथि होय तो उस वर्षमें उक्त मनुष्यको रोग नहीं होता है और वर्षभरतक सन्मान सुख और अनेकप्रकारके भोग प्राप्त होते हैं ॥ ८१ ॥

वारफलम् ।

कृतान्तकुजयोर्वारे यस्य जन्मदिनं भवेत् ।
अनृक्षयोगसंप्राप्तौ विघ्नस्तस्य पदेपदे ॥ ८२ ॥ (१)

अर्थ–यदि किसी मनुष्यकी शनिवारमें वा मङ्गलवारमें, जन्मतिथि होय तो उस मनुष्यको विघ्न होता है और उसमें यदि जन्म नक्षत्र न होय तो वह संवत्सर उस मनुष्यके पदपदमें विघ्नदायक होता है ॥ ८२ ॥

अथ शनिमङ्गलवारयुक्तजन्मनक्षत्रफलम् ।

जन्मन्यृक्षे यदि स्यातां वारौ भौमशनैश्चरौ ।
स मासः कल्मषो नाम मनोदुःखप्रदायकः ॥ ८३ ॥ (२)

अर्थ–जिस किसी महीनेमें जन्मनक्षत्र यदि मङ्गलवारमें वा शनिवारमें होय तो उस मनुष्यके उस महीने को पापका महीना कहते है और उस मनुष्यको उसी महीनेमें अनेकप्रकारके दुःख प्राप्त होते हैं ॥ ८३ ॥

(+) जन्मतिथौ स्वनक्षत्रयोगे फलमाह–जन्मर्क्षेति सुगमम् ।

(१) शनिकुजवारे जन्मतिथिप्राप्तौ दोषमाह–कृतान्तेति । शनिमङ्गलवारे जन्मतिथौ सत्यां [illegible] स्यात् । तथा अनृक्षयोगसंप्राप्तौ ऋक्षयोगाभावे पदेपदे विघ्नं स्यादित्यर्थः । अत्र [illegible] मुक्ता देया अनृक्षे तु काञ्चनमिति पृथक्पृथक् प्रतीकारोऽनन्तरं वक्ष्यते । [illegible] तु यदि नक्षत्रयोगाभावः स्यात्तदैव शनिकुजवारे दोषो भवेत् इति निगदितं आत्मनो मूर्खत्वं प्रतिपादितमिति ।

(२) यस्मिन्कस्मिन्नपि मासि शनिकुजवारे जन्मनक्षत्रे सति दोषमाह–जन्मन्यृक्षे [illegible] पाप इत्यर्थः ।

अथ दोषशान्तिः।

तस्य सर्वौषधिस्नानं ग्रहविप्रसुरार्चनम्।
सौरारयोर्दिने मुक्ता देयाऽनृक्षे तु काञ्चनम्॥ ८४॥ (१)

अर्थ–जन्मके तिथिमे जन्मके महीनेमें और जन्मके नक्षत्रमें शनिवार अथवा मङ्गलवारके होनेसे जो दोष होता है उस दोषके शान्तिके अर्थ सर्वौषधिजलमें मिलाकर उस जलसे स्नान करै और ग्रह ब्राह्मण और देवताओंकी पूजा करनी चाहिये और शनि मंगलवारमें जन्मकी तिथि और जन्मका नक्षत्र होनेसे दोष-शान्तिके अर्थ मुक्ता (मोती) का दान करै, जन्मनक्षत्रहीन जन्मकी तिथिमें काञ्चन (सुवर्ण) दान करना चाहिये॥ ८४॥

अथ सर्वौषधिकथनम्।

मुरा मांसी वचा कुष्ठं शैलेयं रजनीद्वयम्।
शुंठी चम्पकमुस्तञ्च सर्वौषधिगणः स्मृतः॥ ८५॥

अर्थ- अब सर्वौषधिको कहते हैं–मुरामांसी (जटमांसी) वच, कूठ, शैलेय अर्थात् शैलज हल्दी, दारुहल्दी, सोठ, चम्पक (भूमिचम्पक) नागरमोथा इन सब वस्तुओंको सर्वौषधि कहते हैं॥ ८५॥

इति जन्मतिथिकथनम्।

इति वंशावरेल्यांतर्वर्तिकान्यकुब्जकुलभूषणभारद्वाजगोत्रोद्भवेनत्रिपाठ्युपनाम-केनपण्डितबाँकेलालात्मजेनश्यामसुन्दरशर्म्मणासम्पादितभाषाटीकया-विभूषिते ज्योतिस्तत्त्वसुधार्णवे देवताघटनादितिथ्यन्तः पञ्चमस्तरङ्गः॥ ५॥

---

(१) एतत्प्रतीकारमाह–तस्येति। यस्य जन्मतिथौ प्रतिमास जन्मनक्षत्रे वा दोष उक्तस्तस्येत्यर्थः। सौरारयोर्दिने जन्मतिथौ जन्मनक्षत्रे वा मुक्ता देया तथा अनृक्षे जन्मतिथौ स्वनक्षत्रयोगाभावे तु काञ्चनं देयमित्यर्थः। इति।

अथ षष्ठस्तरङ्गः ६.



अथ यात्राप्रकरणम् ।

(निषिद्धलग्नकथनम्)

सिंहे धनुषि मीने च स्थिते सततुरङ्गमे ।
यात्रोद्वाहगृहारम्भक्षौरकर्माणि वर्जयेत् ॥ १ ॥ (अ)

इति संवत्सरप्रदीपे ।

अर्थ–अब यात्राप्रकरण कहते हैं–संवत्सरप्रदीपमें लिखा है कि, सिंहमे, धनमे और मीनमें सूर्य्य होनेसे अर्थात् भादोमें, पौषमे और चैत्रमें यात्रा, विवाह, गृहारम्भ और क्षौरकर्म्म न करना चाहिये ॥ १ ॥

निषिद्धतिथिकथनम् ।

षष्ठ्यष्टमीद्वादशीषु न गच्छेत्त्रिदिनस्पृशि ।
पूर्णिमाप्रतिपद्दर्शरिक्तावमदिनेषु च ॥ २ ॥ (आ)

इति दीपिकायाम् ।

(अ) एष यात्रानिषेधः राजेतरपर इति मलमासतत्वे स्मार्त्तेनाभिहितम् । भाद्रचैत्रपौषे गृहयात्रानिषेध इति ज्योतिःसारे रामकान्तः ।

(आ) निषिद्धतिथिमाह–षष्ठीति । त्रिदिनस्पृशि त्र्यहस्पृशि पूर्वोक्ते अत्र च प्रतिपदोविधिर्निषेधश्च श्रूयते । यथा राजमार्तण्डे–"प्रतिपत्सु प्रयातानां सिद्धिरेव न संशयः" एतच्च चन्द्रस्य क्षीणत्वपूर्णत्ववशेन शुक्ल कृष्णभेदेन निषेधो विधिश्च ज्ञातव्य इति । दर्शोऽमावस्या रिक्ता चतुर्थी नवमी चतुर्दश्यः । अवमदिन पूर्वोक्तं त्र्यहस्पृगवमदिनयोश्च भेदस्तत्रैव कृतः । इति–शेष सुगमार्थम् । अत्र च लग्नविशेषवशेन तिथिनिषेध उक्तः । पशुपतिदीपिकायाम्– "द्वितीयामीनधनुषोश्चतुर्थी वृषकुम्भयोः । मेषकर्कटयोः षष्ठी कन्यामिथुनकेऽष्टमी । दशमी वृश्चिके सिंहे द्वादशी मकरे तुले । एभिर्यातो न जीवेत यदि शक्रसमो भवेत् । एषु गन्तुर्विनाशः स्यात्प्रवेशे भङ्गमादिशेत् । विवाहे चैव वैधव्यं चूडायां मरणं ध्रुवम् । कृष्णारम्भे फलं नास्ति व्रतदाने च मूर्खता । शुभकर्माणि सर्वाणि नैव कुर्य्याद्विचक्षणः" अत्र केचित्तिथिभेदात्पूर्वादिदिक्षु योगिन्यवस्थितत्वेन तत्तद्दिशि यात्रानिषेधं वदन्ति वचनञ्च पठन्ति । "प्रतिपन्नवमी पूर्व्वेरामान्द्राश्च पावके । शक्रयोदशी याम्ये वेदा मासाश्च नैर्ऋते । षष्ठीचतुर्दशी पश्चाद्वायौ पूर्णा च सप्तमी । द्वितीया दशमी सौम्यानैशान्यामष्टमी कुहूः । वामे शुभकरी देवी दक्षिणे मृत्युदा स्थिता । पश्चात्सर्वार्थदा चाग्रे पृष्ठे सर्वार्थसिद्धिदा" एतदनादरं साकरते वा योगिन्याश्चतुर्दण्डक्रमेण वोटकगत्या यामावर्तन प्रतिदिनस्थप्रमाणाभावाद्-प्रसङ्गः स्यात् । तथा च पठन्ति "यामार्द्धेनाश्वगत्या तु भ्रमते दिक्षु योगिनी" इति ।

अर्थ–दीपिकामें लिखा है कि–षष्ठी, अष्टमी, द्वादशी, पूर्णिमा, प्रतिपदा और रिक्ता तिथिमे हस्तर्श और अवमदिनमें यात्रा न करना चाहिये ॥ २ ॥

अपिच ।

तथा यमद्वितीयायां यात्रायां मरणं भवेत् ॥ ३ ॥

इति ज्योतिःसारे ।

अर्थ–ज्योतिःसारमे लिखा है कि– यमद्वितीया (भ्रातृद्वितीया) तिथिमें यात्रा करनेसे मनुष्यकी मृत्यु होती है ॥ ३ ॥

शुभाशुभतिथिकथनम् ।

अजातचन्द्रा प्रतिपत्तिथिर्यासासर्वथा सिद्धिकरी न पुंसाम् ।
कलोनचन्द्रा प्रतिपत्तिथिर्यासा सर्वदा सिद्धिकरी नियुक्ता ॥४॥

अर्थ–अजातचन्द्रमा अर्थात् शुक्लपक्षकी प्रतिपदा तिथिमे यात्रा करनेसे जानेवाले की मनकामना सिद्ध नहीं होती है और कलोनचन्द्रमा (कृष्णपक्षकी प्रतिपदा) तिथिमे यात्रा करनेसे मनुष्यकी यात्रा शुभ होती है ॥ ४ ॥

अपिच ।

प्रतिपत्सु प्रयातानां सिद्धिरेव न संशयः ।
द्वितीयायां शुभः पन्थास्तृतीयायां जयी भवेत् ॥ ५ ॥
वधबन्धनसंक्लेशश्चतुर्थ्यां नात्र संशयः ।
पञ्चम्यामीप्सितार्थः स्यात्षष्ठ्यां व्याधियुतो भवेत् ॥ ६ ॥
सप्तम्यामर्थलाभः स्यादष्टम्यामन्त्रपीडनम् ।
नवम्यां मृत्युसंयोगान्न गन्तव्यं कदाचन ॥ ७ ॥
दशम्यां भूमिलाभः स्यादेकादश्यामरोगिता ।
द्वादश्याञ्च न गन्तव्यं सर्वसिद्धा त्रयोदशी ॥ ८ ॥
चतुर्दश्यां पञ्चदश्यां गमनञ्च निषेधयेत् ॥ ९ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ–ज्योतिषतत्वमे लिखा है कि, कृष्णपक्षकी प्रतिपदामे यात्रा करनेसे मनोरथ सिद्ध होता है, इसीप्रकार दोनों पक्षोंकी द्वितीयामे यात्रा शुभ होती है, तृतीयामें जयप्राप्ति होती है, चतुर्थीमें वध, बन्धन और क्लेश होता है, पञ्चमीमे अभीष्टसिद्धि होती है, षष्ठीमे रोग होताहै, सप्तमीमें धनकी प्राप्ति होताहै, अष्टमीमें

अस्त्राघात होता है, और नवमीमें यात्रा करनेसे मृत्यु होती है. अतएव इस तिथिमें कभी न जाना चाहिये और दशमी तिथिमें यात्रा करनेसे भूमि (पृथिवी) मिलती है. इसी प्रकार एकादशीमे आरोग्यताप्राप्ति होती है किन्तु द्वादशीमें यात्रा न करै, त्रयोदशीमें सब कार्य्य सिद्ध होते हैं. चतुर्दशी, अमावास्या और पूर्णिमा तिथिमें यात्रा न करना चाहिये ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥

वारादिकथनम् ।

संत्यजेद्दिवसे यात्रां सूर्यारार्कीन्दुवक्रिणाम् ॥
अष्टवर्गदशापाकेष्वनिष्टफलदस्य च ॥ १० ॥ (इ)

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ--ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि-रवि, मंगल, शनि और सोमवारमें और ग्रहोंके वक्री होनेसे उनके वारोंमें यात्रा न करना चाहिये और अष्टवर्गमे वा दशाभें जो ग्रह अनिष्टदायक होयँ उन सब ग्रहोंके वारमें भी यात्रा न करनी चाहिये ॥ १० ॥

टीकामें जो सब वचन लिखेहैं उनके मध्यमे किसी किसी अत्यन्त आवश्यक वचनोका सर्वसाधारणके जानने निमित्तसे मूलमे लिखकर उनकाभी भाषानुवाद कर दियाहै जिसके देखनेसे पाठकगण अनायासमें समझजायँगे ।

अपि च ।

सूर्य्यदिनेऽध्वनि नाशश्चन्द्रे शक्तिक्षयोऽर्थहानिश्च ।
ज्वलनासृक्पित्तरुजः भौमे बुधे सुहृत्प्राप्तिः ॥ ११ ॥

(इ) यात्रायां निषिद्धवारानाह–संत्यजेदिति । सूर्य्यस्यारस्य मङ्गलस्य आर्के शनेरिन्दोश्चन्द्रस्य वक्रिग्रहस्य वारे यात्रा त्यजेत् । तथा लघुयात्रायां "सूर्य्यदिवसे विनाशश्चन्द्रे शक्तिक्षयोऽर्थहानिश्च । ज्वलनासृक्पित्तरुजः भौमे बौधे सुहृत्प्राप्तिः । जैवे जयधनरद्धिः शौक्रे स्त्रीवस्त्रगन्धधनलाभः । [illegible] वधबन्धरोगान्प्राप्नोति दिनेऽर्कपुत्रस्य " तथाच तत्रैव–"वक्री न शुभः केन्द्रे तदहस्तद्वर्गलग्नं च" इति अत्र च वाराधिपतेरनुलोमदिशि गमनं प्रशस्तं प्रतिलोमदिशि न प्रशस्तम् । यथा राजमार्तण्डे– "तोयेश वह्निधनदान्तकराक्षसानां यातो यदानिलशतक्रतुशङ्कराणाम् । दिग्भागमुष्णकिरणादि दिनेषु [illegible] संरक्षितोऽपि निधनं न चिरादुपैति । प्रतीची रविवारेण प्राचीञ्च रविनन्दने । उदीचीं भूमिपुत्रेण न यात्रा दक्षिणां बुधे, तथा दशपतिदीपिकायाम् " दक्षिणदिङ्मुखगमनं गमनं [illegible] नारीषु । व्ययमपि शस्यफलानां न बुधो बुधवासरे कुर्यात । सामान्येनोक्तं विशेषमाह अष्टेति । अष्टवर्गाद्युक्तगोचरे दशापाकादौ आदिशब्दान्तर्दशादौ नाडीनक्षत्रादौ चानिष्टफलदस्य [illegible] वारे यात्रां संत्यजेत् । एवञ्च पापग्रहस्यापि अष्टवर्गादौ शुभफलदस्य वारे यात्रा प्रशस्ता । [illegible] मादिग्रहस्यापि वारे गोचरादौ शुभदत्वेन यात्रा शुभेति तात्पर्यार्थः । यथा राजमार्तण्डे [illegible] पुनरिद त्वशुभ. शुभो वा यः स्याद्ग्रह शुभफलो दिने [illegible] " तथा लघुयात्रायाम् " [illegible] दिने सिद्धिः क्रूरेष्वपि यायिनां भवति । सौम्येष्वनुपचयस्थे न भवति यात्रा शुभा यातु "

जैवे धनजयलब्धिः शौक्रे स्त्रीवस्त्रगन्धधनलाभः ।
दैन्यवधबन्धरोगान्प्राप्नोति दिनेऽर्कपुत्रस्य ॥ १२ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, रविवारमें यात्रा करनेसे मृत्यु होती है, इसीप्रकार सोमवारमे शक्तिका क्षय और धनकी हानि होती है, मंगलवारमें अग्निका भय और रक्तपित्तकी पीडा होती है, बुधवारमें बन्धुकी (भाईकी) प्राप्ति होतीहै, बृहस्पतिवारमे धनप्राप्ति और जयप्राप्ति होतीहै, शुक्रवारमें स्त्री, वस्त्र, गन्ध-द्रव्य और धनकी प्राप्ति होतीहै और शनिवारमें यात्रा करनेसे दैन्यता, वध, बन्धन और रोगकी प्राप्ति होतीहै ॥ ११ ॥ १२ ॥

अन्यच्च ।

उपचयग्रहदिने सिद्धिः क्रूरेष्वपि यायिनां भवति ।
सौम्येऽप्यनुपचयस्थे न भवति यात्रा शुभा यातुः ॥ १३ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—ज्योतिषतत्त्वमे लिखा है कि, क्रूरग्रह यदि उपचयस्थ (तीसरे, ग्यारहवें, छठे वा दशमें स्थानमें स्थित) होयँ तब उन सब ग्रहोके वारोमे जानेवालेकी यात्रा शुभ होतीहै और शुभग्रह यदि अनुपचयस्थ होयँ तो शुभग्रहोंके वारोमें यात्रा शुभ होतीहै ॥ १३ ॥

अपरञ्च ।

शुक्रादित्यदिने न वारुणदिशं न ज्ञे कुजे चोत्तरां
मन्देन्द्वोश्च दिने न शक्रककुभं याम्यां गुरौ न व्रजेत् ॥
शूलानीतिविलङ्घ्य यान्ति मनुजा ये सौख्यवित्ताशया
भ्रष्टाशाः पुनरापतन्ति यदि ये शक्रेण तुल्या अपि ॥ १४ ॥

अर्थ—शुक्रवार और रविवारमे पश्चिमदिशाको न जाना चाहिये, इसीप्रकार बुधवार और मंगलवारको उत्तरदिशामे न जाय. शनिवार और सोमवारमें पूर्वदिशाको न जावे और बृहस्पतिवारमें दक्षिणदिशाको न जाना चाहिये, जो मनुष्य इन दिशा-शूलोंके दिनमें सुख और धनकी आशा करके यात्रा करताहै तो इन्द्रके समान होनेसे भी उस मनुष्यका नाश होताहै ॥ १४ ॥

प्रकारान्तरञ्च ।

दिगीशाहे शुभा यात्रा पृष्ठाहे मरणं ध्रुवम् ॥ १५ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-ज्योतिषतत्त्वमें लिखाहै कि, दिशाके स्वामीके वारमें यदि उसी दिशामे यात्रा करनेसे शुभफल होताहै और दिशाके मालिककी पीठकी तरफ जानेसे यात्रीकी मृत्यु होतीहै ॥ १५ ॥

अथ दिगधिपतिकथनम् ।

सूर्यः शुक्रः क्षमापुत्रः सैंहिकेयः शनिः शशिः ।
सौम्यस्त्रिदशमन्त्री च प्राच्यादिदिगधीश्वराः ॥ १६ ॥ (+)

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ-अब दिशाओंके स्वामी वर्णन करतेहैं, यथा दीपिकामें लिखा है कि, पूर्वदिशाके मालिक सूर्य्य हैं, इसीप्रकार अग्निकोणके मालिक शुक्र दक्षिणके मालिक मंगळ, नैर्ऋत कोणके मालिक राहु, पश्चिमके मालिक शनि, वायुकोणका मालिक चन्द्रमा, उत्तरका मालिक बुध और ईशान कोणका मालिक बृहस्पति होताहै ॥ १६ ॥

अपिच ।

दिगीशवारे गमनं प्रशस्तं विहाय सौम्यं यदिजीविताशा ।
न वारदोषाः प्रभवन्ति रात्रौ विशेषतोऽर्कावनिभूशनीनाम् ॥ १७ ॥

इति गर्गः ।

अर्थ-गर्गने कहाहै कि, दिशाके स्वामीके वारमें उसी दिशामे जाना चाहिये, किन्तु बुधवारको जीनेकी आशा करनेवाला मनुष्य उत्तरदिशामे न जाय । रात्रिमें यात्रा करनेसे उक्त वारोका दोष नही होताहै, विशेषकरके रवि, मंगळ और शनिवारमें यात्रा करनेसे दोष नही होताहै ॥ १७ ॥

अन्यच्च ।

पूर्वस्यां सूर्यशुक्रौ च प्रतीच्यां शनिसोमकौ ।
दक्षिणस्यां क्षितिसुतश्चोत्तरस्यां बृहस्पतिः ॥ १८ ॥

इति ज्योतिःसारे ।

अर्थ-ज्योतिःसारमें लिखाहै कि-रवि और शुक्रवारमें पूर्वदिशामे जाना चाहिये इसीमकार शनि और सोमवारमे पश्चिमदिशाको जाय, मंगलवारमे दक्षिणदिशाको जाय और बृहस्पतिवारमें उत्तरदिशाको जाना चाहिये ॥ १८ ॥

अथ दिशाशूलकथनम् ।

न गच्छेदुत्तरे भौमे न प्राच्यां दिशि सोमके ।
याम्ये देवगुरौ चैव न गन्तव्यं कदाचन ॥ १९ ॥

(+) पूर्वादिदिशां पतिनाह-सूर्य्य इति । स्पष्टार्थम् ।

ईशाने चैव नैर्ऋत्यामाग्नेय्यां मारुते तथा ।
न गन्तव्यं सुराचार्ये प्रतीच्यां रविशुक्रयोः ॥ २० ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ-ज्योतिःसारसंग्रहमे लिखाहै कि, मंगलवारमे उत्तरदिशाको यात्रा न करनी-चाहिये, इसीप्रकार सोमवारमे पूर्वको न जाय,दक्षिण ईशानकोण नैर्ऋत अग्निकोण और वायुकोणमे बृहस्पतिवारको न जानाचाहिये और रविवार शुक्रवारको पश्चिम दिशामे न जाय ॥ १९ ॥ २० ॥

प्रकारान्तरञ्च ।

शनिसोमदिने प्राचीं दक्षिणां बुधजीवयोः ।
प्रतीचीं रविशुक्राह्ने गच्छेद्भौमेन चोत्तराम् ॥ २१ ॥

इति सत्कृत्यमुक्तावल्याम् ।

अर्थ-सत्कृत्यमुक्तावलीमे लिखाहै कि, शनि और सोमवारमे पूर्वदिशाको न जाना चाहिये इसीप्रकार बुध और बृहस्पतिवारमें दक्षिणदिशाको न जाय, रवि और शुक्र-वारमे पश्चिमको न जावे और मङ्गलवारमे उत्तरदिशाकी यात्रा न करनीचाहिये॥२१॥

अथ वारवेलाकथनम् ।

कृतमुनियमशरमङ्गलरामर्त्तुषु भास्करादियामार्द्धे ।
प्रभवति हि वारवेला न शुभा शुभकार्यकरणाय ॥ २२ ॥ (+)

अर्थ-अब वारवेलाको कहतेहै-दिनमानको आठभागमे विभक्त करनेसे उसके एक २ भागका नाम यामार्द्ध होताहै । रविवारके चौथे यामार्द्धको वारवेला कहतेहैं, अर्थात् डेढ प्रहरके बाद एक यामार्द्ध वारवेला होताहै, इसीप्रकार सोमवारके सातवें यामार्द्धको वारवेला कहतेहै, मंगलवारके दूसरे यामार्द्धमे वारवेला होती है, बुधवारकें पांचवे यामार्द्धमे, बृहस्पतिवारके आठवें यामार्द्धमें, शुक्रवारके तीसरे यामार्द्धमें और शनिवारके छठे यामार्द्धमें वारवेला होतीहै अर्थात् अढाई प्रहरके बाद वारवेला होती है । इन सब वारवेलाओमे शुभाशुभ कोई कार्य्य न करना चाहिये ॥ २२ ॥

(+) वारवेलामाह-कृतेति । कृतादिसंख्यासु चतुरादिसंख्याविषयेषु यथासंख्य भास्करादीनां यामार्द्धं प्रहरार्द्धं तत्र वारवेला स्यात्सा शुभाशुभकर्म्मकरणाय न शुभा स्यात् । रविवारे चतुर्थ-यामार्द्धे वारवेला सोमवारे सप्तमयामार्द्ध इत्यादि अत्र च वारप्रवृत्तिकालादेव वारवेला गणनीये-त्याहुरेतच्च युक्तिसिद्धं व्यवह्रियते च कैश्चित् । इति । "रविःकविः कुजो राहुर्गुरुश्चन्द्रः शनिर्बुधः । एतेषां राहुवेलायां वारवेला प्रकीर्तिता " इति ग्रन्थान्तरे ।

अथ कालादिकथनम् ।

कालस्य वेला रवितः शराक्षी कालानलागाम्बुधयो गजेन्दू ॥
दिनेनिशायामृतवेदनेत्रनगेषुरामा विधुदन्तिनौ च ॥२३॥ (×)

अर्थ—अब कालवेलाको कहते हैं—रविवारके पांचवें यामार्द्धमें कालवेला होती है अर्थात दोपहरके बाद एक यामार्द्धको कालवेला कहते हैं, इसीप्रकार सोमवारके दूसरेयामार्द्धको कालवेला कहते हैं, मङ्गलवारके छठे यामार्द्धको, बुधवारके तीसरे यामार्द्धको, बृहस्पतिवारके सातवें यामार्द्धको शुक्रवारके चौथे यामार्द्धको और शनिवारके पहिले यामार्द्धको और आठवें यामार्द्धको कालवेला कहते हैं. यह कालवेला दिनमें होती है, रात्रिमे रविवारके छठे यामार्द्धको कालरात्रि कहते हैं. इसीप्रकार सोमवारके रात्रिके चौथे यामार्द्धको कालरात्रि कहते हैं, मङ्गलकी रात्रिके दूसरे यामार्द्धको, बुधवारकी रात्रिके सातवें यामार्द्धको. बृहस्पतिवारकी रात्रिके पॉचवे यामार्द्धको, शुक्रवारकी रात्रिके तीसरे यामार्द्धको और शनिवारकी रात्रिके पहिले और आठवे यामार्द्धको कालरात्रि कहते हैं ॥ २३ ॥

अपिच ।

रवौ वर्जं चतुःपञ्च सोमे सप्तद्वयं तथा ।
कुजे षष्ठद्वयं चैव बुधे पञ्चतृतीयकम् ॥ २४ ॥
गुरौ सप्ताष्टमञ्चैव त्रिचत्वारि च भार्गवे ।
शनावाद्यञ्च षष्ठञ्च शेषं च परिवर्जयेत् ॥ २५ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ—ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि, रविवारमे चौथे और पांचवे यामार्द्धको अर्थात् डेढ पहरके बाद एक पहरको त्यागकरके कर्म्म करना चाहिये, इसीप्रकार सोमवारके दूसरे और सातवें यामार्द्धको, मङ्गलवारके दूसरे और छठे यामार्द्धको बुधवारके तीसरे और पांचवे यामार्द्धको बृहस्पतिवारके सातवे और आठवें यामार्द्धको, शुक्रवारके तीसरे और चौथे यामार्द्धको और शनिवारके पहिले, छठे और आठवें यामार्द्धको परित्यागकरके कार्य्य करना चाहिये ॥ २४ ॥ २५ ॥

(+) कालवेलामाह—कालस्येति । रवितो रविवारादितः दिने यथा सल्यं शरादियामार्द्धानि कालस्य वेला स्यात् । गजेन्दु इति द्विवचनात् शनिवारे प्रथम शेषञ्च यामार्द्धं कालवेला स्यात् । रात्रौतु यथा संख्यंतुवेदादियामार्द्धानि कालवेला इत्यर्थः । अत्र च कालस्य वेलेति मञ्जषा नक्षत्र दर्शितामिति ।

अथ कालराज्यादिकथनम् ।

रवौ षष्ठं विधौ वेदं कुजवारे द्वितीयकम् ।
बुधे सप्त गुरौ पञ्च भृगुवारे तृतीयकम् ॥ २६ ॥
शनावाद्यं तथा चान्तं रात्रौ कालं विवर्ज्जयेत् ॥ २७ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ--ज्योतिःसारसंग्रहमे लिखा है कि, रविवारकी रात्रिमें छठे यामार्द्धको कालरात्रि कहते हैं, इसीप्रकार सोमवारकी रात्रिके चौथे यामार्द्धको कालरात्रि कहते हैं, मङ्गलकी रात्रिके दूसरे यामार्द्धको, बुधकी रात्रिके सातवे यामार्द्धको, बृहस्पतिकी रात्रिके पांचवें यामार्द्धको, शुक्रवारकी रात्रिके तीसरे यामार्द्धको और शनिवारकी रात्रिके पहिले यामार्द्धको और आठवे यामार्द्धको कालरात्रि कहते हैं, इसमे कोई कार्य्य न करना चाहिये ॥ २६ ॥ २७ ॥

अपिच ।

रवौ रसाब्धी हिम गोहयाब्धी द्वयं महीजे विधुजे शराश्वौ ।
गुरौ शराष्टौ भृगुजे तृतीयं शनौ रसाद्यन्तमिति क्षपायाम् ॥२८॥

इति सत्कृत्यमुक्तावल्याम् ।

अर्थ—सत्कृत्यमुक्तावलीमे लिखा है कि, रविवारकी रात्रिके छठे और चौथे यामार्द्धमे कालरात्रि होती है, इसीप्रकार सोमवारकी रात्रिके सातवें और चौथे यामार्द्धमें मङ्गलकी रात्रिके दूसरे यामार्द्धमें, बुधकी रात्रिके पांचवे और सातवे यामार्द्धमे बृहस्पतिकी रात्रिके पॉचवे और आठवे यामार्द्धमे, शुक्रवारकी रात्रिके तीसरे यामार्द्धमे और शनिवारकी रात्रिके पहिले, छठे और आठवे यामार्द्धमे कालरात्रि होती है ॥ २८ ॥

अथ फलम् ।

यात्रायां मरणं काले वैधव्यं पाणिपीडने ।
व्रते ब्रह्मवधः प्रोक्तः सर्वकर्म्मसु तं त्यजेत् ॥ २९ ॥

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ—कालवेलादिमे यात्रा करनेसे यात्रीकी मृत्यु होती है इसीप्रकार विवाह करनेसे कन्या विधवा होती है और यज्ञोपवीत करनेसे ब्रह्महत्याका पाप लगता है अतएव कालवेलादिमें कोई काम न करै ॥ २९ ॥

अथ कुलिककालनिरूपणम् ।

मन्वर्कदिग्वस्वृतुवेदपक्षैरर्कान्मुहूर्त्ताः कुलिका भवन्ति ।
दिवा निरेकैरथ यामिनीषु ते गर्हिताः कर्म्मसु शोभनेषु ॥ ३० ॥

इति ग्रन्थान्तरे ।

अर्थ–ग्रन्थान्तरमे लिखाहै कि, रव्यादि सातवारोमें दिनके समय क्रमानुसार चौथे, बारह, दश, आठ, छह, चार और दो मुहूर्त्त कुलिक संज्ञक होतेहैं, और रात्रिमें इन सब मुहूर्त्तोंके एक २ न्यूनक्रमसे होताहै अर्थात् तेरह, ग्यारह, नौ, सात, पाच, तीन और पहिला मुहूर्त्त क्रमानुसार रव्यादि सातों वारोमे कुलिकसंज्ञा होताहै कुलिक समय सम्पूर्ण मङ्गलकार्य्योंमें अप्रशस्त है ॥ ३० ॥

अथ यामार्द्धे माहेन्द्रादिदण्डकथनम् ।

ख्यातं वा वयमाः सूर्य्ये मावावयकलानिधौ ।
यमावावक्कुजे ज्ञेया वयमावा सुधांशुजे ॥ ३१ ॥
जीवे चैव वावयमा मावावय भृगोः सुते ।
सूर्य्यपुत्रे यमावाव घटीयुग्मं शुभाशुभम् ॥ ३२ ॥ (×)

इति ज्योतिःसारे ।

अर्थ–अब यामार्द्धमे माहेन्द्रादियोग कहतेहैं, ज्योतिःसारमे लिखाहै कि, रविवारमे प्रत्येक यामार्द्धके प्रथम दण्ड वायु, द्वितीयदण्ड, वरुण, तृतीय दण्ड यम और चतुर्थ दण्ड माहेन्द्रसंज्ञक होताहै, इसीप्रकार सोमवारमें पहिला दण्ड माहेन्द्रसंज्ञक, दूसरा दण्ड वायुसंज्ञक, तीसरा वरुणसंज्ञक और चौथा दण्ड यमसंज्ञक होता है, मङ्गलवारमे पहिला दण्ड यमसंज्ञक, दूसरा दण्ड माहेन्द्रसंज्ञक, तीसरा दण्ड वायुसंज्ञक और चौथा दण्ड वरुणसंज्ञक होताहै, बुधवारमें पहिला दण्ड वरुणसंज्ञक, दूसरा दण्ड यमसंज्ञक तीसरा दण्ड माहेन्द्रसंज्ञक और चौथा दण्ड वायुसंज्ञक होताहै, बृहस्पतिवारमे पहिला दण्ड वायुसंज्ञक, दूसरा दण्ड वरुणसंज्ञक, तीसरा दण्ड यमसंज्ञक और चौथा दण्ड माहेन्द्रसंज्ञक होताहै; शुक्रवारमें प्रथम दण्ड माहेन्द्रसंज्ञक दूसरा दण्ड वायुसंज्ञक, तीसरा दण्ड वरुणसंज्ञक और चौथा दण्ड यमसंज्ञक होताहै और शनिवारके प्रत्येक यामार्द्धमें प्रथम दण्डयमसंज्ञक, द्वितीय दण्ड माहेन्द्रसंज्ञक, तृतीयदण्ड वायुसंज्ञक और चतुर्थदण्ड वरुणसंज्ञक होताहै, प्रत्येकवारमेंही चार दण्डमे शुभाशुभ देखना चाहिये फल नीचे लिखतेहैं ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

(+) वा. वायुः व. वरुण. य. यम. मा. माहेन्द्र इति ज्योतिःसार [illegible] ।

अथ फलम्।

माहेन्द्रवरुणयोर्यात्रा शुभा प्रोक्ता मनीषिभिः।
अन्यत्र चाशुभा ज्ञेया दैवज्ञैरिति निश्चितम् ॥ ३३ ॥

इति ज्योतिःसारे।

अर्थ–माहेन्द्र और वरुणसंज्ञक दण्डमे यात्रा करनेसे शुभफल होताहै और वायु-और यमसंज्ञक दण्डमे यात्रा करनेसे अशुभ होताहै इसप्रकार ज्योतिषके जाननेवाले विद्वानोने ज्योतिःसारनामक पुस्तकमे लिखाहै ॥ ३३ ॥

अथ योगिनीस्थितिकथनम्।

प्रतिपन्नवमी पूर्वे रामा रुद्राश्च पावके।
शरत्रयोदशी याम्ये वेदाभासाश्च नैर्ऋते ॥ ३४ ॥
षष्ठी चतुर्दशी पश्चाद्वायव्यां मुनिपूर्णिमे।
द्वितीया दशमी यक्षे ऐशान्यामष्टमी कुहूः ॥ ३५ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे।

अर्थ–अब योगिनीस्थितिको वर्णन करतेहै ज्योतिषतत्त्वमे लिखाहै कि, प्रतिपदा और नवमी तिथिमे योगिनी पूर्वदिशामें रहतीहै, इसीप्रकार तृतीया और एकादशीको अग्निकोणमे, पञ्चमी और त्रयोदशीको दक्षिणमें, चतुर्थी और द्वादशीको नैर्ऋतकोणमे, षष्ठी और चतुर्दशीको पश्चिममे, सप्तमी और पूर्णिमाको वायुकोणमे, द्वितीया और दशमीको उत्तरमे, अष्टमी और अमावस्यातिथिके दिन योगिनी ईशानकोणमें रहती है ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

त्याज्यकालकथनम्।

योगिनीनवदण्डास्तु शेषा वर्ज्याः प्रयत्नतः।
दक्षसन्मुखयोगिन्यां गमनं नैव कारयेत् ॥ ३६ ॥ (+)

इति ज्योतिस्तत्त्वे।

अर्थ–ज्योतिषतत्त्वमे लिखाहै कि, योगिनीके शेष नौ दण्डोको यत्नपूर्वक परित्याग करै, दक्षिणदिशामे और सन्मुख योगिनी होनेसे कभी यात्रा न करनी चाहिये ॥ ३६ ॥

(+) यत्रोदयगता देवी तत्र मातङ्गभुक्तिका। भ्रमन्ती तेन मार्गेण भवेत्तत्कालयोगिनी ॥ तेन मार्गेण प्रतिपिकरेण क्रममाह–इन्द्रे सौम्याग्निनैर्ऋत्ययाम्यतो यानिले शिवे " इति ज्योति.सारे स्मार्तेनाभिहितम्।

अपिच ।

प्राचीधनेश्वरहुताशनकोणपेय-
वैवस्वतीवरुणवायवशङ्करेषु ॥
एषु क्रमान्निवसति प्रतिपन्नवम्यो-
र्वामाग्रतोऽभयकरीनिधिराजपुत्री ॥ ३७ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ-ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखाहै कि, प्रतिपदा और नवमी तिथिमें योगिनी प्रथमके चार दण्डमें पूर्वदिशामें नही रहतीहै और उत्तरमें,अग्निकोणमे, नैर्ऋतकोणमे, दक्षिणमें, पश्चिममें, वायुकोणमें और ईशानकोणमें परतिथिक्रमानुसार प्रतिपदा, द्वितीया इत्यादिक्रमसे योगिनी वामगतिमें भोग करतीहै । योगिनी बाये वा पीछे होनेसे अभयदान करतीहै ॥ ३७ ॥

अन्यच्च ।

वामे शुभकरी देवी पृष्ठे सर्वार्थदायिनी ।
वधबन्धकरी चाग्रे दक्षिणे मृत्युदायिनी ॥ ३८ ॥

इत्यस्य पूर्वार्द्ध ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-योगिनीदेवी बाये होनेसे शुभफल दान करतीहै पीछे होनेसे सर्वार्थसिद्धि होती है, सन्मुख होनेसे वध और बन्धन होताहै और दहिने योगिनीके होनेसे मृत्यु होतीहै॥ ३८

अथ दिवारात्रौ अहिततिथ्यादयोपि यात्रायां शुभा इत्याह ॥

गुणवतितथावृक्षेऽनिष्टे दिवागमनं हितम् ।
निशि च भगुणैः शस्तं यानं तिथौगुणवर्ज्जिते ॥ ३९ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, तिथि शुभ होय और नक्षत्रके अशुभ होनेसेभी दिनकी यात्रा करनी चाहिये, रात्रिमें नक्षत्र शुभ होय और तिथिके अशुभ होनेसेभी यात्रा शुभ होतीहै ॥ ३९ ॥

अथ दक्षिणायने निशिसौम्यायनेच दिवा यात्राकथनम् ।

याम्यायने निशायात्रा शुभा स्यादुत्तरे दिवा ।
चन्द्रसूर्यौ मृगादिस्थौ पूर्वा यायात्तथोत्तराम् ॥ ४० ॥

दक्षिणां पश्चिमामाशां कर्क्याद्यौ तौ स्थितौ यदा ।
अन्यथा वधबन्धादिक्लेशमाप्नोत्यसंशयम् ॥ ४१ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-ज्योतिषतत्त्वमे लिखाहै कि, दक्षिणायनमे रात्रिके समय और उत्तरायणमें दिनके समयमें यात्रा शुभ होती है । चन्द्रमा और सूर्य्य जबतक मकरादि मिथुन राशि में रहै उस समय पूर्व दिशामे और उत्तरदिशामें यात्रा करनी चाहिये । उक्त दोनो ग्रह कर्क राशिसे धन राशिमे जबतक रहैं उस समय दक्षिणदिशामें और पश्चिम दिशामें यात्रा शुभ होती है । इसके विपरीतमें यात्रा करनेसे वध बन्धन और क्लेशादिको भोगना पडता है ॥ ४० ॥ ४१ ॥

अथ राहुभ्रमणचक्रम् ।

पश्चादर्के विधौ वह्नौ सौम्यां ज्ञे वायवे कुजे ।
रक्षोदिशि भृगौ याम्यां गुरावीशे शनौ दिने ॥ ४२ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-अब राहुके भ्रमणचक्रको कहते हैं-ज्योतिषतत्त्वमे लिखा है कि, रविवारके प्रथम यामार्द्धमे पश्चिमदिशामे राहु रहता है, सोमवारको अग्निकोणमें, बुधवारको उत्तरमे, मङ्गलवारको वायुकोणमे, शुक्रवारको नैर्ऋतकोणमें बृहस्पतिवारको दक्षिणमें और शनिवारके प्रथमयामार्द्धमे राहु ईशानकोणमे रहता है ॥ ४२ ॥

राहुर्भ्रमति यामार्द्धादश्वगत्या च वामतः ।
प्रतीच्यां वह्निकोणे तु ततः सौम्यामतोऽस्रपे ॥ ४३ ॥
ततः प्राच्यामतो वायौ तस्माद्याम्यां ततः शिवे ।
रवाववमन्यवारपूह्यमेवं क्रमेणहि ॥ ४४ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-ज्योतिषतत्त्वमे लिखाहै कि, राहु एक २ यामार्द्धके बाद घोडेकी चालसे वामावर्त्तमे भ्रमण करताहै । रविवारके प्रथम यामार्द्धमें राहु पश्चिमदिशामे रहताहै । इसीप्रकार दूसरे यामार्द्धमे अग्निकोणमे, तीसरे यामार्द्धमे उत्तरमे, चौथे यामार्द्धमें नैर्ऋतमे, पांचवे यामार्द्धमे पूर्वदिशामे, छठे यामार्द्धमे वायुकोणमे, सातवे यामार्द्धमें दक्षिणमे और रविवारके आठवें यामार्द्धमे राहु ईशानकोणमे रहताहै । रविवारके दिनकी राहुकी स्थिति कहीगई इसीप्रकार अन्यान्य वारमें भी जानना चाहिये ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

द्यूतेयुद्धे विवादे च यात्रायां सम्मुखस्थितम् ।
राहुं विवर्ज्जयेद्यत्नाद्यदीच्छेत्कर्मणः फलम् ॥ ४५ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ–ज्योतिषतत्वमें लिखा है कि, द्यूतक्रीडामें (चौपड खेलनेमे) युद्धमें, विवादमें और यात्रासमयमें फलके चाहनेवाला मनुष्य सन्मुख राहुको परित्यागकरै ॥ ४५ ॥

इति राहुस्थित्यादिकथनम् ।

अथ यात्रिकनक्षत्रकथनम् ।

अश्विहस्तगुरुमैत्रदैवतैः पौष्णविष्णुवसुशीतरश्मिभिः ।
यानमेभिरतिसुन्दरं विदुः सर्व एव मुनयस्तु नेतरे ॥ ४६ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ–अब यात्राविषयमें नक्षत्र कहतेहैं--अश्विनी,हस्त, पुष्य,अनुराधा, रेवती,श्रवण, धनिष्ठा और मृगशिर नक्षत्रमे यात्रा करना चाहिये सब मुनियोंने इस प्रकार कहाहै । किन्तु उक्त नक्षत्रोको छोडकर अन्य नक्षत्रोंमें यात्रा करनेसे अमङ्गल होताहै ॥ ४६ ॥

अन्यच्च ।

अश्विनीमैत्ररेवत्यो मृगमूलपुनर्वसुः ।
पुष्योहस्तस्तथा ज्येष्ठा प्रस्थाने चोत्तमा स्मृताः ॥ ४७ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ–ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखाहै कि, अश्विनी, अनुराधा, रेवती, मृगशिर, मूल, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त और ज्येष्ठा नक्षत्र यात्रामें उत्तम हैं ॥ ४७ ॥

अपरञ्च ।

रोहिणी त्रीणि पूर्वाणि चित्रास्वातिश्चवारुणम् ।
श्रवणं च धनिष्ठा च यात्रायां मध्यमाः स्मृताः ॥ ४८ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ--ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखाहै कि--रोहिणी, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा, चित्रा, स्वाति, शतभिषा, श्रवण और धनिष्ठा इन सब नक्षत्रोंको यात्रामें मध्यम कहतेहैं ॥ ४८ ॥

अथ निन्द्यनक्षत्रकथनम् ।

चित्राश्लेषास्वातिविशाखाभरणीपित्र्येशकृत्तिकाः ।
नातिशुभदाः प्रयाणे शेषाणि शुभाशुभानि धिष्ण्यानि ॥ ४९ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ- चित्रा, आश्लेषा, स्वाति, विशाखा, भरणी, मघा, आर्द्रा और कृत्तिका नक्षत्र यात्रामें अत्यन्त अशुभदायक हैं, इनको छोडकर अन्य नक्षत्र कौन शुभदायक और कौन अशुभदायक है ॥ ४९ ॥

अपि च ।

उत्तरासु विशाखासु मघार्द्राभरणीषु च ।
कृत्तिकाश्लेषयोश्चैव प्रस्थाने मरणं भवेत् ॥ ५० ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ-ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखाहै कि, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, विशाखा, मघा, आर्द्रा, भरणी, कृत्तिका और आश्लेषा नक्षत्रमें यात्रा करनेसे उस मनुष्यकी मृत्यु होतीहै ॥ ५० ॥

अथ नक्षत्राणां दिग्व्यवस्थाकथनम् ।

पूर्वाद्यग्निमघानुराधवसुभादीन्यत्र दण्डोऽन्तरे
वाय्वग्न्योर्न सलङ्घ्यमैक्यमनलप्राच्योस्तथान्या विदिक् ॥
लग्ने दिग्वदने तु दण्डगमनं प्राच्यादिशूलं विना
तज्ज्येष्ठाजपदं सरोजनिलयः स्यादुत्तराफाल्गुनी ॥५१॥ (क)

(क) नक्षत्राणा दिग्व्यवस्थामाह-पूर्वादीति । पूर्वादि यथा स्यात्तथाग्निमघानुराधवसुभदीनि नक्षत्राणि स्युः । पूर्वे कृत्तिकादीनि सप्त, दक्षिणे मघादीनि सप्त, पश्चिमेऽनुराधादीनि सप्त, अभिजित्सह उत्तरे धनिष्ठादीनि भरण्यन्तानि सप्त स्यु. । एतेन स्वस्वदिग्युक्तनक्षत्रैस्तत्तद्दिशि गमनं शस्तमित्यर्थ. । तत्रैव विशेषमाह अत्रेति अत्र वायव्याग्न्योरन्तरे मध्ये दण्ड. स्यात्स तु न लंघ्यः । एतेन पूर्वोत्तरस्थनक्षत्रैर्दक्षिणपश्चिमयोर्न गन्तव्यम् । दक्षिणपश्चिमस्थनक्षत्रैः पूर्वोत्तरयोर्न गन्तव्यं । किन्तु पूर्वस्थनक्षत्रैरुत्तरं गन्तव्यम् उत्तरस्थनक्षत्रै' पूर्व गन्तव्यं दक्षिणस्थनक्षत्रै. पश्चिमं गन्तव्यं पश्चिमस्थनक्षत्रैर्दक्षिणं गन्तव्यमिति । तथा लघुयात्रायाम् । "प्राच्यादि सप्त सप्त क्रमेण धिष्ण्यानि कृत्तिकादीनि । अनुलोमान्येषु तत्वं पूर्वोत्तरयोश्च दक्षिणापरयोः । अनिलानलादिग्रेखां परिघाख्यां यान्ति ये समुल्लङ्घ्य । आज्ञामिव कुलिशभृत. पतन्ति न चिरेण ते व्यसने " इति । इदानीं दिग्व्यवस्थामाह-ऐक्यमिति । आग्नेयपूर्वदिशोरैक्य पूर्वदिङ्नक्षत्रैरग्निकोणे गन्तव्यमित्यर्थः । तथैव प्रकारेणान्या विदिक् ज्ञेया दक्षिणनैर्ऋतयोरैक्यं पश्चिमवायव्ययोरुत्तरेशानयोश्चेति । विशेषमाह-लग्नइति । प्रागादिककुभां नाथा इत्यादिनोक्त दिग्वदनं दिगनुकूललग्नं तच्च दिङ्मुखं लग्नं यदि स्यात्तदा प्राच्यादिशूल विना पूर्वादि दिशा शूलसंज्ञक नक्षत्र विहाय दण्डगमनं दण्डमुल्लङ्घ्यापि गमनं कार्य्यम् । मध्यमपदलोपी समासः । शूलेपि कदाचिन्न गमनमित्यर्थः । तथा बृहद्यात्रायाम् । ' उल्लङ्घ्य दण्डमपि काममुशन्ति यान शूल विहाय यदि दिङ्मुखलग्नशुद्धि. " इत्यनेन दिग्वदने लग्ने सर्वदेवयात्रा शस्तेत्यर्थः । पूर्वादिशूलनक्षत्रमाह-तदिति । तच्छूल पूर्वे ज्येष्ठा दक्षिणेऽजपदं पूर्वे भाद्रपदं पश्चिमे रोहिणी उत्तरे उत्तराफाल्गुनीशूलमित्यर्थः ।

अर्थ—अब नक्षत्रोंकी दिग्व्यवस्था कहतेहैं, पूर्वदिशाको कृत्तिकादि सात नक्षत्रोंमें जाय, इसीप्रकार दक्षिणको मघादि सात नक्षत्रोंमे, पश्चिमको अनुराधादि सात नक्षत्रोंमें और उत्तरको धनिष्ठादि सात नक्षत्रोमें, यात्रा करनी चाहिये, और वायुकोणसे अग्निकोणतक एक दण्डकी कल्पना करै, उक्त दण्ड अलंघनीय अर्थात् पूर्व और उत्तर दिक्स्थ नक्षत्रोंमें दक्षिण और पश्चिमको यात्रा न करै और दक्षिण और पश्चिमस्थ नक्षत्रोंमें पूर्व और उत्तरकी यात्रा करै, किन्तु पूर्वदिक्स्थ नक्षत्रोंमें उत्तरकी यात्रा करै, उत्तर दिक्थनक्षत्रोंमें पूर्वकी यात्रा करै, दक्षिणदिक्स्थ नक्षत्रोमे पश्चिमकी यात्रा करै और पश्चिम दिक्स्थनक्षत्रोमें दक्षिणकी यात्रा करनी चाहिये, और पूर्वदिक्स्थ नक्षत्रोंमें अग्निकोणकी यात्रा करै, दक्षिण दिक्स्थ नक्षत्रोंमें नैर्ऋतकोणकी यात्रा करै, पश्चिमस्थ नक्षत्रोंमे वायुकोणकी यात्रा करै और उत्तरदिक्स्थ नक्षत्रोंमें ईशान कोणकी यात्रा करनी चाहिये, विशेषकरके दिगनुकूल लग्न यादि दिङ्मुख लग्न होय तो पूर्वादि दिशाओंके शूलसंज्ञक नक्षत्रोंको छोडकरके पूर्वोक्त दण्डका लंघन करके भी यात्रा करनी चाहिये । दिक्छूलनक्षत्र यथा पूर्वदिशामे ज्येष्ठा, दक्षिणमे पूर्वाभाद्रपदा, पश्चिममें रोहिणी और उत्तरमें उत्तराफाल्गुनी इन्ही नक्षत्रोको दिक्छूल नक्षत्र कहतेहैं ॥ ५१ ॥

अथ नक्षत्रशूलकथनम् ।

प्राचीं श्रवणशक्राभ्याञ्च भाद्राश्विभ्यां दक्षिणाम् ।
प्रतीचीं पुष्यरोहिण्योः करेऽर्य्यमनुचोत्तराम् ॥ ५२ ॥

इति सत्कृत्यमुक्तावल्याम् ।

अर्थ—सत्कृत्य मुक्तावलीमे लिखाहै कि, पूर्व दिशामे श्रवण और ज्येष्ठानक्षत्र, दक्षिणमें पूर्वाभाद्रपदा और अश्विनीनक्षत्र, पश्चिममे पुष्य और रोहिणीनक्षत्र और उत्तरमे हस्त और उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र महाशूल संज्ञक होताहै ॥ ५२ ॥

अपिच ।

एते चाष्टौ महाशूला देवैरपि विनिन्दिताः ।
यदि प्रमादतो गच्छेज्जीवनं तस्य दुर्लभम् ॥ ५३ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ—ज्योतिःसारसंग्रहमे लिखाहै कि, यह शूलनक्षत्र देवताओंकोभी त्याज्य हैं इनमे यात्रा करनेसे मनुष्यको जीनेमें भी संशय होताहै ॥ ५३ ॥

अथ यात्रायां निषिद्धनक्षत्रकथनम् ।

नेशाजाग्निविशाखवाय्वहिमघायाम्यैः परार्द्धं न स-
च्चित्रा ह्यन्तकजं परं प्रथमजं पित्र्यानिले चाखिले ॥

राहुक्रूरयुगस्तसन्निधितथोत्पातप्रदुष्टं ग्रहै-
र्व्याद्यैर्युग्ममसद्दिने निशि तिथावृक्षेऽप्यनिष्टे गमः ॥ ५४ ॥ (×)

अर्थ-अब यात्राविषयमे निषिद्ध नक्षत्रादि कहतेहैं-आर्द्रा, पूर्वाभाद्रपदा, कृत्तिका, विशाखा, आश्लेषा, मघा और भरणी नक्षत्रमें यात्रा न करना चाहिये, किन्तु चित्रा, आश्लेषा और भरणी नक्षत्रका परार्ध अत्यन्त निन्दनीय है और आर्द्रा, पूर्वाभाद्रपदा, कृत्तिका और विशाखाका पूर्वार्ध अतिनिषिद्ध है. मघा और स्वातिके सभी अंश अत्यन्त निन्दनीय हैं और राहु और क्रूरग्रहयुक्त नक्षत्र, रविभुक्त नक्षत्र रविभोग्यनक्षत्र उत्पात (धूमकेतु उल्कापात भूकम्प और पांसुवृष्ट्यादि) से दुष्ट नक्षत्र और दो तीन ग्रहोंकरके युक्त नक्षत्र, अशुभतिथि और अशुभ दिनमें कभी यात्रा न करनी चाहिये, दीपिकाकारने यात्राके नक्षत्रसम्बन्धमे इसप्रकार लिखाहै, किन्तु इन वचनोकी व्यवस्था सभी देशमे नही है ॥ ५४ ॥

(+) अधुना निषिद्धनक्षत्राण्याह-नेशेति । ईश आर्द्रा अजः पूर्वा भाद्रपदा । अग्निः कृत्तिका विशाखा वायुः स्वातिः अहिराश्लेषा मघा याम्या भरणी एभिर्न गम इति पश्चादन्वयः । अत्र च चित्रापि बोद्धव्या विशेषनिन्दायां तस्या वक्ष्यमाणत्वात् । तथा लघुयात्रायाम् । " चित्रास्वातीविशाखाभरणीपित्र्येशकृत्तिकाश्लेषाः । नाति शुभदाः प्रयाणे शेषाणि शुभानि धिष्ण्यानि" इति । अत्रैव विशेष निन्दामाह-परार्द्धमिति । चित्राश्लेषाभरणीनां परार्द्धमत्यन्तं न सदित्यर्थः । परेषामेतदन्येषां निषिद्धनक्षत्राणाम् । आर्द्रापूर्वाभाद्रपदाकृत्तिका विशाखानां प्रथमजमर्द्धमत्यन्तमसत् पित्र्यानिले मघास्वात्यौ तु अखिले समस्ते नक्षत्रे सती न शुभे नेत्यर्थः । तथा राहुक्रूरयुक् नक्षत्रमसत् तथा राहुयुक्त क्रूरै रविशनिकुजैर्युक्तं चासदिति । केषाञ्चिन्मते राहोरपापत्वात् राहुग्रहणम् अस्तसन्निधि अस्तगतस्य रवियुक्तस्य नक्षत्रस्य सन्निधि समीपे स्थितं रविभुक्तं रविभोक्तव्यञ्च नक्षत्रमसदित्यर्थः । अस्तनक्षत्रस्य तु क्रूर युतत्वेन सुतरां निषेध एव । तथा उत्पातेन धूमकेतूल्काद्य

अथ निषिद्धनक्षत्राणां विशेषकथनम् ।

दग्धुं शत्रुपुरं सदाग्निभमुदेत्यर्को न चेदुत्तरे
रोहिण्याश्च विशाखभे च न गमः पूर्वाह्णकाले शुभः ॥
मध्याह्ने न शिवाहिमूलवलभिद्भेष्वह्निशेषेऽश्विनी
पुष्येहस्तमरुत्सु चित्रशशिमैत्र्यान्त्ये न रात्र्यादितः ॥५५॥(×)

अर्थ–यात्रामें समयके भेदसे निषिद्धनक्षत्रादिक कहते हैं–जिस समय सूर्य्य उदय होय उससमयको छोडकर सभी समयमें ही कृत्तिका नक्षत्र शत्रुपरदहन करनेकी यात्रामे प्रशस्त है । उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, रोहिणी और विशाखा नक्षत्रमे पूर्वाह्णसमय यात्रा न करनी चाहिये. आर्द्रा, आश्लेषा, मूल और ज्येष्ठा नक्षत्रमे मध्याह्नसमय यात्रा न करै. अश्विनी, पुष्य, हस्त और स्वाति नक्षत्रमें अपराह्णके समय यात्रा न करनी चाहिये ! रात्रिके प्रथम भागमें चित्रा, मृगशिर अनुराधा और रेवती नक्षत्रमें यात्रा न करै ॥ ५५ ॥

अपिच ।

रात्रेर्मध्यमसत्त्वपूर्वभरणीपित्र्येषु शेषे निशो
हर्म्यादित्रितयादितिष्वपि जलं मध्याह्नरात्र्यन्तयोः ॥

(×) एतदेव श्लोकद्वयेनाह–दग्धुमिति । शत्रुपुरदाहे तीक्ष्णकर्मणि मृदुतीक्ष्णगणत्वेनाग्नेयत्वेन च कृत्तिका विहितैव अत एव शत्रुपुरं दग्धुमग्निभं सदैव विहितमित्यर्थः । किन्त्वर्को न चेदुदेति । अर्कोदयं कालं त्यक्त्वा अस्मिन्सर्वकाल एव शत्रुपुरं दग्धुं कृत्तिका शस्तेत्यर्थः । तथा च बृहद्यात्रायाम् । "स्वेस्वे कर्म्मणि पूजितानि मुनिभिः प्रोक्तानि सर्वाण्यपि त्यक्त्वार्कोदयमाननेऽरिविषयं यात्रादिकृक्षे शुभा" इत्यस्मिन्वचने सर्वाण्यपि इति अपिशब्दनिषिद्धान्यपि स्वे स्वे कर्म्मणि विहितानीत्यर्थ. । तथा लघुयात्रायाम् "शत्रुविषयं दिधक्षोरन्यत्रार्कोदयाच्छुभाग्नेयी " एतेनार्को न चेदुदेति । अर्कोदयात्पूर्वं रात्रिदण्डद्वये स्थिते एव शत्रुपुरं दग्धुम् अग्निभं सत् नान्यत्रेति कैश्चित्प्रलपितं तदशुद्धमेवेति । अधुना तत्तत्कर्मणि विहितानामुग्रादिनक्षत्राणा शुभकर्म्मणि यात्रार्थं पूर्वोक्ताना नक्षत्राणाञ्च सर्वेषां दिनस्य पूर्वाह्णादिषु षट्सु भागेषु यथाक्रमं निषेधमाह–उत्तर इति । पूर्वाह्णे उत्तरात्रये रोहिणी-विशाखयोश्च गमो न शुभ इति । अत्र केचिद्दग्धुं शत्रुपुरमित्यस्य सर्वत्रान्वय कुर्वन्ति तन्न बृहद्यात्रादिषु सामान्येनैव निषेधात् । यथा बृहद्यात्रायाम् । "रोहिण्यां त्रिषु चोत्तरेषु विजयो यातुर्विशाखासु च त्यक्त्वा वासवपूर्वमेवमवदद्गर्गोऽरिराज्यार्थिनः " इति । अत्र चारिराज्यार्थिनो यातुर्विजय इत्युक्त्वा तथा "निशान्त्यभागे त्रिषु वैष्णवाद्ये यायाद्धनार्थी न पुनर्वसौ च " इति । मध्याह्न इति आर्द्राश्लेषामूलज्येष्ठासु मध्याह्ने न गम इति अह्नः शेषेऽपराह्णेऽश्विनीपुष्यहस्तस्वातिषु न गमः । रात्रिः प्रथमभागे मृगशिरोऽनुराधारेवतीषु न गमः । इति ।

पुष्योहस्तमृगाच्युतेषु शुभदाः सर्वेऽपि कालास्तथा
सार्वद्वारिकसंज्ञितानि गुरुभं हस्ताश्विमैत्राणि च ॥ ५६ ॥ *

अर्थ-पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा, भरणी और मघा नक्षत्रमें रात्रिके मध्यभागमे यात्रा न करै. श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, और पुनर्वसु नक्षत्रमें रात्रिके शेषभागमें यात्रा न करै. पूर्वाषाढा नक्षत्रमे रात्रिके मध्य और शेषभागमें यात्रा न करनी चाहिये पुष्य, हस्त, मृगशिर और श्रवण नक्षत्रमें सर्वदा यात्रा करै और पुष्य, हस्त, अश्विनी और अनुराधा नक्षत्रको सार्वद्वारिकसंज्ञक जानना चाहिये ॥ ५६ ॥

अथ नक्षत्रामृतयोगकथनम् ।

ध्रुवगुरुकरमूलापौष्णभान्यर्कवारे
हरियुगविधियुग्मे फाल्गुनीभाद्रयुग्मे ॥
दिवसकरतुरङ्गौ शर्वरीनाथवारे
गुरुयुगनलवातोपान्त्यपौष्णानि कौजे ॥ ५७ ॥
दहनविधिशताख्यामैत्रभं सौम्यवारे ।
मरुददितिभपुष्यामैत्रभं जीववारे ॥
भगयुगजयुगश्वाविष्णुमैत्रे सिताहे ।
स्वशनकमलयोनी सौरिवारेऽमृतानि ॥ ५८ ॥ (+)

अर्थ-अब वार और नक्षत्रयोगसे अमृतयोग कहतेहैं-रविवारमे उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, रोहिणी, पुष्य, हस्त, मूळ और रेवती नक्षत्र होनेसे अमृत-

---

* पूर्वात्रये भरणी मघयोश्च रात्रेर्मध्य मध्यभागन्तु न सत् न शुभमित्यर्थः । निशो रात्रे शेषे दस्र्यादित्रये पुनर्वसौ चासन्न शुभ इत्यर्थः । अघटितव्यञ्जनान्तो निशाशब्दोऽप्यस्ति । जल पूर्वाषाढा मध्याह्ने रात्र्यन्ते चासत् इति । रात्रिमध्ये चास्य निषेध उक्त एव । सार्वकालिक नक्षत्राण्याह-

योग होताहै, इसीप्रकार सोमवारमें श्रवण, धनिष्ठा, रोहिणी, मृगशिर, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा, हस्त और अश्विनी नक्षत्रके होनेसे अमृतयोग होताहै. मङ्गलवारमें पुष्य आश्लेषा, कृत्तिका, स्वाति, उत्तराभाद्रपदा और रेवतीनक्षत्रके होनेसे अमृतयोग होताहै. बुधवारमें कृत्तिका, रोहिणी, शतभिषा और अनुराधा नक्षत्रके होनेसे अमृतयोग होताहै. बृहस्पतिवारमें स्वाती, पुनर्वसु, पुष्य और अनुराधा नक्षत्र होनेसे अमृतयोग होताहै. शुक्रवारमें पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा, अश्विनी, श्रवण और अनुराधा नक्षत्रके होनेसे अमृतयोग होताहैं और शनिवारमें स्वाति वा रोहिणी नक्षत्रके होनेसे अमृतयोग होताहै॥ ५७ ॥ ५८ ॥

अपिच ।

आदित्यहस्ते गुरुपुष्ययुक्ता बुधानुराधा शनिरोहिणी च ।
सोमे च विष्णुः कुजरेवती च शुक्राश्विनी चामृतयोगवर्गः ॥५९॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ–ज्योतिषतत्वमें लिखाहै कि, रविवारमें हस्तनक्षत्र होनेसे अमृतयोग होताहै, इसीप्रकार बृहस्पतिवारमें पुष्य होनेसे, बुधमें अनुराधा होनेसे, शनिवारमें रोहिणी होनेसे, सोमवारमें श्रवण होनेसे, मंगलवारमें रेवती होनेसे और शुक्रवारमे अश्विनी नक्षत्र होनेसे अमृतयोग होताहै ॥ ५९ ॥

अमृतयोगप्रशंसा ।

यदिविष्टिव्यतीपातौ दिनं वाप्य शुभं भवेत् ।
हन्यतेऽमृतयोगेन भास्करेण तमो यथा ॥ ६० ॥ (क)

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ–दीपिकामें लिखाहै कि, जिसप्रकार सूर्य्यके प्रकाशसे अन्धकारका नाश हो जाताहै उसीप्रकार इस अमृतयोगके होनेसे विष्टि भद्रा, वैधृति और व्यतीपातादि दोषोका नाश हो जाताहै ॥ ६० ॥

(क) अमृतयोगफलमाह–यदीति । विष्टिव्यतीपातौ भवतः व्यतीपात इत्युपलक्षणं वैधृत्यादयोऽपि मन्दयोगाः त्र्यहस्पर्शादिन वा यद्यशुभं भवेत् तत्सर्वममृतयोगेन हन्यत इत्यर्थः । तथाच राजमार्त्तण्डे–हन्त्यमृताख्यो योगः सर्वाण्यशुभानि हेलया नियतम् । न भवन्ति पुनरिह शक्ता वैधृति विष्टिव्यतीपाताः ” इति । कस्यचिन्मते वैधृत्यादि योगहननेऽमृतयोगस्य न सामर्थ्यमिति ज्योतिषतत्वे स्मार्त्ताः ॥

उत्पातादियोगः ।

रव्यादिदिवसैर्युक्ता विशाखादिचतुश्चतुः ।
उत्पाता मृत्यवः काणा अमृतानि यथाक्रमम् ॥६१॥ (ख)

अर्थ--अब उत्पातादियोग कहतेहैं । रव्यादिवारमें विशाखादि चार चार नक्षत्र युक्त होनेसे क्रमानुसार उत्पात, मृत्यु, काण और अमृतयोग होताहै यथा–रविवारमें विशाखा नक्षत्र होनेसे उत्पात, अनुराधा होनेसे मृत्यु, ज्येष्ठा होनेसे काण और मूळ नक्षत्र होनेसे अमृतयोग होताहै । इसीप्रकार सोमवारमें पूर्वाषाढा नक्षत्र होनेसे उत्पात, उत्तराषाढा होनेसे मृत्यु, अभिजित् होनेसे काण और श्रवण नक्षत्र होनेसे अमृतयोग होताहै । मङ्गलादिवारोंमे धनिष्ठादि चार २ नक्षत्रके होनेसे क्रमानुसार उत्पातादियोग जानना चाहिये ॥ ६१ ॥

अथ क्रकचयोगः ।

वाजिचित्रोत्तराषाढामूलपाशीज्यभान्तकाः ।
सूर्यादिवारसंयुक्ता योगास्ते क्रकचाः स्मृताः ॥ ६२ ॥ (+)

अर्थ–अब क्रकचयोग कहतेहैं–रविवारमे अश्विनी नक्षत्र होनेसे क्रकच योग होता है, इसीप्रकार सोमवारमें चित्रा नक्षत्र होनेसे, मंगळवारमें उत्तराषाढा होनेसे, बुधवारमें मूळनक्षत्र होनेसे, बृहस्पतिवारमें शतभिषा होनेसे, शुक्रवारमें पुष्य नक्षत्र होनेसे और शनिवारमे रेवतीनक्षत्र होनेसे क्रकचनामक योग होताहै ॥ ६२ ॥

अन्यच्च ।

अश्विनी रविवारे च सोमे चित्रा तथा भवेत् ।
नक्षत्रमुत्तरापाढा मङ्गले च प्रकीर्त्तिता ॥ ६३ ॥
बुधे मूलं तथा जीवे शतभिषा प्रकीर्त्तिता ।
शुक्रे पुष्यः शनौ चैव भरणीति प्रकीर्त्तिता ॥ ६४ ॥

(ख) उत्पातादिचतुरो योगानाह–रव्यादीति । रव्यादिवारैर्विशाखादिचत्वारि नक्षत्राणि यथासंख्यम् उत्पातमृत्युकाणामृतसंज्ञकानि स्युः । यथा–रविवारे विशाखा उत्पातः, अनुराधा मृत्युः, ज्येष्ठा काणः, मूलः अमृत सोमवारे पूर्वाषाढा उत्पातः, उत्तराषाढा मृत्युः, अभिजित्काणः, श्रवणा अमृतम् । इत्याद्येव बोद्धव्यमिति ।

(+) क्रकचादियोगमाह–वाजीति । सूर्यादिवारे यथासंख्यम् अश्विन्यादिनक्षत्र योगात्क्रकचादियोगाः स्युः । पाशी वरुण शतभिषेति यावत् । इज्यो गुरुः पुष्येति यावत् । भान्तका भान्तं नक्षत्रान्तं रेवतीति यावत् । एते सर्वे दग्धादयो योगा अशुभफला इत्यर्थः ।

योगे क्रकचसञ्ज्ञं वै सर्वकर्माणि वर्जयेत् ॥ ६५ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ—अब ज्योतिःसारसंग्रहके वचनानुसार क्रकचयोग कहतेहैं, रविवारमें अश्विनीनक्षत्रके होनेसे क्रकच योग होताहै, इसीप्रकार सोमवारमें चित्राके होनेसे, मंगलवारमें उत्तराषाढा होनेसे, बुधमे मूल होनेसे, बृहस्पतिवारमें शतभिषा होनेसे, शुक्रवारमें पुष्य होनेसे और शनिवारमें भरणी नक्षत्रके होनेसे क्रकच योग होताहै इस क्रकचयोगमे कोई कार्य्य न करना चाहिये ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥

अथ क्रकचादिप्रतिप्रसवमाह ।

क्रकचो मृत्युयोगश्च दिनं दग्धं तथापरे ।
शुभे चन्द्रे प्रणश्यन्ति वृक्षा वज्रहता इव ॥ ६६ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ—अब क्रकचादि योगके प्रतिप्रसव कहतेहैं—क्रकचयोग मृत्युयोग, दिनदग्धा और अन्यान्य अनिष्टकारक योग, चन्द्रमाके शुद्ध होनेसे नाशको प्राप्त होतेहैं जिसप्रकार वज्रके आघातसे वृक्षका नाश होजाताहै ॥ ६६ ॥

अथ तिथिनक्षत्रयोगे मृत्युयोगः ।

प्रतिपद्युत्तराषाढा नवम्यां कृत्तिका यदि ।
पूर्वाभाद्रपदाष्टम्यामेकादश्याञ्च रोहिणी ॥ ६७ ॥
द्वादश्याञ्च यदा श्लेषा त्रयोदश्यां मघा यदि ।
एतेषु यदि गच्छन्ति नियतं मरणं भवेत् ॥ ६८ ॥ (×)

अर्थ—अब तिथि और नक्षत्रके योगसे मृत्युयोग कहतेहैं—प्रतिपदा तिथिमे उत्तराषाढा नक्षत्रके होनेसे मृत्युयोग होताहै, इसीप्रकार नवमीमे कृत्तिकानक्षत्रके होनेसे, अष्टमीमें पूर्वाभाद्रपदा नक्षत्रके होनेसे, एकादशीमे रोहिणी नक्षत्रके होनेसे, द्वादशीमें आश्लेषा नक्षत्रके होनेसे, त्रयोदशी तिथिमे मघानक्षत्रके होनेसे मृत्युयोग होताहै उक्त समस्त तिथि और नक्षत्रके योगमे यात्रा करनेसे मनुष्यकी निश्चयही मृत्यु होतीहै ॥ ६७ ॥ ६८ ॥

(×) कृष्यारम्भे फलं नास्ति विद्यारम्भे च मूर्खता ।
सङ्गमे गर्भपातश्च विवादे मरणं ध्रुवम् ॥

इति दीपिकायाम् ।

अथ वारनक्षत्रयोगे मृत्युयोगः ।

त्यज रविमनुराधे वैश्वदेवञ्च सोमे
शतभिषमपि भौमे चन्द्रजे चाश्विनी च ॥
मृगशिरमपि जीवे सर्पदेवं च शुक्रे
रविसुतमपि हस्ते मृत्युयोगोऽस्य संज्ञा ॥ ६९ ॥

अर्थ–अब वार और नक्षत्रके योगसे मृत्युयोग कहतेहै, रविवारमें अनुराधा नक्षत्रके होनेसे मृत्युयोग होताहै, इसीप्रकार सोमवारमे उत्तराषाढा नक्षत्रके होनेसे मङ्गलवारमें शतभिषानक्षत्रके होनेसे, बुधवारमे अश्विनी नक्षत्रके होनेसे, बृहस्पतिवारमें मृगशिर नक्षत्रके होनेसे, शुक्रवारमे आश्लेषा नक्षत्रके होनेसे और शनिवारमें हस्तनक्षत्रके होनेसे मृत्युयोग होताहै ॥ ६९ ॥

अथानंदयोगः ।

अश्विनी सह सूर्येण सोमे मृगशिरस्तथा ।
आश्लेषा भौमवारेण बुधे हस्तं प्रकीर्त्तितम् ॥ ७० ॥
अनुराधा गुरोर्वारे वश्वदवश्च भार्गवे ।
वारुणं शनिसंयुक्तमानन्दोऽयं प्रकीर्त्तितः ॥ ७१ ॥

इति भीमपराक्रमे ।

अर्थ–आनन्दयोग कहते हैं–भीमपराक्रममें लिखा है कि, रविवारमें अश्विनीनक्षत्रके होनेसे आनन्दयोग होता है, इसीप्रकार सोमवारमे मृगशिर नक्षत्रके होनेसे, मङ्गलवारमें आश्लेषानक्षत्रके होनेसे, बुधवारमे हस्तनक्षत्रके होनेसे, बृहस्पतिवारमे अनुराधानक्षत्रके होनेसे, शुक्रवारमे धनिष्ठानक्षत्रके होनेसे आनन्दयोग होता है ॥ ७० ॥ ७१ ॥

अथामृतसिद्धियोगः ।

हस्तं सूर्ये मृगः सोमे भौमवारे तथाश्विनी ।
बुधे मैत्रो गुरौ पुष्यं रेवती भृगुनन्दने ॥ ७२ ॥
रोहिणी सूर्यपुत्रे च सर्वसिद्धिप्रदायकः ।
असावमृतसिद्ध्याख्यो योगः प्रोक्तः पुरातनैः ॥ ७३ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ–अब अमृतसिद्धिनामक योग कहते हैं–ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखाहै कि, रविवारमें हस्त, सोमवारमे मृगशिर, मङ्गलवारमें, अश्विनी, बुधवारमें अनुराधा, बृहस्पतिवारमें

पुष्य, शुक्रवारमें रेवती और शनिवारमें रोहिणीनक्षत्र होनेसे अमृतसिद्धि नामक योग होता है यह योग सब कार्य्योंमें सिद्धिप्रदान करता है, इसप्रकार प्राचीन विद्वानोंने कहा है ॥ ७२ ॥ ७३ ॥

अथ प्रशस्तयोगः ।

रेवती रविवारे च हस्तःसोमे न संयुतः ।
पुष्योऽप्यवनिपुत्रेण रोहिणी बुधसंयुता ॥ ७४ ॥
स्वाती च गुरुणा युक्ता शुक्रेणोत्तरफाल्गुनी ।
मूलन्तु पङ्गुसङ्गेन सर्वकार्ये प्रशस्यते ॥ ७५ ॥

इति श्रीपतिव्यवहारनिर्णये ।

अर्थ–श्रीपतिभट्टाचार्य्यने व्यवहारनिर्णय ग्रन्थमें लिखाहै कि, रविवारमे रेवती, सोमवारमें हस्त, मङ्गलवारमें पुष्य, बुधवारमें रोहिणी, बृहस्पतिवारमें स्वाति, शुक्र वारमें उत्तराफाल्गुनी और शनिवारमें मूलनक्षत्र होनेसे सभीकार्य्यमे प्रशस्त होताहै ॥ ७४ ॥ ७५ ॥

अथ यमघण्टयोगः ।

द्वे मघा पूर्वाफाल्गुन्यौपुष्याश्लेषार्कचन्द्रयोः ॥
ज्येष्ठानुराधाभरणी चाश्विनी कुजवासरे ॥ ७६ ॥
हस्तार्द्रा चन्द्रजे मूलपूर्वाषाढा च रेवती ।
जीवे तूत्तरभाद्रश्च शुक्राहेस्वातिरोहिणी ॥ ७७ ॥
शनिवारे च श्रवणा शतभिषा यमघण्टः ॥ ७८ ॥

इति ज्योतिःसारसग्रहे ।

अर्थ–अब यमघण्टयोग कहते हैं–ज्योतिःसारसग्रहमे लिखा है कि, रविवारमें मघा, वा पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्रके होनेसे यमघण्टयोग होता है इसीप्रकार सोमवारमे पुष्य, वा आश्लेषा नक्षत्रके होनेसे मङ्गलवारमे ज्येष्ठा, अनुराधा, भरणी, वा अश्विनी नक्षत्रके होनेसे बुधवारमें हस्त वा आर्द्रा, नक्षत्रके होनेसे बृहस्पतिवारमे मूल, पूर्वाषाढा, रेवती वा उत्तराभाद्रपदाके होनेसे, शुक्रवारमें स्वाति वा रोहिणीके होनेसे और शनिवारमें श्रवण वा शतभिषा नक्षत्रके होनेसे यमघण्टनामक योग होता है ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ ७८ ॥

अथ अमृतयोगः ।

भूमिपुत्रार्कयोरह्नि नन्दामरुद्वारुणार्द्रान्त्यचित्राहिमूलाग्निभिः ।
भार्गवेणाङ्कयोरह्नि भद्रा भवेत्फल्गुयुग्मा जयुग्मोडुभिःसयुता ॥ ७९ ॥
सोमपुत्रस्य वारे जया स्यान्मृगोपेन्द्रगुर्विन्द्रया-
म्याभिजिद्वाजिभिः । गीष्पतेरह्नि युक्ता च रिक्ता
यदा विश्वशक्राग्नियुक्पित्र्यादित्यम्बुभिः ॥ ८० ॥
सूर्यसुतस्य दिने यदि पूर्णा ब्रह्मादिनाधिपतिद्रविणैः स्यात् ॥
योगवारास्त्रिभिरेव समेताः सर्वसमीहितसिद्धिनियुक्ताः ॥ ८१ ॥ (+)

अर्थ—अब अमृतयोग कहते हैं—मंगळवारमें वा रविवारमें नन्दातिथि, स्वाति, शतभिषा, आर्द्रा, रेवती, चित्रा, आश्लेषा, मूल वा कृत्तिका नक्षत्रके होनेसे अमृतयोग होताहै इसी प्रकार शुक्रवारमे वा सोमवारमे भद्रातिथि, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा के होनेसे बुधवारमें जयातिथि, मृगाशिर, श्रवण, पुष्य, ज्येष्ठा, भरणी अभिजित् वा अश्विनीनक्षत्रके होनेसे, बृहस्पतिवारमें रिक्तातिथि, उत्तराषाढा, ज्येष्ठा कृत्तिका, रोहिणी, मघा, हस्त वा पूर्वाषाढा नक्षत्रके होनेसे और शनिवारमें पूर्णातिथि, रोहिणी, हस्त वा धनिष्ठा नक्षत्रके होनेसे अमृतयोग होताहै । यह अमृतयोग सब योगोसे श्रेष्ठहै इस योगमें मनुष्यको वाञ्छित फळ प्राप्त होताहै ॥ ७९ ॥ ८० ॥ ८१ ॥

अथ तिथ्यमृतयोगः ।

बुधमन्दगता नन्दा कुजे भद्रा जया गुरौ ।
भृगौ रिक्तामृतं प्रोक्तं पूर्णा च रविचन्द्रयोः ॥ ८२ ॥ (१)

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ—अब तिथ्यमृतयोग कहतेहै, ज्योतिःसारसग्रहमें लिखाहै कि—बुधवारमें वा शनिवारमे नन्दा (प्रतिपदा, एकादशी. षष्ठी) तिथिके होनेसे अमृतयोग होताहै, इसीप्रकार मंगळवारमे भद्रा (द्वितीया, द्वादशी, सप्तमी,) तिथिके होनेसे, बृहस्पति-

(+) दण्डकश्लोकेन अमृतयोगमाह—भूमिपुत्रेति । सुगमम् । अन्यत् अमृतयोगमेतेषां फलश्चाह । सूर्यसुतस्येति । उक्तैस्त्रिभिर्वारतिथिनक्षत्रैर्युक्ता योगा. सर्वसमीहितसिद्धिकराः ।

(१) "चन्द्रार्कयोर्भवेत्पूर्णा कुजे भद्रा जया गुरौ । बुधमन्दौ च नन्दायां शुक्रे रिक्तामृतातिथिः" इति राजमार्तण्डे । अथ नन्दादितिथिमाह सारसंग्रहे "एकादशी च प्रतिपत् षष्ठी नन्दा सदा भवेत् । द्वितीया सप्तमी भद्रा द्वादशी चापि सा भवेत् । अष्टमी च तृतीया च जया स्याच्च त्रयोदशी । चतुर्थी नवमी रिक्ता तथैव स्याच्चतुर्दशी । पञ्चमी दशमी पूर्णा पौर्णमासी ततः परम्"

वारमें जया (त्रयोदशी, अष्टमी, तृतीया) तिथिके होनेसे, शुक्रवारमे रिक्ता (चतुर्थी नवमी, चतुर्दशी) तिथिके होनेसे और रविवारमे वा सोमवारमें पूर्णा (पञ्चमी, दशमी, अमावस्या, पूर्णिमा) होनेसे अमृतयोग होताहै ॥ ८२॥

अन्यच्च ।

अर्केह्नि पूर्णाथ जया शशाङ्के भौमे च भद्रा बुधवारनन्दा ।
गुरौ द्वितीया भृगुजे तृतीया शनौ जया चेदमृतं वदन्तिः॥८३॥(×)

इति ज्योतिःसारे ।

अर्थ–ज्योतिःसारमें लिखाहै कि–रविवारमें पूर्णातिथि, सोमवारमें जयातिथि, मंगलवारमें भद्रातिथि, बुधवारमें नन्दातिथि, बृहस्पति वारमे द्वितीयातिथि, शुक्रवारमें तृतीयातिथि और शनिवारमे जया तिथिके होनेसे अमृतयोग होताहै ॥ ८३ ॥

अथ सिद्धियोगः ।

शुक्रे नन्दा बुधे भद्रा शनौ रिक्ता कुजे जया ।
गुरौ पूर्णा च संयुक्ता सिद्धियोगः प्रकीर्त्तितः ॥ ८४ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ–अब सिद्धियोग कहतेहैं ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखाहै कि–शुक्रवारमें नन्दातिथि बुधवारमे भद्रातिथि, शनिवारमें रिक्तातिथि, मंगलवारमें जयातिथि और बृहस्पति वारमें पूर्णातिथिके होनेसे सिद्धियोग होताहै ॥ ८४ ॥

अथ रत्नांकुरयोगः ।

यदि सोमदिने नन्दा विहाय हरिवासरम् ।
जया भद्रार्कयोर्वारे रिक्ता भूमिसुते तथा ॥
पूर्णा बुधसिताहे च भद्रा चेद्गुरुवासरे ।
रत्नांकुराख्यो योगोऽयं सर्वकार्ये प्रशस्यते ॥ ८५ ॥ (*)

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ–अब रत्नांकुरनामक योग कहतेहैं–ज्योतिःसारसंग्रहमे लिखाहै कि, सोमवारमें एकादशी तिथिको छोडकर नन्दातिथि, शनिवारमे वा रविवारमें जयातिथि, मंगलवारमें रिक्तातिथि, बुधवारमे वा शुक्रवारमें पूर्णातिथि और बृहस्पतिवारमे भद्रा तिथिके होनेसे रत्नांकुरनामक योग होताहै यह योग सभी कार्य्यमें प्रशस्तहै ॥ ८५॥

(+) इदं वचनं ग्रन्थान्तरे लिखितमिति ज्योतिःसारे स्मार्त्तेनाभिहितम् ।

(*) अयन्तु स्मार्त्तभोजराजसंग्रहकारदीपिकाकारादिभिर्बहुभिरलिखितत्वादप्रमाणमिव लक्ष्यते ति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अथ पापयोगः ।

आदित्यभौमयोर्नन्द्रा भद्रा शुक्रशशाङ्कयोः ।
बुधे जया गुरौ रिक्ता शनौ पूर्णा च पापदा ॥ ८६ ॥

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ-अब पापयोगको कहतेहैं, दीपिकामे लिखाहै कि, रविवारमें वा मङ्गलवारमें नन्दातिथि, शुक्रवारमे वा सोमवारमें भद्रातिथि, बुधवारमे जयातिथि, बृहस्पतिवारमें रिक्तातिथि और शनिवारमे पूर्णा तिथिके होनेसे पापयोग होताहै ॥ ८६ ॥

अथ विषयोगः ।

सूर्ये सूर्यसुते भद्रा नन्दा वाक्पतिवासरे ।
जया सोमसिताहे च पूर्णा च धरणीसुते ॥
बुधवारे यदा रिक्ता तथा चन्द्रार्कयोरपि ।
विषयोगोऽयमुद्दिष्टः सर्वकर्मसु गर्हितः ॥ ८७ ॥ *

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ-अब विषयोग कहतेहैं-ज्योतिःसारमें लिखाहै कि, रविवारमे वा शनिवारमें भद्रातिथि, बृहस्पतिवारमे नन्दातिथि, सोमवारमें वा शुक्रवारमे जयातिथि, मंगलवारमें पूर्णातिथि और बुधवार सोमवार वा रविवारमें रिक्तातिथि होनेसे विषयोग होताहै, इस योगको सभी कार्य्यमें परित्याग करना चाहिये ॥ ८७ ॥

अपिच ।

अमृतं सिद्धियोगश्च यद्येकस्मिन्दिने भवेत् ।
तद्दिनन्तु भवेद्दुष्टं मधुसर्पिर्यथाविषम् ॥ ८८ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-ज्योतिषतत्वमें लिखाहै कि-मधु और घृतके मिलानेसे जिसप्रकार विषके समान होजाताहै उसीप्रकार नक्षत्रमृतयोग और सिद्धि एकसमयमें होनेसे विषयोग होजाताहै कोई २ कहतेहैं कि, एक दिनमे अमृत (तिथ्यमृत) और सिद्धियोगके होनेसे विषयोग होजाताहै ॥ ८८ ॥

अथ सिद्धिदग्धपापयमघण्टयोगाः ।

नन्दाद्याः सिद्धियोगा भृगुजबुधकुजार्कीज्यवारैः प्रशस्ताः ।
सूर्येशाशाग्निपड्द्दङ्मुनिमिततिथयोर्कादिवारैःप्रदग्धाः ॥८९॥

---

* अयमपि रत्नाकुरयोगवदिति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

पापोऽर्कोह्नि विशाखात्रययममुडुपस्याह्नि चित्राचतुष्कम् ।
तोयं विश्वाभिजिद्धं त्वथ कुजदिवसे स्वत्रयं विश्वरुद्रौ ९०॥(क)
ज्ञाह्ने मूलाविशाखा यमधनतुरगान्त्यानि जीवेऽह्नि पैत्र्य
रोहिण्यार्द्रायमेन्दुं शतभमथ भृगोरह्नि पुष्यत्रयेन्द्रौ ॥ ९१ ॥
सौराह्ने हस्तयुग्मार्यमयमजलयुक्पौष्मपुष्या धनानि
घण्टोऽखण्डर्क्षयुक्ते स्वगृहपतिदिने सौम्यवारेऽर्यमापि॥ ९२ ॥

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ—अब सिद्धि, दग्ध, पाप और यमघण्टायोग कहते हैं—दीपिकामें लिखा है कि, शुक्रवारमें नन्दा, बुधमें भद्रा, मङ्गलमें जया, शनिवारमे रिक्ता और बृहस्पति वारमें पूर्णातिथिके होनेसे सिद्धियोग होता है—रविवारमें द्वादशी, सोमवारमें एकादशी, मङ्गलवारमें दशमी, बुधवारमें तृतीया, बृहस्पतिवारमें षष्ठी, शुक्रवारमें द्वितीया, और शनिवारमें सप्तमी तिथिके होनेसे दिनदग्धनामक योग होता है। रविवारमें विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, वा भरणी, नक्षत्रके होनेसे पापयोग होता है इसीप्रकार सोमवारमें चित्रा, स्वाति, विशाखा, अनुराधा, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, वा अभिजित् नक्षत्रके होनेसे मङ्गलवारमे धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपदा, उत्तरा षाढा, वा आर्द्रा नक्षत्रके होनेसे बुधवारमें मूल, विशाखा, भरणी, धनिष्ठा, अश्विनी वा रेवती, नक्षत्रके होनेसे, बृहस्पतिवारमें मघा, रोहिणी, आर्द्रा. भरणी, मृगशिर वा शतभिषा नक्षत्रके होनेसे, शुक्रवारमें पुष्य, आश्लेषा, मघा, ज्येष्ठा नक्षत्रके होनेसे और शनिवारमें हस्त, चित्रा, उत्तराफागुनी, भरणी, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, रेवती पुष्य अथवा धनिष्ठा नक्षत्रके होनेसे पापयोग होताहै नक्षत्रोंके मध्यमें जो अभग्न

(क) सिद्धिदग्धपापयमघण्टयोगान्श्लोकद्वयेनाह—नन्दाद्या इति । ज्ञाह्न इति । भृगुजादिवारे यथासंख्यं नन्दाद्यास्तिथयः प्रशस्ताः सिद्धियोगाः स्युः । तथाच "भृगौ नन्दा बुधे भद्रा शनौ रिक्ता कुजे जया । गुरौ पूर्णा च सिद्धिः स्यात्त्रैलोक्यं साधयेद्ध्रुवम् " इति । तथा यथाक्रममर्कादिवारैः द्वादश्यादयस्तिथयो दग्धाः स्युः । फलन्तु संज्ञानुरूपमिति । तथाच राजमार्तण्डे— "मास १२ रुद्रा ११ दिशो १० रामाः ३ षट् ६ पक्ष २ मुनयस्तथा । दह्यन्ते तिथयः सप्त सूर्याद्यैः सप्तभिर्ग्रहैः " तथा रव्यादिवारे यथोक्तनक्षत्रैः पापयोगाः स्युः । स्वत्रय धनिष्ठादित्रय मित्यर्थः । अभग्ननक्षत्रयोगे स्वगृहपतिदिने यमघण्टयोगः स्यात् । बुधवारे अर्य्यमा उत्तराफाल्गुनी यमघण्टः तत्रेयं व्याख्या राशिद्वयगतं भग्नक्षत्रं एकराशिगतं त्वभग्ननक्षत्रम् अभग्ननक्षत्रस्य पदद्वं यो राशिः तत्पतिवारे अभग्न नक्षत्रयोगे यमघण्टः स्यात् । तथा रविवारे मघा, उत्तरा, फाल्गुनी, सोमवारे पुष्याश्लेषा, मङ्गलवारे अश्विनी, भरणी, अनुराधा, ज्येष्ठा, बुधवारे आर्द्रा, हस्त बृहस्पतिवारे मूलं, पूर्वाषाढा, उत्तराभाद्रपदा, रेवती शुक्रवारे रोहिणी, स्वाती, शनिवारे श्रवण, शतभिषा इत्यर्थः इति ।

नक्षत्र हैं वह सब नक्षत्र क्षेत्रके मालिक रव्यादिवारमें युक्त होनेसे यमघण्टकयोग होताहै । उदाहरण यथा–मघा पूर्वाफाल्गुनी और उत्तराफाल्गुनीका एकपाद सिंहराशि इनका मालिक सूर्य है अतएव भग्ननक्षत्र उत्तराफाल्गुनी भिन्न मघा वा पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र रविवारमे युक्त होनेसे यमघण्टयोग होताहै ॥ ८९ ॥ ९० ॥ ९१ ॥ ९२ ॥

अथ यमघण्टयोगादीनां त्याज्यकालकथनम् ।

यमघण्टे (१) त्यजेदष्टौ मृत्यौ द्वादशनाडिकाः ।
अन्येषां (२) पापयोगानां मध्याह्नात्परतः शुभम् ॥९३॥ (३)

अर्थ–अब यमघण्टादियोगका त्याज्यकाल कहतेहैं यथा– यमघण्टयोगमें सूर्योदयके बाद आठ दण्ड और मृत्युयोगमें द्वादशदण्ड परित्याग करना चाहिये । अन्यान्य समस्त पापयोगमें मध्याह्नकालके बादही शुभ होताहै ॥ ९३ ॥

विष्ट्यादीनां प्रतिप्रसवः ।

विष्टावङ्गारके चैव व्यतीपाते शनैश्चरे ।
निधने जन्मनक्षत्रे मध्याह्नात्परतः शुभम् ॥ ९४ ॥

इति श्रीपतिव्यवहारनिर्णये ।

अर्थ–विष्टि भद्रा, मङ्गलवार, व्यतीपातयोग, शनिवार, जन्मतारा और जन्मतारासें सातवाँ तारा–इन सब तिथि, नक्षत्र, वार और योगके कर्मसमय मध्याह्नके उपरान्त शुभ होताहै इस प्रकार श्रीपतिभट्टाचार्य्यने व्यवहारनिर्णयनामक ग्रन्थमें कहाहै ॥ ८४ ॥

अथ त्रिपुष्करयोगकथनम् ।

वाराः क्रूरास्तिथिर्भद्रा पादैकखण्डितश्च भम् ।
एतत्त्रयसमायोगे त्रिपुष्करमुदाहृतम् ॥ ९५ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ–अब त्रिपुष्करयोग कहतेहैं–ज्योतिषतत्वमे लिखाहै कि, क्रूर अर्थात् रवि शनि वा मंगलवारमे यदि भद्रा (द्वितीया, द्वादशी वा सप्तमी) तिथि और भग्नपादनक्षत्र पुनर्वसु, उत्तराषाढा, कृत्तिका, उत्तराफाल्गुनी, पूर्वाभाद्रपदा और विशाखा नक्षत्रके होनेसे त्रिपुष्करयोग होताहै ॥ ९५ ॥

---

(१) कालघण्टे इति पाठः ।

(२) सर्वेषामिति च पाठान्तरम् ।

(३) एतेषां निन्दनीयकालमाह–यमघण्ट इति । सूर्योदयादष्टौ दण्डान् यमघण्टे त्यजेत् । मृत्युयोगस्य द्वादश दण्डान् त्यजेत् । ततः परं शुभमित्यर्थः । अन्येषां दग्धादीनामनिष्टयोगान् मध्याह्नात् परकाले शुभं मध्याह्नात् पूर्वकालं त्यजेदित्यर्थः इति ।

फलम् ।

त्रिपुष्करे तु यत्किञ्चिच्छुभं वा यदि वाऽशुभम् ।
जायते त्रिगुणं सर्वं प्राणी जातस्तु जारजः ॥ ९६ ॥ (×)

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-ज्योतिषतत्वमें लिखाहै कि, शुभ वा अशुभ जो कार्य्य होय त्रिपुष्करयोगमें त्रिगुना फल होताहै, किन्तु प्राणी उत्पन्न होनेसे वह जारज होताहै ॥ ९६ ॥

अथ कालघण्टयोगः ।

षष्ठीं शीतांशुवारे परिहर दशमीं सप्तमीं भार्गवे च
अष्टम्यां देवमन्त्री बुधदिननवमीं सौरिवारे दशम्याम् ॥
भौमे चैकादशीञ्च दशशतकिरणे वर्जयेद्द्वादशीञ्च ।
सर्वारम्भं न कुर्याज्जनयति विपदं कालघण्टोऽपियोगः ॥ ९७ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ-अब कालघण्टयोग कहतेहैं-ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखाहै कि, सोमवारमें षष्ठी-तिथिके होनेसे कालघण्टयोग होताहै, इसीप्रकार शुक्रवारमें दशमी वा सप्तमी तिथिके होनेसे, बृहस्पतिवारमें अष्टमी होनेसे, बुधवारमें नवमी होनेसे, शनिवारमें दशमी होनेसे मंगलवारमें एकादशी होनेसे रविवारमें द्वादशी तिथिके होनेसे कालघण्ट योग होता है इस कालघण्टयोगमे कार्य्यके करनेसे विपत्तियाँ होतीहैं अतएव इसमे कोई कार्य न करना चाहिये ॥ ९७ ॥

अथ महादग्धाकथनम् ।

द्वादशी च मघादित्ये कृत्तिकैकादशी विधौ ।
दशम्यङ्गारके चार्द्रा बुधे मूलतृतीयका ॥ ९८ ॥
गुरौ षष्ठी भरण्याञ्च शुक्रेऽश्विन्यां द्वितीयिका ।
आश्लेषा सप्तमी मन्दे महादग्धाः प्रकीर्त्तिताः ॥ ९९ ॥

अर्थ-अब महादग्धायोग कहतेहैं-रविवारमे द्वादशी तिथि और मघा नक्षत्रके होनेसे महादग्धा होतीहै, इसीप्रकार सोमवारमे कृत्तिकानक्षत्र और एकादशी तिथिके होनेसे, मङ्गलवारमे दशमीतिथि और आर्द्रा नक्षत्रके होनेसे, बुधवारमें मूलनक्षत्र,

---

(×) "लाभो हानिर्जयो वृद्धिः पुत्रजन्म तथैव च । नष्टं दत्तं मृतं चापि तत्सर्वं त्रिगुणायते । ग्र(?)-देशविशेषेण फलं स्याच्छुभयोगजम् ।

और तृतीया तिथिके होनेसे, बृहस्पतिवारमें षष्ठीतिथि और भरणी नक्षत्रके होनेसे, शुक्रवारमें अश्विनीनक्षत्र और द्वितीया तिथिके होनेसे और शनिवारमें आश्लेषानक्षत्र और सप्तमी तिथिके होनेसे महादग्धा होताहै ॥ ९८ ॥ ९९ ॥

अथ दग्धदिनकथनम् ।

द्वादश्येकादशी चैव दशमी च त्रिषष्ठिका ।
द्वितीया सप्तमी चैव दग्धा सूर्यादिवारतः ॥ १०० ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ-रविवारमे द्वादशी, सोमवारमें एकादशी, मंगलवारमे दशमी, बुधवारमें तृतीया, बृहस्पतिवारमें षष्ठी, शुक्रवारमे द्वितीया और शनिवारमें सप्तमी तिथिके होनेसे वह दग्धदिन होताहै इसप्रकार ज्योतिःसारमे लिखाहै ॥ १०० ॥

अपिच ।

आदित्यरुद्रकाष्ठाग्निरसपक्षतुरङ्गमाः ।
अर्कादिवारयोगेन दह्यन्ते तिथयः क्रमात् ॥ १ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ-ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि, रव्यादि सातवारमे द्वादशी, एकादशी, दशमी, तृतीया, षष्ठी, द्वितीया और सप्तमी, इन सब तिथियोंके होनेसे वह दिन दग्ध होता है ॥ १ ॥

अन्यच्च ।

मासा रुद्रा दिशो रामाः षट्पक्षमुनयस्तथा ।
दह्यन्ते तिथयः सप्त रव्यादिसप्तभिर्ग्रहैः ॥ २ ॥

इति राजमार्त्तण्डे ।

अर्थ-राजमार्त्तण्डमें लिखा है कि, रव्यादि सातवारमे क्रमानुसार द्वादशी, एकादशी दशमी, तृतीया, षष्ठी, द्वितीया, और सप्तमी, तिथि दग्धा होती है ॥ २ ॥

अपरञ्च ।

द्वादश्यर्कयुता भवेदशुभपा सोमेन चैकादशी
भौमे चापि युता तथैव दशमी नेष्टा तृतीया बुधे ॥
षष्ठी नेष्टफलप्रदा सुरगुरौ शुक्रे द्वितीया तथा
सर्वारम्भविनाशविघ्नजननी सूर्य्यात्मजे सप्तमी ॥ ३ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ–ज्योतिषतत्वमें लिखाहै कि; रविवारमें द्वादशी तिथि शुभ नहीं होतीहै; इसीप्रकार सोमवारमें एकादशी, मंगलवारमें दशमी, बुधवारमें तृतीया, बृहस्पतिवारमें षष्ठी, शुक्रवारमें द्वितीया और शनिवारमें सप्तमी तिथि सभी कार्यमें विघ्नदात्री होतीहै ॥ ३ ॥

अथ देशविशेषे योगव्यवस्था ।

सर्वेषु देशेषु विशेषतोऽमी
विष्कुम्भकाद्या मुनिभिः प्रदिष्टाः ॥ (×)
वारर्क्षयोगास्तिथिवारयोगा
वङ्गेषु योज्या न तु तेन्यदेशे ॥ ४ ॥ (क)

अर्थ–विष्कुम्भादि सत्ताईस नित्ययोगका फल सभी देशोंमें होताहै किन्तु अमृतयोग पापयोगादि, नक्षत्रामृतादि और तिथिवारयोगमें जो सिद्धि और दग्धादियोग है उनका शुभाशुभफल केवल वङ्गदेशमें ही होता है अन्य किसी देशमें इनकी व्यवस्था नही है अतएव और जगह शुभाशुभफल नहीं होताहै ॥ ४ ॥

अथ यात्रादिषु करणव्यवस्था ।

गरवणिजविष्टिवर्ज्जितानि करणानि यातुरिष्टानि ।
गरमपि कैश्चिच्छस्तं वणिजस्तु वणिक्क्रियास्वेव ॥ ५ ॥ (+)

अर्थ–अब यात्रादिमें करण कहते हैं, गर वणिज और विष्टिभिन्न सभी करण यात्रादिमें प्रशस्त हैं–किसी २ मुनिके मतसे गर करण भी यात्रामें प्रशस्त है और वणिज करण वाणिज्यमें प्रशस्त है ॥ ५ ॥

(×) यह वचन नित्ययोगप्रकरणमें लिखा है. परन्तु आवश्यकता समझकर यहाँ भी लिखाहै ।

(क) सर्वेषां शुभाशुभयोगानां देशविशेष एव फलमाह–सर्वेष्विति । वारर्क्षयोगा अमृतयोगादयः तिथिवारयोगाः सिद्धिदग्धादयः वङ्गेषु योज्याश्चान्यदेशे गुणदोषो नास्तीत्यर्थः । इति । "विरुद्धसंज्ञास्तिथिवारयोगा नक्षत्रवारप्रभवाश्च ये वै । हूणाङ्ग वङ्गेषुखशेषु वर्ज्याः शेषेषु देशेषु न ते विरुद्धाः "

इति श्रीपति. ।

(×) यात्रायां करणान्याह–गरेति । गरवणिजविष्टि संज्ञकं करणत्रयं त्यक्त्वान्यानि करणानि यातुर्जनस्य इष्टानि शुभानि । कैश्चिन्मुनिभिर्गरमिति प्रशस्तमुक्तम् । वणिजमपि वणिक्क्रियासु वाणिज्येष्वेव कैश्चिदुक्तं शस्तं नान्यत्रेति । तथाच वशिष्ठः–"गरं हि शुभदं याने वाणिज्ये वणिजं तथा । विष्टिः सर्वात्मना वर्ज्या यातु. प्राणार्थनाशिनी "

अथ यात्रायां नक्षत्रवत्करणव्यवस्था ।

नक्षत्रवत्क्षणानां परिघः शूलं समयभेदश्च ।
ताराचन्द्रविशुद्धिः सर्वं तत्स्वामिभिश्चिन्त्यम् ॥ ६ ॥ (अ)

अर्थ–अब यात्रामे नक्षत्रकी समान नक्षत्रके मुहूर्त्तकी व्यवस्था कहतेहैं, नक्षत्रके समान नक्षत्रके क्षणमें (मुहूर्त्तमें) दण्डमें, नक्षत्र शूलमे, समयके भेदसे नक्षत्रके मालिक और मुहूर्त्तका मालिक ऐक्यहोनेसे और तारा चन्द्रमा शुद्ध होनेसे नक्षत्रविहित कर्म नक्षत्रके मुहूर्त्त होसक्तेहैं ॥ ६ ॥

अथ निषिद्धलग्नकथनम् ।

मीने कर्किण्यलिनि च वृषे जन्मकालस्थपापे
वामे वादिग्द्युनिशबलिनां जन्मलग्नाष्टमे वा ॥
वर्गे पापानुपचयकृतां वक्रिणां पृष्ठलग्ने
पापास्तम्भे न गतिरबले जन्मलग्नानधीने ॥ ७ (×)

(अ) यात्रायां मुहूर्त्तफलमाह–नक्षत्रवदिति । नक्षत्र वत्क्षणा नामपि परिघोऽत्र दण्डोऽन्तरे वाय्वग्न्योरित्यनेनोक्तो दण्डः । तज्ज्येष्ठाजपदमित्यनेनोक्तं शूलं समयभेदो दग्धं शत्रुपुरमित्यादिनोक्तः । कालभेदश्चन्द्रताराविशुद्धिः चकारात्सार्वद्वारिकश्च चिन्त्यमित्यर्थः । न केवलं यात्रायां किन्तु यस्मिन्यस्मिन्नक्षत्रे विहित यद्यत्कर्म्मोक्तं तत्तत्सर्वं कर्म च क्षणानामपि चिन्त्यं कथमिति चेदाह तच्च स्वामिभिरेवेति । तेषां क्षणानां स्वामिभिः पूर्वोक्तैर्नक्षत्रैरित्यर्थः । तथा चोक्तं नक्षत्रे यद्विहितं तत्कार्यं तन्मुहूर्त्तैरिति । बृहद्यात्रायाम् । "अहोरात्रश्च सम्पूर्णं चन्द्रनक्षत्रयोजितम् । तन्नक्षत्रमुहूर्त्ताश्च सर्वकर्म्मगुणाः स्मृताः" यद्वा तयोर्नक्षत्रक्षणयोः स्वामिभिर्देवैरिति ; अश्वियमदहनेत्यादिना नक्षत्राधिपदेवा उक्ताः । शिवभुजग इत्यादिना मुहूर्त्ताधिपा देवाश्चोक्ताः तयोर्दैवैक्यवशेन नक्षत्र विहितं कर्म्म क्षणेऽपि कार्य्यमित्यर्थः । अन्ये त्वन्यथा प्रलपन्ति तदुपेक्षितमिति ।

(×) यात्रायां निषिद्धलग्नमाह–मीन इति । मीने कर्कटे वृश्चिके वृषलग्ने गमनं न शुभमित्यर्थः । तथाच बृहद्यात्रायाम् । "वृषवृश्चिककर्कटे नृणामनुकूलैरपि लग्नमाश्रितैः । गमनं प्रवदन्त्यशोभनं मुनयोऽन्यर्क्षसमाश्रितैरपि " तथा लघुयात्रायाम् । "मीने कुटिलो मार्गो भवति तदंशेऽपि" इत्यादि वक्ष्यति । एतेन नौयानं मीनकर्कटयोरपि शस्तं जलजराशित्वादिति । जन्मेति जन्मकालस्थः पापग्रहो यस्मिन् तत्र राशौ लग्ने वा गमनं न शस्तमिति । तथा लघुयात्रायाम् । "आसन जन्मनि राशिषु येषु शुभा भास्करादितीयाश्च । ते लग्ने शस्यन्ते नेष्टाः पापग्रहाध्युषिताः " इति । एतेन मीनादीना विशेषणं जन्मकालस्थ पाप इति कस्यचित् प्रलापो हेय इति । वाममिति दिशां वामं दिवा बलिना निशाबलिनाञ्च लग्नाना वामं विपरीतं गमनं न शुभमेतदुक्तं भवति दिशां वाम यस्यान्दिशि गन्तव्य तद्दिशो विमुखलग्ने न गन्तव्यम् । यथा बृहद्यात्रायाम् । "यातव्यदिङ्मुखगतस्य सुखेन सिद्धिर्न्नृप प्रभोभवति दिक्पतिनोदलग्ने" इति । एतेन पूर्वादिग्लग्ने पूर्वोत्तरदक्षिणेषु गमनं शस्तं न कदाचित् पश्चिम इति । एव मन्यदप्यूह्यम् । तथा गोजाश्वीत्यादिना दिवाबलिनो निशा-

अर्थ–अब यात्रामें निषिद्ध लग्न कहते हैं–मीन, कर्क, वृश्चिक और वृष इन सब लग्नमें और जन्मसमय पापग्रह जिस राशिमें होय उस लग्नमे वा राशिमें और दिवाबली राशि लग्नमें रात्रिसमय निशाबली राशिलग्नमें दिनके समय और जन्मराशिके वा जन्मलग्नके आठवें लग्नमें और पापग्रहोंके क्षेत्रमें वा नवांशादिमें गोचरमें अथवा दशादिमें अनुपचयकारक शुभग्रहोंके और वक्री ग्रहोंके क्षेत्रादिमें और पृष्ठोदय लग्नमें दो पापग्रहोंके मध्य स्थित लग्नमें बलहीन लग्नमें जन्मलग्न और जन्मराशिके अवशीभूत लग्नमें यात्रा न करनी चाहिये ॥ ७ ॥

अथ शुभाशुभलग्नकथनम् ।

मीने कुटिलो मार्गो भवति तदंशेऽन्यराशिलग्नेऽपि ।
नौयानमाप्यलग्ने कार्यं तेषां नवांशे वा ॥ ८ ॥

अर्थ–मीनलग्नमें वा अन्यराशिकी लग्नमें मीनके अंशमें गमन करनेसे यात्रीकी

–बलिनश्च राशयः उक्तास्तेषां वामं दिवा बलिराशिलग्ने रात्रौ गमनं न शुभम् । निशाबलिराशिलग्ने च दिवा गमनं न शस्तमिति । यथा बृहद्यात्रायाम् "शस्ते दिवा दिनबले निशि नक्तवीर्य्ये राशौ विपर्य्यय बले गमनं न शस्तमिति "। जन्मेति जन्मराशेर्जन्मलग्नस्य चाष्टमे लग्ने न शुभं गमनम् । वाशब्दश्चार्थे । तथा पापग्रहस्य वर्गे ग्रहनवांशादौ गोचरे दशापाके वा अनुपचायकृतां शुभानामपि वर्गे गमनं न शुभम् । एतेनोपचयकरस्यापि पापग्रहस्य च वर्गे गमन शस्तमिति ध्वनितम् । तथाच लघुयात्रायाम् । "उपचयकरस्य वर्गः क्रूरस्यापि प्रशस्यते लग्ने । चन्द्रेऽपि च तद्युक्ते न तु विपरीतस्य सौम्यस्य" इति तथा वक्रिणां वर्गे गृहनवांशादौ गमनं न शस्तम् । तथा लघुयात्रायाम् "वक्री न शुभकेन्द्रे तदहस्तद्वर्गशुभलग्नश्च" इति । तथाच पृष्ठ लग्ने पृष्ठोदयेलग्ने गमनं न शस्तम् । यथा बृहद्यात्रायाम् । "शीर्षोदये स्वमभिवाञ्छितकार्य्यसिद्धिः पृष्ठोदयाविफलता बलविद्रवश्च" इति । एतेन पापानां पापग्रहावस्थितराशीनाम् अनुपचयकरास्थितराशीनाञ्च वर्गे गमनं न शुभं वक्रिग्रहाणां पृष्ठलग्ने पश्चाल्लग्ने च न शुभमिति सौभरेर्म्मतिविभ्रमजन्यप्रलाप इति । पापान्तस्थ इति पापद्वय मध्यगे लग्ने न शुभम् । तथा अबले बलहीने च लग्ने न शुभम् । तथा जन्मलग्नस्य जन्मराशेश्चाविधेये विधेयो विधातव्यः । आज्ञाप्यो वशग इति यावत् । तथा चामरसिंहः– "विधेयो विनयग्राही वचने स्थित आश्रवः । वश्यः । प्रणेयो निभृतविनीतप्रश्रिताः समाः" इत्यविधेयेऽबले लग्ने गमनं न शुभमित्यर्थः । द्विपदवशगा इत्यादिना तु वश्या वश्यत्वमुक्तमेवेति । तथा बृहद्यात्रायाम् 'अविधेयं यद्भवनं स्वजन्मलग्नर्क्षयोः प्रयातॄणाम् । अप्यनुकूलं लग्नं धनक्षयाय स्वेदमद्भवति । सखिवश्यतामुपेते स्वजन्मलग्नर्क्षयोर्विलग्नस्थे । अपचयकरकेऽपि यातुर्जयधनमानागमाः क्षिप्रम् " इति सौभरिणातु अविधेयेत्यादि । अविधेयत्रिलाभरिपुकर्म्मस्थानवर्जिते लग्ने इति सर्वार्थाज्ञानादेव प्रलपित तदशुद्धमेवेति। इति वामे विपरीते "वटमिथुनकुलीराश्चापगो मीनकन्याःखलु शुभभवनत्वाद्राशयः सत सौम्याः । अलिघटमृगसिंहाजाश्च पापाश्रयत्वान्मुनिभिरभिहितास्ते राशयः क्रूरभावाः" इति ज्योतिस्तत्वे स्मार्त्तेनोक्तम् ।

वक्रपथमें गति होती है। जलजराशिकी लग्नमें वा जलजराशिकी लग्नके नवांशादिमें नौकामें सवार होकर यात्रा करनी चाहिये ॥ ८ ॥

अपिच।

लग्ने कार्मुकमेषतौलिगमने कार्ये विलम्बो नृणां
पञ्चत्वं मकरे तथा शशिगृहे तद्वत्फलं वृश्चिके ॥
सिंहे वा यदि गोघटेषु गमनं सर्वार्थसिद्धिप्रदं
स्यादाशापतिषु प्रयाति सकलं कन्याझषे मन्मथे ॥ ९ ॥ (क)

इति ज्योतिस्तत्त्वे।

अर्थ–ज्योतिषतत्त्वमे लिखाहै कि, धन, मेष और तुलालग्नमें यात्रा करनेसे यात्रीका विलम्बसे कार्य्य सिद्ध होताहै, मकर, कर्क और वृश्चिकलग्नमे यात्रा करनेसे पञ्चत्व प्राप्ति होती है. सिंह, वृष और कुम्भलग्नमे यात्रा करनेसे सर्वार्थसिद्धि होतीहै और दिग्वदनलग्नमें और कन्या, मीन वा मिथुन लग्नमें यात्रा करनेसे मनोरथ पूर्ण होताहै ॥ ९ ॥

अन्यच्च।

नेष्टं दिशन्ति मकरालिकुलीरलग्ने
मेषे घटे धनुषि दीर्घकरी हि यात्रा ॥
युग्माङ्गनाझषवृषे ध्रुवमर्थलाभो
ज्योतिर्विदः सकलसिद्धिमुपैति लक्ष्मीः ॥ १० ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे।

अर्थ–ज्योतिषतत्त्वके वचनान्तरमे लिखाहै कि, मकर, वृश्चिक कर्क, मेष, तुला और धनलग्नमे यात्रा करनेसे शुभफल नही होताहै. मिथुन, कन्या, मीन और वृष लग्नमे यात्रा करनेसे अर्थलाभ और लक्ष्मीयुक्त होताहै ॥ १० ॥

अपरञ्च।

पूर्वान्तु गच्छेद्धनुः सिंहमेषे अथोत्तरां कर्कटकीटमीने ॥
प्रतीचिकां मन्मथतौलिकुम्भे ह्यपाचिका गोमकराङ्गनासु ११ (ख)

इति ज्योतिःसारसंग्रहे।

(क) "सिंहे वा यदि गोघटे गतनरः सर्वार्थसिद्धिं लभेत्। कन्यायां मिथुने झषे त्वभिमते प्राप्नोत्यवश्यं फलम्" ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे परार्द्धस्य पाठः।

(ख) "मेषसिंहधनुः प्राच्यां वृषकन्यामृगा यमे। तुलाद्वन्द्वघटाः पश्चात्सौम्या मीनालिकर्कटाः।

इत्यपि सारसंग्रहे।

अर्थ–ज्योतिषसारसंग्रहमें लिखाहै कि, धन, सिंह और मेष लग्नमें पूर्वदिशाकी यात्रा करै. कर्क, वृश्चिक और मीनलग्नमें उत्तरदिशाकी यात्रा करै. मिथुन, तुला और कुम्भलग्नमें पश्चिमदिशाकी यात्रा करै और वृष, मकर वा कन्यालग्नमें दक्षिणदिशाकी यात्रा करनी चाहिये ॥ ११ ॥

प्रकारांतरञ्च ।

यानेभं जन्मराशेरुपचयमुदयारित्रिलाभञ्च वेशि–
मित्रं वश्यं स्वजन्मस्वतनुभवनयोर्यद्ग्रहैर्नोनिरंशम् ॥
स्थानं सौम्यस्यजन्मन्यभिमतफलदस्यापि यत्र प्लवश्च
याम्यांत्यक्ताभिजिद्धं शुभदिवसफलेन्दोश्च या कालहोरा १२(×)

(×) विहितलग्नमाह–यान इति। जन्मराशेः सकाशात् उपचयं त्रिदशषष्ठैकादशस्थं लग्नं तत् शुभं एतेन जन्मराशिलग्नं न शुभमिति ध्वनितं तथा लघुयात्रायाम् "इष्टं स्वलग्नलग्नं जन्मराश्युद्गमस्तरोः स्थानानि । षट् त्र्यायगृहाणि हितान्युदयेनेष्टानि शेषाणि"इति । तथोदयारित्रिलाभश्च सदुदयं स्वजन्म लग्नं अर्थात्तदीयारित्रिलाभश्च लग्नं सदेतेन जन्मलग्नाद्दशमस्थानं न शस्तमिति सूचितम् ॥ तथा बृहद्यात्रायाम् क्लेशाद्विनाफलमरिक्षयश्चेति केचित्तूदयस्यारित्रिलाभं सत् किन्तु नोदयमिति पूर्वलिखितवचनात् । "तथा क्लेशाद्विना फलमरिक्षयमर्थसिद्धिं प्राप्नोति लग्नसहिते प्रवसन्स्वलग्ने" इति । तथा वेशिर्जन्मकाले सूर्य्याद्द्वितीयर्क्षं लग्नं शुभमिति । कश्चित्तु यात्राकाले सूर्य्याद्द्वितीयर्क्षमिति वदति तद् सत् "आसञ्जन्मनि राशिषु येषु शुभा भास्कराद्द्वितीयाश्च " इति लघुयात्रावचनात् । तथा स्वजन्म स्वलग्नग्रहयोर्वश्यं मित्रञ्च लग्नं सत् द्विपदवशगा इत्यादिनावश्यत्वमुक्तं मित्रत्वञ्च स्वामिद्वारेति ज्ञातव्यम् । यल्लग्नं ग्रहैः शुभाशुभैर्न निरंशमंशशेषीकृतं यस्य शेषांशे ग्रहो न वर्त्तते तल्लग्न सदेतेन निरंशलग्नं न शुभमिति निषेध एवतात्पर्यार्थः । तथाच " यस्मिन्राशावन्त्यभागे सौम्यः पापोऽथवा स्थित' । गमने वर्ज्जयेन्नित्यं भयशोकप्रदो यतः " अर्थाज्जन्मकाले सौम्यस्य स्थानं शुभाक्रान्त यद्गृहं तल्लग्न सत् यथा आसञ्जन्मनि राशिषु येषु शुभा इत्यादि । तथा जन्मन्यभिमतफलदस्य राजयोग उक्तः योगादिना शुभफलदस्य पापस्यापि समाक्रान्तं स्थानं यद्गृहं तल्लग्नं सत् । तथा यत्र प्लवः स्यात् यल्लग्नस्वामिनो दिक् यस्मिन् राशौ गन्तुमिष्टा स्यात्तल्लग्नं सत् । तथा सारावल्याम्–"भवनाधिपदिङ्नामप्लव इह यवनैःप्रयत्नतः कथितः । तत्प्लवगो विनिहन्यादचिरेण महीपतिः शत्रून्"इति । एतेन प्लवो वेशिस्थानाधिपो यत्र स्थित इति सौभरेः प्रलापोऽशुद्ध एव । तथा याम्यां दक्षिणां दिशं त्यक्त्वाभिजिद्गम् अभिजिन्मुहूर्त्ताधिष्ठितराशिलग्नं सत् तथा लघुयात्रायाम् "पञ्चाष्टमो मुहूर्त्तो दिनेऽभिजिन्नामनिर्दिष्टः । तस्मिंस्त्यक्त्वा याम्यामन्यत्र गतस्य जयलब्धिः " इति ॥ शुभेति शुभं दिवाफलं वारफलं यस्य तस्य ग्रहस्येन्दोश्च या कालहोरा तल्लग्न सदेतदुक्तं भवति संत्यजेद्दिवस इत्यादिना निषिद्धवारा उक्ताः । लघुयात्रादिषु च जैत्रे जयधनलब्धिरित्यादिना च शुभवारा उक्ताः । अनुलोमदिग्वेशेन च वारस्य शुभत्वमुक्तमेवञ्च यस्य ग्रहस्य वारे शुभफलं कथितं तस्य कालहोरा । अस्यार्थः । ग्रहस्य दिवसफलं वारफलं शुभाशुभं यदुक्तं तस्य कालहोरा तत्फलं करोति । तथा च लघुयात्रायाम् । " यद्यस्य फलं वारे तद्दशेष तस्य कालहोरायाम्" इति । एतेना–

अर्थ-जन्मराशिसे तीसरे, छठे वा ग्यारहवे लग्न हों, जन्मसमयके सूर्यसे दूसरी राशिकी लग्न और जन्मराशिकी वा जन्मलग्नके वश्य वा मित्र लग्न अथवा जिस राशिके शेषांशमे ग्रह न होय उस लग्नमें, जन्मसमय शुभग्रह युक्त राशिकी लग्नमें, जन्म समय शुभ फलप्रद पापग्रहयुक्त राशिकी लग्नमें गन्तव्यदिक्पतिके क्षेत्रलग्नमें, दक्षिणदिग्भिन्न अभिजित् नक्षत्रके मुहूर्त्तकी लग्नमे और शुभग्रहोंके वारमें और चन्द्रमाके काल होरामे यात्रा शुभ होतीहै ॥ १२ ॥

अथ यात्रायां लग्नस्थनिषिद्धग्रहनिर्णयः।

पापः क्षीणो विधुरिदिनं यस्य जन्मर्क्षपीडा
होराजन्माष्टमगृहपतिर्ज्जन्मभं प्रत्यनिष्टः ॥
नीचस्थास्तं गतपराजितो जन्मलग्नेशशत्रु-
र्लग्ने नेष्टः खचररहितंवक्रियुक्तञ्च केन्द्रम् ॥१३॥ (×)

-शुभेऽपिवारे शुभफलवारस्य ग्रहस्य कालहोरायां गमनं शस्तमितिध्वनितम् । एतेन जन्मकोष्ठ्यां शुभदिवसफलस्य शुभदस्येति सौभरव्योरव्याकौशलं हेलं दिवसपदवैयर्थ्यापत्तेश्चेति । कालहोराधिपाश्च दैवज्ञवल्लभायामुक्ताः । "वारप्रवृत्तेर्घटिका द्विनिघ्ना' कालाख्यहोरापतयः शराप्ताः दिनाधिपाद्या रविशुक्रसौम्यशशाङ्कसौरज्यकुजाः क्रमेण" ॥ इति ।

(+) लग्ने निषिद्धग्रहानाह-पाप इति पापग्रहो लग्ने नेष्टः न शुभः । अत्र पापोऽपि यदि गोचरे दशापाके वा शुभ ग्रहोऽप्यनिष्टदः सोऽपि लग्ने न शस्त इत्यर्थः । यथा लघुयात्रायाम् "क्रूरोऽप्यनुकूलस्थः शस्तो लग्ने शुभोऽपि नानिष्टफलदः" इति । तथा क्षीणश्चन्द्रो लग्ने न शस्तः । यदुक्तं "केन्द्रकोणार्थगो नेष्टः क्षीणः पूर्ण. शशी" ति । तथा यस्य ग्रहस्यारिदिनं ग्रहवारः यस्मिन्वारे यात्रा कर्तव्या तस्य वारस्य स्वामी यस्य ग्रहस्य शत्रुः स ग्रहो लग्ने नेष्ट इत्यर्थः । तथा बृहद्यात्रायां "रिपुदिवसे यस्य भवेत्सौम्योऽपि स लग्नगो न शुभदाता । पापोऽपीष्टं जनयति मित्रस्वर्लग्नंस्थ विलग्नस्थः " इति । अत्र लग्नाधिपस्यारिदिनं गमने योग्यमिति सौभरेर्म्मतविभ्रम इति । तथा यस्य ग्रहस्य जन्मनक्षत्रपीडा स ग्रहो लग्ने नेष्टः । यस्येत्युभयत्र संबध्यते मध्यपाठात् ग्रहाणां जन्मनक्षत्रं यथा " विशाखा नलतोयानि वैष्णवं भगदैवतम् । पुष्यं पौष्णं यमः सर्पो जन्मर्क्षाण्यर्कतः क्रमात् " इति । जन्मर्क्षपीडा च नक्षत्रमपद्धाकिरणमित्यादिनोक्तैव तथा जन्मलग्नस्य जन्मराशेश्च यदष्टम गृह तस्य स्वामी लग्ने नेष्ट इति । तथा जन्मभं जन्मराशि प्रति गोचरे योऽनिष्टप्रदः स शुभोऽपि लग्ने नेष्टप्रदः । तथा क्रूरोऽप्यनुकूलस्थ' शस्तो लग्ने शुभोऽपि नानिष्टफलद इति । तथा ये नीचस्था ये चास्त गता ये च युद्धे पराजितास्ते लग्ने नेष्टाः । तथा जन्मलग्नाधिपस्य जन्मराश्यधिपस्य यः शत्रुः स लग्ने नेष्टः । एवं दशान्तर्दशापतेः शत्रुर्लग्ने नेष्ट इति । यथा बृहद्यात्रायाम् । 'पक्षिशादौ लग्ने वर्गे वा तस्य भूपतिर्गच्छन् । विनिहत शूरनराश्वः शत्रोरायाति परवशम्" इति । तथा केन्द्र लग्नचतुर्थसप्तमदशमस्थानं सर्वमेव खचर रहितं ग्रहशून्यं नेष्टम् । तथा वक्रिग्रहयुतञ्च केन्द्र नेष्टम् तथा बृहद्यात्रायाम् ' रक्तोऽपि वक्रोपगतो ग्रहाणां शुभाऽशुभो-

अर्थ-अब यात्रालग्नमें स्थित निषिद्ध ग्रहोंको कहतेहैं, पापग्रह, क्षीण चन्द्रमा, वारका मालिक जो शत्रु वह ग्रह और जिस ग्रहका जन्मनक्षत्र पीडित होय वह जन्मलग्न और जन्मराशिके आठवें स्थानका मालिक ग्रह;गोचरमे अनिष्टप्रद शुभ वा अशुभ ग्रह नीचस्थानमें स्थित ग्रह, अस्तमित् ग्रह, पराजित ग्रह, जन्मलग्नका मालिकका और जन्मराशिके मालिकका शत्रु ग्रह यदि लग्नमें होय वा लग्नके केन्द्रस्थानमें ग्रह शून्य होय अथवा वक्री ग्रह केन्द्रस्थानमें होय तो उस लग्नमे यात्रा न करनी चाहिये ॥ १३ ॥

अथ यात्रायां लग्नस्य होराज्ञानम्।

तिर्य्यगध ऊर्द्ध्ववदनहोराः स्युः सूर्य्ययोगतः क्रमशः ।
वांछितफलदोर्द्ध्वमुखी शेषेद्वे चाशुभे यातुः ॥ १४ ॥

अर्थ-अब यात्रामें लग्नके होरा जाननेकी रीति कहतेहैं-राशिको दो भागमें विभक्त करनेसे उसको होरा कहतेहैं, जिस होरामे सूर्य स्थित होय उसका नाम तिर्यङ्मुखी, उसके पीछेके भागका नाम अधोमुखी और उसके पीछेके भागका नाम उर्ध्वमुखी हैं ऊर्ध्वमुखी होरामें यात्रा करनेसे यात्राको वांच्छित फल ।त होता है और शेष दोनों होरामे यात्रा करनेसे अशुभ होता है ॥ १४ ॥

अथ यात्रायां द्रेष्काणफलम्।

लग्ने यद्यद्ग्रहाणांफलमुदितमिहांशेऽपि तेषां दृकाणे
सन्नाथे सौम्यरूपे कुसुमफलयुते रत्नभाण्डान्विते वा ॥

-वापि चतुष्टयस्थः । वर्गोऽपि वास्योदयगो विनाशं बहुप्रकारं कुरुतेऽध्वगानाम् " इति । अत्र च विशेषमाह राजमार्त्तण्डे-"शुभदः शुभदृष्टो वा शुभदर्क्षगतोऽथवा शुभदृष्टः । शुभगेहे वा शुभदो वक्री केन्द्रोपगो यातु. " इति । गोचरे दशापाके वा शुभदो वक्री केन्द्रस्थः शुभ फलदो भवतीत्यर्थः ।

(+) होराफलमाह-तिर्य्यगिति । होराराश्यर्द्धं सूर्य्ययोगात् क्रमेण तिर्य्यगध ऊर्ध्ववदनसंज्ञ हा-होरा राश्यर्द्धानि स्युः । अयमर्थः । यस्मिन् राश्यर्द्धे सूर्य्यास्तिष्ठति सा तिर्य्यङ्मुखी तत्पश्चादधो-मुखी पुनस्तत्पश्चादूर्ध्वमुखीत्यादि । तथा वृहद्यात्रायाम् । यस्मिन्सहस्रांशुरवस्थितोऽर्द्धे तिर्य्यङ्मुखीं संगणयेत्पुनः" पुनः इति। तत ऊर्ध्वमुखी वाञ्छितफलदा शेषे द्वे होरे तिर्य्यङ्मुखी अधोमुखी यातुर शुभप्रदेत्यर्थः । तथाच दैवज्ञवल्लभायाम् । "वक्ते वाञ्छितकार्य्यमूर्ध्व' वदना क्लेशादिना लग्नगा क्लेशायां सपरिश्रमाश्च कुरुते तिर्य्यङ्मुखी गच्छतः । सैन्यत्रंशमधोमुखी च कुरुते क्लेशादि वागमः सर्वाः पुष्ट फलप्रदाः स्वपतिना दृष्टा न पापग्रहैः" इति ।

सौम्यैर्दृष्टे जयः स्यात्प्रहरणसहिते पापदृष्टे च भङ्गो
वह्नौ दाहोऽथ बन्धः सभुजगनिगडे पापयुक्ते च यातुः ॥१५॥ (क)

अर्थ–अब यात्रामे द्रेक्काणका फल कहतेहैं, पूर्वोक्त लग्नमें स्थितग्रहोका जिस प्रकार फल वर्णनकियाहै यात्रामे उन्ही सब ग्रहोंके नवांशोंमेभी तिसीप्रकार फल होताहै शुभ ग्रहोके द्रेक्काणमें, सौम्यरूप द्रेक्काणमे, फलपुष्पयुत द्रेक्काणमें, रत्न भाण्डाऽन्वित द्रेक्काणमें, और द्रेक्काणोंपर शुभग्रहोंकी दृष्टि होनेसे यात्रा करनवाले मनुष्यकी जय होतीहै और उद्यतास्त्र द्रेक्काणमें वा पापग्रहोंकी दृष्टि होनेसे द्रेक्काणमें यात्राभङ्ग होतीहै भुजगद्रेकाणमें, निगडद्रेक्काणमे और पापग्रहयुक्त द्रेकाणमें यात्रा करनेसे यात्रीकी अग्निमे दाह और बन्धन होताहै ॥ १५ ॥

अथ धरित्रीयोगः ।

लाभशत्रुसहजेषु यमारौ सौम्यशुक्रगुरवो बलयुक्ताः ।
गच्छतो यदि ततोऽस्य धरित्री सागराम्बुवसना वशमेति॥१६॥(×)

(क) यात्रायां, नवांशद्रेक्काणयोः फलमाह–लग्न इति । लग्ने स्थितानां ग्रहाणां यद्यत्फलं पापः क्षीणो विधुरित्यादिना पूर्वोक्तमिह यात्राया तेषां ग्रहाणां नवांशेऽपि तत्फलमुदितमिति । बृहद्यात्रायाम् । "यदुदयति फलं ग्रहे प्रदिष्टं जनयति तस्य नवांशको विलग्ने " इति । तथाच फलान्तरमुक्तं तत्रैव "नवभागे तिग्मांशोर्वाहननाशो विलग्नसंप्राप्ते । कृच्छ्रात्स्वगृहागमनं प्रभावमृदुता च चन्द्रांशे । कौजेऽग्निभयं बौधे मित्रप्राप्तिर्धनागमो जैवे । भोगविवृद्धिः शौक्रे भृत्यविनाशो रविसुतांशे " इति । द्रेक्काणफलमाह सन् शुभग्रहो नाथो यस्य तस्मिन् द्रेक्काणे जयः स्यात्तथा नृयुग्ममीनयोरित्यादिनोक्तः । सौम्यद्रेक्काणे जय. तथा फलकुसुमयुते कर्कटादिद्रेक्काणे जयस्तथा रत्नभाण्डान्विते धनुर्मध्ये तुलादिद्रेक्काणे जयः स्यात्तथा सौम्यैः शुभैर्दृष्टे द्रेक्काणे जयः स्यादथ प्रहरणसहिते उद्यतास्त्रद्रेक्काणे भङ्गोऽसद्ग्रहद्रेक्काणे दाहोऽग्निभयम् । अथ सभुजगनिगडेति । भुजगद्रेक्काणे निगडद्रेक्काणे च पापग्रहयुक्ते च द्रेक्काणे यातुर्बन्धः स्यात् । यद्यपि मीनकर्कटयोरित्यादिना सर्पनिगडयोरैक्यमुक्तं तथाप्यन्यत्र भेददर्शनादत्रापि पृथगुक्तम् । तथाच 'मृगालिपूर्वौ निगडौ प्रदिष्टौ' इति । अत्र च कश्चित् प्रहरणसहिते पापयुक्ते इति पाठं कृत्वा विशेष्यविशेषणभावेनान्वयं करोति तदसत् । बृहद्यात्रायाम् पापदृष्ट इत्यस्यैव दृष्टत्वात् चकारस्य वैयर्थ्योपत्तेश्च इति ।

(+) अथ कार्य्यवशान्तरागमने यदुक्तमेव सर्वं न लभ्यते तदा योगयात्रा कार्य्येति तत्र प्रथमं धरित्रीयोगमाह लाभेति । एकादशषष्ठतृतीयेषु यथासम्भवमेकत्र पृथग्व्यवस्थितौ यमारौ शनिकुजौ यदि स्यातां बुधशुक्रगुरवस्तु यत्र कुत्रचित् स्थिता बलयुक्ताः यदि स्युः तदा गच्छतोऽस्य नृपतेः पृथिवी सागराम्बुवसना समुद्रजलसीमा वशमेति । वसनेव वसना सीमेत्यर्थः । यदि तु बुधशुक्रगुरूणामेकोऽप्यबलः स्यात्तदायं योगो न स्यादित्यर्थः ।

अर्थ–अब धरित्री योग कहते हैं–यात्रासमयमें लग्नसे ग्यारहवें, छठे और तीसरे स्थानमें शनि और मंगल रहकर यदि बुध, शुक्र और बृहस्पति उससमय बलवान् न होंय तब धरित्रीमद योग होताहै उक्त योगमें यात्रा करनेसे सागरपर्य्यन्त पृथिवी वशमे होजातीहै ॥ १६ ॥

अथ किंवसुयोगः ।

केन्द्रोपगतेन गुरुणा वीक्षिते त्र्यायचतुर्थगे सिते ।
पापैरनवाष्टसप्तमगैर्वसु किं तन्न यदाप्नुयाद्गतः ॥ १७ ॥ (×)

अर्थ–यात्रासमय लग्नसे तीसरे, ग्यारहवें वा चौथे स्थानमें शुक्र स्थित होय केन्द्र स्थानमें स्थित बृहस्पति शुक्रको देखता होय, और नववें आठवें और सातवें स्थानमें पापग्रह न होय तो किम्वसुयोग होताहै, इस योगमें यात्रा करनेसे यात्रीको ऐसा कौनसाधन है कि जिसकी प्राप्ति नहीं होती है अर्थात् सब धनकी प्राप्ति होतीहै ॥ १७ ॥

अथ विनासमरयोगः ।

शशिनि चतुर्थगृहं समुपगते बुधसहितेऽस्तगते भृगोः पुत्रे ॥
गमनमवाप्य पतिर्म्मनुजानां जयति रिपून्समरेण विनैव ॥ १८ ॥ (क)

अर्थ–यात्रासमय यदि बुधके साथ चन्द्रमा लग्नके चौथे स्थानमें होय शुक्र अस्त होय तो विना समर योग होताहै, उक्तयोगमे यात्राकरनेसे राजा विनाही युद्ध किए शत्रुओंसे जयप्राप्ति करताहै ॥ १८ ॥

अथ विनारणयोगः ।

सितेन्दुजौ चतुर्थगौ निशाकरश्च सप्तमे ।
यदा तदा गतो नृपः प्रशास्त्यरीन्विनारणाम् ॥ १९ ॥ (ख)

अर्थ–यात्रासमय लग्नसे यदि चौथे स्थानमे शुक्र और चन्द्रमा सातवें स्थानमे स्थित होय तो विनारणयोग होताहै, इस योगमे यात्रा करनेसे राजा विना युद्धसे शत्रुओंको पराजय करताहै ॥ १९

(×) किंवसुयोगमाह केन्द्रेति लग्नात्त्र्यायचतुर्थस्थे शुक्रे लग्नान्नवमसप्तमाष्टमस्थानरहितैः पापैर्गतः पुमान्यन्नाप्नुयात्तत्किं वसु धनं जगत्यस्ति। नवमाष्टमसप्तस्वेकोऽपि पापो यदि विद्यते तदा योगभङ्ग इत्यर्थः।

(क) विनासमर योगमाह शशिनीति। चन्द्रे लग्नाच्चतुर्थस्थान प्राप्ते बुधयुक्ते शुक्रेऽस्तगते सप्तमस्थे गमनं प्राप्य मनुजानां पतिर्भूपः समरेण युद्धेन विनैव रिपु जयति । अस्मिन्योगे रिपुजय कर्तुरेवाधिकारः नान्यस्य धनाद्याकाङ्क्षिण इति ।

(ख) विनारणयोगमाह सितेति। चतुर्थस्थौ शुक्रबुधौ सप्तमे च चन्द्रो यदा स्यात्तदा गतो नृपः शत्रून् प्रशास्ति अत्रापि रिपुजेतुरेवाधिकारो नान्यस्येति ।

अथ अरिप्रध्वंसयोगः।

एकान्तरर्क्षे भृगुजात्कुजाद्वा सौम्ये स्थिते सूर्य्यसुताद्गुरोर्वा ॥
प्रध्वंसतेरिस्त्वचिराद्गतस्य वेशाधिके भृत्य इवेश्वरस्य ॥ २० ॥(ग)

अर्थ–यात्रासमय शुक्र वा मङ्गलसे तीसरे स्थानमे शुभग्रह होय बुध और शनिसे तीसरे स्थानमे बृहस्पतिके होनेसे अरिप्रध्वंसनामक योग होताहै, इसमें यात्रा करनेसे यात्रीके शत्रुओंका शीघ्रही नाश होताहै ॥ २० ॥

शशिनरेन्द्रयोगः।

गुरुरुदये रिपुराशिगतोऽर्को यदि निधने न च शीतमयूखः ॥
भवति गतोऽत्र शशीव नरेन्द्रो रिपुवनिताननतामरसानाम् ॥ २१ ॥(घ)

अर्थ–यात्रासमय लग्नमें बृहस्पति और लग्नके छठे स्थानमे सूर्य्य होय और आठवे स्थानमे चन्द्रमा न होय तो शशिनरेन्द्र योग होताहै, उक्त योगमे यात्रा करनेसे राजाके शत्रुओंकी स्त्रियोंका मुख संकुचित होजाताहै ॥ २१ ॥

अथ शिलाप्रतरणयोगः।

लग्नारिकर्म्महिबुकेषु शुभेक्षिते ज्ञे
द्यूनान्त्यलग्नरहितेष्वशुभग्रहेषु ॥
यातुर्भयं न भवति प्रतरत्समुद्रं
यद्यश्मनापि किमुतारिसमागमेषु ॥ २२ ॥ (ङ)

अर्थ–यात्रासमय यदि लग्नमे वा लग्नके छठे, दशमें वा चौथे स्थानमें बुधपर शुभग्रहोंकी दृष्टि होय और सातवें, बारहवें और लग्नमे पापग्रह स्थित

(ग) अरिप्रध्वंसयोगमाह एकेति। शुक्राद्वा कुजाद्वा एकान्तरर्क्षे तृतीयगृहे सौम्येऽपापबुधे सूर्य्यसुताद् गुरौ च स्थिते सति गतस्य राज्ञोऽचिरादेवारिः प्रध्वंसते नश्यति यथेश्वरस्य सेव्यस्य वेशाधिकोऽतिरेकवेशो भृत्योऽचिरान्नश्यति। अत्र तु रिपुजेतुरेवाधिकारो न लाभायाकाङ्क्षिण इति। एवमुत्तरत्रापि विशेषदर्शनाद्बोद्धव्यमिति।

(घ) शशिनरेन्द्रयोगमाह गुरुरिति। उदये लग्ने गुरुः षष्ठे स्थितोऽर्को यदि स्यादस्मिन् योगे निधनेऽष्टमे चन्द्रो यदि न स्यादष्टमस्थे तु चन्द्रे योगभङ्ग एवेति। अत्र योगे गतो नरेन्द्रो रिपुवनिताननतामरसानां शत्रुस्त्रीमुखपद्मानां शशीव सङ्कोचको भवति। पङ्केरुहं तामरसमित्यमरः। रिपुस्त्रीणां पद्मत्वेन निरूपितस्य मुखस्य शोकादिना म्लानिकारकत्वेन राजा चन्द्रेणोपमीयत इति।

(ङ) शिलाप्रतरणयोगमाह लग्नेति। लग्नषष्ठचतुर्थदशमेषु शुभदृष्टे ज्ञे बुधे सति पापेषु सप्तमद्वादशलग्नरहितेषु सत्सु अश्मना प्रस्तरेणापि यदि समुद्रं प्रतरेत्तथापि यातुर्भयं न भवेत् किमुत शत्रुसमागमेषु भयमिति।

न होंय तब शिलाप्रतरण योग होताहै उक्त योगमें यात्राकरनेसे यात्री पाषाण (पत्थर) लेकरभी समुद्रमें तैर सक्ताहै तब शत्रुके निकटसे उसे क्या भय होसक्ताहै ? ॥ २२ ॥

अथ अरिशलभयोगः

मूर्तिवित्तसहजेषु संस्थिताः शुक्रचन्द्रसुततिग्मरश्मयः ।
यस्य यानसमये रणानले तस्य यान्ति शलभा इवारयः ॥२३॥(च)

अर्थ–यात्रासमयलग्नमें शुक्र, लग्नके दूसरे स्थानमे और बुध लग्नके तीसरे स्थानमें सूर्यके होनेसे अरिशलभयोग होताहै, इसमें यात्राकरनेसे यात्रीके शत्रुगण रणमें पतङ्गकी समान नष्ट होजातेहैं ॥ २३ ॥

अथ अरिवैनतेययोगः ।

शुक्रवाक्पतिबुधैर्धनसंस्थैः सप्तमे शशिनि लग्नगतेऽर्के ।
नृपनिर्गतो पतिरेति कृतार्थो वैनतेयवदरीन्विनिगृह्य ॥ २४॥ (छ)

अर्थ--यात्रासमयमें शुक्र, बृहस्पति और बुध यदि लग्नके दूसरे स्थानमे स्थित होंय और सातवें स्थानमें चन्द्रमा और लग्नमें सूर्य होय तो अरिवैनतेयनामक योग होताहै इस योगमे यात्रा करनेसे राजा गरुडकी समान अपने शत्रुओंका नाश करके समरमें कृतार्थ होताहै ॥ २४ ॥

अथ अरियोषाभरणयोगः ।

त्रिषडन्त्यनवान्त्येष्वबलः शशाङ्कश्चान्द्रिर्बली यस्य गुरुश्च केन्द्रे ।
तस्यारियोषाभरणैः प्रियाणि प्रियाः प्रियाणां जनयन्ति सैन्ये ॥२५॥(ज)

अर्थ–यात्रासमयमें यदि बलहीन चन्द्रमा तीसरे, छठे, नवमें वा बारहवे स्थानमें होय और बलवान् बुध और बृहस्पति केन्द्रस्थानमें स्थित होय तो अरियोषाभरणयोग होताहै, इसमे यात्रा करनेसे उस राजाके बान्धव गणोंकी स्त्रियें शत्रुओंकी स्त्रियोंके आभूषणोंसे अपने प्रियाओंकी प्रीतिको उत्पन्न करतेहैं ॥ २५ ॥

(च) अरिशलभयोगमाह मूर्त्तिरिति । शुक्रबुधसूर्याःयथासंख्यं लग्नद्वितीयतृतीयेषु स्थिता यस्य यानकाले स्युस्तस्यारयो रणानले युद्धाग्नौ शलभा इव यान्ति नश्यन्तीत्यर्थः ।

(छ) अरिवैनतेययोगमाह–शुक्रेतिस्पष्टार्थम् ।

(ज) अरियोषाभरणयोगमाह त्रिषडिति । यस्य पुंसो यानकाले बलहीनश्चन्द्रस्त्रिषण्णवान्त्येषु स्थितः चान्द्रिर्बुधो बली गुरुश्च बली केन्द्रस्थितावुभौ स्यातां तस्य सैन्ये प्रियाः प्रियजना बान्धवाः शत्रुवनितालङ्कारैः प्रियाणां स्वपत्नीनां प्रियाणि प्रीतीर्जनयन्ति तत्तद्योऽपि शत्रुजये समर्था भवन्तीति तात्पर्यार्थः ।

अथ यात्रायां राजयोगः।

वर्गोत्तमगते चन्द्रे लग्ने वा चन्द्रवर्जितैः।
चतुराद्यैर्ग्रहैर्दृष्टे नृपा द्वाविंशतिः स्मृताः॥ २६॥

अर्थ–अब यात्रामे राजयोग कहतेहैं, यात्रीकी जन्मराशि वा जन्मलग्न यदि वर्गोत्तमगत होय और चन्द्रमाको छोडकर चारों ग्रहोंकी यदि उसमे दृष्टि होय तो बाईस (२२) प्रकारसे राजयोग होताहै॥ २६॥

अथ यात्रायां राजयोगफलम्।

यात्रिणां तु नृपयोगगतानां प्रत्यहं भवति राज्यविवृद्धिः।
वातघूर्णितमिवार्णवयानं वैरिणां बलमुपैति विनाशम्॥ २७॥

अर्थ–जो राजा राजयोगमें यात्रा करताहै उसका राज्य प्रतिदिन बढता जाताहै और विशेषकरके समुद्रमें नौका जिसप्रकार वायुसे घूर्णित होकर नष्ट होजातीहै तिसीप्रकार उस राजाके शत्रुओंका सैन्य नष्ट होजाताहै॥ २७॥

अथ धनवृद्धियोगः।

लाभार्थलग्नेषु शुभो रविश्चेद्यस्यारसौरौ सहजेऽरिभे च॥
तस्यार्थकोशः समुपैति वृद्धिं लाभो यथा प्रत्यहमर्थवृद्ध्या॥२८॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे।

(झ) अथ राजयोगमाह वर्गोत्तमेति। प्रतिराशौ द्वाविंशतिप्रमाणेन लग्नचन्द्रवशादष्टाविंशत्यधिकानि पञ्चशतानि राजयोगाःस्युः। स्थानान्तरे व्याख्यातोऽयं श्लोक इति। बृहज्जातके राजयोगान्तरमुक्तम्। यथा "कर्किणिलग्ने तत्स्थे जीवे चन्द्रसितज्ञैरेष प्राप्तः। मेषगतेऽर्के जातं विद्याद्विक्रमयुक्तं भूमेर्नाथम्। वृषे सेन्दौ लग्ने सवितृगुरुतीक्ष्णांशुतनयैः सुहृज्जायार्थस्थैर्भवति नियमान्मानवपतिः। मृगे मन्दे लग्ने सहजरिपुधर्म्मव्ययगतैः शशाङ्काद्यैः ख्यातः पृथुगुणयशाः पुंगणपतिः"। एवमन्ये च योगास्तत्रैव ज्ञेया इति मेषवृषादिद्वादशराशीनां स्वीयनवांशस्थे लग्ने चन्द्रे च यत्र कुत्रापि स्थिते चन्द्रवर्जितैश्चतुरादिभिर्ग्रहैर्वीक्षिते। अयमर्थः। द्वादशराशिषु लग्नस्य द्वादश एव स्वीयनवांशास्तत्र कुम्भं वर्जयित्वा एकादशैव स्थिताः। एवं चन्द्रस्यापि वृश्चिकवर्ज्जनात् एकादशैव स्थानानि स्युरिति द्वाविंशतिः कुम्भलग्ने दोषदर्शनात्त्यागः। यथा "न कुम्भ लग्ने शुभमाह सत्यो न भागभेदान्यवना वदन्ति" वृश्चिकराशिश्चन्द्रस्यनीचगृहमिति चन्द्रपक्षे वृश्चिकवर्ज्जनम्। "सर्वैर्गगनभ्रमणैर्दृष्टे लग्ने भवति महीपालः। बलिभिः शुभैः सर्वविगतभयो दीर्घजीवी च" इति जातकोक्तराजयोगः। इति ज्योतिस्तत्त्वस्मात्तेनाभिहितम्॥

(ञ) राजयोगगमने फलमाह–जातकेति बृहज्जातकादौ जातके जन्मनि ये राजयोगा उक्तास्तत्र गतानां जनानां प्रत्यहं राज्यवृद्धिः स्यात् शत्रुबलञ्च विनाशं प्राप्नोति यथा वायुना घूर्णितं समुद्रमध्यस्थं यानं नौका नाशमेति तद्वदिति।

अर्थ–ज्योतिषतत्वमें लिखाहै कि, यात्रासमयमें लग्न ग्यारहवें वा दूसरे स्थानमें अथवा लग्नमे यदि शुभ सूर्य्य होय और मंगल और शनि तीसरे वा छठे स्थानमे होय तो धनवृद्धि योग होताहै अर्थात् उक्तयोगमें यात्रा करनेसे जिसप्रकार लोभी धनकी लालसाको बढाताहै उसीप्रकार यात्रीका धन प्रतिदिन बढताहै ॥ २८ ॥

अथ फलातियोगः ।

लग्ने गुरुर्बुधभृगू हिबुकात्मजस्थौ
षष्ठौ कुजार्कतनयौ दिनकृत्तृतीयः ॥
चन्द्रस्य यस्य दशमो भवति प्रयातु–
स्तस्याभिवाञ्छितफलातिरलं नृपस्य ॥ २९ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ–ज्योतिषतत्वमें लिखाहै कि, यात्रासमय लग्नमें बृहस्पति चौथे और पांचवें स्थानमें बुध और शुक्र छठे स्थानमे मङ्गल और शनि तीसरे स्थानमें और सूर्य्य दशवें स्थानमे चन्द्रमा होनेसे इस समयमे जो राजा यात्रा करे तो उसको वाञ्छित फलप्राप्ति होतीहै ॥ २९ ॥

अथ यात्राजनित्रीयोगः ।

गुरौ विलग्ने यदि वा शशाङ्के षष्ठे रवौ कर्मगतेऽर्कपुत्रे ।
सितज्ञयोर्बन्धुसुतस्थयोश्च यात्राजनित्रीव सुखानि धत्ते ॥ ३० ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ–जन्मसमय बृहस्पति वा चन्द्रमा यदि लग्नमे होय और सूर्य्य छठे स्थानमें, शनि दशवें स्थानमें, शुक्र चौथे स्थानमें और बुध पांचवें स्थानमें स्थित होय तो उस यात्रामें यात्रीको माताकी समान सुख प्राप्तहोता है ॥ ३० ॥

अथ योगोऽतियोगो योगातियोगश्च ।

एकेन वा बुधबृहस्पतिभार्गवाणां
योगो भवेन्नवम पञ्चमकण्टकेषु ॥
द्वाभ्यां वदन्ति मुनयोऽप्यतियोगमेव
योगातियोगमपरे त्रिभिरुद्दिशन्ति ॥ ३१ ॥

इतिज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ–ज्योतिषतत्वमें लिखाहै कि, यात्रासमय लग्नमें वा लग्नके नवम, पांचमे चौथे सातवें अथवा दशवें स्थानमें बुध, बृहस्पति और शुक्र इन तीन ग्रहोंमेसे जो कोई ग्रह होय तो उसको योग कहतेहैं दो ग्रह होनेसे मुनिगण उसको

आतियोग कहतेहैं और तीनों ग्रह उपरोक्त स्थानमें होनेसे उसको योगातियो-ग कहते हैं ॥ ३१ ॥

अथ योगयात्रादीनां व्यवस्था ।

महीभृतां योगवशात्फलोदयो द्विजन्मनामृक्षगुणैश्च जायते ।
शतन्धुरादेः शकुनिप्रभावतो जनस्य शेषस्य मुहूर्त्तशक्तितः॥३२॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ–अब योगयात्रादिकी व्यवस्था कहतेहैं–ज्योतिषतत्त्वमें लिखाहै कि; राजा-के योगबलाधीन यात्राका फल होताहै, द्विजातिगणके नक्षत्रबलाधीन फल होताहै, शत-न्धुरादिके शकुनिसे यात्राका शुभाशुभ फल होताहै और अन्यान्य मनुष्यके मुहूर्त्त-के अधीन यात्राका फल होताहै ॥ ३२ ॥

अथ उषादियोगे यात्राकथनम् ।

तिथ्यादिषु निषिद्धेषु चन्द्रताराविलोमतः । (×)
उषां गोधूलियोगं वा स्वीकृत्य गमनञ्चरेत् ॥ ३३ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ–ज्योतिषतत्त्वमे लिखा है कि, तिथिनक्षत्रादिविरुद्ध और चन्द्रताराके प्रतिकूल होनेसे यदि स्थानान्तरमें जानेकी अत्यन्त आवश्यकता होय तो उषा वा गोधूलि-योगको स्वीकार करके यात्रा करे कोई २ आचार्य कहते हैं कि, चन्द्रतारा गोचरमें शुद्ध होनेसेही उषा और गोधूलियोगमे यात्रा करनी चाहिये ॥ ३३ ॥

दिग्विशेषे उषादिनिन्दा ।

प्राच्यामुषां प्रतीच्याञ्च गोधूलिं वर्जयेन्नृप ।
दक्षिणे चाभिजिच्चैव उत्तरे च निशां तथा ॥ ३४ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ–पूर्वदिशाकी यात्रा उषामे न करनी चाहिये इसीप्रकार; पश्चिमकी यात्रा गोधूलिमे न करे दक्षिणकी यात्रा अभिजिन्मुहूर्त्तमें न करे और उत्तरकी यात्रा रात्रिमें न करनी चाहिये इसप्रकार ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है ॥ ३४ ॥

(×) अनुलोमतः विशुद्धितो वा पाठो दृश्यते ।

अपिच ।

लग्नशुद्धिर्यदा नास्ति प्राप्तकालोऽतिवर्त्तते ।
अविशेषेण वर्णानां तदा गोधूलिरिष्यते ॥ ३५ ॥

इति व्यासः ।

अर्थ–व्यासजीने कहा है कि, स्थानान्तरमे जाना अवश्यक हो प्रशस्त वार औ तिथ्यादि न होय और लग्नभी शुद्ध न होय तो इस प्रकारकी अवस्थामें सभी वर्णों गोधूलिमें यात्रा करनी चाहिये ॥ ३५ ॥

उषा करोति कल्याणं यदि पूर्वं न गच्छति ।
वारुण्यां धूलियोगे तु न गन्तव्यं कदाचन ॥ ३६ ॥

अर्थ–पूर्वदिशाको छोडकर अन्य दिशामें यात्रा करनेसे उषा मङ्गळकारक होती है और गोधूलिमें पश्चिमदिशाकी यात्रा कभी न करना चाहिये ॥ ३६ ॥

अथ उषाकालकथनम् ।

आरक्तसन्ध्यं रजनीविरामं वदन्त्युषायोगमिह प्रवीणाः ॥
आद्दु प्रयातुःसकलार्थसिद्धिः संलक्ष्यते हस्ततलस्थितेव॥३७॥ (ख)

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

(ख) उषायोगमाहआरक्तेति । उषायोग इति कृत्वा रजनीविरामं रात्रिक्षयकालं वदन्ति ज्योतिषप्रवीणाः । आरक्ता ईषद्रक्तवर्णा सन्ध्या यत्र रात्रिशेषे इति । तत्रोषायोगे यातुर्हस्तस्थेव सकलकार्य्यसिद्धिर्लक्ष्यते । तथाच "प्रभ्रष्टद्युतितारका स्फुटतटी प्राची भवेन्निर्मला ईषद्रक्त विलोहिता च पततां नीडस्थितानां रविः । नो वारं न तिथि न योगकरणं चन्द्रश्च नापेक्षते हत्वा दोषसहस्रकं प्रतिदिनं चोषा करोत्युन्नतिम् " अत्र च रविगुरुमंगलवारस्योषातीव प्रशस्ता इति । अत्र च पूर्वगमने नोषा विहिता लालाटिकत्वात् । तथाच " उषा करोति कल्याण यदि पूर्वं न गच्छति " इति । अत्र च सर्वेषामविकारःसमान्येनोक्तत्वात् एवं किं चसुयोगादिति बोद्धव्यमिति । तथा नास्मिन् ग्रहा इत्यदिना गोधूलियोगे यात्रा प्रशस्तोक्ता । गोधूलियोगलक्षणञ्च पूर्वस्मिन्नुक्तमिति । तथा "केन्द्रे गुरुशुक्रौ वलिनौ सर्वदोषक्षयकरौ" । यथा "किं कुर्वन्ति ग्रहाः सर्वे यस्य केन्द्रे बृहस्पतिः । मत्तवारणसवातः सिंहेनैकेन हन्यते लग्नदोषाश्च ये केचिद्ग्रह दोषास्तथापरे । ते सर्वे विलयं यान्ति लग्ने गुरुभृगू यदा " । तथा योगमालायाम् –"उदये गुरुसौम्यभार्गवे. सहजेऽर्कार्कि कुजैश्च गच्छतः । न भवन्त्यरयो रणे स्थिता. क्षितानामिव वित्तसञ्चयाः । येषा गमे नवपञ्चमकण्टकस्था. सौम्यास्तृतीयरिपुलाभगताश्च पापा. । आयान्ति ते स्वभवनानि पुनः कृतार्था दत्ता द्विजातिषु पुरा विधिवद्यथार्था. " ॥ इत्यादि योगा उक्तास्ते ग्रन्थगौरवादुपेक्षिता इति । एवं केचिदपि दुरागमने प्रकारान्तरं वदन्ति । यथा "चन्द्रं वृषादौ नानीयान्मेषादावुदयं तथा । तिथिना सह संयोज्य त्रिनिर्भागं समाहरेत् । शून्येऽन्त्युदये

अर्थ-ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, रात्रिके शेषमें पूर्वदिशा (ईषत् रक्तवर्णा) कुछेक लालवर्ण होनेसे पण्डितगण इसकालकोही उषा कहते हैं इससमय यात्रा करनेसे यात्रीके सब कार्य्य करतलगत होजाते हैं ॥ ३७ ॥

अथाभिजित्कथनम् ।

अष्टमे दिवसस्यार्द्धे त्वभिजित्संज्ञकः क्षणः ।
स ब्रह्मणो वरान्नित्यं सर्वकामफलप्रदः ॥ ३८ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-ज्योतिषतत्त्वमे लिखा है कि , दिनके आठवे मुहूर्त्तका नाम अभिजित् है यह अभिजित् मुहूर्त्त ब्रह्माके वरसे सभी कार्योंमें शुभफल प्रदान करता है ॥ ३८ ॥

अन्यच्च ।

दिनमध्यगते सूर्ये मुहूर्ते ह्यभिजित् (१) प्रभुः ।
चक्रमादाय गोविन्दः सर्वान्दोषान्निकृन्तति ॥ ३९ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ज्योतिस्तत्त्वे च ।

अर्थ-ज्योतिःसारसंग्रहमे और ज्योतिषतत्त्वमे लिखा है कि, सूर्य्यदेव पृथिवीके मध्यस्थलमें जानेसे अर्थात् आठवे मुहूर्त्तका नाम अभिजित है इस समयमे स्वयं गोविन्द भगवान् चक्रको लेकर सब दोषोंका नाश करते हैं ॥ ३९ ॥

अथाभिजिद्गमनकथनम् ।

अभिजिन्न बुधे शस्तं याम्यान्तु गमने तथा ।
अन्यदिग्गमने शस्तं सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥ ४० ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-ज्योतिषतत्त्वमे लिखा है कि, अभिजित् मुहूर्त्त बुधवारमे प्रशस्त नहीं है दक्षिणकी यात्रा अभिजित मुहूर्त्तमें न करना चाहिये, अन्य दिशाओंकी यात्रा अभिजित्समयमे करनेसे सभी कार्य्य सिद्ध होते हैं ॥ ४० ॥

अथैकार्गलयोगः ।

वृषादौ चन्द्रमा ज्ञेयो मेषादौ लग्नमेव हि ।

-शनिरेकाह्ने विजयी भवेत्' इति । अधुना राज्ञो यात्रादिवसात्पूर्वं सप्ताहादिनत्रये प्रथमं प्रथमबलिदानं तत्परं दिनत्रयं विजयस्नानं तत्परं सप्तमादिने ग्रहयागस्ततपरं यात्रेति। तथा बृहद्यात्रयाम्-"यात्रा प्राक्सप्ताहाद्बलिकं साहाय्यकं त्र्यह पूर्वम् । त्र्यहमथ विजयस्नानं ग्रहयोगः सप्तमे दिवसे " इति ।

(१) "सर्वेषां वर्णानामभिजित्संज्ञके मुहूर्ते. स्यात्' इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

परियोज्य समं तिथ्या त्रिभिर्भागं हरेत्ततः ।
शून्ये मृत्युर्द्वये हानिरेकाङ्के विजयी भवेत् ॥ ४१ ॥ (२)

इति दैवज्ञवल्लभायाम् ।

अर्थ—अब एकाङ्गी योग कहते हैं, यात्रासमयमें वृषादिको गिननेसे राशिकी जितनी संख्या हो और मेषादिसे गिनकर जो लग्नकी संख्या होय इन दोनों संख्याओंको उस समयकी तिथिकी अङ्कके साथ मिलाकर तीनसे भाग देवै शून्य बचनेसे यात्रीकी मृत्यु होतीहै दो वचनेसे हानि होती है और एक वचनेसे जयप्राप्ति होती है॥४१॥

अथ सर्वाङ्गी योगः ।

दिनं तिथिं वारयुक्तं स्वनक्षत्राङ्कयोजितम् ।
सप्तभिश्च हरेद्भागं शेषे यात्रां विनिर्दिशेत् ॥ ४२ ॥

इति भीमपराक्रमे ।

अर्थ—अब सर्वाङ्गी योग कहते हैं—भीमपराक्रममें लिखा है कि, महीनेके जिस दिनमें यात्रा करनेकी इच्छा होय उस दिनकी संख्याङ्क, तिथिके अङ्क, वारके अङ्क और जन्मसमयके नक्षत्राङ्कको मिलाकर सातसे भाग देवै भागके शेषाङ्कको देखकर यात्रा करनी चाहिये फल नीचे लिखते हैं ॥ ४२ ॥

फलम् ।

प्रथमे शोभना यात्रा द्वितीये लाभकृद्भवेत् ।
तृतीये वित्तलाभः स्याच्चतुर्थे सिद्धिरुत्तमा ॥ ४३ ॥
पञ्चमे मार्गविघ्नः स्यात्षष्ठे निधनमेव च ।
उक्तं प्रत्ययमुनिना शून्ये श्रीः सर्वतः सुखी ॥ ४४ ॥

इति भीमपराक्रमे ।

अर्थ—भीमपराक्रममें लिखा है कि, पूर्वोक्तअङ्क एक वचनेसे यात्रा शुभ होती है, इसी प्रकार दो वचनेसे यात्रा लाभदायिका होती है, तीन वचनेसे धनप्राप्ति होती है, चार वचनेसे कार्य्यसिद्धि होती है, पांच वचनेसे मार्गमें विघ्न उपस्थित होते हैं, छै वचनेसे मृत्यु होती है और शेषमें शून्यपडनेसे अर्थात् (कुछ न बचनेसे) यात्रामें सर्वप्रकारके सुख और लक्ष्मीकी वृद्धि होती है ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

---

(२) "वृषादौ चन्द्रमा ज्ञेयो मेषादावुदयस्तथा । तिथिना सह योगेन त्रिभिर्भागमाहरेत् । शून्ये मृत्युर्द्वये हानिरेकाङ्के विजयी भवेत् "

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अथ घातचन्द्रमावर्णनम् ।

चन्द्रभूतग्रहयमरसदिग्वह्निसागराः ।
वेदसिद्धिशिवादित्यौघातचन्द्रः प्रकीर्तितः ॥ ४५ ॥

अर्थ–मेषराशिवाले मनुष्यको जन्मचन्द्र घातक होता है इसीप्रकार वृषराशिको पांचवा चन्द्रमा, मिथुन राशिको नवमा चन्द्रमा, कर्कराशिको दूसरा चन्द्रमा, सिंहराशिको छठा चन्द्रमा, कन्या राशिको दशवाँ चन्द्रमा, तुलाराशिको तीसरा चन्द्रमा, वृश्चिक राशिको सातवाँ चन्द्रमा, धनराशिको चौथा चन्द्रमा, मकरराशिको आठवाँ चन्द्रमा, कुम्भराशिको ग्यारहवाँ चन्द्रमा और मीन राशिवाले मनुष्यको बारहवाँ चन्द्रमा घातक होता है ॥ ४५ ॥

फलम् ।

घातचन्द्रे कृता यात्रा कृतोद्वाहादिमङ्गलम् ।
दुःखाय मृत्यवे वा स्याद्गर्गाचार्येण भाषितम् ॥ ४६ ॥

अर्थ–घातक चन्द्रमामें जो मनुष्य यात्रा वा विवाहादि माङ्गलिक कर्म्म करता है उसको क्लेश भोगना पडता है वा मृत्यु होती है ॥ ४६ ॥

अथाकालवृष्ट्यादौ यात्रानिषेधः ।

पौषादिचतुरो मासान्वृष्टिं दृष्ट्वा न संव्रजेत् ।
यस्तु संप्रस्थितो यात्रां ब्राह्मणानवमन्यते ॥ ४७ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ–ज्योतिषतत्वमे लिखा है कि, पौषसे चैत्रतक वृष्टि होनेसे यात्रा न करनी चाहिये यदि जानाचाहै तो ब्राह्मणोकी आज्ञासे यात्रा करे ॥ ४७ ॥

अथ यात्रादिग्गमनाविधिः ।

दिगीशं हृदये ध्यात्वा गन्तव्याशामुखस्थितः ।
अन्तः समीरणे देही प्रवेशे समुपस्थिते ॥
स्वस्तीति दक्षिणं पादमासनादवतारयेत् ॥ ४८ ॥

इति भागुरि. ।

अर्थ–अब यात्रा करनेकी रीति कहते है– जिस दिशामे यात्रा करनी हो उस दिशाके मालिक देवताका हृदयमे ध्यान करके उसी दिशामे अपना मुखकरके शरीरमे स्थित समीरण देहको प्रवेशकर जाने समय "स्वस्ति" इस प्रकारका शब्द उच्चारण करके आसनसे दहना पैर आगे रखकर यात्रा करनी चाहिये ॥ ४८ ॥

अपिच ।

व्रजेद्दिगीशं हृदये निधाय यथेन्द्रमैन्द्र्यामपराञ्च तद्वत् ॥
सुशुक्लमाल्याम्बरभृन्नरेन्द्रो विसर्जयेद्दक्षिणपादमादौ ॥४९॥ (×)

इति राजमार्त्तण्डे ।

अर्थ–राजमार्त्तण्डमें लिखाहै कि, जिस दिशामे यात्रा करै उस दिशाके स्वामी देवताका हृदयमें ध्यान करके सफेद वस्त्रोंको पहनकर और सफेद फूलोंकी मालाको अपने गलेमें धारण कर राजा पहिले अपने दहिने पैरको आगे रखकर यात्रा करै॥ ४९॥

अथ यात्राविधि कथनम् ।

गृहाद्गृहान्तरं गर्गः सीम्नः सीमान्तरं भृगुः ।
शरक्षेपाद्भरद्वाजो वसिष्ठो नगराद्बहिः ॥ ५० ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ–यात्रा करनेके बाद यात्रीकी स्थिति कहते हैं, गर्गमुनिने कहाहै कि, यात्राकरके एक घरसे दूसरे घरम रह सक्ताहै–भृगु मुनिने कहाहै कि, एक सीमासे दूसरी सीमामें रहना चाहिये, भरद्वाज मुनिके मतसे एक तीरको चलावै जितनी दूर तक वह तीर जाय उसके बहिर्देशमें यात्रा करके रहना चाहिये और वसिष्ठ मुनिने कहाहै कि, यात्रा करके एक ग्रामको त्यागकर दूसरे ग्राममें वास करना चाहिये ॥ ५० ॥

अथ यात्रानन्तरं निषिद्धानि ।

संत्यजेद्भोजनागारं तथा शयनमन्दिरम् ।
दूरस्थं जलमध्यस्थं शयानं व्याधिपीडितम् ॥
गच्छन्तमपि यानस्थं ब्राह्मणं नाभिवादयेत् ॥ ५१ ॥

इति वराहः ।

अर्थ–वराह मुनिने कहाहै कि, यात्राके बाद यदि घरमें रहना होय तो भोजनके मकानको और शयनके घरको छोडदेवे अर्थात् यात्रा करनेके बाद उक्त दोनो घरमें न जाना चाहिये अन्यान्य घरमें रहै यात्राके उपरान्त दूरस्थित, जलस्थ, शयान, रोग-युक्त अथवा यानस्थ ब्राह्मणको प्रणाम न करै ॥ ५१ ॥

(+) यात्राविधिमाह–व्रजेदिति । इन्द्रादिदिगीश्वरं हृदये निवेश्य व्रजेत् । दिक्पतिमाह–यथेति । यथा ऐन्द्र्यां पूर्वस्यां गमने इन्द्रं हृदये निवेश्येति । एवमाग्नेय्यादिषु अपरानप्यग्न्यादीन् । दिगीशान् तद्वत् हृदये निवेश्येत्यर्थः । अतिशुक्लमाल्यवस्त्रधरो राजा प्रथम दक्षिण पाद विसर्जयेत् दद्यात् ।

बृहद्यात्रायाम् ।

प्राच्यामहानि मुनयः प्रवदन्ति सप्त
याम्यामतीव शुभदानि दिनानि पञ्च ॥
त्रीण्येव पश्चिमदिशि क्षितिनायकानां
प्रस्थानकेषु दिवसत्रयमुत्तरस्याम् ॥ ५२ ॥ (+)

इति राजमार्त्तण्डे ।

अर्थ-यात्रा करनेके बाद राजाको कितने दिन रहकर किस दिशामें जाना चाहिये अब उसको कहते हैं-राजमार्त्तण्डमे लिखाहै कि, यात्राके उपरान्त राजाको सात दिनके मध्यमे पूर्वदिशामें जाना चाहिये,इसीप्रकार दक्षिणदिशामें पांच दिनके बाद यात्रा करनी चाहिये, पश्चिमदिशामें तीन दिनके बाद यात्रा करै और उत्तर दिशामें तीन दिनके बाद यात्रा करनी चाहिये इसप्रकार मुनियोंने कहा है ॥ ५२ ॥

अपिच ।

यात्रां त्रिपञ्चसप्ताहात्पुनर्भद्रेण योजयेत् ।
वांच्छितार्थफलावाप्तौ (+) यात्रा परिसमाप्यते ॥५३॥ (क)

इति भैरवाचार्य्यः ।

(+) एतच्चायुक्तमित्याहुर्होराशास्त्रविदो बुधाः ॥

राजमार्तण्डोक्त "प्राच्यामहानि मुनयः प्रवदन्ति" इत्यादि वचनकी व्यवस्थाको दूषित कहकर होराशास्त्रवित् पण्डित गणोंने निर्देश करीहै ।

(×) कैश्चिदिष्टफलावाप्तौ इति पाठान्तरम् ।

(क) यात्रा कृत्वा स्थितस्य राज्ञः पुनः प्रस्थानमाह-यात्रामिति । एकस्थाने त्रिपञ्चसप्ताहं स्थित्वा तत्परं तस्मात्स्थानात् भद्रेण शुभलग्नेन पुनर्यात्रा योजयेदिति भैरवाचार्य्यो वदति । यदर्थं यात्रा कृता तत्फलप्राप्तावेव यात्रा समाप्यते सम्पूर्णा तु स्यात् न तु पुनर्भद्रेण योजयेत् । यथा बृहद्यात्रायाम् । 'एकत्राप्युषितस्यात्रिगौतमच्यवना जगुः । यात्रां पञ्चत्रिसप्ताहं पुनर्भद्रेण योजयेत् । तच्चायुक्तमिति प्राहुर्होराशास्त्रविदो जनाः । वाञ्छितार्थफलवाप्तौ यात्रा परिसमाप्यते " तथा चात्रि.-" यात्रायां निर्गतो राजा त्र्यहं पञ्चाहमेव च । सप्ताहं वा स्थितो यत्र पुनस्तस्माच्छुभे दिने । शुभे लग्ने च यातव्या यात्रा येनाप्नुयाच्छुभम्" इति । अत्र च नक्षत्रविशेषे कृतयात्रस्य स्थितिनियम उक्तो बृहद्यात्रायाम् । "सौम्ये गत्वा विष्णुरौद्रादितीशे संप्रस्याता बाध्यते शत्रुसंघान् । मैत्रे गत्वा पौरहूतं समृष्य मूले यायाच्छत्रुनाशाय भूपः । हस्ते गत्वा स्वातिचित्रे समृष्य शक्राग्न्याख्ये प्रस्थितो बाध्यतेऽरीन् । तिष्ये पौष्णे वासवे चैकरात्रं सौम्ये स्थित्वा भूतिमाप्नोति यात्रा " अस्यार्थ । मृगशिरसि यात्रा कृत्वार्द्रायां स्थित्वा पुनर्वसौ पुनर्गमनं तथा हस्तायां गत्वा चित्रास्वात्योः स्थित्वा विशाखायां पुनर्गमनं तथा पुष्यरेवतीधनिष्ठासु गत्वैकरात्रं स्वसीम्नि स्थित्वा पुनर्यानम् । एवमन्येष्वप्यूहनीयम् इति ।

अर्थ–यदि कोई मनुष्य यात्रा करनेके बाद तीन दिन वा पांच दिन अथवा सात दिन रहे तो दूसरी बार शुभलग्नादिमें यात्रा करनी चाहिये, किन्तु जबतक मनोरथसिद्धि न होय तबतक यात्राभङ्ग नहीं होताहै इसप्रकार भैरवाचार्य्यने कहाहै ॥५३॥

अन्यच्च ।

जन्मर्क्षे चाष्टमे चन्द्रे वारे भौमशनैश्चरे ।
प्रस्थितेऽपि न गन्तव्यमत्यन्तगर्हिते दिने ॥ ५४ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ--ज्योतिषतत्वमें लिखाहै कि, यात्रा करनेसे भी जन्मनक्षत्रमें, आठवें चन्द्रमामे, मङ्गल, रवि और शनिवारमें औरअत्यन्त दूषित दिनमें न जाना चाहिये॥५४॥

अथ यात्रायां मनःशुद्धिप्रशंसा ।

शुभाशुभानि सर्वाणि निमित्तानि स्युरेकतः ।
एकतस्तु मनो यातुस्तद्विशुद्धं जयावहम् ॥ ५५ ॥ (×)

अर्थ–अब यात्राकर्म्ममें मनःशुद्धिकी प्रशंसा करते हैं–शुभ वा अशुभके निमित्त (तिथिनक्षत्रादि) और मन यात्रामें इन दोनोंके समान होताहै अतएव तिथि नक्षत्रादिके शुभ होनेसे भी यदि मन अप्रसन्न होय तो यात्रा न करनी चाहिये, अतएव मनके प्रसन्न होनेसेही यात्रा शुभ होती है ॥ ५५ ॥

अपिच ।

शुभं वाप्यशुभं वापि तिथियोगादिकञ्च यत् ।
लब्ध्वामनोबलं तत्र प्रयाणं शुभदं स्मृतम् ॥ ५६ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ–ज्योतिःसारसंग्रहमे लिखाहै कि, यात्रामे तिथि, नक्षत्र, वार और योगादि शुभ हो वा अशुभ हो मनका बल ग्रहणकरके यात्रा करनी चाहिये, अर्थात् तिथिनक्षत्रादिकं शुभ होनेसे भी यदि इच्छा न होय तो यात्रा न करनी चाहिये ॥ ५६ ॥

(×) मनःशुद्धिप्रशंसामाह–शुभेति । निमित्तानि फलसूचकानि शुभाशुभानि सर्वाण्येकतः एकस्मिन् पक्षे स्युः एकतोऽन्यस्मिन् पक्षे यातु. केवलं मनः फलदायकं तन्मनो विशुद्धं प्रसन्नं सत् जयावहं स्यात् । यदर्थं यात्रा कृता तदनन्तरं तदर्थं मनःप्रसादो यदि स्यात्तदा शुभम् अप्रसादे त्वशुभमित्यर्थः । तथाच बृहद्यात्रायाम् 'प्रीयते न मनोऽनर्थं नासिद्धावभिनन्दति । तस्मात्समात्मना यातुरनुमेयं सदामनः " इति ।

यात्रासमयेऽशुभदर्शनम् ।

शीर्षं तैलाभिषिक्तं भुजगमभिमुखं वामनं काष्ठभारं
प्रव्राजं छिन्ननासं जटिलनखयुतं मुक्तकेशं च नग्नम् ॥
प्रस्थाने शून्यकुम्भं भयमदकुशलं रोदनं क्रोशनं च
प्रस्थाने प्रस्थितानां यदि च न मरणं कार्यसिद्धिर्न च स्यात् ॥५७॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ-अब यात्रासमयमे अशुभदर्शनादि कहतेहैं-ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखाहै कि, यात्रासमयमें तेल लगायेहुये मनुष्य, सर्प, वामन, काष्ठका बोझा लिये मनुष्य, संन्यासी, नकटा, आदमी, जटिल दीर्घनखयुक्त मुक्तकेश (जिसके शिरके बाल खुलेहों), नग्न (वस्त्रहीन) प्रस्थानमें स्थित शून्यकुम्भादिको देखना और रोना सुनना वा पीछेसे कोई पुकारें तो उससमय यात्राकरनेसे यात्रीकी तो मृत्यु न होय किन्तु कार्य्य कभी भी सिद्ध नहीं होता है ॥ ५७ ॥

अपिच ।

कार्पासौषधिकृष्णधान्यलवणक्लीबास्थितैलं वसा
पङ्काङ्गारगुडाहिचर्म्मशकृतः केशायसव्याधिताः ॥
खर्वोन्मत्तजटाधरंतृणतुषक्षुत्क्षामतक्रारयो
मुण्ड्यभ्यङ्गविमुक्तकेशपतिताः काषायिणश्चाशुभाः ॥ ५८ ॥+

अर्थ-यात्रासमयमे कर्पास, औषधि, तिल, लवण, क्लीब (नपुंसक) अस्थि, तैल, मांस, पङ्क, अङ्गार, गुड, सर्प, चमड़ा, विष्ठा, केश, लोहा, रोगी, बामन, उन्मत, जटाधारी मनुष्य, काष्ठ.तृण, तुषार, भूँखसे कृश (दरिद्री मनुष्य,) तक्र (मट्ठा), शत्रु, शिरको मुडाए हुए मनुष्य, तेललगाए हुए मनुष्य, जिस मनुष्यके शिरके बाल खुले हैं वह मनुष्य. पतित, कषैले वस्त्रोको पहिनेहुए मनुष्य का यदि दैवयोगसे दर्शन होजाय तो उस यात्रामें अमङ्गल होताहै ॥ ५८ ॥

अथ क्षुतनिषेधः ।

सर्वतः क्षुतमशोभनं स्मृतं गोक्षुतं मरणमेव करोति ।
केचिदाहुरफलं बलात्कृतं वृद्धपीनसितबालकृतञ्च ॥ ५९ ॥(×)

अर्थ--सभी कार्य्योंमें छींकसे अमङ्गल होताहै, किन्तु यात्रादि कार्य्यमे गौकी छींक मृत्युजनक होतीहै । किसी २ आचार्य्यने कहाहै कि, जो तुनका नाकमे डाळकर छींके वह छींक, वृद्धकी छींक, रोगीकी छींक और बालककी छींकसे शुभाशुभ कुछभी फल नहीं होताहै ॥ ५९ ॥

अथ क्षुतादिफलम् ।

वित्तं ब्रह्मणि कार्यसिद्धिरतुला शक्रे हुताशे भयं
याम्यामग्निभयं सुरद्विषि कलिर्लाभः समुद्रालये ॥
वायव्यां वरवस्त्रगन्धसलिलं दिव्यांगना चोत्तरे
ऐशान्यां मरणं ध्रुवं निगदितं दिग्लक्षणं खञ्जने ॥ ६० ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—ग्रन्थकारने खञ्जन देखनेका फलाफल मनुष्यकरके ज्येष्ठी (टिकूटिकी) और क्षुतका (छींकका) फल उसी प्रकारसे कहाहै, यथा ऊर्ध्वदिशामें खञ्जनको देखनेसे धन मिलताहै, इसीप्रकार पूर्वदिशामें देखनेसे कार्य्य सिद्ध होताहै, अग्निकोणमे भय, दक्षिणमे अग्निभय, नैर्ऋतमें कलह, पश्चिममे लाभ, वायुकोणमें श्रेष्ठवस्त्र, गन्ध और सलिलादिकी प्राप्ति, उत्तरमें उत्तमा स्त्रीका लाभ और ईशानकोणमे खञ्जनको देखनेसे मृत्यु होतीहै ॥ ६० ॥

अपिच ।

ज्येष्ठीरुते क्षुतेऽप्येवमूचुः केचिच्च कोविदाः ॥ ६१ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—कोई पण्डित टिकूटिकीके रुदनमे छींकहीके सदृश फल कहते हैं ॥ ६१ ॥

(×) क्षुतस्यफलमाह—सर्वत इति। सर्वकार्य्येषु प्रवेशेऽपि क्षुतमशोभनं गोक्षुतञ्च मरणमेव करोति । तथा बृहद्यात्रायाम्—"प्रारम्भयानसमयेषु तथा प्रवेशे ज्ञेय क्षुत न च शुभं कतिदपुशन्ति" केचित्तु बलात्कृतं नासाया तृणादिना कृतं क्षुतं वृद्धकृत पीनसितः श्लेष्मरोगार्तस्तेन कृत शिशुकृतञ्च क्षुतमफलं फलशून्यमाहु । तच्च बहूनां मतमिति ।

विष्णोरित्यधिकृत्य ।

नामसंकीर्त्तनं नित्यं क्षुतप्रस्खलितादिषु ।
वियोगं शीघ्रमाप्नोति सर्वत्र नात्र संशयः ॥ ६२ ॥

इति विष्णुधर्म्मोत्तरे ।

अर्थ—विष्णुधर्म्मोत्तरमें लिखाहै कि, छींकादि दोषशान्तिके निमित्त विष्णुका नाम सम्यक् प्रकारसे कीर्त्तन करनेसे दोषका नाश होजाताहै ॥ ६२ ॥

यात्रासमये परकीयस्वीयस्त्रीपुरुषयोस्ताडनादिनिषेधः ।

स्वकीयां परकीयां वा स्त्रियं पुरुषमेव च ।
ताडयित्वा तु यो गच्छेत्तदन्तं तस्य जीवितम् ॥ ६३ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—ज्योतिषतत्त्वमें लिखाहै कि, जो मनुष्य यात्रासमयमे अपनी स्त्री वा पराई स्त्री अथवा पुरुषको मारकर यात्रा करताहै उसकी शीघ्र मृत्यु होतीहै ॥ ६३ ॥

अपिच ।

यात्राकाले तु संप्राप्ते मैथुनं यो निषेवते ।
रोगार्त्तः क्षीणकायश्च स निवर्त्तेत वा न वा ॥ ६५ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—ज्योतिषतत्त्वमें लिखाहै कि, जो मनुष्य यात्रासमयमे स्त्रीसेवन करके जाता है वह रोगसे युक्त और क्षीणकलेवर होकर फिर नहीं आताहै ॥ ६४ ॥

अन्यच्च ।

कृत्वा तु मैथुनं रात्रौ प्रभाते यः प्रतिष्ठते ।
नासौ प्रतिनिवर्त्तेत दुःखञ्च प्राप्नुयान्नरः ॥ ६४ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—रात्रिमे स्त्रीसंभोग करके जो मनुष्य प्रातःकालमें यात्रा करताहै वह मनुष्य अनेक प्रकारके दुःखोको भोगकर फिर नही आताहै इसप्रकार ज्योतिषतत्त्वमें लिखाहै ॥ ६५ ॥

अपरञ्च ।

कटुतैलगुडक्षीरपक्कमांसाशनन्तथा ।
भुक्त्वा यो यात्यसौ मोहाद्व्याधितः स निवर्त्तते ॥ ६६ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—ज्योतिषतत्वमें लिखाहै कि, कटुरस, तैल, गुड, दूध और पकाभया मांसको यात्रा समय न खावे, जो मनुष्य इन चीजोंको खाकर यात्रा करताहै वह रोगी होकर उस स्थानसे दूसरे स्थानको चलाजाताहै ॥ ६६ ॥

प्रकारान्तरश्च ।

मार्जारयुद्धे कलहे प्रवृत्ते (क) रजस्वलास्त्रीजननीनिषेधे ॥
अकालवृष्टौ मृतसूतके च प्रस्थानयात्रा मरणं ध्रुवञ्च ॥ ६७ ॥

अर्थ—बिल्लीके साथ बिल्लीकी लडाई होनेसे, कलह करके, अपनी रजस्वला स्त्रीको घरमें रखकर, माताके निषेधकरनेपर वा अकालवृष्टि (ख) होनेसे और मरणाशौच वा जननाशौचमें जो मनुष्य यात्रा वा प्रस्थान (दूरगमन) करै तो उसकी निश्चयही मृत्यु होतीहै अथवा मृत्युके समान रोगादि होते हैं ॥ ६७ ॥

अपिच ।

वामे शवशिवाकुम्भा दक्षिणे गोमृगद्विजाः ।
नकुलः सर्वतो भद्रो न सर्पस्तु कदाचन ॥ ६८ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ—ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखाहै, कि, यात्रासमय वामभागमें शव (मृतदेह) शिवा (जम्बूक) और पूर्णकुम्भके देखनेसे शुभफल होताहै, दक्षिणभागमें गो, मृग और ब्राह्मणके दर्शन होनेसे शुभफल होताहै, नकुलका (निउलाका) जिस दिशामे दर्शन हो उसमें शुभफल होताहै और सर्पके देखनेसे अमङ्गल होताहै ॥ ६८ ॥

यात्राकाले शुभदर्शनम् ।

धेनुर्वत्सप्रयुक्ता वृषगजतुरगा दक्षिणावर्त्तवह्नि-
र्दिव्यस्त्री पूर्णकुम्भो द्विजनृपगणिकाः पुष्पमालाः पताकाः ॥
सद्योमांसं घृतं वा दधि मधु रजतं काञ्चनं शुक्लधान्यं
दृष्ट्वा श्रुत्वा पठित्वा फलमिह लभते मानवो गन्तुकामः ६९॥(×)

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

(क) "कुटुम्बकलहो गृहज्वलनमार्त्तवयोषितां बिडालसमरं क्षुत स्खलितमम्बरादिस्तथा । दुरुक्तमतिकोपत स्त्रद्विषयोश्च युद्धं भवेत्प्रयाणसमये नृणामभिमतार्थविच्छित्तये " इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

(ख) अनावृष्टि विवाहमें कालशुद्धिप्रकरणमे लिखीहै ।

× "तृणोदकाढ्येषु वनेषु मत्ताः क्रीडन्तु गावः सवृषाः सवत्साः । क्षीरं प्रमुचन्तु सुखं चरन्तु शीतातपव्याधिभयैर्वियुक्ता. " इति । ज्योतिस्तत्त्वयुतमन्त्रं यात्राकाले पठेत्यात् ।

अर्थ-यात्रासमयमे जिनके देखनेसे मंगल होताहै अब उनको कहते हैं-ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखाहै, कि, बछरासहित गाय, बैल, हाथी, घोडा, दहिनीतर्फ अग्नि, उत्तमा स्त्री, पूर्णकुम्भ, द्विजाति, राजा, गणिका, फूलोंकी माला, पताका, नयामांस, घृत, दही, मधु, चाँदी, सोना, शुक्लधान्य (गोधूम) इन सब द्रव्योके देखनेसे वा इनका शब्द सुननेसे अथवा इन शब्दोंका उच्चारण करनेसे यात्रीका मनोरथ सिद्ध होताहै ॥ ६९ ॥

अथ यात्रासमये माङ्गल्यद्रव्यदर्शनस्पर्शनादि शुभफलानि ।

सिद्धार्थकादर्शपयोऽञ्जनानि बद्धैकपश्वामिषपूर्णकुम्भाः ।
उष्णीषभृङ्गारनृवर्द्धमान पुंयानवीणातपवारणानि ॥ ७० ॥ (क)
दधिमधुघृतरोचनाकुमार्यो ध्वजकनकाम्बुजभद्रपीठशङ्खाः ।
सितवृषकुसुमायुधाम्बराणि मीनद्विजगणिकाप्तजनाश्च चारुवेषाः ७१ (ख)
ज्वलितशिखिफलाक्षतेक्षुभक्ष्यद्विरदवराङ्कुशचामरायुधानि ।
मरकतकुरुविन्दपद्मरागस्फटिकमणिप्रमुखाश्च रत्नभेदाः ॥ ७२ ॥ (ग)
स्वयमथ रचितान्ययत्नतो वा यदि कथितानि भवन्ति मङ्गलानि ।
स जयति सकलां ततो धरित्रीं ग्रहणदृशालभने न युतैरुपास्य ७३ (घ)

(क) यात्रायां मङ्गलद्रव्याणि चतुर्भिःश्लोकैराह-सिद्धार्थकेति । सिद्धार्थकाः श्वेतसर्षपाः, आदर्शो दर्पणं, पयो दुग्धं, जलमिति केचित्तन्न पूर्णकुम्भस्यापि वक्ष्यमाणत्वात् । बद्ध एक पशुः, आमिषं मांसं, उष्णीषः मस्तकवेष्टनवस्त्रं, भृङ्गारो जलपात्रविशेषः, नृवर्द्धमानः ना पुरुषः वर्द्धमानः समृद्ध्या यशसा चोभयतः, पुंयानं नृयानं दोलादि, आतपवारणं छत्रमिति ।

(ख) कुमार्य्यः कन्यकाः, भद्रपीठ भद्रासनम्, अम्बरं श्वेतवस्त्रं, गणिका वेश्या इत्यर्थः ।

(ग) ज्वलिताग्निश्चारुफलानि । अक्षता यवाः इक्षुदण्डः भक्ष्यद्रव्यं उप दंशादि, द्विरदवरो हस्तिश्रेष्ठः, मृदिति पाठे प्रशस्तमृत्तिकेत्यर्थः । मरकतकुरुविन्दौ प्रस्तरविशेषौ पद्मरागौ मणिविशेषः ।

(घ) एतानि कथितान्युक्तानि मङ्गलद्रव्याणि यदि स्वयं रचितानि अयत्नतोऽकस्माद्रचितानि एतेषां नामानि यदि कथितानि यदा यस्य भवन्ति स राजा ततस्तदा कानिचिन्मङ्गलानि सिद्धार्थकादीनि ग्रहणेनोपास्य स्पृष्ट्वा कानिचिद्गणिकादीनि दृशा चक्षुषोपास्य दृष्ट्वा कानिचित्फलादीनि आलभनेनोपलम्भनस्वीकारेणोपास्य स्वीकृत्य कानिचित् वीणागीतादीनि श्रुतेन श्रवणेनोपास्य श्रुत्वा सकलां धरित्रीं जयति ॥ इति ।

अर्थ–अब यात्रासमयमें मङ्गलकारक द्रव्यके देखनेसे और छूनेसे जो फल होताहै उसको कहते हैं–श्वेतसर्षप, दर्पण, (सीसा) दूध, (मतान्तरमें जल) अञ्जन, बँधाभया एक पशु, मांस, पूर्णकुम्भ, उष्णीष (शिरोवेष्टनवस्त्रविशेष) भृङ्गार (जलपात्रविशेष गडुआ) समृद्ध और यशस्वी मनुष्य, दोलादि, वीणा, छत्र, दधि, मधु, घृत, रोचना (गोरोचना वा हरिद्रा) कुमारी, ध्वजा, कनक, पद्म, भद्रासन, पीठ, शङ्ख, सफेद घोडा, कुसुम, आयुध, शुक्लवस्त्र, मत्स्य (मछली) द्विज, वेश्या, आप्तजन और सुवेषधारी मनुष्य, ज्वलिताग्नि, चारुफल, यव, इक्षुदण्ड, भक्ष्य द्रव्य, श्रेष्ठहाथी, अंकुश, चामर, शस्त्र, मरकत, कुरुविन्द (मस्तरविशेष) पद्मराग (मणिविशेष) और स्फटिकादि मणि यह सब माङ्गल्य द्रव्य यात्रासमयमे निकट (समीप) होय अथवा अचानक उपस्थित होजाय तब राजा श्वेतसर्षपादि द्रव्यविशेषको ग्रहणकरै वेश्यादिको देखै फलादिको छूवै और वीणादिको श्रवण (सुन) करके यात्राकरनेसे समस्त पृथिवीको जीतसक्ताहै परन्तु चिरप्रवासी (बहुत दिनोंकी) यात्रामें सूर्य्य शुद्ध होना चाहिये उसको स्थानके अभावसे नीचे लिखतेहैं ॥ ७० ॥ ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ (×)

अथ स्वप्नदर्शनफलम् ।

यान्यत्र मङ्गलामङ्गलानि निर्गच्छतां प्रदिष्टानि ।
स्वप्नेष्वपि तानि शुभाशुभानि विष्टानुलेपनं धन्यम् ॥७४॥ (१)

अर्थ--अब स्वप्नदेखनेका फल कहतेहैं–यात्राविषयमे जो सब माङ्गल्यामाङ्गल्य द्रव्य कहेहैं स्वप्नमेंभी उन्ही सब द्रव्योके देखनेसे और छूनेसे तिसी प्रकार फल होताहै किन्तु स्वप्नमें विष्ठालेपन करनेसे धनप्राप्ति होतीहै ॥ ७४ ॥

× " चिरप्रवासयात्रायां गृहे कर्णस्य वेधने । चूडाकृतौ प्रतिष्ठायां भानुशुद्धिर्विधीयते "
इति व्यासवचनम् ।

(१) अत्र दृष्टस्य स्वप्नस्य शुभाशुभफलमाह–यानीति । निर्गच्छतां जनानामत्र यात्रायां मङ्गलान्यमङ्गलानि द्रव्याणि यानि प्रदिष्टानि कथितानि तानि स्वप्नेऽपि दृष्टानि शुभाशुभानि । किन्तु स्वप्ने विष्ठानुलेपनं धन्यं धनप्रदामिति संक्षेपः । विस्तरश्च बृहद्यात्रायां द्रष्टव्य । तथा "सर्वाणि शुक्लानि सुशोभनानि कार्पासभस्मास्थिकपालवर्ज्जम् । सर्वाणि कृष्णान्यतिनिन्दितानि गोहस्तिदेवद्विजवर्जितानि " अत्र च सुस्वप्नदर्शने पुनर्न शयनं कार्य्यम् । दु.स्वप्नदर्शने तु पुनःशयनं [illegible] । यथा बृहद्यात्रायाम्–"दृष्टं स्वप्नं शोभनं नेह सुप्यात्पश्चाद्दृष्टो यश्च पाकं विधत्ते । शमेदुष्ट [illegible] वृद्धिजेभ्यस्ते चाशीर्भिःपूजयेयुर्नरेन्द्रम् । भूयः प्रस्वपनं नचास्य कथन [illegible] स्वह.ययनं निवेदनमपि प्रातर्गवाश्वत्थयोः । विप्रेभ्यश्च तिलान्नदेमकुसुमैः पूजा [illegible] पुण्यं भारतकीर्त्तनञ्च कथितं दुःस्वप्नविच्छित्तये ." अधिकं च विस्तरभयाद्नोपात्तम् ।

अथ यात्रासमये वायोःशुभाशुभलक्षणम् ।

अनुलोमगते प्रदक्षिणे सुरभौ देहसुखेऽनिले गतः ॥
तिमिराणि गभस्तिमानिव प्रसभं हन्ति बलानि विद्विषाम्॥७५॥

अर्थ–अब यात्रासमयमें वायुके शुभाशुभलक्षण कहतेहैं–यात्रासमयमें यदि सुगन्धियुक्त अनुकूल वायु चलै तो यात्रीको सुख होताहै जिसप्रकार सूर्यके उदय होनेसे समस्त अन्धकारका नाश होजाताहै तिसीप्रकार उक्तवायुमें यात्रा करनेसे राजा शत्रुओंका नाश करताहै ॥ ७५ ॥

अपिच ।

बलिकर्मणि यात्रायां प्रवेशे नववेश्मनः ।
महोत्सवे च मांगल्ये तत्र स्त्रीणां ध्वनिः शुभः ॥ ७६ ॥

इति मत्स्यसूक्ते ।

अर्थ–मत्स्यसूक्तमे लिखाहै कि, बलिकर्म्ममें, यात्रामें नवीन घरमें प्रवेशसमयमें, महोत्सवमे और माङ्गल्यकर्म्ममें स्त्रियोकी ध्वनि शुभ होतीहै ॥ ७६ ॥

इति यात्राप्रकरणम् ।

इति वशावेरल्यांतर्वर्तिकान्यकुलभूषणभारद्वाजगोत्रत्रिपाठ्युपनामकेन पण्डितवंकिलालात्मजेन श्यामसुन्दरशर्म्मणा सम्पादिते भाषाटीकयाविभूषिते ज्योतिषतत्वसुधार्णवे यात्राप्रकरणं नाम षष्ठस्तरङ्गः ॥ ६ ॥

---

(२) वायोः शुभफलमाह–अनुलोमेति । गन्तव्यदिगनुकूलगतौ सुगन्धे शरीरसुखजनके वायौ गते द्विषां शत्रूणां बलानि प्रसभं हठात् हन्ति सूर्योऽन्धकारं नित्यमिव । एनेन प्रतिकूलोऽप्रदक्षिणः दुर्गन्धो ऽसुखकारी अशुभ इति ।

सप्तमस्तरङ्गः ७.



अथ नौकाघटनम् ।

ज्ञभहरिधटलग्ने देवराड्युग्विशाखा
त्रिनयनविधियाम्यद्वन्द्वसर्पान्त्यभेषु ॥
सुकरणतिथियोगे शुक्रजीवार्कवारे
तरणिघटनमिष्टं चन्द्रताराविशुद्धौ ॥ १ ॥ (अ)

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ–अब नौका जड़वानेका मुहूर्त्त कहतेहैं–दीपिकामें लिखाहै कि, मिथुन, कन्या सिंह और तुलालग्नमें, ज्येष्ठा, मूल, विशाखा, आर्द्रा, रोहिणी, भरणी, कृत्तिका, आश्लेषा, और रेवती नक्षत्रमें, शुभकरण, शुभतिथि और शुभयोगमें, शुक्र, बृहस्पति और रविवारमें चन्द्रमा और ताराके शुद्ध होनेसे नौका जड़वाना चाहिये किसी २ आचार्य्यका मत है कि, "याम्यद्वन्द्वसर्पान्यभेषु" इसको पढ़कर उपरोक्त नक्षत्रोंके सिवाय अन्य नक्षत्रोंमें नौका बनवाना चाहिये ॥ १ ॥

अन्यच्च ।

अश्विनीरेवतीहस्तशतभं मृगशिरास्तथा ।
अनुराधा तथा स्वातिश्चित्रा चैव प्रशस्यते ॥ २ ॥
शुक्रेन्दुगुरुवारेषु रिक्तावर्जं तिथौ पुनः ।
पापाहञ्च परित्यज्य नौकाघटनमुत्तमम् ॥ ३ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ–ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखाहै कि, अश्विनी, रेवती, हस्त, शतभिषा, मृगशिर, अनुराधा, स्वाति और चित्रानक्षत्रमें, शुक्र, सोम और बृहस्पतिवारमें, रिक्ताभिन्न तिथिमें, मासदग्धादियुक्त पापाहको त्यागकरके नौका बनवाना चाहिये ॥ २ ॥ ३ ॥

(अ) नौकाघटनमाह–ज्ञभेति । ज्ञभं मिथुनं कन्या च हरिः सिंहः घटस्तुला लग्ने देवराड्युग्म ज्येष्ठामूले विशाखा त्रिनयनमार्द्रा रोहिणीयाम्यद्वन्द्व भरणी कृत्तिका सर्पः आश्लेषा अन्त्यं रेवती एतेषु तरणिघटनं नौकानिर्म्माणमिष्टम् । शेषं सुगमम् । इति । केचित्तु याम्यद्वन्द्वसर्पान्त्येभ्योऽन्येष्विति पाठं कृत्वा ज्येष्ठादिसर्पान्तनक्षत्रेतरेषु तरणिघटनं वदन्ति ।

अथ घटनस्थानान्नौकाचालनम् ।

शुभाहे विष्णुयुग्मेन्दुभगमैत्राश्विपाणिषु ।
चालनं घटनस्थानान्नावः शुभतिथीन्दुषु ॥ ४ ॥

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ-अब नौका चलानेका मुहूर्त्त कहतेहैं दीपिकामें लिखाहै कि, सोम, बुध, बृहस्पति और शुक्रवारमें, श्रवण, धनिष्ठा, मृगशिर, पूर्वाफाल्गुनी, अनुराधा, अश्विनी और हस्त नक्षत्रमें, शुभ तिथिमें और शुभ चन्द्रमामें नौकाको चलाना चाहिये ॥ ४ ॥

अथ नौकायात्रा ।

अश्विकरेज्यसुधानिधिपूर्वा मैत्रधनाच्युतभेषु सुलग्ने ।
तारकयोगतिथीन्दुविशुद्धौ नौगमनंशुभदं शुभवारे ॥ ५ ॥

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ-अब नौकामें चढकर यात्रा करनेका मुहूर्त्त कहतेहैं-दीपिकामें लिखाहै कि, अश्विनी, हस्त, पुष्य, मृगशिर, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा, अनुराधा, धनिष्ठा और श्रवण, नक्षत्रमे, शुभलग्नमें, शुभतारामे, शुभयोगमें, शुभतिथिमें, शुभवारमें और गोचरमे चन्द्रमाके शुद्ध होनेसे नौकामे चढकर यात्रा करनी चाहिये ॥ ५ ॥

अथ वाणिज्यकरणम् ।

क्षिप्राणि यानि ऋक्षाणि चराणि च मृदूनि च ।
वाणिज्ये तानि शस्यन्ते तिथिरिक्तां विवर्जयेत् ॥ ६ ॥

इति विष्णुधर्म्मोत्तरे ।

अर्थ-वाणिज्य करनेका मुहूर्त्त कहतेहैं-विष्णुधर्म्मोत्तरमें लिखाहै कि, पुष्य, अश्विनी, हस्त, स्वाति, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, चित्रा, अनुराधा, मृगशिर और रेवती नक्षत्रमे रिक्ताभिन्न तिथिमे वाणिज्यकर्म्म करना चाहिये ॥ ६ ॥

अथ कुसीदकरणम् ।

प्रतिपद्द्वादशीषष्ठी नक्षत्राणि ध्रुवाणि च ॥
कुसीदेवर्जनीयानि दिनं सूर्यसुतस्य च ॥ ७ ॥

इति विष्णुधर्मोत्तरे ।

अर्थ-अब ऋण देनेका (कर्ज देनेका) मुहूर्त्त कहतेहैं-विष्णुधर्म्मोत्तरमें लिखाहै कि, प्रतिपदा, द्वादशी और षष्ठी तिथिको छोडकर अन्य तिथिमें, उत्तराफाल्गुनी,

उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा और रोहिणीनक्षत्रको छोडकर अन्य नक्षत्रोंमे और शनिवारको छोडकर अन्यवारोंमें कर्ज देना चाहिये ॥ ७ ॥

अथ नक्षत्रविशेषे रोगकथनम् ।

अश्विन्यां दशरात्रेण ज्वरितः कल्यतामियात् ।
भरण्यां संशयप्राप्तिरनले दशभिर्दिनैः ॥ ८ ॥
रोहिण्यां पञ्चदिवसैश्चतुर्भिर्मृगशीर्षके ।
आर्द्रायां संशयः पञ्चदशाहश्च पुनर्वसौ ॥ ९ ॥
पुष्ये च पञ्चदिवसैर्मृत्युराश्लेषया ध्रुवम् ।
मघायां सप्तभिः पूर्वफाल्गुन्यामेकवासरम् ॥ १० ॥
सप्ताह उत्तरफाल्गुन्यां हस्तायां पञ्चभिर्दिनैः ।
चित्रायां प्राणसन्देहः स्वात्यां चैव न जीवति ॥ ११ ॥
विशाखायां सप्तदिनैर्मित्रे च दशभिर्दिनैः ।
ज्येष्ठायाश्च ध्रुवं मृत्युर्मूले कल्यं चतुर्दिनम् ॥ १२ ॥
पूर्वाषाढासु सन्देहो विश्वे पञ्चदिनैः पटुः ।
श्रवणे पञ्चभिः कल्यो धनिष्ठे प्राणसंशयः ॥ १३ ॥
शताख्ये प्राणसन्देहः पूर्वाभाद्रपदे तथा ।
संशयश्चोत्तराभाद्रे रेवत्यां पञ्चवासरैः ॥ १४ ॥

इति ज्योतिःसारे माण्डव्यः ।

अर्थ—अब नक्षत्रोंमें रोगकी आयु कहतेहैं—अश्विनी नक्षत्रमे ज्वर होनेसे दशरात्रितक पीडाभोगनी पडतीहै, इसीप्रकार भरणीमें मृत्यु होतीहै, कृत्तिकामे दशदिनतक पीडा भोगनी होतीहै, रोहिणीमें पांचदिन, मृगशिरमें चारदिन, आर्द्राभे मृत्यु, पुनर्वसुमे पन्द्रहदिन, पुष्यमें पांचदिन, आश्लेषामें जीवनतक रोग रहताहै, मघामे सातदिन, पूर्वाफाल्गुनीमें एकरात्रि, उत्तराफाल्गुनीमें सात दिन, हस्तमें पांच दिन चित्रामे प्राणशेषपर्य्यन्त, स्वातिमें मृत्यु, विशाखामें सात दिन, अनुराधामें दश दिन, ज्येष्ठामे मृत्यु, मूलमें चार दिन, पूर्वाषाढामें मृत्यु, उत्तराषाढामें पांच दिन, श्रवणमे पांच दिन, धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपदा और उत्तराभाद्रपदामे मृत्यु और रेवतीनक्षत्रमें जिस मनुष्यको ज्वर होय उसको पांचदिनतक पीड़ा भोगनी होतीहै ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥

अपिच ।

कृत्तिकायां यदा कश्चिद्व्याधिरुत्पद्यते ध्रुवम् ।
नवरात्रं भवेत्पीडा रोहिण्याश्च त्रिरात्रकम् ॥ १५ ॥
पञ्चरात्रं मृगशिरसि चार्द्रायां सप्तरात्रकम् ।
पुनर्वसौ पञ्चरात्रं पुष्यायाश्च तथैव च ॥ १६ ॥
आश्लेषायां नवरात्रं मासमेकं मघासु च ।
द्वौ मासौ पूर्वफाल्गुन्यामुत्तरासु त्रिपञ्चकम् ॥ १७ ॥
हस्तायां सप्तमे मोक्षश्चित्रायामर्द्धमासकम् ।
मासद्वयं तथा स्वात्यां विशाखायाश्च विंशतिः ॥ १८ ॥
मैत्रे चैव दशाहानि ज्येष्ठायामर्द्धमासकम् ।
मूलेन जायते मोक्षः पूर्वाषाढे त्रिपञ्चकम् ॥ १९ ॥
उत्तराषाढे विंशत्या द्वौ मासौ श्रवणासु च ।
धनिष्ठायामर्द्धमासो वारुण्याश्च दशाहकम् ॥ २० ॥
नच भाद्रपदे मोक्षउत्तरायां त्रिपञ्चकम् ।
रेवत्यां दिनविंशत्या चाहोरात्रं तथाश्विनी ॥ २१ ॥
प्राणैर्विमुच्यते नित्यं भरण्यां नात्र संशयः ।
कौशिकेन समादिष्टा नक्षत्रव्याधिसम्भवाः ॥
नक्षत्रं प्रतिकर्त्तव्यं नक्षत्रमथ जानता ॥ २२ ॥ (क)

अर्थ—ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखाहै कि, कृत्तिकानक्षत्रमें रोग उत्पन्न होनेसे नौ रात्रितक पीड़ा होतीहै, इसीमकार रोहिणीमें तीन रात्रितक, मृगाशिरमें पांचरात्रि, आर्द्रामें सातरात्रि, पुनर्वसु और पुष्यमें पांचरात्रि, आश्लेषाम नौ रात्रि, मघामे एकमास, पूर्वाफाल्गुनीमें दोमास, उत्तराफाल्गुनीमें पन्द्रहदिन, हस्तमें सातदिन, चित्रामें अर्द्ध मास, स्वातिमें दो मास, विशाखामें वीसरात्रि, अनुराधामें दशदिन, ज्येष्ठामें अर्द्धमास, मूलमें मृत्यु, पूर्वाषाढामें पन्द्रह दिन, उत्तराषाढामें वीस दिन श्रवणमें दो महिने, धनिष्ठामें अर्द्धमास, शतभिषामें दशदिन, रेवतीमें वीसदिन, अश्विनीमें एक दिन, और भरणी नक्षत्रमें रोग उत्पन्न होनेसे मृत्यु होतीहै इसमें कुछ संशय नहीहै इसमकार कौशिकनें कहाहै. नक्षत्रके जाननेवाले मनुष्यको इसके मति विधान करना चाहिये॥ १५-२२॥

अथ प्रतीकारा भीमपराक्रमे ।

कृत्तिकायां पिष्टकच्छागमुखे दध्युदकञ्च देयम् । रोहिण्यां पिष्टकगोमुखे शाकम् । मृगशिरसि पिष्टकमृगमुखे माषो देयः । आर्द्रायां पिष्टकगोमुखे रक्तम् । पुनर्वसौ पिष्टकवराहमुखे पटोलम् । पुष्ये पिष्टकच्छागमुखे पायसम् । आश्लेषायां पिष्टकवराहमुखे घृतम् । मघायां पिष्टकवानरमुखे तिलाः । पूर्वाफाल्गुन्यां पिष्टकवानरमुखे मुद्गपूपिका । उत्तराफाल्गुन्यां पिष्टकवलीवर्दमुखे शाकम् । हस्तायां पिष्टकमहिषमुखे पुष्करमूलम् । चित्रायां पिष्टकव्याघ्रमुखे तगरपुष्पम् । स्वात्यां पिष्टकमार्जारमुखे तिलाः । विशाखायां पिष्टकव्याघ्रमुखे गुडभक्तम् । अनुराधायां पिष्टकमृगमुखे कुलत्थम् । ज्येष्ठायां पिष्टकमूषिकमुखे धान्याकम् । मूले पिष्टकमार्जारमुखे तिलाः । पूर्वाषाढायां पिष्टककुम्भीरमुखे वचा । उत्तराषाढायांपिष्टकवृषमुखे शाकभक्तम् । श्रवणायां पिष्टिकमहिषीमुखे रक्तम् । धनिष्ठायां पिष्टकनरमुखे शाकभक्तम् । शतभिषायांपिष्टकवानरमुखे पिप्पली । पुर्वाभाद्रपदायां पिष्टकनरमुखे सिततण्डुलाः । उत्तराभाद्रपदायामप्येवं रेवत्यां

पिष्टकवानरमुखे गुडभक्तम् । अश्विनीभरण्योरप्येवम् । एवं नक्षत्रदोहदे कृते ज्वरा विनश्यंति । एतद्विधानन्तु प्रथमं गन्धपुष्पधूपदीपनैवेद्यैः सदीपमाल्यपताकाभिः प्रपूज्यकार्यम् ॥ २३ ॥

अर्थ–अब नक्षत्रमे ज्वरकी पीडा भोगनेका प्रतीकार कहतेहैं–भीमपराक्रममे लिखाहै कि, कृत्तिका नक्षत्रमें ज्वर होनेसे आटेकी एक बकरी बनाकर गन्धपुष्पादिसें उसकी पूजा करनी चाहिये फिर मुखमें दही और पानीको डाले इसप्रकार करनेसे ज्वर दूर होजाताहै, इसीप्रकार रोहिण्यादिनक्षत्रमे ज्वर होनेसे आटेकी गौ और मृगादिको बनाकर पूजनकरके उसके मुखमे शाक और माषादिको देनेसे ज्वर दूर होताहै. संस्कृत अतिसरळ है अतएव सबका अनुवाद नहीं करते हैं ॥ २२ ॥

अथ विरुद्धनक्षत्रादौ रोगकथनम् ।

उरगशतभिषार्द्राज्येष्ठ (+) याम्यत्रिपूर्वा-
स्वपि च रविजभौमे चार्कवारेण योगे ॥
यदि भवति चतुर्थी द्वादशी भूतषष्ठी
निगदित इह जन्तोर्नाशकालः प्रविष्टः ॥ २४ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ–विरुद्धनक्षत्रादिमे रोग उत्पन्न होनेसे उसका फळ कहतेहै–ज्योतिषतत्त्वमें लिखाहै कि, आश्लेषा, शतभिषा, आर्द्रा, ज्येष्ठा (मतान्तरसे स्वाति और मूळ) भरणी, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा और पूर्वाभाद्रपदा इन सब नक्षत्रके अन्यतम नक्षत्र शनि, मंगळ वा रविवारमे होनेसे यदि चतुर्थी, द्वादशी, चतुर्दशी, वा षष्ठी तिथि होय और उसम जो रोग उत्पन्न होय तो उक्त रोगीकी निश्चयही मृत्यु होतीहै ॥ २४ ॥

अन्यच्च ।

आर्द्राश्लेषास्वातिशाक्रे यस्य रोगोभवेद्ध्रुवम् ।
धन्वन्तरेरप्यसाध्योसद्यः प्राणैर्वियुज्यते ॥ २५ ॥ (क)

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ–दीपिकामें लिखाहै कि, आर्द्रा, आश्लेषा स्वाति और ज्येष्ठा नक्षत्रके अन्यतम नक्षत्रम जिस मनुष्यको रोग होय उसको धन्वन्तरिभी चिकित्सा करके नहीं जिला सक्तेहैं ॥ २५ ॥

अपरञ्च ।

शिवशतभिषधातृस्वातिमूले (ख) न्द्रनागे
रविशनिकुजवारे भूतषष्ठीनवम्याम् ।
इहहि मरणयोगे यो ज्वरेणाभिभूतः
पशुपतिसदृशश्चे (ग) त्सोऽपि मृत्युं प्रयाति ॥ २६ ॥

इति दीपिकाटीकायाम् ।

अर्थ–दीपिकाके टीकामें लिखाहै कि आर्द्रा, शतभिषा, रोहिणी, स्वाति, मूल, ज्येष्ठा और आश्लेषा नक्षत्रके अन्यतम नक्षत्र, रवि, शनि वा मङ्गलवारके अन्यतम वार और चतुर्दशी, षष्ठी वा नवमीके अन्यतम तिथि यदि एक समयमें होय और उसम जिस मनुष्यको रोग उत्पन्न होय तो रोगी शिवके समान होनेसेभी मृत्युको प्राप्त होताहै॥ २६॥

अपिच ।

सप्ताहं वारदोषे स्याद्द्विगुणं तिथिवारयोः ।
तिथिनक्षत्रयोर्मासं त्रिभिर्युक्तो न जीवति ॥ २७ ॥

इति जातकचन्द्रिकायाम् ।

अर्थ–जातकचन्द्रिकामें लिखाहै कि, वारदोषम रोग सात दिन रहताहै, तिथि और वार दुष्ट होनेसे चौथे दिनतक रोगकी पीड़ा भोगनी पडतीहै, तिथि और नक्षत्र दूषित होनेसे व्याधि एक मासतक रहती है और वार, तिथि और नक्षत्र दूषित होनेस रोगीकी मृत्यु होतीहै ॥ २७ ॥

अन्यच्च ।

आधाने जन्मनक्षत्रे निधने प्रत्यरौ तथा ।
व्याधिरुत्पद्यते यस्य क्लेशस्तस्य भवेद्ध्रुवम् ॥ २८ ॥

इति जातकचन्द्रिकायाम् ।

अर्थ–जातकचन्द्रिकामे लिखाहै कि, आधाननक्षत्रमें, जन्मनक्षत्रमें और जन्मनक्ष-

(ख) स्वातिमूलात्रिपूर्वा इति ज्योतिःसारे पाठः ।
(ग) पशुपतिसमयोगी इति जातकचन्द्रिकाया पाठः ।
अत्र वचने प्रथमचरणे उरगशतभिषार्द्रा । इति पाठः ।

त्रसे गिनकर सातवे वा पांचवे नक्षत्रमे जिस मनुष्यको रोग उत्पन्न होय तो उसको अत्यन्त क्लेश भोगना पडताहै ॥ २८ ॥

अपरञ्च।

जन्मभेनिधनर्क्षेवा प्रत्यरौ च विपत्करे।
यदि व्याधिर्भवेदब्दं क्लेशो वा मरणं भवेत् ॥ २९ ॥

इति ज्योतिःसारे।

अर्थ–ज्योतिःसारमें लिखाहै कि, जिस मनुष्यके जन्मतारामें, निधनतारामें, प्रत्यरितारामे और विपत्तारामें व्याधि उत्पन्न होयतो उस मनुष्यको एकवर्षतक क्लेश भोगना पडताहै वा मृत्यु होतीहै ॥ २९ ॥

प्रकारान्तरञ्च।

जन्माधाने निधनभे प्रत्यरौ च विपत्करे।
यदि व्याधिः समुत्पन्नः क्लेशाय मरणाय च ॥ ३० ॥

इति हारीतः।

अर्थ–हारीतने कहाहै कि, जन्म, आधान, निधन (सप्तमतारा) प्रत्यरि (पञ्चम तारा) और विपत् (तीसरे) तारामें रोग उत्पन्न होनेसे अत्यन्त क्लेश होताहै और मृत्यु भी होजातीहै ॥ ३० ॥

अथ सर्पदंशे नक्षत्रवशेन मरणम्।

मूलमघार्द्राश्लेषाभरणीविशाग्निदैवतेषु नरः।
गरुडप्रियोऽपि दष्टो न प्राणिति दन्दशूकेन ॥ ३१ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे।

अर्थ–अब सर्पके काटेहुए मनुष्यकी नक्षत्रसे मृत्यु कहतेहै–ज्योतिषतत्त्वमें लिखाहै कि, मूल, मघा, आर्द्रा, आश्लेषा, भरणी, विशाखा और कृत्तिका नक्षत्रमें यदि किसी मनुष्यको सर्प काटे तब वह गरुडके प्रिय होनेसेभी यमालयको जाताहै ॥ ३१ ॥

अपिच।

मूलमघार्द्राश्लेषाभरणीवसुदेवभेषु नरः।
गरुडप्रियोऽपि दष्टो न प्राणिति दन्दशूकेन ॥ ३२ ॥

इति दीपिकायाम्।

अर्थ–दीपिकामे लिखाहै, कि, मूल, मघा, आर्द्रा, आश्लेषा, भरणी, वा धनिष्ठा, नक्षत्रमे यदि किसी मनुष्यको सर्प काटै तो वह गरुडके प्रिय होनेसेभी मृत्युको प्राप्त होताहै ॥ ३२ ॥

अथ मरणप्रदरोगकथनम् ।

यद्यत्र चन्द्रमास्तस्य गोचरे चाशुभप्रदः ।
तदा नूनं भवेन्मृत्युः सुधासंसिक्तदेहिनः ॥ ३३ ॥ (+)

अर्थ–अब मृत्युप्रद रोग कहतेहैं–जिस मनुष्यके रोग उत्पन्न होनेके समयमे चन्द्रमा गोचरमे अशुभ होय तो उसकी अमृतकी देह होनेसेभी मृत्युको प्राप्त होतीहै ॥ ३३ ॥

अपिच ।

यदा ताराः शुभाः पुंसां नक्षत्रस्याशुभं फलम् ।
तत्र नात्यन्तिकं ज्ञेयमेवमन्यत्र पण्डितैः ॥ ३४ ॥

इति ज्योतिःसारे ।

अर्थ–ज्योतिःसारमें लिखाहै कि, रोग उत्पन्न होनेके समय अशुभ नक्षत्र होनेसे भी यदि मनुष्यका तारा शुद्ध होय तो उस मनुष्यकी मृत्यु नही होतीहै ॥ ३४ ॥

अथ रोगस्य शुभाशुभप्रश्नः ।

चरराशौ विलग्नस्थे द्विदेहार्द्धे च पश्चिमे ।
रोगस्योपशमः प्रश्ने विपर्यासे विपर्ययः ॥ ३५ ॥ (क)

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ–अब रोगी मनुष्यके शुभाशुभ लक्षण प्रश्नद्वारा कहतेहैं–ज्योतिःसारसंग्रहमे लिखाहै कि, यदि चरराशि और द्व्यात्मक राशिका शेषार्द्ध प्रश्नलग्न होय तो रोगीको शीघ्र आरोग्य होताहै और यदि स्थिरराशि और द्व्यात्मक राशिका पूर्वार्द्ध प्रश्नकी लग्न होय तो वह मनुष्य चिररोगी होताहै ॥ ३५ ॥

(+) पूर्वोक्तार्द्राश्लेषास्वातीत्यादीनां मूलमघार्द्राश्लेषेत्यादीना चापवादमाह–यद्यत्र चन्द्रेति । स्पष्टार्थः । यदि चन्द्रे गोचरशुभदे रोगः स्यात्तदा न मृत्युः किन्तु संशय इत्यर्थः । अत्र चान्यत्र विशेष उक्तः । शिवशतभिषधातृस्वातीत्यादि "सप्ताहं वारदोषेण द्विगुणं तिथिदोषतः । तिथिनक्षत्रयोर्म्मासस्त्रिभिः कालो न संशय " तथा सर्पदष्टस्यान्यत्र विशेष उक्तः । "मघेन्द्राग्न्यशक्राग्निमघाश्लेषाश्च कृत्तिका । एषु दष्टो दन्दशूकैस्तस्य मृत्युर्न संशयः । मूलेशमघाश्लेषाहि–लाभरणीविशाखभेषु नरः । गरुडप्रियोऽपि दष्टो न प्राणिति दन्दशूकेन " इति ।

(क) प्रश्नलग्नाद्रोगिकुशलाकुशलमाह–चरेति । चरराशौ लग्नगते द्व्यात्मकस्य शेषार्द्धभागे च प्रश्ने सति रोगस्योपशमः स्यात् । विपर्यासे स्थिरराशौ लग्नं गते द्व्यात्मकस्य पूर्वभागे च स्थिते चिररोगित्वं स्यात् ॥ इति ।

अथ रोगोपशमनयोगकथनम् ।

शुभग्रहाः सौम्यनिरीक्षिताश्च विलग्नसप्ताष्टमपञ्चमस्थाः ।
त्रिषड्दशायेषु निशाकरः स्याच्छुभं वदेद्रोगनिपीडितानाम् ३६ (ख)

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ–अब रोगोपशमयोग कहतेहैं–ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखाहै कि, प्रश्नलग्नमें वा प्रश्नलग्नके सातवें, आठवे वा पांचवे स्थानमें शुभग्रह होय और उनको अन्य शुभ ग्रह देखतेहो तब रोगी मनुष्यकी कुशल जाननी चाहिये और यदि प्रश्नलग्नके तीसरे छठे, दशवे वा ग्यारहवे स्थानमें चन्द्रमा स्थित होय तोभी रोगी मनुष्यको शुभ होताहै॥ ३६॥

अथ प्रश्ने मरणसूचकयोगौ ।

पापर्क्षे प्रश्नलग्ने तु पापसंयुतवीक्षिते ॥
तथैव चाष्टमे स्थाने रोगिणां मरणं वदेत् ॥ ३७ ॥ (ग)

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ–अब प्रश्नलग्नसे रोगी मनुष्यकी आयु कहतेहैं–ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखाहै कि, यदि प्रश्नलग्न पापग्रहोकी होय और उसमें पापग्रह स्थित होय वा प्रश्नलग्नको पाप ग्रह देखतेहो। तो रोगी मनुष्यकी मृत्यु होती है । प्रश्नलग्नका आठवाँ स्थान पापग्रहोका घर होय वा पाप ग्रह उसमें होय अथवा पापग्रह उसको देखतेहों तो रोगी मनुष्यकी मृत्यु होतीहै॥ ३७॥

अथ परदेशस्थरोगादिज्ञानम् ।

मन्दः पापसमेतो लग्नान्नवमः शुभैरयुतदृष्टः ।
रोगार्त्तः परदेशे चाष्टमगो मृत्युकर एव ॥ ३८ ॥ (घ)

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

(ख) प्रश्ने रोगोपशममाह–शुभेति । लग्नस्य सप्तमाष्टमपञ्चमेषु मध्ये यत्र कुत्रापि स्थिताः शुभ. शुभदृष्टा यदि स्युस्तदारोगिणा कुशलं शुभं वदेत् । तथा त्रिषड्दशायेषु स्थिते चन्द्रे शुभे कुशलं वदेदित्यर्थ इति ।

(ग) प्रश्ने मृत्युयोगमाह–पापर्क्ष इति । पापगृहलग्ने पापयुक्ते पापैर्दृष्टे च रोगिणा मरणं स्यात् । तथैवाष्टमस्थाने पापग्रहे पापयुक्ते पापदृष्टे च मरणम् । दैवज्ञवल्लभायामन्यदुक्तम् ' लग्नस्थितो चाष्टमसं-

अर्थ–अब परदेशमें गयेहुये मनुष्यके रोग और मृत्युका ज्ञान कहतेहैं-ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखाह कि, यदि पापग्रहोंके साथ शनिग्रह जन्मलग्नके नवमे स्थानमें शुभग्रह युक्त वा शुभग्रहोंकी दृष्टि न होय तब परदेशमे मनुष्य रोगी होताहै और पापग्रहोंके साथ शनैश्चर यदि मश्नलग्नके आठवें होय और शुभयुक्त वा शुभग्रहोंकी दृष्टि उसपर न होय तो विदेशमें मनुष्य रोगी होकर मरताहै ॥ ३८ ॥

अथ मनुष्यादीनां परमायुः प्रमाणम् ।

पञ्चाहानखभूसमा नृकरिणां व्याघ्राद्यजादेर्नृपा
गोकाल्योर्हिजिनास्तथोष्ट्रखरयोस्तत्त्वानि सूर्य्याः शुनः ॥
अश्वायुः परमं रदा नृवदिहानीयायुरेषा परा-
युर्निघ्नं नृपवायुषा च विहतं तेषां स्फुटायुर्भवेत् ॥ ३९ ॥

इति ग्रन्थान्तरे ।

अर्थ–अब मनुष्यादिकी परमायूका प्रमाण कहतेहैं–ग्रन्थान्तरमे लिखाहै कि, मनुष्य और हाथीकी आयु एकसौ वीसवर्ष पांचदिन की होतीहै, इसीप्रकार व्याघ्र और छागादिकी आयु सोलहवर्षकी, गाय और भैंसकी आयु चौवीसवर्षकी ऊंठ और गधेकी आयु पच्चीसवर्षकी, कुत्तेकी आयु बारह वर्षकी और घोडेकी आयु बत्तीस वर्षकी होतीहै उक्त सब जीवोंकी जन्मसमयकी लग्न तथा ग्रहस्थापनकरके आयु गिननेकी रीतिसे वत्सरादिनिर्णय करके हाथीआदिके पूर्वोक्त अपनी२ आयुद्वारा गुणन करै तदनन्तर गुणनफलको १२० से भागलेके भागफलद्वारा तिन हाथी आदिकी परमायु होतीहै ॥ ३९ ॥

अन्यच्च ।

समाःषष्टिर्द्विघ्ना मनुजकरिणां पञ्च च निशा
हयानां द्वात्रिंशत्खरकरभयोःपञ्चकक्कृतिः ॥
विरूपासत्वायुर्मृगमहिषयोर्द्वादश शुनः
स्मृतं छागादीनां दशकसहिताःपट्च परम् ॥ ४० ॥

इति दीपिकायाम् ।

(×) मानुषादीनां परमायुप्रमाणमाह–समा इति । षष्टिर्द्विघ्ना विंशत्यधिकशतं पञ्च च निशाः पञ्च दिनानि च मानुषाणां गजानाञ्च परमायुःप्रमाणम् । अश्वानां द्वात्रिंशत् गर्दभोष्ट्रयोः पञ्चकृतिः पञ्चानां कृतिः पञ्चविंशति । स्वयं सगुणनं नाम कृतिरित्यभिधीयते । सा पञ्चकृतिर्विरूपा एकवर्जिता चतुर्विंशतिरित्यर्थः । गोमहिषयोः । कुक्कुरस्य तु द्वादश । छागमेषमृगाणां दशसहिता षट्च परमं षोडश वर्षाणि परमायुः स्मृतम् । अश्वादीनां पुरुषवदायुर्दीय कृत्वा तिनात्मायुःहत्वा भागमपहृत्य यल्लब्धं तदश्वादीनां स्वकीयद्वात्रिंशद्वर्षादिनि पूर्ति तेषामायुर्दाय स्यादिति ॥

अर्थ-अब दीपिकाके अनुसार मनुष्यादिको परमायु कहतेहैं-मनुष्य और हाथीकी आयु एकसौ वीस वर्ष पांचदिनकी होतीहै, इसीप्रकार घोडेकी आयु बत्तीस वर्षकी ऊंट और गधेकी आयु पच्चीस वर्षकी, गाय और भैंसकी आयु चौवीस वर्षकी कुत्तेकी आयु बारह वर्षकी और छाग, मेष और मृगादिकी आयु सोलह वर्षकी होतीहै ॥ ४० ॥

अपरञ्च ।

पथ्याशिनां शीलवतांनराणांसद्वृत्तिभाजां विजितेन्द्रियाणाम् ॥
एवंविधानामिदमायरत्र चिन्त्यं सदा वृद्धमुनिप्रवादः ॥ ४१ ॥

इति सारावल्याम् ।

अर्थ-सारावली ग्रन्थमे लिखाहै कि, जो पथ्याशी, सुन्दर स्वभाववाला, अच्छे प्रकारसे आजीविकाका निर्वाह करनेवाला और जितेन्द्रिय मनुष्योंकी उक्त एकसौ वीस वर्षकी परमायु होतीहै वृद्धऋषि मुनिने इसप्रकार कहाहै ॥ ४१ ॥

प्रकारान्तरञ्च ।

वर्त्त्याधारस्नेहयोगाद्यथा दीपस्य संस्थितिः ।
विक्रियापि च दृष्टैवमकाले प्राणसंशयः ॥ ४२ ॥ (क)

इति याज्ञवल्क्यः ।

अर्थ-भगवान् याज्ञवल्क्यजीने कहाहै कि, तेल, शराव और वत्तीके होनेसे भी वायु आदिविक्रियासे जिस प्रकार दीपक बुझजाताहै, उसीप्रकार अशुभकर्मके फल भोगनेसे आयु होनेसेभी नौकापर चढनेसे अमार्गमे जानेसे, युद्धमे प्रवृत्त होनेसे और अपथ्यादिके आहार करनेसे मृत्यु होजातीहै ॥ ४२ ॥

अथ गतायुःपरीक्षा ।

न जिघ्रन्ति न शृण्वन्ति न पश्यन्ति गतायुषः ।
दीपनिर्वाणगन्धञ्च सुहृद्वाक्यमरुन्धतीम् ॥ ४३ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-जिस मनुष्यकी आयु गत होती है उसके लक्षण कहतेहैं-ज्योतिषतत्त्वमें लिखाहै कि, जिस मनुष्यकी मृत्यु निकट आजातीहै उस मनुष्यको दीपक गुल होनेकी

(क) यथा अविकलवर्त्त्यादिसत्त्वे प्रचण्डवातादिना दीपनाशस्तथा सत्यप्यायुषि अशुभकर्म-क्षयार्थं नौकारोहणसमरादिना प्राणनाशः ।

इति ज्योतिस्तत्त्वे मलमासतत्त्वे च स्मार्तैरभिहितम् ।

गन्ध नहीं जानपडताहै, इसीप्रकार अग्नें मनुष्योंकी बातभी बुरी लगतीहै और आकाशमण्डलमें उस मनुष्यको अरुन्धतीका ताराभी नहीं दीख पडताहै ॥ ४३ ॥

अथौषधकरणम् ।

द्व्यङ्गोदये गुरुबुधेन्दुसितेषु सत्सु (१)
वारे परे च सुविधौ सुतिथौ सुयोगे ॥
भेपूत्रपन्नगविशाखशिवेतरेषु
जन्मर्क्षविष्टिरहितेष्वगदः शुभाय ॥ ४४ ॥ (२)

इति ज्योःसारसंग्रहे ।

अर्थ–अब औषध (दवाई) बनानेका मुहूर्त्त कहतेहैं–ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखाहै कि, द्व्यात्मक (मिथुन, कन्या, धन और मीन) लग्नमें बृहस्पति, बुध, चन्द्रमा और शुक्र स्थित होनेसे और इन सब ग्रहोंके वारमें और रविवारमें, शुभचन्द्रमा, शुभ तिथि और शुभयोगमें, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा, मघा, भरणी, आश्लेषा, विशाखा और आर्द्राभिन्न नक्षत्रोंमें जन्मनक्षत्र और विष्टिकरणको छोडकर अन्यसमयमे औषध-बनाना चाहिये ॥ ४४ ॥

अथौषधभक्षणम् ।

हस्तस्वातिमघामूलमृगभं पुष्य एव च ।
ज्येष्ठा शतभिषा चित्रा रेवती च तथाश्विनी ॥ ४५ ॥
श्रवणा चानुराधा च लग्ने मिथुनकन्यके ।
शुक्रेन्दु गुरुवारेषु भैषज्यपानमुत्तमम् ॥ ४६ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ–अब औषध सेवन करनेका (दवा खानेका) मुहूर्त्त कहतेहैं–ज्योतिः सारसंग्रहमें लिखाहै कि, हस्त, स्वाति, मघा, मूल, मृगशिर, पुष्य, ज्येष्ठा, शतभिषा, चित्रा, रेवती, अश्विनी, श्रवण और अनुराधा नक्षत्रमें, मिथुन और कन्यालग्नमे शुक्र, सोम और बृहस्पतिवारमें औषधका सेवन करै ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

---

(१) तेषामिति क्वचित्पाठः ।

(२) औषधकरणमाह–द्व्यङ्गोदय इति । द्व्यात्मक लग्ने तत्र च बुधगुरुचन्द्रशु[illegible] तेषां गुरुबुधेन्दुसितानां रवेश्च वारे सुतिथौ शुभचन्द्रे शुभयोगे उग्रगणे ११ । २० । २५ । [illegible] आश्लेषा ९ विशाखा १६ आर्द्रा ६ एतदन्येषु नक्षत्रेषु जन्मनक्षत्रवर्जितेषु विष्टिरहितेषु [illegible] शुभाय स्यात् ।

अन्यच्च ।

दहनविधिधनिष्ठारेवतीस्वातिपुष्य-
हरिभमदितिचित्रामूलशाक्रोत्तरश्च ॥
दिनकरमनुराधा चाश्विनी सौम्यवारो
हरति सकलरोगान्भक्षणाच्चौषधस्य ॥ ४७ ॥ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ–ज्योतिःसारसंग्रहमे लिखाहै कि, कृत्तिका, रोहिणी, धनिष्ठा, रेवती, स्वाति, पुष्य, श्रवण, पुनर्वसु, चित्रा, मूल, ज्येष्ठा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा हस्त, अनुराधा और अश्विनीनक्षत्रमें और शुभ ग्रहोंके वारमें औषध खानेसे सभी रोगोंका नाश होजाताहै ॥ ४७ ॥

अपरश्च ।

पौष्णाश्विनीहरिभशक्रसमीरपुष्य
हस्तादितीन्दुवसुमूलविशाख (क) मित्रे ॥
चित्रान्विते भृगुबुधेन्दुरवीज्यवारे
भैषज्यपानमचिरादपि हन्ति रोगान् ॥ ४८ ॥ (ख)

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ–ज्योतिषतत्वमें लिखाहै कि, रेवती, अश्विनी, श्रवण, ज्येष्ठा, स्वाति, पुष्य, हस्त, पुनर्वसु, मृगशिर, धनिष्ठा, मूल, विशाखा, (मतान्तरमे कृत्तिका) अनुराधा और चित्रा नक्षत्रमें, शुक्र, बुध, सोम, रवि और बृहस्पतिवारमे रोगी मनुष्य प्रथम औषध सेवन करनेसे शीघ्रही आरोग्य होताहै ॥ ४८ ॥

प्रकारान्तरश्च ।

भैषज्यपानं गुरुसोमशुक्राः शुभे विलग्ने दिवसे रवेश्च ॥
तिथावरिक्ते करणे च शस्ते योगे च लग्ने द्विशरीरसंज्ञे ॥४९॥

इति भीमपराक्रमे ।

(क) हुताश इति पाठान्तरम् ।

(ख) औषधनक्षत्रमाह–पौष्णेति । पौष्णादिनक्षत्रेषु २७ । १ । २२ । १८ । १५ । ८ । १३ । ७ । ५ । २३ । १९ । १६ । १७ । १४ । शुक्रचन्द्रबुधरविगुरुवारेषु औषधनक्षत्रं रोगमचिरेण हन्ति ।

अर्थ–भीमपराक्रममें लिखाहै कि, बृहस्पति, सोम, शुक्र और रविवारमें, शुभ लग्नमे, रिक्ताभिन्न तिथियोंमें, शुभकरण और शुभयोगमें, द्व्यात्मकलग्नमें दवाईको खाना चाहिये ॥ ४९ ॥

अपिच ।

रोहिण्यां चानुराधायां शस्तमौषधभक्षणम् ॥ ५० ॥

इति ग्रन्थान्तरे ।

अर्थ–ग्रन्थान्तरमें लिखाहै कि, रोहिणी और अनुराधा नक्षत्रमें दवाई खाना प्रशस्तहै ॥ ५० ॥

अथ बस्तिविरेचनवेधः ।

चित्रायुगे विधियुगे मित्रयुगे लघुषु वारुणे विष्णौ ।
बस्तिविरेचनवेधाः शुभदिनतिथिचन्द्रलग्नेषु ॥ ५१ ॥ (ग)

अर्थ–चित्रा, स्वाति, रोहिणी, मृगशिर, अनुराधा, ज्येष्ठा, पुष्य, अश्विनी, हस्त, शतभिषा और श्रवण नक्षत्रमें, शुभदिनमें, शुभतिथिमे चन्द्रमा शुद्ध होनेसे शुभ लग्नमे बस्तिविरेचन अर्थात् नाभिके अधोदेशमें व्यथा होनेसे दवा लगाना चाहिये ॥ ५१ ॥

अथारोग्यस्नानम् ।

व्यादित्येषु चरेषु शक्रदिनकृत्पुष्योग्रचन्द्रेषु च
क्रूराहव्यतिपातविष्टिदिवसेष्विन्दावशस्ते तथा ॥
केन्द्रस्थेष्वशुभेष्वकामतिथिषु स्नानंगदोन्मुक्तितः
तं तत्र न शोभना विधिभुजङ्गर्क्षेन्दुसद्धासराः ॥ ५२ (घ)

(ग) बस्तिविशोधनविरेचनव्रणादिवेधानां विधिमाह–चित्रेति । चित्रायुगे १४ । १५ रोहिणी युगे ४ । ५ अनुराधायुगे १७ । १८ । लघुगणे ८ । १ । १३ । शतभिषायां २४ श्रवणायां च २२ शोभनेषु वारतिथिचन्द्रलग्नेषु बस्तिविरेचनवेधाः कार्य्याः लिङ्गादूर्ध्वं नाभेरधोभागो बस्तिः । "बस्तिर्नाभेर धो द्वयोः" इत्यमरः । अत्र च बस्तिदेशे व्यथादौ जाते मण्डाद्यौषधदानेन बस्ति–शोधन क्रियत इति वैद्यकशास्त्रेप्रसिद्धेः । बस्तिशोधनकर्म्म विरेचनकर्म्म चान्तर्नाडीशोधन विरेचनं वेधा व्रणादिवेधनश्चकार्यमित्यर्थः । राजमार्तण्डे–"पुष्यो हस्तस्तथा ज्येष्ठा श्रवणा चोत्तरा–श्विनी । शुभान्येतानि धिष्ण्यानि वेधे वस्तौ विरेचने " इति ।

(घ) आरोग्यस्नानमाह–व्यादित्य इति । पुनर्वसुवर्जितेषु चरगणेषु १५ । २२ । २३ । २४ । ज्येष्ठाहस्तपुष्योग्रगणे मृगशिरसि च क्रूराहे शनिरविमङ्गलवारे व्यतीपातयोगे विष्टौ गोचराशुद्धे चन्द्रे लग्नात्केन्द्रेषु अशुभेषु ग्रहेषु सत्स्वकामतिथिषु न विद्यते कामो यत्र अकामा रिक्ता तत्र गदो–न्मुक्तितः रोगत्यागात्स्नानं प्रशस्तम् । राजमार्त्तण्डे–"जीवे शुक्रे बुधे चन्द्रे दिने रिक्ते दिने स्थिरा । [illegible] शुभे कुरुते स्नानं रोगी रोगान्न मुच्यते" अत्र च रोहिणी आश्लेषा इत्येवचन्द्रस्य [illegible] [illegible] न०

अर्थ–अब आरोग्य होनेके बाद स्नान करनेका मुहूर्त्त कहतेहैं–पुनर्वसुको छोडकर चरगणमे (स्वाति, श्रवण, धनिष्ठा और शतभिषा नक्षत्रमें) वा ज्येष्ठानक्षत्रमें अथवा हस्त, पुष्य, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा, मघा, भरणी और मृगशिर नक्षत्रमे क्रूर ग्रहोके वारमें (रवि, मङ्गल और शनिवारमें) व्यतीपात योगम विष्टि-करणमे गोचरमे चन्द्रमा अशुद्ध होनेसे, और लग्नके केन्द्रस्थानमे शुभग्रह स्थित होनेसे रिक्तातिथिमे आरोग्य होकर स्नान करना चाहिये, किन्तु रोहिणी और आश्लेषा नक्षत्रमे और शुभग्रहोके वारमे कभी आरोग्य होनेके बाद स्नान न करै ॥ ५२ ॥

अन्यच्च ।

चन्द्राशुद्धौ व्यतीपाते भौमार्कशनिवासरे ।
व्रणमुक्तो व्याधिमुक्तः कृच्छ्रस्नानं समाचरेत् ॥ ५३ ॥

इतिज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ–ज्योतिःसारसंग्रमे लिखाहै कि, गोचरमें अशुद्ध चन्द्रमा होनेसे, व्यतीपात योगमें, मंगल, रवि और शनिवारमे व्रणमुक्त और व्याधिसे मुक्त हुए मनुष्यको स्नान करना चाहिये ॥ ५३ ॥

अपरञ्च ।

पूर्वात्रयं मघाश्लेषाभरणी कृत्तिकासु च ।
भद्रायाञ्च तिथौ रिक्ते आरोग्यस्नानमाचरेत् ॥ ५४ ॥

इति ज्योति सारसंग्रहे ।

अर्थ–ज्योतिःसारसंग्रहमे लिखाहै कि, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा, मघा आश्लेषा, भरणी और कृत्तिका नक्षत्रमे, भद्रा (द्वितीया, द्वादशी, सप्तमी) और रिक्ता (चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी) तिथिमे आरोग्य होकर स्नान करना चाहिये ॥ ५४ ॥

आरोग्यस्नाननिषेधः ।

दशमी नवमी चैव प्रतिपच्च त्रयोदशी ।
तृतीया च विशेषेण स्नाने चैतान्विवर्जयेत् ॥ ५५ ॥

इति ज्योति.सारसंग्रहे ।

अर्थ-ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखाहै कि-सप्तमी, नवमी, प्रतिपदा, त्रयोदशी और तृतीया तिथिमें आरोग्य होकर स्नान न करनाचाहिये ॥ ५५ ॥

अथ तैलाभ्यङ्गनिषेधः ।

अर्के नूनं हरति हृदयं कीर्त्तिलाभश्च सोमे
भौमे मृत्युर्भवति नियतं चन्द्रजे पुत्रलाभः ॥
अर्थे हानिर्भवति हि गुरौ भार्गवे शोकयुक्तः
तैलाभ्यङ्गात्तनयमरणं सूर्यजे दीर्घमायुः ॥ ५६ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ-अब तेल लगानेके निषिद्ध वार कहतेहैं-ज्योतिःसारसंग्रहमे लिखाहै कि रविवारमें तेल लगानेसे कष्ट होताहै, इसीप्रकार सोमवारमे कीर्त्तिलाभ, मङ्गलवारमे मृत्यु, बुधवारमें पुत्रलाभ बृहस्पतिवारमें अर्थहानि शुक्रवारमें पुत्रशोक और शनिवारमे तेल लगानेसे दीर्घायु होतीहै ॥ ५६ ॥

प्रतिप्रसवो यथा ।

रवौ पुष्पं गुरौ दूर्वां भूमिं भूमिजवासरे ।
भार्गवे गोमयं दद्यात्तैलदोषोपशान्तये ॥ ५७ ॥ (+)

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ-रविवारमें पुष्प (फूल) डालकर तेल लगाना चाहिये, इसीप्रकार बृहस्पति वारमें दूर्वा डालकर, मंगलवारमे मृत्तिका डालकर और शुक्रवारमे गोबर डालकर तेल लगाना चाहिये पुष्पादिवासित तेल लगानेसे दोष नहीं होताहै इसप्रकार ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखाहै ॥ ५७ ॥

अन्यच्च ।

अतैलं सार्षपं तैलं यत्तैलं पुष्पवासितम् ।
अदुष्टं पक्वतैलञ्च स्नानाभ्यङ्गेषु नित्यशः ॥ ५८ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ-ज्योतिःसारसंग्रहमे लिखाहै कि, सरसोंके तेलको तेलसंज्ञा नहीहै, पुष्पवासित तेल पक्वतेलकी (पकेहुए तेलकी) शरीरमें नित्य प्रति मालिसकरनी चाहिये, उसमे कुछ दोष नहीहै ॥ ५८ ॥

(+) तैलपद तिलतैलपरमिति हृदयानन्दः ।

अथ साधारणकार्य्ये वारादिव्यवस्था।

शुक्रेन्दुबुधजीवानां वाराः सर्वत्र शोभनाः।
भानुभूसुतमन्दानां शुभकर्मसु केष्वपि ॥ ५९ ॥

अर्थ–शुक्र, सोम, बुध और बृहस्पतिवार सभी कर्म्ममें शुभफलप्रदान करतेहैं, रवि, मंगल और शनिवारमें कोई २ शुभकर्म्म प्रशस्त हैं ॥ ५९ ॥

अपिच।

सर्वत्र कार्ये बुधजीवशुक्राः केन्द्रत्रिकोणोपगताः प्रशस्ताः।
तृतीयलाभारिगताश्च पापास्तिथिर्विरिक्ताशुभदस्य चाहः ॥६०॥(×)

अर्थ–कर्म्म करनेके समय लग्नमें वा लग्नके चौथे, सातवें वा दशवे स्थानमे बुध-बृहस्पति और शुक्रके होनेसे, तीसरे, ग्यारहवे और छठे स्थानमें पापग्रह होनेसे रिक्ता-भिन्न तिथिमे, और शुभग्रहोंके वारमें प्रायः सभी कर्म्म करना चाहिये ॥ ६० ॥

अन्यच्च।

निरंशं दिवसं विष्टिं व्यतीपातञ्च वैधृतिम्।
केन्द्रञ्चापि शुभैः शून्यं पापाहमपि वर्जयेत् ॥ ६१ ॥ (१)

अर्थ–निरंश अर्थात् रविसंक्रान्तिदिन, विष्टिभद्रा, व्यतीपात और वैधृतियोग (केन्द्रमें शुभग्रह न होनेसे उस लग्नमे) और पापग्रहोंके वारमें कोई कार्य्य न करना चाहिये ॥ ६१ ॥

अपरञ्च।

इन्दुप्रमगान्पापान्वर्जयेन्नैधनं विलग्नञ्च।
चन्द्रञ्च निधनसंस्थं सर्वारम्भप्रयोगेषु ॥ ६२ ॥

अर्थ–सभी कार्य्यमे चन्द्रगत पाप ग्रह और लग्नगत पापग्रहको परित्यागकरै और चन्द्रमाके वा लग्नके आठवे पापग्रहोकोभी परित्याग करना चाहिये ॥ ६२ ॥

अथ रविसंक्रान्तिकथनम् ।

विषुवन्मेषतुलयोरयनं मकरे रवौ कुलीरे च ।
षडशीतिर्द्विशरीरे विष्णुपदी च स्थिरे राशौ ॥ ६३ ॥ (अ)

अर्थ–अब संक्रान्तिकी संज्ञा कही जातीहै--मेष और तुलाकी संक्रान्तिको विषुवसंक्रान्ति कहतेहैं, मकर और कर्कको संक्रान्तिको अयनसंक्रान्ति कहतेहैं, मिथुन, कन्या, धन और मीन संक्रान्तिको षडशीतिसंक्रान्ति कहतेहैं और वृष, सिंह, वृश्चिक और कुम्भ संक्रान्तिको विष्णुपदी संक्रान्ति कहतेहैं ॥ ६३ ॥

अन्यच्च ।

मृगकर्कटसंक्रान्ती द्वे तूदग्दक्षिणायने । (आ)
विषुवती तुला मेषे गोलमध्ये तथापराः ॥ ६४ ॥
धनुर्मिथुनकन्यासु मीने च षडशीतयः ।
वृषवृश्चिकसिंहेषु कुम्भे विष्णुपदी स्मृता ॥ ६५ ॥

इति भविष्यमात्स्ययोः ।

अर्थ–भविष्यपुराणमें और मत्स्यपुराणमें लिखाहै कि, मकर संक्रान्तिको उत्तरायणकी संक्रान्ति कहतेहैं, इसीप्रकार कर्क संक्रान्तिको दक्षिणायन तुला संक्रान्तिको जलविषुव, मेष संक्रान्तिको महाविषुवसंक्रान्ति कहतेहै, राशिचक्रके मध्यमें अन्यान्यसंक्रान्ति अर्थात् धन, मिथुन, कन्या और मीन संक्रान्तिको षडशीतिसंक्रान्ति कहतेहैं और वृष, वृश्चिक, सिंह और कुम्भ संक्रान्तिको विष्णपदी संक्रान्ति हकतेहैं ॥ ६४ ॥ ६५ ॥

अपरञ्च ।

अयने द्वे विषुवे द्वे चत्वारि षडशीतयः ॥
चतस्रो विष्णुपद्यश्च संक्रान्त्यो द्वादश स्मृताः ॥ ६६ ॥

इति ज्योतिःसारे ज्योतिसारसंग्रहे च ।

अर्थ–ज्योतिःसारमें और ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखाहै कि, दो अयन संक्रान्ति दो विषुवसंक्रान्ति, चार षड़शीतिसंक्रान्ति और चार विष्णपदीसंक्रान्ति सब बारहसंक्रान्ति होतीहैं ॥ ६६ ॥

(अ) रविसंक्रान्तीनां संज्ञामाह–विषुवदिति । मेषतुलास्थे मेषप्रवेशे तुलाप्रवेशे चेत्यर्थः [illegible] मन्यत्रापि ।

(आ) "महाविषुवमाख्यातं मेषराशौ रवेर्गतौ । जलविषुवन्तुलायां कर्कटे दक्षिणायनम् । उत्तरायणमप्युक्तं मकरस्थे रवौ तथा " इति ज्योतिःसारे ।

अथ संक्रान्तिक्रमः।

विषुवविष्णुपदीषडशीतयोऽयनविष्णुपदीषडशीतयः।
विषुवविष्णुपदीषडशीतयोऽयनविष्णुपदीषडशीतयः ॥ ६७ ॥

इति जातकचन्द्रिकायाम्।

अर्थ—जातकचन्द्रिकामें लिखाहै कि, महाविषुव, विष्णुपदी, षडशीति, दक्षिणायन विष्णुपदी, षडशीति, जलविषुव, विष्णुपदी, षडशीति, उत्तरायण, विष्णुपदी और षडशीति यह बारह संक्रान्ति क्रमानुसार बारह राशिमें होती हैं ॥ ६७ ॥

अथ संक्रान्तीनां नक्षत्रघटितमन्दादिसंज्ञाः।

मन्दा मन्दाकिनी ध्वाङ्क्षी घोरा चैव महोदरी।
राक्षसी मिश्रिता प्रोक्ता संक्रान्तिः सप्तधा नृप ॥ ६८ ॥

इति तिथितत्त्वे।

अर्थ—अब संक्रान्तिकी विशेषसंज्ञा कहतेहैं—तिथितत्त्वमें लिखाहै कि, मन्दा, मन्दाकिनी, ध्वाङ्क्षी, घोरा, महोदरी, राक्षसी और मिश्रिता यह सब संज्ञा विषुवादिसंक्रान्तिकी नक्षत्रविशेषमें होतीहैं, उनको नीचे लिखाहै ॥ ६८ ॥

मन्दा ध्रुवे सुविज्ञेया मृदौ मन्दाकिनी तथा।
क्षिप्रे ध्वाङ्क्षीं विजानीयादुग्रे घोरा प्रकीर्त्तिता ॥ ६९ ॥
चरैर्महोदरी ज्ञेया क्रूरैर्ऋक्षैश्च राक्षसी।
मिश्रिता चैव विज्ञेया मिश्रितर्क्षैश्च संक्रमे ॥ ७० ॥

इति तिथितत्त्वे।

अर्थ—अब तिथितत्त्वके अनुसार मन्दादिसंक्रान्ति कही जातीहैं—उत्तराफाल्गुनी उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा और रोहिणीनक्षत्रमें संक्रान्ति लगनेसे उसको मन्दा संक्रान्ति कहतेहैं, इसीप्रकार चित्रा, अनुराधा, मृगशिर और रेवती नक्षत्रमें संक्रान्तिके लगनेसे उसको मन्दाकिनी संक्रान्ति, पुष्य, अश्विनी और हस्तनक्षत्रमें संक्रान्तिके लगनेसे उसको ध्वांक्षी संक्रान्ति, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा, मघा और भरणीनक्षत्रमें संक्रान्तिके लगनेसे उसको घोरासंक्रान्ति, स्वाति, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा और शतभिषानक्षत्रमें संक्रान्तिके लगनेसे उसको महोदरी संक्रान्ति, आश्लेषा, आर्द्रा, ज्येष्ठा और मूलनक्षत्रमें संक्रान्तिके लगनेसे उसको राक्षसी संक्रान्ति और कृत्तिका तथा विशाखानक्षत्रमें संक्रान्तिके लगनेसे उसको मिश्रिता संक्रान्ति कहतेहैं ॥ ६९ ॥ ७० ॥

अथ संक्रान्तीनां पुण्यकालः ।

षडशीतिमुखेऽतीते वृत्ते च विषुवद्द्वये ।
भविष्यत्ययने पुण्यमतीते चोत्तरायणे ॥ ७१ ॥

इति तिथितत्त्वे ।

अर्थ—अब तिथितत्त्वके अनुसार संक्रान्तिका पुण्यकाल कहतेहैं—षड़शीतिसंक्रान्ति और विषुवसंक्रान्तिमें संक्रान्ति लगनेके उपरान्त पुण्यकाल होताहै; इसीप्रकार दक्षिणायनसंक्रान्तिमें संक्रान्ति लगनेके पूर्वमें और उत्तरायणसंक्रान्तिमें संक्रान्ति लगनेके बाद पुण्यकाल होताहै ॥ ७१ ॥

यावद्विंशकलाभुक्ता तत्पुण्यं चोत्तरायणे ।
निरंशे (१) भास्करे दृष्टे दिनास्तं दक्षिणायने ॥ ७२ ॥

इति देवीपुराणे ।

अर्थ—देवीपुराणमें लिखाहै कि, उत्तरायणसंक्रान्तिमें संक्रान्तिके लगनेसे बीसदण्डतक पुण्यकाल होताहै और दक्षिणायनसंक्रान्तिमें संक्रान्ति लगनेके पूर्वमें तीस दण्ड पुण्यकाल होताहै ॥ ७२ ॥

त्रिंशत्कर्कटके नाड्यो (क) मकरे विंशतिः स्मृताः ॥ ७३ ॥

इति वृद्धवसिष्ठः ।

अर्थ—वृद्धवशिष्ठने कहाहै कि, दक्षिणायन (कर्ककी) संक्रान्तिमे तीस दण्ड (घड़ी) पुण्यकाल होताहै और मकर अर्थात् उत्तरायणकी संक्रान्तिमे बीस दण्ड पुण्यकाल होताहै ॥ ७३ ॥

अर्वाक्षोडश विज्ञेया नाड्यः पश्चाच्च षोडश ।
कालः पुण्योऽर्कसंक्रान्तेर्विद्वद्भिः परिकीर्त्तितः ॥ ७४ ॥

इति शातातपः ।

अर्थ—शातातपने कहाहै कि, रविसंक्रान्तिमें संक्रान्ति लगनेके पूर्वमे सोलह दण्ड और उपरान्त सोलहदण्डतक पुण्यकाल होताहै, इसप्रकार विद्वानोंका अभिप्राय है ७४

---

(१) निरंशोंऽशकशून्ये संक्रान्तिकाले हि भास्करोऽशरहितो भवति तस्मिन् दृष्टे दिनान्तं यावत् दिनश्च दिनकरसंस्कृतास्त्रिंशन्नाडिका इति ज्योतिर्विदः । इति तिथितत्त्वे स्मार्त्ताः ।

(क) नाडी दण्डः तथाच सूर्य्यसिद्धान्तः " उच्छ्वासादिप्राणैः षड्भिः पलं तन्नाडी षष्ट्या नाड्या तत्षष्ट्या तु खेर्दिनम् " इति तिथितत्त्वे ।

अतीतानागतो भोगो नाड्यः पञ्चदश स्मृताः ॥ ७५ ॥ (×)

इति देवीपुराणे ।

अर्थ-देवीपुराणमे लिखाहै कि, विष्णुपदी संक्रान्तिमें संक्रान्ति लगनेके पूर्वमें सोलह दण्ड और उपरान्तमें सोलह दण्डतक पुण्यकाल होताहै ॥ ७५ ॥

पुण्यायां विष्णुपद्याञ्च प्राक्पश्चादपि षोडश ॥ ७६ ॥

इति जाबालिबृहद्वसिष्ठौ ।

अर्थ-जाबालिने और वृद्धवशिष्ठने कहाहै कि, विष्णुपदी संक्रान्तिके पूर्वमें सोलह दण्ड और उपरान्तमे सोलह दण्डतक पुण्यकाल होताहै ॥ ७६ ॥

षडशीतिचतसृणां तथा विषुवयोरपि ।
पश्चात्षोडशनाडीनां पुण्यत्वं समुदाहृतम् ॥ ७७ ॥
त्रिंशद्दण्डास्तथा पुण्या भविष्यद्दक्षिणायने ।
उत्तरायणसंक्रान्तेः पश्चाद्विंशतिनाडिकाः ॥ ७८ ॥
विष्णुपद्यामुभयतः प्राक्पश्चादपिषोडश ।
दण्डाः पुण्यास्तु विज्ञेया दिवासंक्रमणे रवेः ॥ ७९ ॥

इति ग्रन्थान्तरे ।

अर्थ-ग्रन्थान्तरमे लिखाहै कि, षडशीतीत्यादि चार संक्रान्तिके और जलविषुव तथा महाविषुवसंक्रान्तिके लगनेसे सोलह दण्डतक पुण्यकाळ होताहै, इसीप्रकार दक्षिणायन (कर्क) संक्रान्तिमे संक्रान्तिके लगनेसे पूर्वमें तीस दण्ड, उत्तरायण (मकर) संक्रान्तिके उपरान्त बीसदण्ड और विष्णुपदी संक्रान्तिके पूर्वमे और उपरान्तमे सोलह दण्डतक पुण्यकाल होताहै ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ ७९ ॥

अह्नि संक्रमणे पुण्यमहः कृत्स्नं प्रकीर्त्तितम् ।
रात्रौ संक्रमणे भानोर्दिनार्द्धं स्नानदानयोः ॥ ८० ॥

इति वृद्धवसिष्ठ. ।

अर्थ-वृद्धवसिष्ठने कहाहै कि, दिनमे संक्रान्ति लगनेसे सभी दिन पुण्यकाल होताहै और रात्रिमे संक्रान्तिके लगनेसे अर्द्धदिनतक पुण्यकाल होताहै । उसमेंही संक्रान्तिनिमित्त स्नान और दानादि करना चाहिये ॥ ८० ॥

(×) इद वचन दिवा विष्णुपदीविषयमिति स्मार्त्तनानिहितम् ॥

अथ रात्रिसंक्रमणे पुण्यकालव्यवस्था ।

कलान्यूनार्द्धरात्रे तु यदि संक्रमणं भवेत् ।
तदहः (+) पुण्यमिच्छन्ति गार्ग्यगालवगौतमाः ॥ ८१ ॥

इति गार्ग्यः ।

अर्थ–गार्ग्यमुनिने कहाहै कि, एकदण्डन्यून रात्रिके पूर्वार्द्धमें संक्रान्ति लगनेसे उस दिनके परार्द्धमें पुण्यकाल होताहै इस प्रकार गार्ग्य, गालव और गौतमादि मुनियोंका मत है ॥ ८१ ॥

अर्द्धरात्रे त्वसम्पूर्णे दिवापुण्यमनागतम् ।
अर्द्धरात्रे व्यतीते तु विज्ञेयं चापरेऽहनि ॥
सम्पूर्णे चार्द्धरात्रे च उदयेऽस्तमयेऽपि वा ॥ ८२ ॥

इति देवीपुराणे ।

अर्थ–देवीपुराणमें लिखाहै कि, एकदण्ड न्यून रात्रिके पूर्वार्द्धमें संक्रान्ति लगनेस उस दिनके परार्द्धमें पुण्यकाल होताहै, इसीप्रकार एकदण्ड न्यून रात्रिके परार्द्धमें संक्रान्ति लगनेसे पर दिनके पूर्वार्द्धमें पुण्यकाल होताहै और दण्डद्वयात्मक मध्यरात्रिमें संक्रान्ति लगनेसे पूर्वदिनके परार्द्धमें और परादिनके पूर्वार्द्धमे पुण्यकाल होताहै ॥ ८२ ॥

अन्यच्च ।

मानार्द्धे भास्करे पुण्यमपूर्णे शर्वरीदले ।
सम्पूर्णे तूभयोर्दंयमतिरेके परेऽहनि ॥ ८३ ॥

अर्थ–वचनान्तरमे कहाहै कि, एकदण्ड न्यून रात्रिके पूर्वार्द्धमे संक्रान्ति लगनेसे पूर्वदिनके परार्द्धमें पुण्यकाल होताहै, इसीप्रकार दण्डद्वयात्मक मध्यरात्रिमे सक्रान्ति लगनेसे दोनो दिनमें पुण्यकाल होताहै और एक दण्ड न्यून रात्रिके परार्द्धमें संक्रान्ति लगनेसे परादिनके पूर्वार्द्धमें पुण्यकाल होताहै ॥ ८३ ॥

अर्द्धरात्रे कलाधिक्ये यदा संक्रमते रविः ।
तदोत्तरदिनं ग्राह्यं स्नानदानजपादिपु ॥ ८४ ॥

इति [illegible] ।

(+) तदहरिति यामद्वयपरम् । इति तिथितत्त्वे स्मार्तेनोक्तम् ॥

अर्थ–भुजबलभीमपराक्रममें लिखाहै कि, एकदण्ड अधिक अर्द्धरात्रिके अतीत कालमें यदि सूर्य्यकी संक्रान्ति लगे तो स्नान, दान और जपादि परदिनके पूर्वार्द्धमें करना चाहिये ॥ ८४ ॥

अर्द्धरात्रे व्यतीते तु यदा संक्रमते रविः ।
सा ज्ञेया कूट संक्रान्तिर्मुनिभिः परिकीर्तिता ॥ ८५ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ–ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखाहै कि, रात्रिके शेषार्द्धमें संक्रान्तिके लगनेसे उसको मुनिगण कूटसंक्रान्ति कहतेहैं ॥ ८५ ॥

अर्द्धरात्रे तु सम्पूर्णे यदा संक्रमते रविः ।
प्राहुर्दिनद्वयं पुण्यं त्यक्त्वा मकरकर्कटौ ॥ ८६ ॥

इति भुजबलभीमपराक्रमे ।

अर्थ–भुजबलभीमपराक्रममें लिखाहै कि, सम्पूर्णार्द्धरात्रिमें अर्थात् (दण्डद्वयात्मक) अर्द्धरात्रिके समय संक्रान्ति लगनेसे मकर और कर्ककी संक्रान्तिको छोडकर अन्य सब संक्रान्तिमें ही पूर्वदिनके परार्द्धमें और परदिनके पूर्वार्द्धमें पुण्यकाल होताहै ॥ ८६ ॥

पूर्णे चेदर्द्धरात्रे तु रविसंक्रमणं भवेत् ।
प्राहुर्दिनद्वयं पुण्यं त्यक्त्वा मकरकर्कटौ ॥ ८७ ॥

इति शातातपजाबाली ।

अर्थ–शातातपनें और जाबालीनें कहाहै कि, पूर्ण अर्द्धरात्रिके समय संक्रान्ति लगनेसे मकर और कर्ककी संक्रान्तिको छोडकर शेष संक्रान्तिमे दोनो दिनमें ही पुण्यकाल होताहै ॥ ८७ ॥

आदौ पुण्यं विजानीयाद्यद्यभिन्ना तिथिर्भवेत् ॥ ८८ ॥

अर्थ–पूर्ण आधी रातके समय संक्रान्ति लगनेसेभी यदि सूर्य्योदयकालसे संक्रान्तिके कालतक एकतिथि होय तो पूर्वदिनके परार्द्धमें ही पुण्यकाल होताहै ॥ ८८ ॥

अर्द्धरात्रादधस्तस्मिन्मध्याह्नस्योपरि क्रियाः ।
ऊर्द्ध्वं संक्रमणे भानोरुदयात्प्रहरद्वयम् ॥
पूर्णार्द्धरात्रसंक्रान्तौ द्वे दिनार्द्धे तु पुण्यदे ॥ ८९ ॥ (×)

इति संवत्सरप्रदीपे ।

(×) उभयदिने पुण्यकाले पूर्वदिनावरणं एव परदिने । "श्व. कार्य्यमद्य कर्त्तव्य पूर्वाह्णे चापराह्णिकम् । नहि प्रतीक्षते मृत्युः कृतमस्य न वा कृतम्" इति लिङ्गपुराणात् ।

अर्थ–संवत्सरप्रदीपमें लिखाहै कि, अर्द्धरात्रिके पूर्वमें संक्रान्ति लगनेसे उस दिनके दो प्रहरके उपरान्त संक्रान्तिनिमित्तक क्रिया करनी चाहिये, अर्द्धरात्रिके उपरान्तमें संक्रान्तिके लगनेसे पर दिनमें सूर्य्योदयकालसे दो प्रहरके मध्यमें स्नानदानादि संक्रान्तिका कर्म्म करनाचाहिये और पूर्ण अर्द्धरात्रिके समय संक्रान्ति लगनेसे दोनो दिनमें पुण्यकाल होताहै ॥ ८९ ॥

अर्द्धरात्रादधश्चैव दिनार्द्धस्योपरि क्रियाः ।
ऊर्द्ध्वं संक्रमणे भानोरुदयात्प्रहरद्वयम् ॥ ९० ॥

इति भोजराजः ।

अर्थ–भोजराजने भी कहाहै कि, अर्द्धरात्रिके पूर्वमे संक्रान्ति लगनेसे उसी दिनके दो प्रहरके उपरान्त स्नानदानादि करे अर्द्धरात्रिके उपरान्तमे संक्रान्ति लगनेसे परदिनमें सूर्य्योदयकालसे दोप्रहरके मध्यमे संक्रान्तिनिमित्तक कर्म्म करना चाहिये॥९०॥

अथ मृगकर्कटयोरर्द्धरात्रिसंक्रमणे विशेषमाह ।

मिथुनात्कर्कसंक्रान्तिर्यदि स्यादंशुमालिनः ॥
प्रदोषे वा निशीथे वा कुर्य्यादहनि पूर्वतः ॥ ९१ ॥

इति भविष्योत्तरे ।

अर्थ–भविष्यपुराणके उत्तरखण्डमे लिखाहै कि, रात्रिके पूर्वार्द्धमें हो वा पूर्ण अर्द्धरात्रिमे हो मिथुनराशिसे कर्कराशिमे सूर्य्यके जानेसे अर्थात् दक्षिणायनसंक्रान्तिके होनेसे पूर्वदिनके परार्द्धमेंही पुण्यकाल होताहै ॥ ९१ ॥

कार्म्मुकञ्च परित्यज्य झषं संक्रमते रविः ।
प्रभाते वार्द्धरात्रे वा स्नानं कुर्य्यात्परेऽहनि ॥ ९२ ॥

इति भविष्योत्तरे ।

अर्थ–भविष्यपुराणके उत्तरखण्डमे लिखाहै कि, धनराशिसे मकरराशिमे रात्रिके शेषार्द्धमे वा पूर्णार्द्धरात्रिमे सूर्य्य गमन करै अर्थात् उत्तरायण संक्रान्ति लगे तो परदिनके पूर्वार्द्धमें संक्रान्तिनिमित्तक स्नानदानादि करना चाहिये ॥ ९२ ॥

अथ मन्दादिभेदेन संक्रान्तीनां पुण्यकालः ।

त्रिचतुःपञ्चसप्ताष्टनवद्वादश एव च ।
क्रमेण घटिका ह्येतास्तत्पुण्यं पारमार्थिकम् ॥ ९३ ॥

इति देवीपुराणे ।

अर्थ—अत्र मन्दादिसंक्रान्तिका पुण्यकाल कहतेहैं, देवी पुराणमें लिखाहै कि, मन्दासंक्रान्तिका पुण्यकाल तीन दण्ड होताहै; इसीप्रकार मन्दाकिनीका चारदण्ड, ध्वांक्षीका पांच दण्ड, घोराका सात दण्ड, महोदरीका आठ दण्ड, राक्षसीका नौ दण्ड, और मिश्रिता संक्रान्तिका पुण्यकाल बारह दण्ड होताहै ॥ ९३ ॥

संक्रान्तिप्रकरण अतिवृहत् है यदि पूरा लिखाजाय तो ग्रन्थ बहुत बढ़जायगा अतएव पूरा प्रकरण संक्रान्तिनिर्णयनामक पुस्तकमें लिखूगा, यहाँ संक्षेपसे वचनोंका तात्पर्य्यार्थ लिखता हूं, दिनमे संक्रान्तिके लगनेसे जिस दिनमें पुण्यकाल कहागयाहै, उसीमें दानपूजादि करना चाहिये पन्द्रहदण्ड, सोलहण्ड, वीसदण्ड और तीसदण्डादि जिस संक्रान्तिमे पुण्यकाल कहाहै उसको पुण्यतर काल जानो और मन्दादिभेदसे जो तीनदण्ड, चारदण्ड, पांचदण्ड इत्यादि कहे हैं उसको पुण्यतम काल जानना चाहिये फलितार्थ यह है कि, प्रत्येकसंक्रान्तिमें ही इन तीनों प्रकारके काल जाननाचाहिये ।

दिनमें संक्रान्तिके लगनेसे सोलह वा वीसदण्डादि पुण्यतर काल यदि रात्रितक होय तब उसकोभी पुण्यकाल कहतेहैं । एकदण्ड न्यूनरात्रिके पूर्वार्द्धमें संक्रान्तिलगनेसे उस दिनके परार्द्धमे पुण्यकालहोताहै । एकदण्डन्यूनरात्रिके परार्द्धमें संक्रान्ति लगनेसे परदिनके पूर्वार्द्धमे पुण्यकाल होताहै दक्षिणायन और उत्तरायणकी संक्रान्तिको छोडकर अन्य संक्रान्तिमे दण्डद्वयात्मक मध्यरात्रिमे अर्थात् पूर्वार्द्धरात्रिके शेष दण्डमें वा परार्द्धरात्रिके प्रथमदण्डमें संक्रान्तिके लगनेसे यदि पूर्वदिनके सूर्य्योदयकालसे संक्रातिके कालतक एकतिथि होय तो पूर्वदिनके शेषार्द्धमे पुण्यकाल होताहै ओर सूर्य्योदय कालसे संक्रान्तिके कालतक एकतिथि न होय तो पूर्वदिनके परार्द्धमे और परदिनके पूर्वार्द्धमे पुण्यकाल होताहै । इस स्थलमे संक्रान्तिकृत्य स्नानदानादि पूर्वदिनमें न करसकनेसे पर दिनमे करना चाहिये । दक्षिणायन की संक्रान्तिमें तिथिका भेद होय वा न होय दण्डद्वयात्मक मध्यरात्रिमें संक्रान्ति लगनेसे पूर्व दिनके परार्द्धमें पुण्यकाल होताहै, और उत्तरायणकी संक्रान्तिमे दण्डद्वयात्मक मध्यरात्रिमें संक्रान्ति लगनेसे सूर्य्योदयकालसे संक्रान्तिके कालतक एक तिथि होय वा न होय परदिनके पूर्वार्द्धमें पुण्यकाल होताहै ॥

अथ महाजयाकथनम् ।

शुक्लपक्षे तु सप्तम्यां यदा संक्रमते रविः ।
महाजया (१) तदा प्रोक्ता सप्तमी भास्करप्रिया ॥ ९४ ॥

इति ब्रह्मपुराणे ।

अर्थ–अब महाजयाको कहतेहैं–ब्रह्मपुराणमें लिखाहै कि, शुक्लपक्षकी सप्तमी तिथिमे यदि संक्रान्ति लगै, तो इस भास्करकी प्रिया सप्तमीको महाजया कहतेहैं ॥ ९४ ॥

स्नानं दानं तपो होमः पितृदेवादिपूजनम् ।
सर्व्वं कोटिगुणं प्रोक्तं तपनेन महौजसा ॥ ९५ ॥

इति ब्रह्मपुराणे ।

अर्थ–महाजयामें स्नान, दान, तपस्या, यज्ञ, पितृश्राद्ध वा देवार्च्चना करनेसे कोटिगुण फल प्राप्त होताहै, भगवान् सूर्य्यदेवने स्वयं इस प्रकार ब्रह्मपुराणमें कहाहै ॥ ९५ ॥

अथ संक्रान्त्यादिषु पुण्यकर्म्मकरणे फलम् ।

अयने कोटिगुणितं लक्षं विष्णुपदीषु च ।
षडशीतिसहस्रन्तु षडशीत्यामुदाहृतम् ॥ ९६ ॥
शतमिन्दुक्षये पुण्यं सहस्रन्तु दिनक्षये ।
विषुवे शतसाहस्रमाकामावे (२) ष्वनन्तकम् ॥ ९७ ॥

इति मत्स्यपुराणे ।

अर्थ–संक्रान्तिमें पुण्यकर्म करनेसे जो फल होताहै अब उसको वर्णन करतेहैं–मत्स्यपुराणमें लिखाहै कि, अयनकी संक्रांतिमे दानादि करनेसे उसमें कोटिगुण फल प्राप्त होताहै, इसीप्रकार विष्णुपदीसंक्रान्तिमे लक्षगुण, षडशीति संक्रान्तिमें ८६ हजारगुण, अमावास्यामें शतगुण, त्र्यहस्पर्शमें सहस्रगुण और आषाढ, कार्तिक, माघ और वैशाखकी पूर्णिमामें स्नानदानादि करनेसे अनन्त पुण्य प्राप्त होताहै ॥ ९६ ॥ ९७ ॥

अश्रद्धया पि यद्दत्तं कुपात्रेभ्योऽपि मानवैः ॥
अकालेऽपि हि तत्सर्व्वं सत्यमक्षयतां व्रजेत् ॥ ९८ ॥

इति स्कन्दपुराणे ।

अर्थ–स्कन्दपुराणमें लिखाहै कि, संक्रान्तिके पुण्यकालमें यदि अश्रद्धासे अकालमे कुपात्रमे भी दानकरै तो उसका अक्षय पुण्य होताहै ॥ ९८ ॥

रविसंक्रमणे पुण्ये न स्नायाद्यस्तु मानवः ।
सप्तजन्मस्वसौ रोगी निर्द्धनश्चोपजायते ॥ ९९ ॥

इति देवीपुराणे ।

(२) आकामावेषु आषाढीकार्त्तिकीमाघीवैशाखीषु पौर्णमासु ।
इति तिथितत्त्वे स्मार्त्तभट्टाचार्यः ।

अर्थ-देवीपुराणमें कहा कि, सूर्यसंक्रान्तिके दिन जो मनुष्य स्नान दानादि पुण्य नहीं करताहै वह सात जन्मपर्यन्त रोगी और धनहीन (दरिद्री) होताहै ॥ ९९ ॥

अथ विषुवादिसञ्चारगणनम् ।

तत्रादौ महाविषुवस्य ।

मूर्ध्नि सप्त मुखे त्रीणि हृदये पञ्च विन्यसेत् ।
त्रितयं हस्तपादेषु महाविषुवभक्रमात् ॥ १०० ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-अब विषुवादि संक्रान्तिकी संचारप्रणाली कहतेहैं-तहाँ प्रथम महाविषुवको कहतेहै, ज्योतिषतत्त्वमे कहाहै कि, पुरुषाकार संक्रान्तिस्वरूप लिखकर मस्तकमें ७ नक्षत्र, मुखमे ३ नक्षत्र, हृदयमें ५ नक्षत्र, प्रतिहाथमें तीन २ नक्षत्र, प्रत्येक पादमें तीन २ नक्षत्र सूर्यसक्रान्तिकालके नक्षत्रसे स्थापन करै फल नीचे लिखतेहैं ॥ १०० ॥

मस्तकमें १।२।३।४।५।६।७

मुखमे ८।९।१०

दक्षिणहाथमें १६।१७।१८



वामहाथमे १९।२०।२१

हृदयमे ११।१२।१३।१४।१५

दक्षिणपादमे २२।२३।२४

वामपादमे २५।२६।२७

फलम् ।

मस्तके भूपतेः सौख्यं वदने पटुता शुभे ।
हृदये च धनाध्यक्षोह्यर्थप्राप्तिर्दक्षिणे करे ॥ १ ॥
वामे करे महद्दुःखं सुखं पादे च दक्षिणे ।
भ्रमणं वामपादे च कथितं विषवत्फलम् ॥ २ ॥

हाथमें अर्थप्राप्ति, बायें हाथमें अत्यन्त दुःख, दहिने पैरमें सुख और संक्रान्तिपुरुषके बायें पैरमें मनुष्यका जन्मनक्षत्र पडनेसे भ्रमण होताहै ॥ १ ॥ २ ॥

अथ जलविषुवगणनम् ।

षण्मूर्ध्नि वदने पञ्च चत्वारि हृदये तथा ।
त्रितयं करपादेषु पयोविषुवभक्रमात् ॥ ३ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ–पूर्वोक्तप्रकार संक्रान्तिपुरुष बनाकर संक्रान्तिकालके नक्षत्रसे उसके मस्तकमें छः नक्षत्र, मुखमें पांच नक्षत्र, हृदयमें चार नक्षत्र, प्रत्येक हाथमें तीन २ नक्षत्र और प्रत्येक पादमें तीन २ नक्षत्र स्थापन करै फल नीचे लिखतेहैं ॥ ३ ॥

फलम् ।

मानं मूर्ध्नि मुखे वैरं हृदये सुखसम्भवः ।
दोः पदोर्दक्षयोर्भोगस्त्रासश्च वामयोः स्वभे ॥ ४ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ–अब जलविषुवका फल ज्योतिस्तत्त्वके अनुसार कहतेहैं–मनुष्यका जन्मनक्षत्र संक्रान्तिपुरुषके मस्तकमें पडनेसे सन्मान होताहै, इसीप्रकार मुखमें पडनेसे वैरता, हृदयमें सुख, दहने हाथमें और दहने पैरमें भोग और संक्रान्तिपुरुषके बायें हाथमें और बायें पैरमें मनुष्यका जन्मनक्षत्र पडनेसे त्रास होताहै ॥ ४ ॥

अथोत्तरायणसंक्रमगणनम् ।

शीर्षे पञ्चमुखे त्रीणि हस्तयोश्च त्रयं त्रयम् ।
हृदि पञ्च शशी नाभौ गुदे च पादयो रसाः ॥
उत्तरायणभाज्ज्ञेयं स्वनक्षत्रस्थितैः फलम् ॥ ५ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ–पूर्वोक्तप्रकार संक्रान्तिपुरुषको बनाकर उसके मस्तकमें उत्तरायण संक्रान्तिकालके नक्षत्रसे मस्तकमें पांच नक्षत्र, मुखमें तीन नक्षत्र, प्रतिहाथमें तीन२ नक्षत्र, हृदयमें पांच नक्षत्र, नाभिमें एक नक्षत्र, गुदामें एक नक्षत्र और प्रत्येक पादमें तीन २ नक्षत्र रक्खे, अनन्तर मनुष्यका जन्मनक्षत्र जिस स्थानमें पडे उसको देखकर फल विचारना चाहिये ॥ ५ ॥

फलम् ।

शीर्षेऽर्थलाभो वदने सुखानि दक्षे करेऽङ्घ्रौ हृदये च सौख्यम् ।
नाभौ शुभं वामकरेऽर्थनाशो गुह्ये भयं वामपदे प्रवासः ॥ ६ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-मनुष्यका जन्मनक्षत्र संक्रान्तिपुरुषके मस्तकमें पड़नेसे अर्थलाभ, मुखमे, दहिने हाथमे, दहिने पादमें और हृदयमें सुख, नाभिमे मङ्गल, बायें हाथमे अर्थनाश, गुदामें भय और बायें पैरमे मनुष्यका जन्मनक्षत्र पड़नेसे प्रवास (देशान्तरवास) होताहै ॥६॥

अथ दक्षिणायनसंक्रान्तिगणनम् ।

शीर्षे त्रीणि मुखे त्रीणि हृदये पञ्च हस्तयोः ।
अष्टौ पादद्वयेऽप्यष्टौ दक्षिणायनभक्रमात् ॥ ७ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-दक्षिणायन सङ्क्रान्ति कालके नक्षत्रसे संक्रान्तिपुरुषके मस्तकमे तीन नक्षत्र, मुखमे तीन नक्षत्र, हृदयमें पांच नक्षत्र, दोनों हाथमे आठ नक्षत्र और दोनों चरणमें आठ नक्षत्र स्थापन करना चाहिये ॥ ७ ॥

फलम् ।

शीर्षे मानं मुखे विद्या हृदये वित्तसञ्चयः ।
प्रवासः स्यात्करे वामे भिक्षालाभश्च दक्षिणे ।
निष्फलं वामपादे च किञ्चिल्लाभश्चदक्षिणे ॥ ८॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-दक्षिणायनकी संक्रान्तिका फल ज्योतिषतत्त्वके अनुसार कहतेहैं, मनुष्यका जन्मनक्षत्र संक्रान्तिपुरुषके मस्तकमे पड़नेसे सन्मान होताहै इसी प्रकार मुखमे विद्यालाभ, हृदयमे वित्तसञ्चय,बाये हाथमे प्रवास (देशान्तरवास) दहिने हाथमे भिक्षाप्राप्ति, वाम पादमे निष्फल और दक्षिण पादमें मनुष्यका जन्मनक्षत्र पड़नेसे किञ्चित् लाभ होताहै ॥ ८ ॥

अथ विष्णुपदीसञ्चारगणनम् ।

ऋक्षे संक्रमणं यत्र विष्णुपद्यामुखे तु तत् ।
चत्वारि दक्षिणे बाहौ त्रीणि त्रीणिपदद्वये ॥ ९ ॥
चत्वारि वामबाहौ च हृदये पञ्च निर्दिशेत् ।
अक्ष्णोर्द्वयंद्वयं योन्यं मूर्ध्नि द्वे चैकभं गुदे ॥ ११० ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ–जिस नक्षत्रमें विष्णुपदी संक्रान्ति लगै उसी नक्षत्रको संक्रान्तिपुरुषके मुखमें, उसके उपरान्त चार नक्षत्र दहिनी भुजामे, तीन २ नक्षत्र प्रत्येक पादमें, चार नक्षत्र बायीं भुजामें, पांच नक्षत्र हृदयमे, दो २ नक्षत्र प्रत्येक नेत्रमें, दो नक्षत्र मस्तकमें और एकनक्षत्र संक्रान्ति पुरुषकी गुदामें स्थापनकरै इस प्रकार ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है ॥ ९ ॥ १० ॥

फलञ्च ।

रोगो भोगस्तथा मान (१) बन्धनं लाभ एवच ।
ऐश्वर्यं राजपूजा च अपमृत्युरिति क्रमात् ॥ ११ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ–अब विष्णुपदी संक्रान्तिका फल ज्योतिषतत्त्वके अनुसार कहतेहैं–मनुष्यका जन्मनक्षत्र संक्रान्तिपुरुषके मुखमें पड़नेसे रोग होताहै, इसी प्रकार दहिने हाथमे जन्मनक्षत्र पड़नेसे भोगकी वृद्धि होतीहै, दोनों चरणमें गमन वा मान, बाये हाथमें बन्धन, हृदयमे लाभ, दोनो नेत्रोमें ऐश्वर्य्य, मस्तकमें राजपूजा और संक्रान्तिपुरुषकी गुदामे मनुष्यका जन्मनक्षत्र पड़नेसे अपमृत्यु होतीहै ॥ ११ ॥

अथ षडशीतिसञ्चारगणनम् ।

मुखे चैकं करे वेदाः पादयुग्मे द्वयं द्वयम् ।
क्रोडे बाणास्तथा वेदाः करे सव्यतरेऽपि च ॥ १२ ॥
द्वयं द्वयं तथा नेत्रे मस्तके त्रितयं तथा ।
द्वयं चैव तथा गुह्ये षडशीत्यां स्वभे स्थिते ॥ १३ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ–अब ज्योतिषतत्त्वके अनुसार षडशीतिसंक्रान्तिकी सञ्चारप्रणाली कहतेहैं–षडशीतिसंक्रान्ति कालका नक्षत्र संक्रान्तिपुरुषके मुखमें स्थापन करै उसके उपरान्त दूसरे नक्षत्रसे दाहिने हाथमें चार नक्षत्र, प्रति चरणमें दो २ नक्षत्र, हृदयमे पांच नक्षत्र, बाये हाथमे चार नक्षत्र, प्रत्येक नेत्रमें दो २ नक्षत्र, मस्तकमे तीननक्षत्र और संक्रान्तिपुरुषकी गुदामें दो नक्षत्र स्थापन करै ॥ १२ ॥ १३ ॥

अथ फलम् ।

मुखे दुःखं करे लाभः पादयोर्भ्रमणं हृदि ।
कान्तास्याद्बन्धनं वामे हस्ते स्यात्स्वीयभे नृणाम् ॥ १४ ॥

(१) यानमित्यपि पाठः ।

सन्मानं नेत्रयोश्चैव अपमानश्च मस्तके ।
गुह्ये चैव भवेन्मृत्युः षडशीतिफलश्रुतिः ॥ १५ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-अब षडशीतिसंक्रान्तिका फल कहतेहैं-ज्योतिस्तत्त्वमे लिखाहै कि, मनुष्यका जन्मनक्षत्र संक्रान्तिपुरुषके मुखमें पडनेसे दुःख होताहै, इसी प्रकार दहिने हाथमें पडनेसे लाभ, दोनों चरणमे भ्रमण, हृदयमे स्त्रीलाभ, बाये हाथमें बन्धन, दोनों नेत्रमें सन्मान, मस्तकमे अपमान और संक्रान्तिपुरुषकी गुदामें मनुष्यका जन्मनक्षत्र पडनेसें मृत्यु होतीहै ॥ १४ ॥ १५ ॥

अथ नाडीनक्षत्रेपापग्रहसंक्रमणफलम् ।

नाडीनक्षत्रदिवसे रविभौमशनैश्वराः ।
संक्रान्ति यस्य कुर्वन्ति तस्य क्लेशोऽभिजायते ॥ १६ ॥ (क)

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ-अब नाडी नक्षत्रमे पापग्रहोकी संक्रान्तिका फल ज्योतिःसारसंग्रहके अनुसार कहतेहैं-यदि सूर्य्य.मंगल, वा शनैश्वर किसी मनुष्यके नाडी नक्षत्रगत होकर अथवा नाडी नक्षत्रके दिनमे एक राशिसे दूसरी राशिमे गमनकरैं तो उस मनुष्यको अत्यन्त क्लेश होताहै ॥ १६ ॥

अथ नाडी नक्षत्रेण पापग्रह संक्रमणस्नानम् ।

गोमूत्रसर्षपैः स्नानं सर्वौषधिजलेन च ।
ग्रहं सम्पूज्य तं दद्याद्विप्राय कनकोत्तमम् ॥ १७ ॥ (ख)

इति ज्योति.सारसंग्रहे ।

अर्थ-ज्योति सारसंग्रहमें लिखाहै कि, नाडी नक्षत्रके दिनमे पापग्रहोंका सञ्चार होनेसे गोमूत्र, सरसो और सर्वौषधियुक्त जलसे स्नानकरै और जो ग्रह नाडी नक्षत्रगत हुआहो उसकी पूजा करै और ब्राह्मणोको सुवर्ण दान करके देय तो दोष दूर हो जाताहै ॥ १७ ॥

अथ जन्मनक्षत्रे रविसंक्रान्तिफलम् ।

यस्य जन्मर्क्षमासाद्य रविसंक्रमणं भवेत् ।
तन्मासाभ्यन्तरे तस्य रोगक्लेशधनक्षयाः ॥ १८ ॥ (ग)

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ–पूर्वमें जो नाडी नक्षत्रमें सूर्य्यके सञ्चारका दोष सामान्यप्रकारसे कहाहै अब केवल नाडी नक्षत्रमें सूर्य्यके सञ्चारका विशेष दोष ज्योतिषतत्त्वके अनुसार कहतेहैं–यदि किसी मनुष्यके जन्मनक्षत्रमें प्राप्त होकर सूर्य्य एकराशिसे दुसरी राशिमे गमनकरै तो उस सौर मासमें इस मनुष्यको रोग, क्लेश और धनक्षय होताहै ॥ १८ ॥

अथ जन्मनक्षत्रेणरविशान्तिस्नानम् ।

तगरसरोरुहपत्रै रजनीसिद्धार्थलोध्रसंयुक्तैः ।
स्नानं जन्मर्क्षदिने रविसंक्रान्तौ नृणां शुभदम् ॥ १९ ॥ (घ)

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ–जन्मनक्षत्रमें संक्रान्तिके लगनेसे उसका प्रतीकार ज्योतिषतत्त्वके अनुसार कहतेहैं–जिस मनुष्यके जन्मनक्षत्रमें संक्रान्ति होय तो तगर पुष्प, पद्मपत्र, हरिद्रा, सफेद सरसों और लोध्रयुक्त जलमें स्नान करनेसे संक्रान्तिजनक दोष दूर होजाताहै॥१९॥

अथ गोचरेऽशुभरवौ स्नानम् ।

मञ्जिष्ठात्वथ पत्राङ्गं कुंकुमं रक्तचन्दनम् ।
एतत्पूर्णैस्ताम्रकुंभैः स्नानमर्कशुविद्धये ॥ १२० ॥ (ङ)

अर्थ–पूर्वोक्त गोचरमें सूर्य्यके अशुभ होनेसे उसके दोषकी शान्तिके अर्थ स्नान कहतेहैं–मजीठ, तेजपात, केसर और लालचन्दन इत्यादि द्रव्ययुक्त जलको तांबेके कलसोमें भरकर उनके द्वारा स्नान करनेसे सूर्य्यका गोचरजनक दोष नष्ट होजाताहै१२०

अपिच ।

धत्तूरबीजसलिलैः स्नायात्संक्रान्तिशान्तये ।
तथा सर्वौषधीभिश्च विष्णुमंत्रांश्च संजपेत् ॥ २१ ॥

इति सारसंग्रहदीपे ।

(ग) पूर्वं नाडीनक्षत्रे रविसञ्चारे सामान्यतो दोष उक्तः । अधुना तु केवलजन्मनाडीनक्षत्रे विशेषदोषमाह–यस्येति । जन्मर्क्षं यत्र पुमान् जात इत्यर्थः ।

(घ) एतत्प्रतीकारमाह–तगरेति । रजनी हरिद्रामात्रमिति ।

(ङ) एतत्प्रतीकारमाह–मञ्जिष्ठेति । पत्राङ्गं तेजपत्र तेन च मञ्जिष्ठादिद्रव्येण पूर्णैस्ताम्रकुम्भैः कृतं स्नानं रविदोषोपशान्तये स्यादित्यर्थः ।

अर्थ-सम्वत्सरप्रदीपमे लिखाहै कि, धतूरेके बीज और सर्वौषधियुक्त जलसे स्नान-करके विष्णुका मन्त्र जपनेसे संक्रान्तिजनक दोष दूर होजाताहै ॥ २१ ॥

दिवामेषसंक्रान्तौ रात्रौ तुलासंक्रान्तौतत्फलम् ।

यदह्नि मेषसंक्रान्तिस्तुलासंक्रमणं निशि ।
तदा प्रजा विवर्द्धन्ते धनधान्यसमृद्धिभिः ॥ २२ ॥

इति तिथितत्त्वे ।

अर्थ-तिथितत्त्वमे लिखाहै कि, दिनमे मेषकी संक्रान्ति (महाविषुवसंक्रान्ति) और रात्रिमे तुलाकी संक्रान्ति (जलविषुवसंक्रान्ति) के होनेसे उस वर्षमे प्रजाकी धनधान्यादिके साथ वृद्धि होतीहै ॥ २२ ॥

शनिमंगलवारे महासंक्रमणफलम् ।

कुजार्कशनिवारेषु महासंक्रमणं यदा ।
तदा भवेत्प्रजानाशोदुर्भिक्षादिभयं महत् ॥ २३ ॥

इति तिथितत्त्वे ।

अर्थ-तिथितत्त्वमे लिखाहै कि, मंगल, रवि वा शनिवारमें यदि महासंक्रमण अर्थात् मेषकी संक्रान्ति होय तो उस वर्षमे प्रजाका नाश और दुर्भिक्षादि अनेक प्रकारके भय होतेहै ॥ २३ ॥

इति रविसंक्रान्तिकथनम् ।

अथ ग्रहणम् ।

भत्रिपादान्तरे (१) राहोः केतोर्वा संस्थितो रविः ।
चतुष्पादान्तरे चन्द्रस्तदा संभाव्यते ग्रहः ॥ २४ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-ग्रहण किस प्रकारसे होताहै अब उसको ज्योतिषतत्त्वके अनुसार कहतेहैं-राहु वा केतु जिस राशिमे स्थित होय तो उस राशिघटक नक्षत्रके त्रिपादमें सूर्य्यके होनेसे सूर्य्यग्रहण, और चतुष्पादमें चन्द्रमाके होनेसे चन्द्रग्रहण होताहै ॥ २४ ॥

अथ चन्द्रग्रहणम् ।

यस्मिन्नृक्षे रविस्तस्माच्चतुर्दशगतः शशी ।
पूर्णिमाप्रतिपत्सन्धौ राहुणा ग्रस्यते शशी ॥ २५ ॥ (२)

इति तिथितत्त्वे ।

अर्थ–अब तिथितत्त्वके अनुसार चन्द्रग्रहण कहतेहैं–जिस नक्षत्रमें सूर्य्य हो उस नक्षत्रसे चौदहवें नक्षत्रमें चन्द्रमाके होनेसे पूर्णिमा और प्रतिपदाकी सन्धिकाल राहु चन्द्रमाको ग्रास करताहै अर्थात् चन्द्रग्रहण होताहै ॥ २५ ॥

सूर्यग्रहणम् ।

कृष्णपक्षे तृतीयायां मासर्क्षे (३) यदि जायते ।
ततस्त्रयोदशे सूर्ये राहुणा ग्रस्यते रविः ॥ २६ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ–ज्योतिषतत्त्वमें लिखाहै कि, कृष्णपक्षकी तृतीयामें यदि मासनक्षत्र (४) होय और उसके तेरहवें नक्षत्रमें यदि सूर्य्य होय तो अमावस्या और प्रतिपदाकी सन्धिकालमें सूर्य्यग्रहण होताहै ॥ २६ ॥

अथ नवांशविशेषे वर्षणादिकथनम् ।

रविभौमनवांशे तु निरभ्रं ग्रासमादिशेत् ।
बुधसौरिनवांशे तु मलिनं क्षुद्रवर्षणम् ॥ २७ ॥
गुरोरंशकमासाद्य दृश्यते स बलाहकः ।
शशिशुक्रनवांशे तु प्रावृट्काले महज्जलम् ॥ २८ ॥
अन्यत्रा (५) व्यक्तभूतौ तौ दृश्येते च्छादिताम्बरौ ॥ २९ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ–ज्योतिषतत्त्वमें लिखाहै कि, सूर्य्य और मङ्गलके नवांशमे ग्रहण होनेसे आकाशमण्डल मेघशून्य निर्म्मल होताहै, अतएव ग्रहण भलीभाँतिसे दिखाई देताहै, बुध और शनिके नवांशमें ग्रहण होनेसे आकाश मेघावृत होजाताहै और उसके द्वारा अल्पवृष्टि होतीहै, बृहस्पतिके नवांशमें ग्रहण होनेसे आकाश मेघावृत होजाताहै और उसके द्वारा ग्रहण नहीं दीखपडताहै, चन्द्रमा और शुक्रके नवांशमे वर्षाऋतुमें ग्रहण समयमें अत्यन्त वृष्टि होतीहै और वर्षाभिन्न ऋतुमे चन्द्रमा और शुक्रके नवांशमें ग्रहण

---

(३) मासर्क्ष कार्त्तिकादौ कृत्तिकादि "अन्त्योपान्त्यौ त्रिभौ ज्ञेयौ फाल्गुनश्च त्रिभो मत । शेषमासा द्विभा ज्ञेयाः कृत्तिकादिव्यवस्थया " इति मलमासतत्त्वधृतवचनात् । एतदपि नाति- पादान्तरे सति ज्ञेयं राहोः पादभोगश्च मासद्वयेन ।

(४) मासनक्षत्र कार्त्तिकमें कृत्तिकादि, वैशाखमें विशाखादि, ज्येष्ठमे ज्येष्ठादि [illegible] जानना चाहिये ।

(५) अन्यत्र वर्षेतरकाले तौ चन्द्रार्कौ इति तिथितत्त्वे स्मार्त्ताः ।

होनेसे मेघद्वारा आकाश आच्छादित होजाताहै और आकाशके आच्छादित होजानेसे ग्रहण नहीं दीखपडताहै ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥

अथ ग्रहणसमये राहुवर्णफलम्।

श्वेते क्षेमसुभिक्षं ब्राह्मणपीडाञ्च निर्दिशेद्राहौ।
अग्निभयमनलवर्णे पीडा च हुताशनवृत्तीनाम् ॥ १३० ॥

इति वराहमिहिरः।

अर्थ-वराहमिहराचार्य्यने कहाहै कि, ग्रहणसमय राहुका श्वेतवर्ण दीखपडनेसे सुभिक्ष और ब्राह्मणजातिको पीडा होतीहै, और राहुका अग्निवर्ण दीखपडनेसे अग्निका भय और ब्राह्मणोको पीडा होतीहै ॥१३० ॥

हरिते रोगोऽनुतापः सस्यानामीतिभि (+) श्च विध्वंसः।
कपिले शीघ्रगसत्वम्लेच्छध्वंसोऽथ दुर्भिक्षम् ॥ ३१ ॥

इति वराहमिहरः।

अर्थ-पीतवर्ण दीख पडनेसे मनुष्यको रोग और अनुताप होताहै और अतिवृष्टि, अनावृष्टि प्रभृतिसे सस्यका नाश होताहै। कपिलवर्ण दीखपडनेसे शीघ्र चलनेवाले मनुष्योका और म्लेच्छोंका नाश होताहै और दुर्भिक्ष होताहै इसप्रकार वराहमिहिर चार्य्यने कहाहै ॥ ३१ ॥

अरुणकिरणानुरूपे दुर्भिक्षं वृष्टयो विहगपीडा च।
धूम्राक्षे क्षेमसुभिक्षमादिशेन्मन्दवृष्टिश्च ॥ ३२ ॥

इति वराहमिहिरः।

अर्थ-वराहमिहराचार्य्यने कहाहै कि, ग्रहणसमय राहुका अरुणवर्णके समान वर्ण दीख पड़नेसे दुर्भिक्ष, अतिवृष्टि और पक्षियोका नाश होताहै और धूम्रवर्ण दीखनेसे मङ्गल, सुभिक्ष और अल्पवृष्टि होतीहै ॥ ३२ ॥

कपोतारुणकपिले श्यामाभे च क्षुद्भयं विनिर्दिशेत्।
कपोतः शूद्राणां व्याधिकरः कृष्णवर्णश्च ॥ ३३ ॥

विमलकमलपीताभो वैश्यध्वंसी भवेत्सुभिक्षाय ।
सार्चिष्मत्यग्निभयं गैरिकरूपे च युद्धानि ॥ ३४ ॥

इति वराहमिहिर ।

अर्थ–राहुका निर्म्मल पद्मकी समान वा पीत वर्ण ग्रहणसमयमें दीखनेसे वैश्योका नाश और सुभिक्ष होताहै । अत्यन्त तेजस्वी राहु देखपडनेसे अग्निका भय होताहै और गेरूके समान राहुका वर्ण दीखनेसे पृथिवीमें युद्ध होताहै ॥ ३४ ॥

दूर्वाकाण्डश्यामे हारिद्रे चापि विनिर्दिशेन्मरणम् ।
अशनिभयसम्प्रदायी पाटलिकुसुमोपमो राहुः ॥ ३५ ॥ (क)

इति वराहमिहिरः ।

अर्थ–वराहमिहिराचार्य्यने कहाहै कि, राहुका दूर्वादलके समान श्यामवर्ण व हरिद्रावर्ण ग्रहणके समयमें देखपडनेसे जीवोंका नाश होताहै पाटलिपुष्पके वर्णकी समान राहु देख पडनेसे वज्राघातसे अनेक जीवोंका नाश होताहै ॥ ३५ ॥

अथ ग्रहणदर्शननिषेधः ।

सप्ताष्टजन्मशेषेषु चतुर्थे दशमे तथा ।
नवमे च तथा चन्द्रे न कुर्याद्राहुदर्शनम् ॥ ३६ ॥

इति राजमार्त्तण्डे ।

अर्थ–मनुष्यको जन्मराशिसे किस २ राशिमे ग्रहण न देखना चाहिये उसको राजमार्त्तण्डके अनुसार कहतेहैं–जन्मचन्द्रमा और जन्मराशिसे सातवे, आठवें, बारहवें, चौथे, दशवें स्थानमें चन्द्रमाके होनेसे राहुको न देखना चाहिये ॥ ३६ ॥

अपिच ।

जन्मभे जन्मराशौ च षष्ठाष्टमगते तयोः । (ख)
चतुर्थे द्वादशे चन्द्रे न कुर्य्याद्राहुदर्शनम् ॥ ३७ ॥
ग्रासदर्शनमात्रेण चार्थहानिर्म्महद्भयम् ।
जायते नात्र सन्देहस्तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ॥ ३८ ॥

इति वसिष्ठ ।

(क) एतानि वचनानि कृत्यचिन्तामणौ धृतानि ।

(ख) जन्मनक्षत्रापेक्षया षष्ठे अर्थात् सप्तमतारायाम् निधनेऽपि चेत्येतन्मार्त्त ॥ [illegible] र्त्तनाभिहितम् ।

अर्थ–वसिष्ठने कहाहै कि, मनुष्यके जन्मतारासे सातवे तारामें और जन्मराशिमें और जन्मराशिसे आठवी, नववी चौथी और बारहवीं राशिमें राहुको न देखै जो मनुष्य इन राशिमे ग्रहणको देखताहै उसके अर्थका नाश और अत्यन्त भय होताहै अतएव उक्त राशिमें मनुष्यको कभी ग्रहण न देखना चाहिये ॥ ३७–३८ ॥

अन्यच्च ।

जन्मसप्ताष्टरिष्फाङ्कदशमस्थे निशाकरे ।
दृष्टो रिष्टप्रदो राहुर्ज्जन्मर्क्षे निधनेऽपि च ॥ ३९ ॥ (ग)

इति वराहमिहिरसंहितायाम् ।

अर्थ–वराहमिहिरसंहितामें लिखाहै कि, जन्मराशि और जन्मराशिसे सातवें, आठवें बारहवे, नववे वा दशवे स्थानमे चन्द्रमा होनेसे और जन्मनक्षत्र तथा जन्मनक्षत्रसें सातवें नक्षत्रमें, ग्रहणको न देखै ॥ ३९ ॥

अपरञ्च ।

राशौ यत्र विधुन्तुदे न तरणिश्चन्द्रोऽथवा ग्रस्यते
तस्माद्वेदहुताशशङ्कररसाः (घ) कल्याणदा राशयः ॥
मध्यस्था रविसायकाङ्कदशमाः (ङ) सामान्यभोगप्रदा
युग्मसौतुरगाष्टमाः (१) खलु नृणां यच्छन्ति नेष्टं फलम् ॥ १४० ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ–ज्योतिःसारसंग्रहमें कहाहै कि, जिस राशिमें स्थित होकर राहु सूर्य्य और चन्द्रमाका ग्रास करै उसी राशिसे चौथे, तीसरे, ग्यारहवें और छठे स्थानमें जिसकी जन्मराशि होय उस मनुष्यको ग्रहण शुभ होताहै, और राहुस्थित राशिसे बारहवें, पांचवे, नववे और दशवे स्थानमें जिसकी जन्मराशि होय उसको ग्रहण मध्यम फलदायक होताहै और राहु जिस राशिमे स्थित होय उस राशिसे दूसरे, सातवें और आठवें स्थानमे जिसकी जन्मराशि होय उस मनुष्यको ग्रहण अशुभदायक होताहै ॥ १४० ॥

प्रकारान्तरञ्च ।

यस्मिंस्त्रिजन्मनक्षत्रे ग्रस्येते शशिभास्करौ ।
तज्जातीनां भवेत्पीडा ये नराः शान्तिवर्जिताः ॥ ४१ ॥

इति गर्गः ।

अर्थ–गर्गने कहाहै कि, मनुष्यके त्रिजन्मनक्षत्रमें (×) चन्द्रग्रहण और सूर्य्यग्रहण होय और वह मनुष्य यदि ग्रहणके दोषकी शान्ति न करै तो सजातिके साथ पीडित होताहै ॥ ४१ ॥

अपिच ।

वैनाशिक (१) ऋक्षे दृष्टं ग्रहणं सुधांशुभास्करयोः ।
जनयति रोगं बहुधा क्लेशं वित्तक्षयं चाशु ॥ ४२ ॥

इति तिथितत्त्वे ।

अर्थ–तिथितत्त्वमें लिखाहै कि, वैनाशिक अर्थात जन्मनक्षत्रसे सातवे तारामे यदि कोई मनुष्य चन्द्रग्रहण वा सूर्य्यग्रहणको देखै तो उस मनुष्यको रोग, अनेकप्रकारके क्लेश और उसके धनकी हानि शीघ्रही होतीहै ॥ ४२ ॥

अन्यच्च ।

सप्ताष्टजन्मशेषाङ्कचतुर्थदशमे विधौ ।
त्रिजन्मनि त्रिनिधने न कुर्याद्राहुदर्शनम् ॥ ४३ ॥
दृष्टस्तु जनयेद्भीतिं क्लेशं रोगं धनक्षयम् ।
दैवात्तत्र विधुं दृष्ट्वा दद्यात्स्वर्णं द्विजातये ॥ ४४ ॥

इति राजमार्त्तण्डे वचनान्तरम् ।

अर्थ–राजमार्त्तण्डग्रन्थके वचनान्तरमे भी लिखा है कि, जन्मचन्द्रमामें वा जन्मचन्द्रमासे सातवें आठवें नवमें चौथे वा दशवें चन्द्रमामें त्रिजन्म (अ) और निधन नक्षत्रमें

(×) त्रिजन्मनक्षत्र पूर्वमें कहचुके हैं ।

(१) वैनाशिकऋक्षे त्रयोविंशतिनक्षत्रे इति केचित् । वस्तुतस्तु वैनाशिकपद [illegible] निधनेऽपि चेत्येकवाक्यत्वाद्वैनाशिकपदस्य गर्गेण विपत्करादिसाहचर्य्यात् त्रयोविंशतिनक्षत्र [illegible] प्रत्यरिपदप्रासादपि सप्तमतारायां पठितत्वाच्च यथा " विपत्करप्रत्यरिमित्रितेषु वैनाशिके [illegible] हि कर्म्म । सर्वं नृणां निष्फलमेव तस्मात्कृतेऽपि तत्रास्ति शुभं न किंचित ।

इति तिथितत्त्वे स्मार्त्तेनोक्तम् [illegible] ।

(अ) जन्मनक्षत्र और जन्मनक्षत्रसे दशवें नक्षत्रका और उन्नीसवें नक्षत्रका नाम त्रिजन्मनक्षत्र है ।

(आ) राहुको न देखै जो मनुष्य उपरोक्त निषिद्ध राश्यादिमे राहुको देखते हैं उनको भय, क्लेश, रोग और धनका क्षय (नाश) होता है दैवयोगसे देखनेसे ब्राह्मणको सुवर्ण दान करके देवै ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

अपरश्च ।

जन्माष्टजायान्त्यखधर्म्म (इ) संस्थे
निशाकरे जन्मसु तारकासु ॥
दृष्ट्वा तमश्चन्द्रमसं (ई) प्रयत्ना-
दभ्यर्च्य दद्यात्कनकं द्विजाय ॥ ४५ ॥

इति तिथितत्त्वे ।

अर्थ-तिथितत्त्वमे कहा है कि, मनुष्यकी जन्मराशि और जन्मराशिसे आठवें सातवे बारहवे दशवें वा नवमे स्थानमे चन्द्रमाके स्थित होनेसे अथवा जन्मतारामे यदि ग्रहणको देखै तो यत्नपूर्वक पूजनकरके ब्राह्मणको सुवर्णदान करके देय ॥ ४५ ॥

अथ ग्रहणगतनाडीनक्षत्रफलम् ।

ग्रहणं रविचन्द्रमसोर्नाडीनक्षत्रवासरे यस्य ।
अब्दार्द्धाभ्यन्तरतो दुष्टा नाड्यः समस्ताःस्युः ॥ ४६ ॥ (उ)

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ-अब मनुष्यकी नाडीनक्षत्रमे ग्रहण होनेसे उसका फल ज्योतिःसारसंग्रहके अनुसार कहते है-जिननक्षत्रमें सूर्य्य और चन्द्रमाका ग्रहण होय और वह नक्षत्र यदि मनुष्यकी जन्मादिनाडीके मध्यमे कोईभी एक नाडी होय तो छः महीनेके मध्यमें इस मनुष्यकी सभी नाडी दूषित होजाती है ॥ ४६ ॥

ग्रहणगतनाडीनक्षत्रदोषोपशमस्नानम् ।

ग्रहणग्रहपीडितनाडीनक्षत्रदोषोपशमनाय ।
सह शतपुष्पैः स्नायात्फलिनीफलचन्दनोशीरैः ॥ ४७ ॥ (ऊ)

अर्थ–जिस मनुष्यके नाडीनक्षत्रमें ग्रहण होय उसके दोषशान्तिके अर्थ शतपुष्प (सोएका शाक वा सौंफ) प्रियङ्गु (पीपल) जातिफल (जायफल) चन्दन और खसकी जड इन सब द्रव्योंको जलमें डालकर उसके द्वारा स्नान करनेसे ग्रहणगत नाडीनक्षत्रका दोष दूर होजाता है ॥ ४७ ॥

अथ सूर्य्यग्रहणे विशेषः ।

ताम्रपात्रं तिलैः पूर्णं पूर्णं वा गव्यसर्पिषा ।
भास्करग्रहणे दद्यान्नाडीदोषोपशान्तये ॥ ४८ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ–ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, सूर्य्यग्रहणमें नाडीदोषकी शान्तिके निमित्त ताम्रपात्रमें तिलभरकर अथवा गौका घृत भरकर दान करना चाहिये ॥ ४८ ॥

अथ चन्द्रग्रहणे विशेषः ।

घृतकुम्भोपरि निहितं शङ्खं नवनीतपूरितं दद्यात् ।
नाड्यादिदोषशान्त्यै द्विजाय दोषाकरग्रहणे ॥ ४९ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ–चन्द्रग्रहणमें नाडीका दोष दूरकरनेके अर्थ गौकाघी भरकर कुम्भमे उसके ऊपर मक्खनसे भरकर शङ्ख धरके आनन्दके साथ ब्राह्मणको दान करके देवै ॥ ४९ ॥

अथ स्वराश्यादौ ग्रहस्थिते ग्रहणफलम् ।

यस्य राशौ ग्रहाः पञ्चाथवा सप्त नराधिप ।
ग्रहणं चन्द्रसूर्यस्य ग्रहैर्वाष्टमसंस्थितैः ॥ १५० ॥
बलिदानं प्रकर्त्तव्यं मातॄणां पूजनं हितम् ।
सूर्यस्याभ्यर्च्चनं कार्यं शिवस्याशुभनाशनम् ॥ ५१ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ–ज्योतिषतत्त्वमे लिखाहै कि, यदि किसी मनुष्यकी जन्मराशिमे पांच वा सात ग्रह होंय अथवा आठवे स्थानमे ग्रह होंय और उससमय चन्द्र वा सूर्य्यग्रहण

प्रसिद्धं फलनीफलं प्रियंगुफलमित्यर्थः । अन्यच्च राजमार्तण्डे–उक्त यथा–"गव्यपयोगुडयुत घृतमधु दधि पायसं क्रमेणाह। तरुणद्विजाय दद्यादनिष्टनाडीविशुद्ध्यर्थम् । ताम्रपात्र ति० पूर्णम्" इत्यादि । घृतकुम्भोपरि निहितमित्यादि । एष च प्रतीकारो ग्रहणसमये ग्रहणानन्तरं वा कार्यः । न तु प्राक् यतः प्रतीकारो नैमित्तिक एव निमित्तानन्तरञ्च नैमित्तिक कर्त्तव्यम् [illegible] । एवञ्च यत्र यत्र प्रतीकार उक्तस्तत्र तत्र दोषकारणस्य पश्चादेव कर्त्तव्य इत्यर्थः ।

होय तो मातृगणकी पूजा और बलिदान करै और दोषशान्तिके अर्थ सूर्य्य और शिवकी पूजा करनी चाहिये ॥ १५० ॥ ५१ ॥

अथ ग्रहणफलम्।

ग्रस्तावुदितास्तमितौ शारदधान्यावनीश्वरक्षयदौ।
सर्वग्रस्तौ च दुर्भिक्षमरकदौ पापसंदृष्टौ ॥ ५२ ॥

इति वराहसंहितायाम्।

अर्थ-अब वराहसंहिताके अनुसार ग्रहणका फल कहतेहैं-ग्रस्तोदय वा ग्रस्तास्त होनेसे शरत्कालके धान्यका और राजाका अमङ्गल होताहै, पापग्रहोंकी दृष्टिमें सर्वग्रस्त होनेसे दुर्भिक्ष और मरकीआदि होतीहै ॥ ५२ ॥

मुक्ते सप्ताहान्तः पांसुनिपातोऽर्थसंक्षयं कुरुते।
नीहारोरोगभयं भूकम्पः प्रचुरनृपमृत्युम् ॥ ५३ ॥

इति वराहसंहितायाम्।

अर्थ-ग्रहणके उपरान्त सात दिनके मध्यमे यदि पांशुवृष्टि होय तो धनका नाश होताहै और कुहिर होनेसे रोगका भय होताहै और ग्रहणके उपरान्त सात दिनके मध्यमें भूकम्प होनेसे राजाका अमङ्गल होताहै ॥ ५३ ॥

उल्कामन्त्रिविनाशं नानावर्णा घनाश्च भयमतुलम्।
स्तनितं गर्भविनाशं विद्युन्नृपदंष्ट्रिपरिपीडाम् ॥ ५४ ॥

इति वराहसंहितायाम्।

अर्थ--ग्रहणके उपरान्त सात दिनके मध्यमे उल्कापात होनेसे राजमन्त्रीका नाश होताहै, अनेक प्रकारके मेघोका वर्ण आकाशमे देख पडनेसे प्राणियोको अत्यन्त भय होताहै, मेघोके गर्ज्जनेसे गर्भवती स्त्रियोका गर्भ गिरजाताहै और बिजली चमकनेसे राजाको पीडा होतीहै ॥ ५४ ॥

परिवेषो (१) रुक्पीडां दिग्दाहो नृपवयश्च साग्निभयम्।
रूक्षो वायुः प्रबलश्चौरसमुत्थं भयं धत्ते ॥ ५५ ॥

निर्घातः (२) सुरचापो दण्डश्च क्षुद्भयं स्वपरचक्रम् ।
ग्रहयुद्धे नृपयुद्धं केतुश्च तथैव निर्दिष्टः ॥ ५६ ॥

इति वराहसंहितायाम् ।

अर्थ–ग्रहणके उपरान्त सात दिनके मध्यमें निर्घात (आकाशजनित अपशब्द) सुननेसे, इन्द्रका धनुष और दण्ड देखपडनेसे प्राणियोंकी क्षुधामें कष्ट होताहै स्वचक्र और परचक्रका भय होताहै और ग्रहोंका युद्ध होनेसे राजाओंका युद्ध होताहै ॥५६॥

अथ ग्रहणदोषप्रतिप्रसवकथनम् ।

अविकृत (३) सलिलनिपातैः सप्ताहान्तः सुभिक्षमादेश्यम् ।
यच्चाशुभं ग्रहणजं तत्सर्वं नाशमुपयाति ॥ ५७ ॥

इति वराहसंहितायाम् ।

अर्थ–ग्रहणदोषके प्रतिप्रसव कहतेहैं–वराहसंहितामें लिखाहै कि, ग्रहणके उपरान्त सात दिनके मध्यमें अविकृत अर्थात् करकापात और झटिकादि न होकर मेघसे वृष्टि होनेसे पृथिवीमें बहुत धान्य होकर सुभिक्ष होताहै और ग्रहणजनक जो दोष है उनका नाश होजाताहै ॥ ५७ ॥

अथ ग्रहणे भोजनव्यवस्था ।

चन्द्रस्य यदि वा भानोर्यस्मिन्नहनि भार्गव ।
ग्रहणन्तु भवेत्तत्र तत्पूर्वां भोजनक्रियाम् ॥ ५८ ॥
नाचरेत्सग्रहे चैव तथैवास्तमुपागते ।
यावत्स्यान्नोदयस्तस्य नाश्नीयात्तावदेव तु ॥ ५९ ॥
मुक्तिं दृष्ट्वा तु भुञ्जीत स्नानं कृत्वा परेऽहनि ॥ १६० ॥

इति विष्णुधर्मोत्तरे ।

अर्थ–अब ग्रहणमें भोजनकी व्यवस्था कहते है–विष्णुधर्मोत्तरमें लिखा है कि, चन्द्रग्रहण वा सूर्य्यग्रहण जिस दिन होय उस दिन ग्रहणके पूर्वमें वा ग्रहणके समय भोजन न करना चाहिये और ग्रस्तास्त होनेसे जबतक उदय दीखपडे तबतक भोजन न करै दूसरे दिन उदयको देखकर स्नान करके भोजन करना चाहिये ॥५८–१६० ॥

---

(२) "यदान्तरिक्षे बलवान्मारुतो मरुताहतः । पतत्यधो यो निर्घातो निर्घात [illegible] " इति ग्रन्थान्तरे ।

(३) अविकृतेति करकादिरहितैर्थः इति तिथितत्त्वे ।

अपिच ।

चन्द्रसूर्यग्रहे भुक्त्वा राजापत्येन शुद्धचति ।
तस्मिन्नेव दिने (क) भुक्त्वात्रिरात्राच्छुद्धिरिष्यते ॥ ६१ ॥

इति देवल. ।

अर्थ–देवलने कहाहै कि, चन्द्रग्रहणके समय भोजन करनेसे प्रजापत्य प्रायश्चित्त करना चाहिये, ग्रहणके दिन निषिद्ध कालमें जो मनुष्य भोजन करै तो वह त्रिरात्र उपवास करनेसे शुद्ध होताहै ॥ ६१ ॥

अन्यच्च ।

आदित्येऽहनि संक्रान्तौ ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ।
पारणञ्चोपवासञ्च न कुर्यात्पुत्रवान्गृही ॥ ६२ ॥ (ख

इति तिथितत्त्वे ।

अर्थ–तिथितत्त्वमे कहाहै कि, रविवारकी संक्रान्तिमें तथा चन्द्र और सूर्य्यके ग्रहणमे पुत्रवान् गृहस्थ मनुष्यको पारणा और उपवास न करना चाहिये ॥ ६२ ॥

अथ ग्रहणात्पूर्वभोजननिषेधमाह ।

सूर्यग्रहे तु नाश्नीयात्पूर्वं यामचतुष्टयम् ।
चन्द्रग्रहे तु यामांस्त्रीन्बालवृद्धातुरैर्विना ॥ ६३ ॥

इति वृद्धगौतमः ।

अर्थ–अब गौतममुनिके वचनानुसार ग्रहणके पूर्वमे भोजनका निषेध कहतेहैं– बालक, वृद्ध और रोगी मनुष्यको छोडकर अन्य मनुष्य सूर्य्यग्रहणके चार प्रहर और चन्द्रग्रहणके तीन प्रहर पूर्वसे भोजन न करै ॥ ६३ ॥

चन्द्रस्य ग्रस्तोदये विशेषमाह ।

ग्रस्तोदये विधोः पूर्वं नाहर्भोजनमाचरेत् ॥ ६४ ॥

अथ बालवृद्धातुरविषये ।

सायाह्ने ग्रहणं चेत्स्यादपराह्ने न भोजनम् ।
अपराह्ने न मध्याह्ने मध्याह्ने चेन्न संगवे ।
सङ्गवे (१) ग्रहणं चेत्स्यान्नपूर्वं भोजनक्रिया ॥ ६५ ॥

इति मार्कण्डेयः ।

अर्थ–बालक, वृद्ध और रोगीके विषयमे मार्कण्डेय मुनिने कहाहै कि, सायंकालमे ग्रहण होनेसे बालक,वृद्ध और रोगी मनुष्यको अपराह्ल समयमे भोजन न करना चाहिये, इसी प्रकार अपराह्नमें ग्रहण होनेसे मध्याह्नमें, मध्याह्नमे होनेसे सङ्गवमे और सङ्गवमें ग्रहण होनेसे प्रातःकालमे भोजन न करना चाहिये ॥ ६५ ॥

अथ ग्रहणादौ स्नानमाह ।

संक्रमे ग्रहणे चैव न स्नायाद्यस्तु मानवः ।
सप्तजन्मसु कुष्ठी स्याद्दुःखभागी च सर्वदा ॥ ६६ ॥

इति वृहद्वसिष्ठः ।

अर्थ–ग्रहण संक्रान्ति आदिमे स्नानकी आवश्यकता कहतेहैं--वृहद्वसिष्ठने कहाहै कि, जो मनुष्य संक्रान्तिमें और ग्रहणके निमित्त स्नान नहीं करतेहैं वे सातजन्मपर्य्यन्त कोढी होतेहैं और सदा दुःखी रहतेहैं ॥ ६६ ॥

अपरश्च ।

सूतके मृतके चैव न दोषो राहुदर्शने ।
स्नानमात्रन्तु कर्त्तव्यं दानश्राद्धविवर्जितम् ॥ ६७ ॥ (क)

इति संवत्सरप्रदीपः ।

अर्थ–संवत्सरप्रदीपमे कहाहै कि, जननाशौच वा मरणाशौचके समय यदि ग्रहण होय तो उसको देखकर अवश्य स्नान करनाचाहिये, किन्तु जनन, मरण वा ग्रहणनिमित्तक दान और श्राद्ध नही करना चाहिये ॥ ६७ ॥

अथ राहुदर्शने सूतककथनम् ।

सर्वेषामेव वर्णानां सूतकं राहुदर्शने ।
स्नात्वा कर्म्माणि कुर्व्वीत शृतमन्नं विवर्ज्जयेत् ॥ ६८ ॥

इति तिथितत्त्वे ।

---

(१) "प्रातःकाले मुहूर्त्तांस्त्रीन्सङ्गवस्तावदेव तु । मध्याह्नस्त्रिमुहूर्त्तः स्यादपराह्णस्ततः परम् । सायाह्नस्त्रिमुहूर्त्तः स्यात्" इत्यादि ।

(क) अत्राशौचेऽपि स्नानं कर्त्तव्यं न श्राद्धादि । इति स्मार्त्तेनोक्तम् ।

अर्थ–अब तिथितत्त्वके अनुसार राहु देखनेका अशौच कहतेहैं–राहुके देखनेसे सभी वर्णके मनुष्योंको अशौच होताहै, अतएव स्नान करके कर्म्म करै और पूर्वके पक्वान्नको परित्याग करना चाहिये ॥ ६८ ॥

अथ ग्रहणमुक्तिस्नानम् ।

ग्रहणे शावमाशौचं विमुक्तौ सौतिकं स्मृतम् ।
तयोः सम्पत्तिमात्रेण उपस्पृश्य क्रियाक्रमः ॥ ६९ ॥

इति ब्रह्माण्डपुराणे ।

अर्थ–ब्रह्माण्डपुराणमे लिखाहै कि, ग्रहण होनेसे मृताशौच होताहै और ग्रहण-मुक्त होनेसे जननाशौच होताहै, अतएव ग्रहणके उपरान्तमें स्नान करके क्रिया करनी चाहिये ॥ ६९ ॥

अथ ग्रहणादौ पर्य्युषितान्नवर्ज्जनकथनम् ।

प्रेतश्राद्धे यदुच्छिष्टं ग्रहे पर्य्युषितञ्च यत् ।
दम्पत्योर्भुक्तशेषञ्च न भुञ्जीत कदाचन ॥ १७० ॥

इति स्मृतौ ।

अर्थ–स्मृतिमें कहाहै कि, प्रेतश्राद्धके पात्रका शेष अन्न, ग्रहणसमयका अन्न तथा घरके स्वामी और स्वामिनीकी भोजनथालीका बचाभया अन्न कभी न खाना चाहिये ॥ १७० ॥

अथ वैधग्रहणदर्शनफलम् ।

चन्द्रे वा यदि वा सूर्यें दृष्टे राहौ महाग्रहे ।
अक्षयं कथितं पुण्यं तत्राप्यर्के विशेषतः ॥ ७१ ॥

इति मार्कण्डेय. ।

अर्थ–अब वैधग्रहण देखनेका फल कहतेहैं–मार्कण्डेयमुनिने कहाहै कि, चन्द्रग्रहण वा सूर्य्यग्रहणको कोई मनुष्य देखै तो उसका अक्षय पुण्य होताहै, विशेषतः सूर्य्यग्रहणके देखनेसे अधिक पुण्य होताहै ॥ ७१ ॥

अथ वैधतरग्रहणदर्शनानिषेधः ।

तैले जले तथा वक्रमादर्शे च मलान्विते ।
न पश्येन्न तथा पश्येदुपरक्तं दिवाकरम् ॥ ७२ ॥

इति विष्णुधर्मोत्तरे ।

अर्थ–अब विष्णुधर्मोत्तरग्रन्थके वचनानुसार वैधतर ग्रहण देखनेका निषेध कहते हैं–तेलमे, जलमें और मलयुक्त दर्पणमें मुखको न देखै और सूर्य्य चन्द्रका ग्रहणभी न देखना चाहिये ॥ ७२ ॥

इति ग्रहणम् ।

अथ कूर्मादिचलनम् ।

मीने कुलीरे मकरे च कूर्म्मः
सिंहे (×) तुलायां मिथुने फणीशः ॥
कुम्भे (१) धनुःकन्यकयोर्धरित्री
मेषे वृषाल्योर्दिगिभाश्चलन्ति ॥ ७३ ॥ (२)

इति ज्योति.सारसंग्रहे ।

अर्थ--अब भूकम्पका विषय वर्णन करतेहैं--ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखाहै कि, मीन, कर्क और मकर लग्नमें भूकम्प होनेसे कूर्म्म (कच्छप) विचालित होतेहैं, इसीप्रकार सिंह तुला और मिथुन लग्नमें नाग (अनन्त) कुम्भ, धन और कन्या लग्नमें पृथिवी और मेष, वृष और वृश्चिक लग्नमें दिग्गजगण विचलित होतहे ॥ ७३ ॥

तस्य फलम् ।

कच्छपे चलिते मृत्युर्दुर्भिक्षमथ पन्नगे ।
कुशलं (३) सर्वजन्तूनां पृथिव्याश्च गजेऽपि च ॥ ७४ ॥

इति ज्योति:सारसंग्रहे ।

अर्थ–ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि, कच्छपके चलायमान होनेसे अति मृत्यु होति है इसी प्रकार नागमें दुर्भिक्ष, और पृथिवी तथा हाथियोके चलायमान होनेसे प्राणियोंका मङ्गल होता है ॥ ७४ ॥

अन्यच्च

कीटे मीनमृगेन्द्रयोर्यदि मही कूर्मो ध्रुवं कम्पते
कन्यायां मिथुने भुजङ्गमपतिर्मेषे वृषे दन्तिनः ॥

(×) 'कुम्भे तुलायां मिथुने फणीश ' । इति ग्रन्थान्तरे ।
(१) 'सिंहे धनुः कन्यकयोर्धरित्री ' इति पुस्तकान्तरे ।
(२) इदं लग्नपरमिति प्राचीनाः ।
(३) 'आरोग्यं सुखसम्पत्ति. पृथिव्याश्च गजेऽपि च' इति ग्रन्थान्तरे ।
"कुशलं सर्वराज्येषु पृथिव्यां चलिते गजे" इत्यपि पुस्तकान्तरे ।

शैलस्तौलिघटे प्रकीर्त्तितमिदं व्यासादिगर्गादिभिः
शेषस्था धरणी यदा विचलते सर्वत्र संकारिणी ॥ ७५ ॥

इति ग्रन्थान्तरे ।

अर्थ-ग्रन्थान्तरमे कहा है कि, वृश्चिक, मीन और सिंह लग्नमें भूकम्प होनेसे कूर्म्म (कच्छप) चलायमान होते हैं इसीप्रकार कन्या और मिथुन लग्नमे सर्प, मेष और वृष लग्नमें हाथी, तुला और कुम्भ लग्नमे पर्वत और कर्क धन और मकर लग्नमें भूकम्प होनेसे पृथिवी चलायामन होती है ऐसा व्यास आदिमुनियोने कहाहै ॥ ७५ ॥

अपरञ्च ।

वृषवृश्चिकमेषेषु गजाश्च परिकम्पिताः ।
मृगकर्कटयोश्चापि कच्छपः परिकीर्तितः ॥ ७६ ॥
कन्यामिथुनसिंहेषु पन्नगाः कम्पिता ध्रुवम् ।
शेषे राशौ वसुमती कम्पिता शुभदा स्मृता ॥ ७७ ॥

इति ग्रन्थान्तरे ।

अर्थ-वचनान्तरमे कहाहै कि, वृष वृश्चिक और मेष लग्नमे हाथी विचालित होतेहैं, इसीप्रकार मकर और कर्कलग्नमें कच्छप कन्या, मिथुन और सिंह लग्नमें सर्प और तुला, धन, कुम्भ और मीन लग्नमे पृथिवी स्वयं विचालिता होतीहै और यह भूकम्प शुभ होताहै ॥ ७६ ॥ ७७ ॥

फलम् ।

कच्छपे मरणं घोरं दुर्भिक्षं परिकीर्त्तितम् ।
पृथिव्यां शुभमतुलं मंगलं पन्नगे स्मृतम् ॥
गजेषु नरनाशः स्याद्व्यासादिवचनं यथा ॥ ७८ ॥

इति ग्रन्थान्तरे ।

अर्थ-कच्छपके चलित होनेसे घोरतर महामारी और दुर्भिक्ष होता है इसी प्रकार पृथिवी स्वयं चलिता होनेसे मङ्गल होता है सर्पोके चलायामान होनेसे शुभ और हाथीयोंको चलायमान होनेसे मनुष्योंकी मृत्यु होती है ॥ ७८ ॥

अथ हेमन्तादौ भूकम्पफलम् ।

हेमन्ते च वसन्ते च यदा चलति मेदिनी ।
दिवा दुर्भिक्षमरणं रात्रौ कम्पः शुभावहः ॥ ७९ ॥

वर्षाकाले तथा ग्रीष्मे शरच्छिशिरयोरपि ।
रात्रौ कम्पे त्वनावृष्टिर्दुर्भिक्षं पीडिताः प्रजाः ॥ १८० ॥ (क)

इति ग्रन्थान्तरे ।

अर्थ–हेमन्त ऋतुमें और वसन्तऋतुमें यदि दिनमें भूकम्प होय तो दुर्भिक्ष और महामारी होतीहै और रात्रिमें होनेसे शुभ होताहै, और वर्षाऋतुमें, ग्रीष्ममे, शरत्कालमें और शिशिरऋतुमें रात्रिके समय भूकम्प होनेसे अनावृष्टि, दुर्भिक्ष और प्रजाको पीडा होतीहै ॥ ७९ ॥ १८० ॥

अथ वारफलम् ।

रविशनिकुजवारे भूमिकम्पो यदि स्या-
त्तदपि मनुजपीडां सस्यहानिं करोति ॥ (ख)
दहति सकलराज्यं छत्रभङ्गो नृपाणां
भवति विषमयुद्धं संक्षयन्त्येव लोकाः ॥ ८१ ॥

इति ग्रन्थान्तरे ।

अर्थ–अब भूकम्प होनेसे वारोंका फल कहतेहैं–रवि, शनि वा मंगलवारमे यदि भूकम्प होय तो मनुष्योंको पीडा, शस्य (धान्य) का नाश, सर्वस्थानमे अग्निदाह, राजच्छत्रभङ्ग, घोरतर युद्ध होताहै और मनुष्योंकी अनेकप्रकारसे हानि होतीहै ॥ ८१ ॥

शीघ्रशीघ्रं चलति वसुधा चन्द्रसूर्योपरागे
लोके वह्निर्ज्वलति सलिलं चञ्चलं वा कदाचित् ॥
पृथ्वी शस्यं न फलति जनोत्पातकङ्कालमाला
युद्धे राजा न भवति जयी नष्टचेष्टां करोति ॥ ८२ ॥

इति ग्रन्थान्तरे ।

अर्थ–चन्द्रग्रहण वा सुर्य्यग्रहणके समयमें यदि पुनः २ भूकम्प वा अग्निदाह अथवा जलकम्प होय तो पृथिवी धान्यशून्य होतीहै, मनुष्योंपर अनेकप्रकारके उत्पात होते हैं और युद्धमे राजाकी पराजय होतीहै और चेष्टा व्यर्थ होजातीहै ॥ ८२ ॥

(क) "दिवाकम्पे च दुर्भिक्षमनावृष्टिश्च जायते " इति ग्रन्थान्तरे [illegible] ।
(ख) पूर्वार्द्ध ज्योति.सारसंग्रहे लिखितम् ।

अथाम्बुवाची कालः ।

आर्द्रादितो विशाखान्तं रविचारेण वर्षति ।
तस्याश्च प्रथमे पादेऽम्बुवाची समुदाहृतः ॥ ८३ ॥

इति भैरवाचार्य्यः ।

अर्थ-अब अम्बुवाचीकालको वर्णन करतेहैं–भैरवाचार्य्यने कहाहै कि, आर्द्रासे विशाखातक ग्यारह नक्षत्रोंमें जितने दिन सूर्य्य रह उसीसमयतक वर्षा होतीहै और आर्द्रा नक्षत्रके प्रथमपादमे सूर्य्यके होनेसे अम्बुवाचीकाल होताहै ॥ ८३ ॥

अपिच ।

यस्मिन्वारे सहस्रांशुर्यत्काले (×) मिथुनं व्रजेत् ।
अम्बुवाची भवेन्नित्यं पुनस्तत्कालवारयोः ॥ ८४ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ–ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखाहै कि, जिस वारमे जिस समय सूर्य्य मिथुन राशिमें जाय उस वारके उसी समयको अम्बुवाचीकाल कहतेहैं ॥ ८४ ॥

अपरञ्च ।

मृगशिरसि निवृत्ते रौद्रपादेऽम्बुवाची
भवति ऋतुमती क्ष्मा वर्जयेत्त्रीण्यहानि ॥
यदि च वपति बीजं कर्षकः क्षेत्रमध्ये
न भवति फल (१) भोगः सस्यचाण्डालपाकः ॥ ८५ ॥

इति राजमार्तण्डे ।

अर्थ–राजमार्त्तण्डमे कहाहै कि, मृगशिरनक्षत्रनिःशेष होकर आर्द्रानक्षत्रका आरम्भ होनेसे अम्बुवाची अर्थात् तीन दिनतक पृथिवी ऋतुमती होती है अम्बुवाचीके मध्यमें किसान यदि खेतमे बीजको बोवै तो उसमें उत्पन्न हुए धान्यको न खाना चाहिये, और वह धान्य चाण्डालके पाकके समान होजाताहै ॥ ८५ ॥

अन्यच्च ।

आर्द्राद्यपादगे सूर्ये त्र्यहं पृथ्वी रजस्वला ।
अम्बुवाचीति संज्ञं तत्स्वाध्यायं तत्र वर्जयेत् ॥ ८६ ॥

अर्थ–आर्द्रानक्षत्रके प्रथम पादमें सूर्य्यके होनेसे तीन दिनतक पृथ्वी रजस्वला होतीहै, इसी समयको अम्बुवाची कहतेहैं, इसमें अध्ययन न करना चाहिये ॥ ८६ ॥

अपरञ्च ।

रजोयुक्क्ष्मा (+) म्बुवाची च रौद्राद्यपादगे रवौ ।
तस्यां पाठो बीजवापो नाहिभीर्दुग्धपानतः ॥ ८७ ॥ (क)

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ–ज्योतिषतत्त्वमें कहाहै कि, आर्द्रानक्षत्रके प्रथम पादमें सूर्य्यके होनेसे पृथिवी ऋतुमती होतीहै और इस कालको अम्बुवाची कहतेहैं, अम्बुवाचीमें वेदादिका पाठ और बीजवपन न करना चाहिये और इस समयमें दूधके पीनेसे सर्पका भय नहीं रहताहै ॥ ८७ ॥

प्रकारान्तरञ्च ।

आर्द्रार्कै चाम्बुवाचीस्या द्भूमिस्तत्र रजस्वला ।
भूमेरुत्खननं तत्र कुर्वन्भवति किल्बिषी ॥ ८८ ॥ (ख)

अर्थ–आर्द्रानक्षत्रमें सूर्य्यके जानेसे अम्बुवाचीकाल होताहै और इसी समयमें पृथ्वी रजस्वला होतीहै अम्बुवाचीमें भूमिखनन करनेसे मनुष्य पापी होताहै ॥ ८८ ॥

अम्बुवाच्यां निषिद्धानिषिद्धकर्म्माणि ।

अम्बुवाच्यां भूखननं यः करोतीह मानवः ।
स याति कृमिदंशञ्च स्थितिस्तत्र चतुर्गुणा ॥ ८९ ॥

इतिज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ–अब ज्योतिःसारसंग्रहके अनुसार अम्बुवाचीमें निषिद्धानिषिद्ध कर्म्म कहतेहैं–– अम्बुवाचीमें जो मनुष्य भूमिखनन करताहै वह कृमिदंशनामक नरकमें चतुर्गुण काल वास करताहै ॥ ८९ ॥

अन्यच्च ।

अम्बुवाच्यां भूखननं जले शौचादिकं तथा ।
निष्ठीवनं तथा कृत्वा ब्रह्महत्यां लभेत सः ॥ १९० ॥

इति प्रकृतिखण्डे ।

(×) रजोयुक्क्ष्मा ऋतुमती पृथ्वी । इति तिथितत्त्वे स्मार्त्तेन व्याख्यातम् ।

(क) आर्द्रायाः प्रथमे पादे क्षीरं पिबति यो नरः । अपि सर्पान्वितहस्तस्य तस्य किं करि-ष्यति " इति मलमासतत्त्वधृतवचनम् ।

(ख) इत्यादि वचनादम्बुवाचित्वं कालस्यैव न तु भूमेः ।

अर्थ–प्रकृतिखण्डमें कहा है कि, अम्बुवाचीकालमे भूमिखनन जलके बीचमें शौचादि क्रिया और श्लेष्मादि (कफ आदि) के डालनेसे ब्रह्महत्याका पाप होता है ॥ १९० ॥

अपरञ्च ।

ज्येष्ठ आषाढमासे च कल्पदाहो दिनत्रयम् ।
योषिद्भिस्तत्र कर्त्तव्यं व्रतं वैष्णवमुत्तमम् ॥ ९१ ॥

इति कृत्यचिन्तामणौ ।

अर्थ–कृत्यचिन्तामणिनामक ग्रन्थमें लिखा है कि, ज्येष्ठ और आषाढके मध्यमें तीन दिनतक कल्पदाह होती है इन तीन दिन स्त्रियोको वैष्णवव्रतमें निरत रहना चाहिये ॥ ९१ ॥

कल्पदाहे न कुर्वीत विधवा चाग्निसेवनम् ।
द्विजाश्च ब्रह्मनिर्घोषं न कुर्वीरन्मुमुक्षवः ॥ ९२ ॥

इति कृत्यचिन्तामणौ ।

अर्थ–कृत्यचिन्तामणिके वचनान्तरमें कहा है कि, कल्पदाहमे विधवा स्त्रीको अग्नि न छूना चाहिये और ब्राह्मणोको इन तीन दिन वेदाध्ययन न करना चाहिये ॥ ९२ ॥

प्रकारान्तरञ्च ।

यतिनो व्रतिनश्चैव विधवाया द्विजस्य च ।
अम्बुवाचिदिने चैव पाकं कृत्वा न भक्षयेत् ॥ ९३ ॥

इति राजमार्त्तण्डे ।

अर्थ–राजमार्त्तण्डमें लिखा है कि, ब्रह्मचारी, गृहस्थ मनुष्य और विधवा स्त्री इन सबको अम्बुवाचीमे पकाकर भोजन न करना चाहिये अर्थात् पकान्न भक्षण करनेका निषेधहै उक्त वचनका पाठान्तर देखकर विदित होता है कि विधवामात्रमें और ब्राह्मणोको भी पक्वान्न भक्षणकरनेका निषेध है ॥ ९३ ॥

वचनान्तरञ्च ।

स्वपाकं परपाकं वा अम्बुवाचि दिने तथा ।
भक्षयेन्नकदाचित्तं चाण्डालान्नसमं स्मृतम् ॥ ९४ ॥

अर्थ-संवत्सरप्रदीपमे कहा है कि, पृथ्वी रजस्वला होनेसे भूकम्प होनेसे गुरुके निकटसे विद्या न पढना चाहिये ॥ ९८ ॥

इत्यम्बुवाचिकाल कथनम् ।

अथ युगाद्याकथनम् ।

वैशाखे शुक्लपक्षे तु तृतीयायां कृतं युगम् ।
कार्त्तिके शुक्लपक्षे तु त्रेताथ नवमेऽहनि ॥ ९९ ॥
अथ भाद्रपदे कृष्णत्रयोदश्यान्तु द्वापरम् ॥
माघे च पौर्णमास्यां वै घोरं कलियुगं स्मृतम् ।
युगारम्भास्तु तिथियो युगाद्यास्तेन विश्रुताः ॥ २०० ॥

इति ब्रह्मपुराणे ।

अर्थ-अब युगाद्यातिथिको कहतेहैं-ब्रह्मपुराणमें लिखाहै कि, वैशाखके महीनेकी शुक्लपक्षकी तृतीयामे सतयुगकी उत्पत्ति हुईहै इसीप्रकार कार्त्तिकके शुक्लपक्षकी नवमीमें त्रेतायुगकी उत्पत्ति, भादोके कृष्णपक्षकी त्रयोदशीमे द्वारपरयुगकी उत्पत्ति और माघकी पूर्णिमा तिथिमे कलियुगकी उत्पत्ति हुई है । इन्ही चार तिथिमे युगोंका आरम्भ हुआहै और इन्हीको युगाद्या तिथि कहतेहैं ॥ ९९ ॥ २०० ॥

अपिच ।

वैशाखमासस्य तु या तृतीया नवम्यसौ कार्त्तिकशुक्लपक्षे ।
नभस्यमासस्य तमिस्रपक्षे त्रयोदशी पञ्चदशी च माघे ।
एता युगाद्याः कथिताः पुराणैरनन्तपुण्यास्तिथयश्चतस्रः ॥१॥

इति विष्णुपुराणे ।

अर्थ-विष्णुपुराणमे कहाहै कि, वैशाखके शुक्लपक्षकी तृतीया, कार्त्तिकके शुक्लपक्षकी नवमी, भादोके कृष्णपक्षकी त्रयोदशी और माघकी पूर्णिमासी इन सब तिथियोंको क्रमानुसार युगाद्या कहतेहैं, इनमे पुण्यकर्म्म करनेसे अनन्तफल होताहै ॥ १ ॥

अपरञ्च ।

शुक्ला तृतीया वैशाखे प्रेतपक्षे त्रयोदशी ।
कार्त्तिके नवमी शुक्ला माघमासे च पूर्णिमा ॥ २ ॥
एते युगादयः प्रोक्ता दत्तस्याक्षयकारकाः ॥ ३ ॥

अर्थ–संवत्सरप्रदीपमें कहा है कि, अम्बुवाचीमें अपना बनाया भया अन्न वा दूसरेका बनायाहुआ अन्न कभी न खाना चाहिये, क्यों कि, इससमयका बनायाहुआ भोजन चाण्डालके अन्नकी समान होता है ॥ ९४ ॥

अम्बुवाचिमनाधिकृत्याह ।

सापेक्षे दैवपैत्र्ये च बीजोप्तिर्हलवाहनम् ।
न स्वाध्यायो वषट्कारो न देवपितृतर्पणम् ॥ ९५ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ–ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि, अम्बुवाचीमें देवकर्म्म पितृकर्म्म बीजवपन वा हलवाहन, वेदादि अध्ययन, होमादि, देवतर्पण और पितृतर्पणादि कार्य्य न करना चाहिये ॥ ९५ ॥

अन्यच्च ।

हलानां वाहनञ्चैव बीजानां वपनं तथा ।
दिनत्रयं न कुर्वीत यावत्पृथ्वी रजस्वला ॥ ९६ ॥

अर्थ–जिस समय तीनदिन पृथ्वी ऋतुमती होती है उसमें हलका चलाना बीज बोना न चाहिये ॥ ९६ ॥

अपरञ्च ।

एकोद्दिष्टं वृषोत्सर्गं नित्यञ्च प्रेतकर्म च ।
एतान्न हापयेद्विद्वान्काम्यं किञ्चिन्न चाचरेत् ॥ ९७ ॥

इति संवत्सरप्रदीपे ।

अर्थ–संवत्सरप्रदीपमें लिखा है कि, अम्बुवाचीमें एकोद्दिष्ट, वृषोत्सर्ग, नित्य कर्म्म और प्रेतकर्म्मको परित्याग न करे, किन्तु अनारब्ध काम्य कुछभी न करना चाहिये ॥ ९७ ॥

प्रकारान्तरञ्च ।

धरण्यामृतुमत्याञ्च भूमिकम्पे तथैव च ।
अन्तरागमने (१) चैव विद्यां नैव पठेन्नरः ॥ ९८ ॥

इति संवत्सरप्रदीपे ।

---

(१) "पशुमण्डूकनकुलश्वाहिमार्जारमूषिकैः । गतेऽन्तरे त्वहोरात्रं शिष्ये च गुरुमागते" इति पश्वादिगमनेऽध्ययननिषेधकथनम् ।

अर्थ-संवत्सरप्रदीपमे कहा है कि, पृथ्वी रजस्वला होनेसे भूकम्प होनेसे गुरुके निकटसे विद्या न पढना चाहिये ॥ ९८ ॥

इत्यम्बुवाचिकाल कथनम् ।

अथ युगाद्याकथनम् ।

वैशाखे शुक्लपक्षे तु तृतीयायां कृतं युगम् ।
कार्त्तिके शुक्लपक्षे तु त्रेताथ नवमेऽहनि ॥ ९९ ॥
अथ भाद्रपदे कृष्णत्रयोदश्यान्तु द्वापरम् ॥
माघे च पौर्णमास्यां वै घोरं कलियुगं स्मृतम् ।
युगारम्भास्तु तिथियो युगाद्यास्तेन विश्रुताः ॥ २०० ॥

इति ब्रह्मपुराणे ।

अर्थ-अब युगाद्यातिथिको कहतेहैं-ब्रह्मपुराणमें लिखाहै कि, वैशाखके महीनेकी शुक्लपक्षकी तृतीयामें सतयुगकी उत्पत्ति हुईहै इसीप्रकार कार्त्तिकके शुक्लपक्षकी नवमीमें त्रेतायुगकी उत्पत्ति, भादोके कृष्णपक्षकी त्रयोदशीमे द्वारपरयुगकी उत्पत्ति और माघकी पूर्णिमा तिथिमे कलियुगकी, उत्पत्ति हुई है । इन्ही चार तिथिमे युगोंका आरम्भ हुआहै और इन्हीको युगाद्या तिथि कहतेहै ॥ ९९ ॥ २०० ॥

अपिच ।

वैशाखमासस्य तु या तृतीया नवम्यसौ कार्त्तिकशुक्लपक्षे ।
नभस्यमासस्य तमिस्रपक्षे त्रयोदशी पञ्चदशी च माघे ।
एता युगाद्याः कथिताः पुराणैरनन्तपुण्यास्तिथयश्चतस्रः ॥१॥

इति विष्णुपुराणे ।

अर्थ-विष्णुपुराणमे कहाहै कि, वैशाखके शुक्लपक्षकी तृतीया, कार्त्तिकके शुक्लपक्षकी नवमी, भादोके कृष्णपक्षकी त्रयोदशी और माघकी पूर्णिमासी इन सब तिथियोंको क्रमानुसार युगाद्या कहतेहै, इनमे पुण्यकर्म्म करनेसे अनन्तफल होताहै ॥ १ ॥

अपरञ्च ।

शुक्ला तृतीया वैशाखे प्रेतपक्षे त्रयोदशी ।
कार्त्तिके नवमी शुक्ला माघमासे च पूर्णिमा ॥ २ ॥
एते युगादयः प्रोक्ता दत्तस्याक्षयकारकाः ॥ ३ ॥

अर्थ-नारदीय पुराणमें लिखाहै कि, वैशाखके शुक्लपक्षकी तृतीया, भादोंके श्वेतपक्षकी त्रयोदशी, कार्त्तिकके शुक्लपक्षकी नवमी और माघकी पूर्णिमा इन तिथियोंको युगाद्या कहतेहैं इनमें दान करनेसे अक्षय फल प्राप्त होताहै ॥ २ ॥ ३ ॥

अथाक्षया ।

सोमवारेऽप्यमावस्या आदित्याहे च सप्तमी ।
चतुर्थ्यङ्गारवारे च अष्टमी च बृहस्पतौ ॥ ४ ॥
अत्र यत्क्रियते पापमथवा धर्मसञ्चयः ।
कोटिजन्मसहस्राणि प्रतिजन्म तदक्षयम् ॥ ५ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ-अब अक्षयातिथि ज्योतिःसारसंग्रहके अनुसार कहतेहैं-सोमवारमें अमावस्या रविवारमें सप्तमी, मङ्गलवारमें चतुर्थी और बृहस्पति वारमे अष्टमी तिथिके होनेसे उसको अक्षया तिथिकहतेहैं, अक्षयातिथिमें पापकर्म्म वा धर्म्मका सञ्चय जो कुछभी किया जाय सहस्रकोटिवर्षतक अक्षय होताहै ॥ ४ ॥ ५ ॥

अथ पुण्यतरा ।

शनैश्चरस्य वारेण वारेणाङ्गारकस्य च ।
कृष्णाष्टमीचतुर्दश्यौ पुण्यात्पुण्यतरे स्मृते ॥ ६ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ-अब पुण्यतरा कहतेहैं-ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखाहै कि, शनिवारमें कृष्णपक्षकी अष्टमी और मङ्गलवारमें कृष्णपक्षकी चतुर्दशी होनेसे उसको पुण्यतरा कहतेहैं ॥ ६ ॥

अथ मन्वन्तरा ।

अश्वयुक्छुक्लनवमी द्वादशी कार्त्तिकी तथा ।
तृतीया चैत्रमासस्य तथा भाद्रपदस्य च ॥ ७ ॥
फाल्गुनस्याप्यमावस्या पौषस्यैकादशी तथा ।
आषाढस्यापि दशमी तथा माघस्य सप्तमी ॥ ८ ॥
श्रावणस्याष्टमी कृष्णा तथाषाढस्य पूर्णिमा ।
कार्त्तिकी फाल्गुनी चैत्री ज्यैष्ठी पञ्चदशी तथा ॥ ९ ॥
मन्वन्तरादयस्त्वेता दत्तस्याक्षयकारिकाः ॥ १० ॥

इति भविष्यमत्स्ययोः ।

अर्थ–अब मन्वतरा तिथि कही जातीहै, भविष्यत्पुराणमें और मत्स्यपुराणमें लिखाहै कि, आश्विनके शुक्लपक्षकी नवमी तिथिको मन्वन्तरा कहतेहैं इसीप्रकार कार्त्तिकके शुक्लपक्षकी द्वादशीको, चैत्र और भादोंके शुक्ल तृतीयाको, फाल्गुनकी अमावास्याको पौषकी शुक्ल एकादशीको, आषाढकी शुक्लदशमीको माघकी शुक्ल सप्तमीको श्रावणकी कृष्णाष्टमीको और आषाढ कार्त्तिक फाल्गुन, चैत्र और ज्येष्ठकी पूर्णिमाको मन्वन्तरा तिथि कहतेहैं। मन्वन्तरातिथिमें दान करनेसे अक्षय फल प्राप्त होताहै ॥ ७–२१० ॥

अथार्द्धोदययोगः।

अमार्कपातश्रवणैर्युक्ता चेत्पौषमाघयोः।
अर्द्धोदयः स विज्ञेयः कोटिसूर्यग्रहैः समः। (क)
दिवैव योगः शस्तोऽयं नतु रात्रौ कदाचन ॥ ११ ॥ (ख)

इति पाश्चात्त्यनिर्णयामृते।

अर्थ–अब अर्द्धोदययोग कहतेहैं–पौष वा माघके गौण चान्द्रकी अमावस्या तिथिमें रविवार, व्यतीपातयोग और श्रवण नक्षत्रके होनेसे अर्द्धोदयसंज्ञक योग होताहै यह योग कोटि करोड सूर्य्यग्रहणके समान है। दिनमें उक्त योग प्रशस्तहै रात्रिमें यह योग फल नही करताहै ॥ ११ ॥

वचनान्तरञ्च।

अर्द्धोदये तु संप्राप्ते सर्वं गङ्गासमं जलम्।
शुद्धात्मानो द्विजाः सर्वे भवेयुर्ब्रह्मसंमिताः।
यत्किञ्चित्क्रियते दानं तद्दानं मेरुसन्निभम् ॥ १२ ॥

इति स्कन्दपुराणे।

अथ व्यतीपातयोगः ।

श्रवणाश्विधनिष्ठार्द्रानागदैवतमस्तके ।
यद्यमा रविवारेण व्यतीपातः स उच्यते ॥ १३ ॥ (ग)

इति बृहन्मनुः ।

अर्थ—अब बृहन्मनुके वचनानुसार व्यतीपातयोग कहतेहैं--रविवार अमावस्या तिथिमें यदि श्रवण, अश्विनी, धनिष्ठा, आर्द्रा, आश्लेषा व मृगशिर नक्षत्रयुक्त होय तो व्यतीपात नामक योग होताहै ॥ १३ ॥

अपिच ।

संक्रान्तिषु व्यतीपाते ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ।
पुष्ये स्नात्वा तु गङ्गायां कुलकोटीः समुद्धरेत् ॥ १४ ॥

इति ब्रह्माण्डपुराणे ।

अर्थ—ब्रह्माडपुराणमें कहाहै कि, संक्रान्तिमे, व्यतीपात योगमें, चन्द्र और सूर्यके ग्रहणमें और पुष्यनक्षत्रमें जो मनुष्य गंगास्नान करताहै उसके कोटिकुलतक तर जाते हैं ॥ २१४ ॥

वचनान्तरे च ।

चतुर्दश्यां यदा योगो व्यतीपातेन चार्द्रया । (घ)
तदा पुण्यतमः कालो देवानामपि दुर्लभः ॥ १५ ॥
तदा यः स्नाति गङ्गायां भक्त्या तत्फलमाप्नुयात् ।
यत्र यत्र विपन्नो हि गङ्गामरणजन्तु सः ॥ १६ ॥

इति गङ्गामृतग्रन्थधृतभविष्यपुराणे ।

अर्थ—गङ्गामृतग्रन्थधृत भविष्यपुराणमे कहा है कि, चतुर्दशी तिथिमे यदि व्यतीपात योग और आर्द्रानक्षत्र होय तो उसको पुण्यतम काल कहते हैं, यह पुण्यतम काल देवताओंको भी दुर्लभ है, इसमें भक्तिपूर्वक गङ्गास्नान करनेसे देवदुर्लभ फल प्राप्त होताहै और इस समय जिस जीवकी किसी स्थानमे मृत्यु होय तो उसको गङ्गामे मृत्यु होनेका फल होता है ॥ १५ ॥ १६ ॥

(ग) नागदैवतमाश्लेषामस्तक मृग शिरः । इति प्रायश्चित्ततत्त्वे स्मार्तेन व्याख्यातम् ।

(घ) व्यतीपातेन चन्द्रमाः । इति गङ्गावाक्यावल्युक्तपाठोऽननितत्वाद्धेय. । इति [illegible] स्मार्त्तेन कथितम् ।

अथ चूडामणियोगः ।

सूर्यग्रहः सूर्यवारे सोमे सोमग्रहो भवेत् ।
चूडामणिरयं योगस्तत्रानन्तफलं स्मृतम् ॥ १७ ॥ (ङ)

इति गरुडपुराणे ।

अर्थ-अब गरुडपुराणके वचनानुसार चूडामणि योग कहते हैं-रविवारमे सूर्य्यग्रहण और सोमवारमे चन्द्रग्रहणके होनेसे चूडामणियोग होताहै, उक्त योगमें गङ्गास्नान करनेसे अनन्तगङ्गास्नानका फल होताहै इस योगमे रात्रिसमयमें भी गङ्गास्नान करे, अभिलापवाक्यमे (अनन्तगङ्गास्नानजन्यफलसमफलप्राप्तिकामः) इत्यादि कहेहै ॥ १७ ॥

अथ नारायणीयोगः ।

मूलर्क्षचापसंयुक्ते (१) यदि सोमदिने कहूः ।
नारायणीति विख्याता त्रिकोटिकुलमुद्धरेत् ॥ १८ ॥

इति गरुडपुराणे ।

अर्थ-अब गरुडपुराणके वचनानुसार नारायणीयोग कहतेहैं-मूलनक्षत्रयुक्त सौर पौषमासमें सोमवारके दिन यदि अमावस्या तिथि होय तो नारायणीयोग होताहै नारायणी योगमे करतोया (२) में स्नान करनेसे तीन करोड कुलका उद्धार होजाताहै ॥ १८ ॥

नारायणीयोगे कृत्यं तथा फलम् ।

करतोयाजलं प्राप्य योगे नारायणी शुभे ।
प्रातर्मौनेन यः स्नायात्त्रिकोटिकुलमुद्धरेत् ॥ १९ ॥

अर्थ-नारायणीयोगमे प्रातःकालके समय जो मनुष्य मौन धारण कर करतोयाके जलमे स्नान करे उसके तीन करोड कुलोंका उद्धार होजाताहै ॥ १९ ॥

अपिच ।

करतोयाजलं प्राप्य यदि सोमयुताकुहूः ।
अरुणोदयवेलायां सूर्यग्रहशतैः समा ॥ २२० ॥

अथ व्यतीपातयोगः ।

श्रवणाश्विधनिष्ठार्द्रानागदैवतमस्तके ।
यद्यमा रविवारेण व्यतीपातः स उच्यते ॥ १३ ॥ (ग)

इति बृहन्मनुः ।

अर्थ–अब बृहन्मनुके वचनानुसार व्यतीपातयोग कहतेहैं--रविवार अमावस्या तिथिमें यदि श्रवण, अश्विनी, धनिष्ठा, आर्द्रा, आश्लेषा व मृगशिर नक्षत्रयुक्त होय तो व्यतीपात नामक योग होताहै ॥ १३ ॥

अपिच ।

संक्रान्तिषु व्यतीपाते ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ।
पुष्ये स्नात्वा तु गङ्गायां कुलकोटीः समुद्धरेत् ॥ १४ ॥

इति ब्रह्माण्डपुराणे ।

अर्थ–ब्रह्माडपुराणमें कहाहै कि, संक्रान्तिमें, व्यतीपात योगमें, चन्द्र और सूर्य्यके ग्रहणमें और पुष्यनक्षत्रमें जो मनुष्य गंगास्नान करताहै उसके कोटिकुलतक तर जाते हैं ॥ २१४ ॥

वचनान्तरे च ।

चतुर्दश्यां यदा योगो व्यतीपातेन चार्द्रया । (घ)
तदा पुण्यतमः कालो देवानामपि दुर्लभः ॥ १५ ॥
तदा यः स्नाति गङ्गायां भक्त्या तत्फलमाप्नुयात् ।
यत्र यत्र विपन्नो हि गङ्गामरणजन्तु सः ॥ १६ ॥

इति गङ्गामृतग्रन्थधृतभविष्यपुराणे ।

अर्थ–गङ्गामृतग्रन्थधृत भविष्यपुराणमे कहा है कि, चतुर्दशी तिथिमे यदि व्यतीपात योग और आर्द्रानक्षत्र होय तो उसको पुण्यतम काळ कहते हैं, यह पुण्यतम काल देवताओंको भी दुर्लभ है, इसमें भक्तिपूर्वक गङ्गास्नान करनेसे देवदुर्लभ फळ प्राप्त होताहै और इस समय जिस जीवको किसी स्थानमे मृत्यु होय तो उसको गङ्गामे मृत्यु होनेका फळ होता है ॥ १५ ॥ १६ ॥

(ग) नागदैवतमाश्लेषामस्तक मृग शिरा । इति प्रायश्चित्ततत्त्वे स्मार्तेन व्याख्यातम् ।

(घ) व्यतीपातेन चन्द्रमाः । इति गङ्गावाक्यावल्युक्तपाठोऽन्वितत्वादेषः । इति प्रायश्चित्ततत्त्वे स्मार्तेन कथितम् ।

अथ चूडामणियोगः ।

सूर्यग्रहः सूर्यवारे सोमे सोमग्रहो भवेत् ।
चूडामणिरयं योगस्तत्रानन्तफलं स्मृतम् ॥ १७ ॥ (ङ)

इति गरुडपुराणे ।

अर्थ—अब गरुडपुराणके वचनानुसार चूडामणि योग कहते हैं—रविवारमें सूर्य्यग्रहण और सोमवारमें चन्द्रग्रहणके होनेसे चूडामणियोग होताहै, उक्त योगमें गङ्गास्नान करनेसे अनन्तगङ्गास्नानका फल होताहै इस योगमे रात्रिसमयमे भी गङ्गास्नान करे, अभिलापवाक्यमें (अनन्तगङ्गास्नानजन्यफलसमफलमाप्तिकामः) इत्यादि कहेहैं ॥ १७ ॥

अथ नारायणीयोगः ।

मूलर्क्षचापसंयुक्ते (१) यदि सोमदिने कहूः ।
नारायणीति विख्याता त्रिकोटिकुलमुद्धरेत् ॥ १८ ॥

इति गरुडपुराणे ।

अर्थ—अब गरुडपुराणके वचनानुसार नारायणीयोग कहतेहैं—मूलनक्षत्रयुक्त सौर पौषमासमें सोमवारके दिन यदि अमावस्या तिथि होय तो नारायणीयोग होताहै नारायणी योगमें करतोया (२) में स्नान करनेसे तीन करोड कुलका उद्धार होजाताहै ॥ १८ ॥

नारायणीयोगे कृत्यं तथा फलम् ।

करतोयाजलं प्राप्य योगे नारायणी शुभे ।
प्रातर्मौनेन यः स्नायात्रिकोटिकुलमुद्धरेत् ॥ १९ ॥

अर्थ—नारायणीयोगमे प्रातःकालके समय जो मनुष्य मौन धारण कर करतोयाके जलमे स्नान करै उसके तीन करोड कुलोंका उद्धार होजाताहै ॥ १९ ॥

अपिच ।

करतोयाजलं प्राप्य यदि सोमयुताकुहूः ।
अरुणोदयवेलायां सूर्यग्रहशतैः समा ॥ २२० ॥

इति तिथितत्त्वधृता स्मृतिः ।

(ङ) अत्रानन्तगङ्गास्नानजन्यफलसमफलमाप्ति फलम् । रात्रावप्यनन्तत्वेन फलमूहनीयम् ।

(१) 'चापार्के मूलसयुक्ता' इति पाठान्तरमस्ति ।

(२) उत्तरदेशस्थनदीविशेषः ।

अर्थ-तिथितत्त्वधृतस्मृतिके वचनमें कहाहै कि, अमावास्यातिथियुक्त सोमवारके दिन सूर्य्योदयकालमें करतोयामें स्नान करनेसे जो फल सैकडों सूर्य्यग्रहणके समय स्नानादि करनेसे होताहै तिसीके समान फल प्राप्त होताहै ॥ २२० ॥

अथ वारुणीकथनम् ।

वारुणेन (१) समायुक्ता मधौ (२) कृष्णा त्रयोदशी ।
गङ्गायां यदि लभ्येत सूर्यग्रहशतैः समा ॥ २१ ॥

इति स्कन्दपुराणे ।

अर्थ-स्कन्दपुराणमें कहाहै कि, चैत्रमासके गौण चान्द्रकी कृष्णत्रयोदशी तिथिमें शतभिषा नक्षत्र होनेसे उस तिथिको वारुणी कहतेहैं, इससमय गङ्गास्नान करनेसे सैकडों सूर्य्यग्रहणके समय गङ्गास्नान करनेका फल होताहै ॥ २१ ॥

अथ महावारुणी ।

शनिवारसमायुक्ता सा महावारुणी स्मृता ।
गङ्गायां यदि लभ्येत कोटिसूर्यग्रहैः समा ॥ २२ ॥

इति स्कन्दपुराणे ।

अर्थ-अब महावारुणी कहतेहैं-शतभिषानक्षत्रयुक्त चैत्रमासकी गौण चान्द्रके कृष्णपक्षकी त्रयोदशी तिथिमें शनिवार होनेसे उस दिन महावारुणी होतीहै, इसमे गङ्गास्नान करनेसे करोड सूर्य्यग्रहणके समय गङ्गास्नान करनेसे जो फल होताहै उसके समान फल होताहै ॥ २२ ॥

शुभयोगसमायुक्ता शनौ शतभिषा यदि ।
महामहेति विख्याता त्रिकोटिकुलमुद्धरेत् ॥ २३ ॥ (क)

इति स्कन्दपुराणे ।

अर्थ-स्कन्दपुराणमें कहाहै कि, चैत्रमासकी गौणचान्द्रके कृष्णपक्षकी त्रयोदशीमे यदि शुभयोग, शतभिषानक्षत्र और शनिवारके होनेसे महा महावारुणी होतीहै, उक्त-योगमे स्नान करनेसे तीन करोड कुलका उद्धार होजाताहै ॥ २३ ॥

---

(१) वारुणं शतभिषा । इति तिथितत्त्वे ।

(२) मधुश्चैत्रमासः । इति तिथितत्त्वे स्मार्त्तेन व्याख्यातम् ।

(क) कुलं पुरुषम् । इति याज्ञवल्क्यदीपकलिका । अत्र सङ्कल्पे. सार्थकत्वाय निमित्तेन मासपक्षतिथ्युल्लेखानन्तरं महावारुणी महावारुण्या उल्लेखनीये श्राद्धे पार्वणादिमन्त्रोल्लेखात् गौणमास-मावस्ययो । पक्षोल्लेखनच्च । मासपक्षतिथीनाञ्च निमित्तानाञ्चेत्यादिवचनात् । तेन चैत्रे मासि कृष्णपक्षे त्रयोदश्यां तिथौ महावारुण्यां महामहावारुण्यां वा यथादय प्रयोज्यम् । इति तिथितत्त्वे स्मार्त्तेनाभिहितम् ।

अथ ब्रह्मपुत्रस्नाने विशेषयोगकथनम् ।

पुनर्वसौ वृषे लग्ने चैत्रे मासि सिताष्टमे ।
लौहित्यविरजे स्नायात्सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ २४ ॥ (ख)

इति तिथितत्त्वे ।

अर्थ–तिथितत्त्वके अनुसार ब्रह्मपुत्रमे स्नान करनेका योग कहते हैं–पुनर्वसुनक्षत्र और वृषलग्न यदि चैत्रमासके शुक्लपक्षकी अष्टमीमें होय तो इस योगमें ब्रह्मपुत्रनामक नदमें स्नान करनेसे मनुष्य सब पापोंसे छूटजाताहै और उसको सब तीर्थोंमे स्नान करनेका फल प्राप्त होता है ॥ २४ ॥

अथ बुधाष्टमीयोगः ।

पुनर्वसुबुधोपेता चैत्रे मासि सिताष्टमी ।
स्रोतःसु विधिवत्स्नात्वा वाजपेयफलं लभेत् ॥ २५ ॥

इति विष्णुपुराणे ।

अर्थ–अब विष्णुपुराणके वचनानुसार बुधाष्टमीयोग कहते हैं–बुधवार चैत्रमासकी शुक्लाष्टमीमें पुनर्वसु नक्षत्र होनेसे यदि मनुष्य श्रोत (सोत) के जलमें स्नान करै तो वाजपेय यज्ञका फल प्राप्त होताहै, किन्तु ब्रह्मपुत्रनदमें इस योगके समय स्नान करनेसे सब पापोंसे छूटजाताहै, सब तीर्थोंमें स्नान करनेका फल और वाजपेय यज्ञक फल होताहै ॥ २५ ॥

अथ दशहरा ।

ज्येष्ठस्य शुक्लदशमी संवत्सरमुखं स्मृतम् ।
तस्यां स्नानं प्रकुर्वीत दानं चैव विशेषतः ॥ २६ ॥
यां काञ्चित्सरितं प्राप्य दद्याद्दर्भैस्तिलोदकम् ।
मुच्यते दशभिः पापैः सुमहापातकोपमैः ॥ २७ ॥ (ग)

इति ब्राह्म-ब्रह्मवैवर्त्तपुराणयोः ।

(ख) "पृथिव्या यानि तीर्थानि सरितः सागरादयः । सर्वे लौहित्यमायान्ति चैत्रे मासि सिताष्टमी " स्नानमन्त्रः । "ब्रह्मपुत्र महाभाग शन्तनोः कुलनन्दन । अमोघागर्भसम्भूत पापं लौहित्य मे हर " इति तिथितत्वे स्मार्त्तेन धृतम् ।

(ग) अत्र केवलदशम्या नदीमात्रे दर्भकरणकतिलतर्पणाङ्गकस्नानादृशविधपापक्षय. फलम् एव दानादावपि । वस्तुतस्तु वक्ष्यमाणभविष्ये जाह्नवीपदश्रवणात् हेतुमन्निगदस्वरसाच्च ब्रह्मवैवर्त्तेऽपि सरित्पदं जाह्नवीपरम् अन्यथा नानाविधिः स्यात् । याकाञ्चिदिति तु जाह्नवीस्तावकम् अन्यथा कुल्यास्नानेऽपि दशविधपापक्षयः स्यात् मन्त्रलिङ्गे जाह्नवीति पदश्रवणाच्च । इति तिथितत्वे स्मार्त्तेनाभिहितम्

अर्थ–ब्रह्मपुराणमें और ब्रह्मवैवर्त्त पुराणमें कहा है कि, ज्येष्ठ मासके शुक्लपक्षकी दशमी (दशहरा) संवत्सरमें परम प्रसिद्ध तिथि है, इस तिथिमें स्नान और दान करना चाहिये उक्त तिथिमें जिस किसी नदीके जलमें स्नान, दान और तिलोदकमे कशसे तर्पण करनेसे दश प्रकारके पापोंसे छूट जाताहै इसीप्रकार किसी २ का मत है, किन्तु स्मार्त्त महामहोपाध्याय रघुनन्दनभट्टाचार्य्यने कहाहै कि, ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें जो सरित् शब्द लिखाहै उससे नदीको न जानै भागीरथी श्रीगङ्गाजीको जानना चाहिये, इसीप्रकार जिस स्थानमें सरित्का लेख है उसको जाह्नवीकी स्तावकता मात्र जानो इस प्रकार मीमांसा न करनेसे अनेकप्रकारकी कल्पना करनी चाहिये विशेषकरके कृत्रिम जलकी प्रणालीमे स्नान करनेसेभी दशप्रकारके पापोका नाश होताहै ॥ २६ ॥ २७ ॥

अपिच ।

शुक्लपक्षस्य दशमी ज्येष्ठे मासि द्विजोत्तम ।
हरते दश पापानि तस्माद्दशहरोच्यते ॥ २८ ॥

इति ब्रह्मपुराणे ।

अर्थ–ब्रह्मपुराणमें लिखाहै कि, ज्येष्ठ महीनेके शुक्लपक्षकी दशमीमे गङ्गास्नान करनेसे दश प्रकारके पापोंका नाश होजाताहै,अतएव उक्त तिथिको दशहरा कहतेहै॥२८॥

अन्यच्च ।

ज्येष्ठशुक्लदशम्यान्तु हस्तयोगेन जाह्नवी ।
हरते दश पापानि तस्माद्दशहरोच्यते ॥ २९ ॥

इति भविष्यपुराणे ।

अर्थ–भविष्य पुराणमे कहा है कि, ज्येष्ठमासके शुक्लपक्षकी दशमी तिथिमे हस्त नक्षत्रके होनेसे गङ्गामे स्नान करनेसे दश प्रकारके पापोसे मनुष्य छूट जाता है ॥२९॥

अपरञ्च ।

ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे दशम्यां हस्तयोगतः ।
दशजन्मावहा गङ्गा दशपाप (१) हरा स्मृता ॥ ३० ॥

इति पराशरभाष्ये यम ।

---

(१) "अदत्तानामुपादानं हिंसा चैवाविधानतः । परदारोपसेवा च कायिकं त्रिविधं स्मृतम् पारुष्यमनृतञ्चैव पैशुन्यञ्चापि सर्वशः । असम्बन्धप्रलापश्च वाङ्मयं स्याच्चतुर्विधम् । परद्रव्येष्वभिध्यानं मनसानिष्टचिन्तनम् । वितथाभिनिवेशश्च त्रिविधं कर्म्म मानसम् " इति दशपापानि वाल्मीकिना कथितानि ।

अर्थ—पराशरभाष्यमें यमने कहा है कि, ज्येष्ठके दशहरामें हस्त नक्षत्रके होने यदि उसमें गङ्गास्नान किया जाय तो दशजन्मके दश प्रकारके पापोंसे छूटजाता है ॥२२०॥

प्रकारान्तश्च ।

ज्येष्ठे मासि क्षितिसुतदिने शुक्लपक्षे दशम्यां
हस्ते शैलान्निरगमदियं जाह्नवी मर्त्यलोकम् ॥
पापान्यस्यां हरति च तिथौ सा दशेत्याहुरार्य्याः
पुण्यं दद्यादपिशतगुणं वाजिमेधायुतस्य ॥ ३१ ॥ (क)

इति शङ्खः ।

अर्थ—शङ्खने कहा है कि, मंगलवारमें ज्येष्ठका दशहरा हस्तनक्षत्रयुक्त होनेसे यदि उसमें गङ्गास्नान कियाजाय तो मनुष्यके दश जन्मोंके दश प्रकारके पापोंका नाश होताहै और दश अश्वमेध यज्ञका सौगुना फल होता है ॥ ३१ ॥

अथ महाज्यैष्ठीयोगः ।

ऐन्द्रे गुरुः शशी चैव प्राजापत्ये रविस्तथा ।
पूर्णिमा गुरुवारेण महाज्यैष्ठी प्रकीर्तिता ॥ ३२ ॥

इति संवत्सरप्रदीपे ।

अर्थ—अब संवत्सरप्रदीपके वचनानुसार महाज्यैष्ठीयोग कहतेहैं--जेठमासकी पूर्णिमामे बृहस्पतिवार और ज्येष्ठानक्षत्रके होनेसे यदि इसी नक्षत्रमें बृहस्पति और चन्द्रमा होय और रोहिणी नक्षत्रमे सूर्य होय तो महाज्यैष्ठी योग होताहै ॥ ३२ ॥

अन्यच्च ।

ऐन्द्रे गुरुः शशी चैव प्रजापत्ये रविस्तथा ।
पूर्णिमा ज्येष्ठमासस्य महाज्यैष्ठी प्रकीर्तिता ॥ ३३ ॥

अर्थ—ज्येष्ठा नक्षत्रमे बृहस्पति और चन्द्रमा होय, रोहिणी नक्षत्रमे सूर्य्य होय और इस समय जेठ महीनेकी पूर्णिमा होय तो महाज्यैष्ठी योग होता है ॥ ३३ ॥

अपरश्च ।

ऐन्द्रे मैत्रे यदा जीवस्तत्पञ्चदशके रविः ।
पूर्णिमाशक्रचन्द्रेण महाज्यैष्ठी प्रकीर्त्तिता ॥ ३४ ॥

अर्थ—ज्येष्ठा वा अनुराधा नक्षत्रमे बृहस्पति होय और रोहिणी नक्षत्रमे वा मृगशिर

(क) भौमवारहस्तनक्षत्रयुक्तदशम्या गङ्गास्नानादशविधपापक्षयशतगुणवाजिमेधायुत जन्म पुण्यसमधुर्यं फलम् । इति तिथितत्त्वे स्मार्त्तेनोक्तम् ।

नक्षत्रमें सूर्य होय तथा ज्येष्ठा नक्षत्रमें चन्द्रमा होय और इसी समयमें जेठकी पूर्णिमा होय तो महाज्यैष्ठी योग होता है ॥ ३४ ॥

प्रकारान्तरञ्च ।

ऐन्द्रर्क्षे त्वथवा मैत्रे गुरुचन्द्रौ यदा स्थितौ ।
पूर्णिमा ज्येष्ठमासस्य महाज्यैष्ठी प्रकीर्त्तिता ॥ ३५ ॥

अर्थ--ज्येष्ठा नक्षत्रमें वा अनुराधा नक्षत्रमें बृहस्पति और चन्द्रमाके होनेसे यदि उक्त समयमें जेठमासकी पूर्णिमा होय तो महाज्यैष्ठी योग होताहै ॥ ३५ ॥

अपिच ।

ज्यैष्ठे संवत्सरे (१) चैव ज्येष्ठमासस्य पूर्णिमा ।
ज्येष्ठाभेन च संयुक्ता महाज्यैष्ठी प्रकीर्त्तिता ॥ ३६ ॥

अर्थ--ज्यैष्ठ नामक संवत्सरमें ज्येष्ठा नक्षत्र युक्त ज्येष्ठ मासकी पूर्णिमा होनेसे महाज्यैष्ठी योग होताहै ॥ ३६ ॥

महाज्यैष्ठ्यान्तु यः पश्येत्पुरुषः पुरुषोत्तमम् ।
विष्णुलोकमवाप्नोति मोक्षं गङ्गाम्बुमज्जनात् ॥ ३७ ॥

इति ब्रह्मपुराणे ।

अर्थ--ब्रह्मपुराणमें कहाहै कि, महाज्यैष्ठीमें जो मनुष्य पुरुषोत्तम (जगन्नाथ) स्वामीका दर्शन करताहै, उसको अन्तसमय विष्णुप्राप्ति होतीहै और महाज्यैष्ठीमें गङ्गास्नान करनेसे अन्तसमय मोक्षप्राप्ति होतीहै ॥ ३७ ॥

मासि ज्येष्ठे तु संप्राप्ते नक्षत्रे शक्रदैवते ।
पौर्णमास्यां तदा स्नानं सर्वपापं हरेद्द्विजाः ॥ ३८ ॥
तस्मिन्काले तु ये मर्त्याः पश्यन्ति पुरुषोत्तमम् ।
बलभद्रं सुभद्राञ्च ते यान्ति पदमव्ययम् ॥ ३९ ॥

इति ब्रह्मपुराणे ।

अर्थ--ब्रह्मपुराणमें कहाहै कि, ज्येष्ठानक्षत्रयुक्त जेठके महीनेकी पूर्णिमामें स्नान करनेसे मनुष्य सब पापोंसे छूटजाताहै, इस समयमें पुरुषोत्तम (जगन्नाथ) बलभद्र और सुभद्रा देवीके दर्शन करनेसे अन्तसमय अव्यय पदको प्राप्त होताहै ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

इति महाज्यैष्ठीकथनम् ।

---

(१) ज्यैष्ठसंवत्सरश्च "ज्येष्ठामूलोपगे जीवे वर्षं स्याच्छक्रदैवतम् " इति विष्णुधर्मोत्तरोक्तो ग्राह्यः न तु संवत्सरादिपञ्चकान्तर्गतवर्षविशेषो ज्यैष्ठ इति वर्षविशेषणस्य [illegible] । [illegible] यदि स्यात्तिति पाठः काल्पनिकः इति तिथितत्त्वे स्मार्त्तः ।

अथप्रश्नेधातुमूलजीवज्ञानम् ।

स्वांशं विलग्ने यदि वा त्रिकोणे
स्वांशे स्थितः पश्यति धातुचिन्ताम् ॥
परांशकस्थश्च करोति जीवं
मूलं परांशोपगतः परांशम् ॥ २४० ॥

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ--अब दीपिकाके वचनानुसार प्रश्नलग्नसे धातु, मूल और जीवका ज्ञान कहतेहैं—प्रश्नसमय यदि कोई ग्रह अपने नवांशामें होकर लग्नगत होय वा प्रश्नलग्नके नवमे वा पांचवे स्थानमे होय अथवा प्रश्नलग्नको देखतेहो तो प्रश्नकर्त्ता धातु (१) की चिन्ता करताहै ऐसा कहै, यदि कोईग्रह अन्य ग्रहके नवांशामें रहकर प्रश्नलग्नमें वा प्रश्नलग्नके नवमें वा पांचवे स्थानको देखता होय तो प्रश्नकर्त्ताने जीव (२) के सम्बन्धमें प्रश्न कीहै ऐसा जानै और यदि कोई ग्रह अन्य ग्रहके नवांशामें स्थित होकर अपरग्रहके नवांशगत लग्नमें वा पांचवें स्थानमें अथवा नवमे स्थानमें देखता होय तो प्रश्नकर्त्ताने मूल (३) सम्बन्धमें प्रश्न करी है इस प्रकार जानकर कहना चाहिये ॥ २४० ॥

धातुं मूलं जीवमित्योजराशौ युग्मे विद्यादेतदेव प्रतीपम् ।
लग्ने योंशस्तत्क्रमाद्गण्य एवं संक्षेपोऽयं विस्तृतस्तत्प्रभेदः ॥४१॥

अर्थ–लग्नको नौ भागमें विभक्त करनेसे एक २ भागको नवांशा कहतेहैं, ओज अर्थात् मेष, मिथुन, सिंह, तुला, धन वा कुम्भराशि प्रश्नलग्न होनेसे प्रथम २ नवांशामें धातुकी चिन्ता, दूसरे नवांशामे मूलकी चिन्ता और तीसरे नवांशामें जीवकी चिन्ता जाननीचाहिये । चौथे नवांशामे धातु, पॉचवेमे मूल, छठेमें जीव, सातवेंमें धातु, आठवेमें मूल और नववे नवांशामें प्रश्न होनेसे जीवकी चिन्ता जाननी चाहिये और युग्म राशियोंमें इसके विपरीत होताहै अर्थात् प्रथम नवांशामें प्रश्न होनेसे जीव दूसरेमें मूल और तीसरे नवांशामे प्रश्न होनेसे धातुकी चिन्ता जाननी चाहिये ॥ ४१ ॥

---

(१) धातुशब्दसे सुवर्ण, रजत और मृत्तिकादि जाननी चाहिये ।

(२) जीवशब्दसे पुरुषादि सरीसृपपर्य्यन्त जानो ।

(३) मूलशब्दसे स्थलज और जलज इन दोनोंको जानना चाहिये ।

अथ शुभाशुभप्रश्नः ।

केन्द्रात्रिकोणेषु शुभस्थितेषु पापेषु केन्द्राष्टमवर्ज्जितेषु ।
सर्वार्थसिद्धिं प्रवदेन्नराणां विपर्य्ययेष्वेषु विपर्य्ययः स्यात् ॥ ४२ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ–अब ज्योतिःसारसंग्रहके वचनानुसार शुभाशुभ प्रश्न कहतेहैं–शुभग्रह यदि प्रश्नलग्नमें वा प्रश्नलग्नके चौथे, सातवें, दशवें, पाँचवें और नवमें होय और पापग्रह लग्नमें वा लग्नके चौथे, सातवें दशवें और आठवें स्थानमें न होय तो प्रश्नकर्त्ताका कार्य्य सिद्ध होताहै ऐसा जानै, किन्तु पापग्रह यदि प्रश्नलग्नके केन्द्रस्थानमे, त्रिकोणमे वा आठवें स्थानमें होय और शुभ ग्रह केन्द्रमें और त्रिकोणमें न होवे तो अशुभ होताहै॥ ४२ ॥

त्रिपञ्चलाभास्तमयेषु सौम्या
लाभप्रदानेष्टफलाश्च पापाः ॥
तुलाथ कन्या मिथुनं घटश्च
नृराशयस्तेषु शुभं वदन्ति ॥ ४३ ॥

अर्थ–यदि प्रश्नलग्नके तीसरे, पाँचवें, ग्यारहवें और सातवें स्थानमे शुभग्रह होय तो प्रश्नकर्त्ताको लाभ होताहै और पापग्रह उक्तस्थानोंमे होनेसे अनिष्ट होताहै, तुला, कन्या, मिथुन और कुम्भ इन सब नरराशियोंमें शुभ ग्रह होनेसे शुभ होताहै ॥ ४३ ॥

स्थानप्रदा दशमसप्तमगाश्च सौम्या
मानार्थदाः स्वसुतलग्नगता भवन्ति ॥
पापा व्ययायसहिता न शुभप्रदाःस्यु-
र्लग्ने शशी न शुभदो दशमेऽशुभश्च ॥ ४४ ॥

अर्थ–यदि प्रश्नलग्नके दशवें और सातवें स्थानमें शुभग्रह होय तो प्रश्नकर्त्ताको स्थानकी प्राप्ति होतीहै प्रश्नलग्नके दूसरे स्थानमें, पाचवें स्थानमें वा प्रश्नलग्नमें शुभग्रहके होनेसे सन्मान और धनादिकी प्राप्ति होतीहै पापग्रह प्रश्नलग्नके बारहवें और ग्यारहवें स्थानमें होनेसे अशुभ होताहै और चन्द्रमा प्रश्नलग्नमें वा प्रश्नलग्नके दशवें स्थानमें होनेसे अशुभ होताहै ॥ ४४ ॥

इन्दुं द्विसप्तदशमायरिपुत्रिसंस्थं
पश्येद्गुरुः शुभफलं प्रमदाकृतं स्यात् ॥

लग्नात्रिधर्मसुतनैधनगाश्च पापाः
कार्यार्थनाशभयदाः शुभदाः शुभाश्च ॥ ४५ ॥

अर्थ-यदि प्रश्नलग्नके दूसरे, सातवे, दशवे, ग्यारहवें, छठे वा तीसरे स्थानमें चन्द्रमा होय और उस चन्द्रमापर बृहस्पतिकी दृष्टि होय तो प्रश्नकर्त्ताके स्त्री हेतुक शुभ फल होताहै । प्रश्नलग्नमे वा प्रश्नलग्नके तीसरे, नवमे, पांचवें और आठवें स्थानमें पाप ग्रहोके होनेसे कार्यनाश, अर्थक्षय और भय होताहै और उक्त स्थानोमे शुभग्रह होनेसे शुभ फल होताहै ॥ ४५ ॥

योयो भावः स्वामिदृष्टो युतो वा
सौम्यैर्वा स्यात्तस्य तस्यास्ति वृद्धिः ॥
पापैरेवं तस्य तस्यास्ति हानि-
र्निर्देष्टव्या जन्मतः प्रश्नतो वा ॥ ४६ ॥

एतानि ज्योतिस्तत्त्वधृतवचनानि ।

अर्थ-प्रश्न समयमे वा जन्मसमयमें तन्वादि (१) द्वादश भावके जो कोई भाव शुभग्रह वा स्वामीग्रहोसे दृष्ट अथवा युक्त होनेसे उसकी वृद्धि होतीहै, और पापग्रहोसे दृष्ट वा युक्त होनेसे उसकी हानि होतीहै ॥ ४६ ॥

अथ लाभालाभप्रश्नः ।

सौम्यैर्विलग्ने यदि वास्य वर्गे
शीर्षोदये सिद्धिमुपैति कार्यम् ॥
अतो विपर्यस्तमसिद्धिहेतुः
कृच्छ्रेण संसिद्धिकरं विमिश्रम् ॥ ४७ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-अब ज्योतिषतत्त्वके वचनानुसार लाभालाभ प्रश्न कहते हैं-शुभग्रह यदि प्रश्नके मालिक हो वा शुभग्रहके वर्गमे, अथवा शीर्षोदय लग्नमें प्रश्न होय तो कार्य्यसिद्धि

---

(१) "तनुर्धनं सोदरश्च । बन्धुः पुत्रो रिपुस्तथा । पत्नी च निधनं धर्म्मः कर्म्म चायो व्ययोऽपि च ". इति जातकचन्द्रिकायाम् । लग्नको तनु कहते हैं; इसी प्रकार द्वितीय धनस्थान, तृतीय सोदरस्थान, चतुर्थ बन्धुस्थान, पञ्चम पुत्रस्थान, षष्ठ रिपुस्थान, सप्तम पत्नीस्थान, अष्टम मृत्युस्थान, नवम धर्म्मस्थान, दशम कर्म्मस्थान, एकादश आयस्थान और द्वादश स्थानको व्ययस्थान कहतेहै ।

होती है और इसके विपरीत होनेसे कार्य्य नहीं सिद्ध होताहै विमिश्रित लग्नके होनेसे कार्य्य कष्टसे सिद्ध होताहै ॥ ४७ ॥

अथ नष्टलाभादिप्रश्नः ।

होरास्थितः पूर्णतनुः शशाङ्को
जीवेन दृष्टो यदि वा सितेन ॥
क्षिप्रं प्रणष्टस्य करोति लब्धि
लाभोपयातो बलवाञ्छुभश्च ॥ ४८ ॥

अर्थ-अब नष्टलाभादि प्रश्न कहतेहैं--प्रश्नलग्नमें पूर्णचन्द्रमा होय और बृहस्पति वा शुक्र उसे देखते होंय तो गई वस्तु शीघ्र मिलतीहै और उक्तप्रकार न होकर यदि प्रश्नलग्नके ग्यारहवें स्थानमें मात्र बलवान् शुभग्रह होय तौभी गई वस्तु मिल जातीहै ॥ ४८ ॥

पूर्णः शशी लग्नगतः शुभो वा शीर्षोदये सौम्यनिरीक्षितश्च ।
नष्टस्य लाभं कुरुते तदाशु लाभोपयातो बलवाञ्छुभश्च ॥ ४९ ॥

अर्थ-शीर्षोदय अर्थात् मिथुन, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, कुम्भ वा मीन यदि प्रश्नलग्न होय और उसमें पूर्णचन्द्रमा और शुभग्रह होय और शुभग्रहोंकी उनपर दृष्टि होय तो गई वस्तु शीघ्र मिलतीहै, और प्रश्नलग्नके ग्यारहवे स्थानमे शुभ ग्रहोंके होनेसेभी गई वस्तु शीघ्र मिलजातीहै ॥ ४९ ॥

स्थिरोदये स्थिरांशे वा वर्गोत्तमगतेऽपि वा ।
स्थितं तत्रैव तद्द्रव्यं स्वकीयेनैव चोरितम् ॥ २५० ॥

अर्थ-स्थिर राशि वा स्थिर राशिका नवांश अथवा वर्गोत्तम यदि प्रश्नलग्न होय तो अपहृत वस्तु आत्मीय मनुष्यने चुराकर उसी स्थानमें रखदिई ऐसा जानै और यदि इसके अन्यथा होय तो गैर मनुष्यने चुराई है इस प्रकार जानना चाहिये ॥ २५० ॥

आदिमध्यावसानेषु द्रेष्काणेषु विशेषतः ।
द्वारदेश तथा मध्ये गृहान्ते च वदेद्ध्रुवम् ॥ ५१ ॥

अर्थ-लग्नके प्रथम द्रेकाणमें प्रश्न होय तो गई वस्तु द्वारदेशमे है ऐसा जाने, इसी प्रकार दूसरे द्रेकाणमें प्रश्न होनेसे घरके बीच रसोई स्थानके समीपमे और तीसरे द्रेकाणमे प्रश्न होनेसे अपहृत वस्तु घरके पीछेके स्थानमे है इस प्रकार जानना चाहिये ॥ ५१ ॥

दिग्वाच्याः कण्टकगैरसम्भवैर्वा वदेद्विलग्नर्क्षात् ।
मध्याच्च्युतैर्विलग्ननवांशकैर्योजनानि वदेत् ॥ ५२ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहधृतवचनानि ।

अर्थ-प्रश्नलग्नके केन्द्रस्थानमे स्थित ग्रहोसे गई हुई वस्तु किस स्थानमें है उसको कहतेहैं-यथा सूर्य्य केन्द्रमे होनेसे पूर्वदिशामें, शुक्र होनेसे अग्निकोणमे, मंगल होनेसे दक्षिणमें राहुहोनेसे नैर्ऋतमें, शनि होनेसे पश्चिममें,चन्द्रमा होनेसे वायुकोणमे, बुध होनेसे उत्तरमे और केन्द्रमे बृहस्पतिके होनेसे अपहृत वस्तु ईशानकोणमे जानना चाहिये केन्द्रमे यादि अनेक ग्रह हो तब अधिक बलवान् ग्रहके दिशानुसार दिक्निर्णय करे। यादि केन्द्रमें ग्रह न होय तो दिगधिपतिकी लग्नके अनुसार दिशाओंका निर्णय करै नवांशासे दूरता जानी जातीहै, अर्थात् पांचवें नवांशाके बाद जितने नवांशा बीतें उतनेही योजनके अन्तरमे चुराई हुई वस्तु है इसप्रकार जानना चाहिये ॥ ५२ ॥

अथ प्रवासादिज्ञानप्रश्नः ।

दूरगतस्यागमनं सुतधनसहजस्थितैर्विलग्नात् ।
सौम्यैर्नष्टप्राप्तिं लब्ध्वा गमनं गुरुसिताभ्याम् ॥ ५३ ॥

अर्थ-अब प्रवासादि विषयमें प्रश्न कहतेहैं-यदि प्रश्नलग्नके पॉचवे, दूसरे और तीसरे स्थानमे ग्रह स्थित होंय तो परदेशसे मनुष्य आताहै ऐसा जानै, उक्त स्थानोमे शुभ ग्रह होनेसे नष्टवस्तु प्राप्त होतीहै, और यदि बृहस्पति तथा शुक्र प्रश्नलग्नके पांचवें, दूसरे वा तीसरे स्थानमे स्थित होंय तो परदेशसे मनुष्य शीघ्र आताहै ॥५३॥

यामित्रेऽप्यथवा षष्ठे ग्रहः केन्द्रे बृहस्पतिः ।
प्रोषितागमनं विद्यात्त्रिकोणे ज्ञ सितेऽपि वा ॥ ५४ ॥

अर्थ-प्रश्नलग्नके सातवें वा छठे स्थानमें यदि ग्रह होंय और बृहस्पति यदि लग्नमें वा लग्नके चौथे सातवें अथवा दशवें स्थानमें स्थित होय तो परदेशी मनुष्यका आना होताहै; प्रश्नलग्नके नवमे और पांचवे स्थानमें बुध और शुक्र के होनेसेभी परदेशी मनुष्यका आना जानना चाहिये ॥ ५४ ॥

ग्रहः सर्वोत्तमबलो लग्नाद्यस्मिन्गृहे स्थितः ।
मासैस्तत्तुल्यसंख्यातैर्निवृत्तिं यातुरादिशेत् ॥ ५५ ॥

अर्थ-प्रश्नलग्नसे जिस २ स्थानमें अत्यन्त बलवान् ग्रह होंय उसीके समान महीनोमे लौटकर आना कहना चाहिये ॥ ५५ ॥

चरांशस्थे ग्रहे तस्मिन्कालमेतद्विनिर्दिशेत् ।
द्विगुणं स्थिरभागस्थे त्रिगुणं तद्विरात्मके ॥ ५६ ॥

अर्थ–जो चरराशिके नवांशामें स्थित हो उसमें उसी अनुसार समय कहिये स्थिरराशिके नवांशामें स्थित होनेसे राशिसंख्यासे द्विगुण कहना और द्विःस्वभाव राशिके नवांशामें हो तो राशिसंख्यासे त्रिगुण समय कहना ॥ ५६ ॥

यातुर्विलग्नयामित्रभवनाधिपतिर्यदा ।
करोति वक्रमावृत्तेः कालं तं ब्रुवतेऽपरे ॥ ५७ ॥

अर्थ–और आचार्य कहतेहैं कि, लग्नसे सातवें स्थानका स्वामी वक्री होकर पीछेकी राशिपर लौट आवै तो उसी राशिसंख्याके अनुसार समय करताहै ऐसा जानना ॥ ५७ ॥

अष्टमस्थे निशानाथे कण्टकैः पापवर्जितैः ।
प्रवासी सुखमायाति सौम्यैर्लाभसमन्वितः ॥ ५८ ॥

अर्थ–प्रश्नलग्नके आठवें स्थानमें चन्द्रमाके होनेसे और केन्द्रस्थानमें पाप ग्रहोंके न होनेसे परदेशसे मनुष्य सुखपूर्वक आताहै, और केन्द्रमें शुभ ग्रहोंके होनेसे आनेवाला मनुष्य परदेशसे लाभ करके आताहै ॥ ५८ ॥

पृष्ठोदये (क) पापनिरीक्षिते वा पापास्तृतीये रिपुकेन्द्रगे वा ।
सौम्यैरदृष्टा वधबन्धदाःस्युर्नष्टा विनष्टा मुषिताश्च वाच्याः ॥ ५९ ॥

अर्थ–पृष्ठोदय अर्थात् वृष, मेष, धन, कर्क, मकर और मीनराशिके मध्यमें यदि कोई राशि प्रश्नलग्न होय और पापग्रह उसको देखते हो तो प्रवासिमनुष्यका वध,छेदन वा बन्धन होताहै । प्रश्नलग्नके तीसरे स्थानमें पापग्रह होय और उनको शुभग्रह न देखतेहो तो आनेवाला मनुष्यदेशान्तरमें जाताहै प्रश्नलग्नके छठे स्थानमें पापग्रह हों और उनपर शुभ ग्रहोंकी दृष्टि न होय तो प्रवासी मनुष्यकी मृत्यु होती है और प्रश्न लग्नके केन्द्रस्थानमें पापग्रह हों और उनको शुभग्रह न देखते हों तो प्रवासी मनुष्यके द्रव्यादिकी चोरी होजातीहै ॥ ५९ ॥

ग्रहो विलग्नाद्यतमे ग्रहे तु तेनाहता द्वादशराशयश्च ।
तावद्दिनान्यागमनस्य विद्यान्निवर्त्तनं वक्रगतैर्ग्रहैश्च ॥ २६० ॥

(क) वृषमेषकर्कटमकरधनुर्मीनाः पृष्ठोदयाः ।

नमः श्रीजगदीश्वराय ।

अथ ज्योतिषतत्त्वसुधार्णवः ।

भाषार्थसहितः ।



ग्रन्थारम्भः ।



तत्रादौ वस्तुनिर्देशात्मकमंगलम् ।

श्यामसुन्दरेणाशु गुरोः पदकमलयुगं प्रणतेन मया ।
बाँसबरेलीमधिवसता बुधबाँकेलालशर्म्मतनयेन ॥
ज्योतिषतत्त्वसुधार्णवमेतत्प्रकटितमल्पधियः सुमुदे ।
नैकज्योतिषाचार्य्यमतं सुविमृश्य लिखितमिदमस्तु शिवम् ॥ १ ॥

तत्र रव्याद्युत्पत्तिकथनम् ।

तमस्तोमावृते विश्वे जगदेतच्चराचरम् ।
राशिग्रहोडुसंघातं सृजन्सूर्य्योऽभवत्तदा ॥ १ ॥ (क)

इति दीपिकायाम् ।

(क) सूर्य्योत्सृष्टिमाह—तमस्तोमावृतइति । सृष्टेः पूर्वं विश्वे संसारे तमःसमूहेनाच्छादिते सति एतच्चराचरं स्थावरजङ्गमात्मकं जगत् मेषादिराशीन् नवग्रहान् नक्षत्रसमूहांश्च सृजन् परमपुरुषः सूर्य्यसंज्ञोऽभवत् । सर्वान् सरतीति सूर्य्य इति निपातः । सुवतीति वा पाठः । तथाच सूर्य्यसिद्धान्ते। "वासुदेवः परं ब्रह्म तन्मूर्त्तिः पुरुषः परः । सङ्कर्षणोऽप सृष्ट्वादौ तासु बीजमवासृजत् । तदण्डमभवद्धैम सर्वमन्तस्तमोवृतम् । तत्रानिरुद्धः प्रथमं व्यक्तीभूत सनातन । हिरण्यगर्भो भगवानेष च्छन्दसि पठ्यते । आदित्यो ह्यादिभूतत्वात्प्रसुत्या सूर्य्य उच्यते । परं ज्योतिस्तमः पारे सूर्य्योऽयं सवितेति च । पर्य्येति भुवनान्येष भावयन्भूतभावन । सोऽहङ्कारो जगत्सृष्टौ ब्रह्माणमसृजत्प्रभुः । ततो... द्वितीयान्वर दत्वा सर्वलोकपितामहः । प्रतिष्ठाप्याशु मध्येऽथ स्वयं पर्य्येति भावयन् ॥" इत्यादि... रुक्ता । अत्र च सर्वनामत्वात् विश्व इति पदं कथमिति विरोधे कश्चिद् विश्वे वि... जातके "ओजर्क्षे सिद्धान्तयति तदशुद्धं । नच तत्पुरुषस्योत्तरपदवदिति न्यायेन अविश्वस्मि... । तथा । प्रथमो नियमः भावसमासेऽपि विश्वाभावस्य तमस्तोमावृतत्वविशेषणं न सङ्घटते ... भक इति एवं कर्कटश्वरः सिंहः प्रत्येकं यदा विश्वशब्देन सर्वशब्दवत्सकलमभिधीयते तदैव सू... भावश्च तत्र चरसमीपार्द्धं चर स्थिरस... भागते चरस्थिरौज फलं ददतः।" इति ॥

अर्थ–यह विश्व संसार सृष्टिके पूर्वमें घोर अन्धकारमय था, उससमय परम पुरुष भगवान् स्थावरजङ्गमात्मक जगत्में मेष, वृष, प्रभृति द्वादश राशि, नव ग्रह और समस्त नक्षत्रोंकी सृष्टि करके सूर्य्यनामसे प्रकाशित होतेहुए ॥ १ ॥

अथ मेषादिराशिकथनम् ।

सप्तविंशतिभैर्ज्योतिश्चक्रं स्तिमितवायुगम् ।
तदर्कांशो भवेद्राशिर्नवर्क्षचरणान्वितः ॥ २ ॥ (ख)

अर्थ–सप्तविंशति (२७) नक्षत्रयुक्त ज्योतिषचक्र निश्चलवायुके ऊपर स्थित है, इस चक्रके द्वादशभागके एक भागमें अर्थात् सवा दो नक्षत्रमें एक २ राशि होती है ॥२॥

मेषवृषमिथुनकर्कटसिंहाः कन्या तुलाथ वृश्चिकभम् ।
धनुरथ मकरःकुम्भो मीन इति च राशयः कथिताः॥ ३ ॥ (ग)

अर्थ–मेषादि द्वादशराशिके नाम कहतेहैं–मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धन, मकर, कुम्भ और मीन इन्हीका द्वादशराशिके नाम जानो ॥ ३॥

अथ राशिपर्य्याय ।

राशिनामानि च क्षेत्रं भमृक्षं गृहनाम च ।
मेषादीनाञ्च पर्य्यायं लोकादेव विचिन्तयेत् ॥ ४ ॥ (घ)

अर्थ–अब राशिके पर्य्याय कहतेहैं–क्षेत्र, ऋक्ष और गृहनाम अर्थात् गृहपर्य्यायक शब्द मेषादि द्वादशराशिवाचक (क्षेत्र, भ, प्रभृति प्रत्येक शब्दमेंही राशिको जानो) अन्यान्य पर्य्याय लोकपरम्परासे जाने जातेहैं ॥ ४ ॥

रूपस्य जगतो वाचकः संज्ञाशब्दत्वान्न सर्वनाम इति वदन्ति । तथाच सारावल्याम्–'तमसावृत समन्ताज्ज्वलभूते भूतले ततोऽकस्मात्।उदितो भगवान्भानुः प्रकाशयन्प्रभवेन ॥" वृद्धास्तु न [illegible] विश्वं यस्मिन् काल इति कालपदमत्राध्याहार्यमित्याहुः । इति ॥

(ख)–ज्योतिश्चक्रे राशिविभागमाह । सप्तविंशतीत्यादि। सप्तविंशतिनक्षत्रैर्युक्तं ज्योतिश्चक्रं [illegible] स्तिमितवायुगं स्तब्धवायोरुपरिस्थितम् । तथाच सूर्य्यसिद्धान्ते । 'भचक्रं [illegible] [illegible]महानिले." इति ।तस्य चक्रस्य द्वादशांशो राशिर्भवेत् । किम्भूत नवभिर्नक्षत्रपादैरन्वित [illegible]
प्रश्न [illegible] [illegible]पक्रमित्यर्थः । इति ॥
मनुष्यके द्व[illegible] [illegible]शिनामान्याह । मेषेति । सुगमम् । इति ।
ग्रहो वि[illegible] । राशीति । क्षेत्रादीनि राशीन मेषादीना नामानि [illegible] [illegible] गृहनाम [illegible]
[illegible]नान्तु पृथक् २ पर्य्याय लोकाज्ज्ञात्वा विचिन्तयेत् । [illegible]
तावदिनान्याग[illegible] [illegible] तथाच वृहज्जातके । [illegible] इति [illegible]

(क) वृषमेषकर्कटमकरधनुर्म्मीना. पृ॰.

अथ मेषादीनां विशेषसंज्ञाः ।

क्रियतावुरिजितुमकुलीरलेयपाथेययूककौर्पाख्याः ।
तौक्षिकआकोकेरोहृद्रोगश्चान्त्यभश्चेत्थम् ॥ ५ ॥ (ङ)

अर्थ–अब राशिगणकी विशेषसंज्ञा कही जातीहै, यथा–मेषका दूसरा नाम क्रिय, वृषका दूसरा नाम तावुरि, मिथुनका जितुम, कर्कका कुलीर, सिंहका लेय, कन्याका पाथेय, तुलाका यूक, वृश्चिकका कौर्प, धनका तौक्षिक, मकरका आकोकेर, कुम्भका हृद्रोग और मीनका दूसरा नाम अन्त्यभ है ॥ ५ ॥

अथ क्रूरसौम्यादिविवेकः ।

क्रूरोऽथ सौम्यः पुरुषोऽङ्गना च ओजोऽथ युग्मं विषमः समश्च ।
चरस्थिरद्व्यात्मकनामधेया मेषादयोऽमी क्रमशःप्रदिष्टाः॥६॥(च)

अर्थ–मेष, मिथुन, सिंह, तुला, धनु और कुम्भ इन छः राशियोको क्रूर पुरुष ओज और विषम राशि कहतेहैं । वृष, कर्क, कन्या, वृश्चिक, मकर और मीन इन छः राशियोको सौम्य, अङ्गना युग्म और सम जानो, मेष, कर्क, तुला और मकर इन चारोको चर राशि कहतेहैं. वृष, सिंह, वृश्चिक और कुम्भ इन चारोंको स्थिर राशि कहतेहैं और मिथुन, कन्या, धन और मीनको द्व्यात्मक द्विस्वभाव राशि कहतेहैं ॥६॥

अथ पुण्यादिविवेकः ।

पुण्यश्च पुष्करश्चैव आधानाख्यस्तथैव च ॥
श्रुत्या वृत्त्या भवन्त्येते नित्यं द्वादशराशयः ॥ ७ ॥

अर्थ–अब मेषादि राशिकी पुण्यादिसंज्ञा कहीजातीहै, यथा–मेष, कर्क, तुला, और मकर इनकी पुण्य संज्ञा है । वृष, सिंह, वृश्चिक और कुम्भ इन कई एक राशियोकी पुष्करसंज्ञा है । मिथुन, कन्या, धन और मीन इन राशियोंकी आधानसंज्ञा है ॥ ७ ॥

(ङ) व्यवहारार्थं यथाक्रमं विशेषद्वादशसंज्ञा आह । क्रियेति । आकोकेर इति मकरस्य संज्ञा हृद्रोग कुम्भस्य संज्ञा इत्यर्थः । इति ॥

(च) राशीना क्रूरादिसंज्ञा आह । क्रूरइति । मेषादयो राशयः यथाक्रमं क्रूरसौम्यादिसंज्ञकाः प्रथम क्रूर द्वितीय. सौम्य. ततस्तृतीयःक्रूरश्चतुर्थ. सौम्य इत्यादि । तथा प्रथमः पुरुषः द्वितीया स्त्रीत्यादि। तथा प्रथम ओज. द्वितीयो युग्म. इत्यादि ओजशब्दोऽयमदन्तः।तथाच बृहज्जातके "ओजर्क्षे पुरुषांशकेषु बलिभि." इत्यादि तत्रैव "युग्मे चन्द्रमसि तथौजभवने" इति । तथा । प्रथमो विषमः द्वितीय. सम इत्यादि। तथा प्रथमश्चरः द्वितीयः स्थिरः तृतीयो द्व्यात्मक इति एवं कर्कटश्चर. सिंहः स्थिर. कन्या द्व्यात्मक इत्यादि द्व्यात्मकश्चरस्वभावः स्थिरस्वभावश्च तत्र चरसमीपार्द्धं चर.स्थिरसपार्द्धं स्थिरमिति। तथाच दैवज्ञवल्लभाख्यायाम् "द्वितनौ लग्नोपगते चरस्थिरौज फलं ददतः।" इति॥

अथ द्विपदचतुष्पदादिराशिकथनम् ।

मिथुनतुलावटकन्या द्विपदाख्याश्चापपूर्वभागश्च ।
मृगधनुरायन्तार्द्धं वृषाजसिंहाश्चतुश्चरणाः ॥ ८ ॥ (छ)

अर्थ–मिथुन, तुला, कुम्भ, कन्या और धनका पूर्वार्द्ध भागको द्विपदराशि कहतेहैं मकरका पूर्वार्द्ध, धनका शेषार्द्ध, वृष, मेष और सिंह इनको चतुष्पदराशि कहतेहैं ॥ ८ ॥

अथ कीटसरीसृपराशिकथनम् ।

कर्कटवृश्चिकमीना मकरान्त्यार्द्धश्च कीटसंज्ञाः स्युः ।
वृश्चिकराशिर्मुनिभिः सरीसृपत्वेन निर्दिष्टः ॥ ९ ॥ (ज)

अर्थ–कर्क, वृश्चिक, मीन और मकरके शेषार्द्धको कीटराशि कहतेहैं अधिकतर वृश्चिकराशिको सरीसृप कहा है ॥ ९ ॥

अथ ग्राम्यारण्यराशिकथनम् ।

ग्राम्या मिथुनतुलास्त्रीचापालिघटा निशासु वृषमेषौ ।
मकरादिमार्द्धसिंहौ वन्यौ दिवसेऽजवृषभौ च ॥ १० ॥ (झ)

अर्थ–मिथुन, तुला, कन्या, धन, वृश्चिक और कुम्भ इन छः राशियोंको ग्राम्यराशि कहते हैं और रात्रिमे वृष और मेषको ग्राम्य राशि कहा है मकरके प्रथमार्द्ध और सिंहको वन्यराशि कहते है और दिनमें मेष और वृषको वन्यराशि कहा है ॥ १० ॥

अथ जलजराशिकथनम् ।

जलजौ कर्कटमीनौ मकरान्त्यार्द्धश्च शिवमते कुम्भः ।
राशेः स्वरूपमेतन्मार्कण्डेयादिभिःकथितम् ॥ ११ ॥ (ञ)

अर्थ–कर्क, मीन और मकरके शेषार्द्धको जलज राशि कहते हैं और शिवके मतसे

(छ) राशीनां द्विपदादिविभागमाह । मिथुनेति । मकरस्याद्यार्द्धं धनुषोऽन्त्यार्द्धं वृषाजसिंहाश्चतुष्पदा इत्यर्थः । इति ॥

(ज) कीटसरीसृपसंज्ञामाह । कर्कटेति । सुगमम् । इति ॥

(झ) ग्राम्यारण्यसंज्ञामाह । ग्राम्येति । स्त्री कन्येत्यर्थः । मिथुनतुला कन्या धनुर्वृश्चिक कुम्भा [illegible] ग्राम्याः । निशासु रात्रिषु वृषमेषौ मकरस्याद्यार्द्धं सिंहश्च वन्यौ दिवसे तु [illegible] ॥

(ञ) जलजराशिमाह । जलजाविति । शिवमते [illegible] प्रतिपादितम् । इति ॥

कुम्भकोभी जलज राशि कहाहै । मार्कण्डेयप्रभृति ऋषियोने कर्तृकराशिके स्वरूपको इस प्रकारसे कीर्त्तनाकिया ॥ ११ ॥

अथ बलज्ञानम् ।

दिवा स्याद्द्विपदो राशिर्बली नक्तं चतुष्पदः ।
सन्ध्यायां कीटसंयुक्ता बलवन्तो जलोद्भवाः ॥ १२ ॥ (ट)

अर्थ-दिनमें द्विपद अर्थात् मिथुन, तुला, कुम्भ, कन्या और धनका पूर्वार्द्ध यह सब राशि बलवान् होतीहै. रात्रिमे चतुष्पद अर्थात् मकरका पूर्वार्द्ध, धनका शेषार्द्ध, वृष,मेष और सिह यह बलवान् होतीहै, सायंकालमें कीट अर्थात् कर्क, वृश्चिक, मीन और मकरका शेषार्द्ध यह बलवान् होतीहैं ॥ १२ ॥

अन्यच्च ।

गोजाश्विकर्किमिथुनाःसमृगानिशाख्याः
पृष्ठोदयाविमिथुनाः कथितास्त एव ।
शीर्षोदया दिनबलाश्च भवन्ति शेषा
लग्ने समेत्युभयतः पृथुरोमयुग्मम् ॥ १३ ॥ (ठ)

इति पृष्ठोदयादिविवेकः ।

(ट) राशीना कालबलमाह । दीपिकायाम् ।

"दिनभागे मनुष्यास्तु निशायान्तु चतुष्पदाः ।
सन्ध्याद्वयेऽवशेषास्तु बलिन' परिकीर्तिताः" ॥

अस्य व्याख्या । राशीनां कालबलमाह। दिनभाग इति । दिनभागे दिवाभागे इत्यर्थः । अत्रापि पादमात्र बलमिति । एतान्युक्तानि सर्वबलानि राशीना लग्नस्य च कर्त्तव्यानि । इति ।

(ठ) राशीना दिग्बलमाह । दीपिकायाम्-

'नरास्तु बलिनो लग्ने चतुर्थे जलराशय. ।
सप्तमे वृश्चिकश्चैव दशमे पशवस्तथा ॥"

अस्य व्याख्या । राशीना दिग्बलमाह । नरास्त्विति । लग्नगता मिथुनतुलाघटकन्याधनु.पूर्वार्द्धा नरराशय. पूर्वदिग्बलिनः यतो राशीनामुदयो लग्नमुदयश्च पूर्व एव भवति । लग्नाच्चतुर्थस्था मीनकर्कटमकरपरार्द्धा जलराशय. उत्तरदिग्बलिनः यस्माच्चक्रभ्रमणक्रमेण लग्नाच्चतुर्थराशिरेव उत्तरे तिष्ठति सप्तमस्थो वृश्चिकराशिः पश्चिमदिग्बली यतो लग्नात् सप्तमराशिरस्तमेति अस्तत्वञ्च पश्चिमदिश्येवेति लग्नाद्दशमस्था पशुराशयो मेषवृषसिंहधनुपरार्द्धमकरपूर्वार्द्धा दक्षिणादिग्बलिनः यतो लग्नाद्दशमराशिरेव दक्षिणदिशि तिष्ठति एतेन स्वकीयस्वकीयसप्तमस्था नरजलादिराशयोऽबला नरा लग्नसप्तमे बलहीना. जलजा लग्नदशमे बलहीना चतुष्पदा लग्नाच्चतुर्थे बलहीनाः लग्नगतश्च वृश्चिको बलहीन इति । एतेषा नरादीनामन्यत्र गतानामनुपातविधिना बलान्यानेतव्यानीति ।

अर्थ–वृष, मेष, धन, कर्क, मिथुन और मकर यह छः राशि रात्रिमें बलवान् होतीहैं और मिथुनको छोड़कर इन समस्त राशियोंकी पृष्ठोदयसंज्ञा है । उक्तराशिभिन्न और समस्तराशियोंकी शीर्षोदयसंज्ञा है और दिनमें बलशाली होतीहै । किन्तु मीनराशि दिन तथा रात्रि सब समयमेंही समबलशाली हैं ॥ १३ ॥

अथ राशीनां स्थानबलम् ।

केन्द्रस्थान्प्रबलान्राशीन्मध्यान्पणफराश्रितान् ।
आपोक्लिमगतान्गार्गिः सर्वान्हीनबलान्वदेत् ॥ १४ ॥ (ड)

अर्थ–अब स्थानबल कीर्त्तनकरतेहैं । केन्द्रस्थानमें स्थित समस्त राशि बलवान् होतीहैं, इसीप्रकार पणफरस्थानमें स्थित राशिगण मध्यबली होतीहैं और आपोक्लिम स्थानमें स्थित समस्त राशि हीनबल होजातीहैं, इसप्रकार गर्गमुनिने कहाहै ॥ १४ ॥

अथ बलाबलविभागः ।

यस्तु यस्यांशपो राशेस्तद्बलादंशको बली ॥
अबलस्तस्य दौर्बल्ये मध्यमे मध्यमः स्मृतः ॥ १५ ॥ (ढ)

तेन च लग्नगतानां जलजपशुराशीनामर्द्धबलमिति प्रयोजनम् । तथाच श्रीपतिभट्ट । "नृभे क्षिपेच्च रूपकं चतुष्पदादयोर्दलं न कीटभे तु किञ्चन स्फुट भवेत्तनोर्बलम्"। जलजचतुष्पदकीटभसञ्ज्ञा मृगनदशमास्तगता बलवन्त. । निजनिजसप्तमगा विबलास्ते तदितरगैरनुपातविधि. स्यात यथा यात्राचूडादिमङ्गलकर्म्मणि बलवत्तया एते राशयः प्रशस्ताः ।

तथा एतेषां बलवत्तया भावफलाधिकत्वञ्च तथा राशिशीलाध्याये यत्प्रोक्त द्वादशराशिस्थग्रहाणां फलं तदेतेषां बलवत्तया संपूर्ण स्यात् । तथाच बृहज्जातके । "बलवति राशौ तदधिपतौ स्वबलयुतः स्याद्यदि तु हिमांशुः । कथितफलानामविकलदाता शशिवदतोऽन्येऽप्यनुपरिकल्प्या "। इत्यादिप्रयोजनमूह्यम् । कश्चित्तु एतेषां बलवत्तया लग्नमात्रस्य बलवत्त्वमिति वदति । तन्न । नह्यन्यस्य बलेनान्यस्य बलवत्त्वं स्यात ग्रन्थकर्त्तुरनभिप्रायाच्च । एवं वक्ष्यमाणेष्वपि राशिबलानां प्रयोजनं ज्ञातव्यम् । इति ॥

(ड) राशीनां स्थानबलमाह । केन्द्रस्थानिति । केन्द्रस्थान्राशीन् प्रबलान् प्रकृष्टबलान्वदेत् । पणफराश्रितान् मध्यबलान् आपोक्लिमस्थान् हीनबलान् वदेत । अत्र चायं विभाग केन्द्रेषु सम्पूर्णबलमेव ग्राह्यं पणफरेष्वर्द्धबलम् आपोक्लिमेषु पादिकमित्यर्थः । तथाच श्रीपतिभट्ट । "कण्टकादिषु नियोज्या रूपकार्द्धचरणा निजवीर्य्ये" इति । एतत्प्रयोजनन्तु यात्रादिमङ्गलकर्म्मणि बलवत्तया एते राशयः प्रशस्ताः एषां भावफलस्य चाधिकत्वमिति ॥

(ढ) अंशबलमाह । यस्त्विति । यस्य राशेर्यो नवांशाधिपतिग्रहस्तस्य बलेन [illegible] नवांशराशिर्बली तस्याधिपस्य दौर्बल्येऽबलस्तस्य मध्यबले मध्यबलो नवांशराशि. इति । [illegible] प्रश्नलग्नवांशयोर्बलाबलवशेन नवांशादपि फलं वक्तव्यम् । तथाच बृहज्जातके । [illegible]

अर्थ–जिस राशिके जो ग्रह नवांशाधिपति हों उनके बलानुसारही नवांशराशिभी बलवान् होतीहै और नवांशपतिके दुर्बल होनेसे राशिभी दुर्बल होतीहै और नवांशाधिपति ग्रहके मध्यबल होनेसे राशिभी मध्यबलशाली होती है ॥ १५ ॥

अथ पत्यादियोगादिना राशिबलाबलकथनम्।

पतितत्प्रियबुधसौम्योच्चस्थैर्युतवीक्षितो बली राशिः ॥
स्वल्पबलोऽन्यैर्मिश्रैर्मध्यः सर्वायुतेक्षितस्त्वबलः ॥ १६ ॥ (ण)

अर्थ–मेषादि द्वादशराशि अपने २ मालिक हों या अपने २ मालिकके मित्र हों अथवा बुध ग्रह वा शुभग्रहगण अथवा किसी उच्चग्रहकी दृष्टि होवै वा युक्त होनेसे राशि बलवान् होतीहै. इसीप्रकार अपने मालिकके शत्रुग्रह या नीच ग्रहकी दृष्टि हो अथवा युक्त होनेसे राशि बलहीन होतीहै, पत्यादियुक्त वा दृष्टि न होनेसे प्रत्येकमे पाद (चौथाई) बल होताहै, पत्यादिग्रह और अन्यान्यग्रहकी दृष्टि हो अथवा युक्त होनेसे मध्यबल होता है शुभग्रहकी दृष्टि होनेसे चतुर्थांशबल होताहै और समस्तग्रहोंकी अदृष्टि हो अथवा अयुक्त होनेसे राशि बलहीन होजातीहै ॥ १६ ॥

अथ वेश्यादिस्थानकथनम्।

वेशिः सूर्य्याद्द्वितीयर्क्षस्वामिदिक्संज्ञितः प्लवः।
राशीनामुदयो लग्नं होरा राश्यर्द्धलग्नयोः ॥ १७ ॥ (त)

नानिर्णय उक्त । राश्यंशसमानगोचरे मार्गे चरे स्थिरे गृहे स्वर्क्षांशयुते स्वमन्दिरे बलयोगात् फलमंशकर्क्षयोरपि। सौभरिस्तु । अंशपो बलीति पाठं कृत्वा राशेर्बलात् नवांशपतिर्बलीति प्रलपति । तन्न । अन्यस्मिन्नध्याये राशेर्बलं निरूप्यते न तु ग्रहस्य। स्थानान्तरे तु स्वोच्चत्रिकोणहितभेत्यादिना ग्रहाणां नवांशबलं वक्ष्यते । इति ॥

(ण)–राशीनां बलान्याह । पतीति । पत्या पतिमित्रेण पापयुतेनापि शुभेन शुभग्रहेण उच्चस्थग्रहेण च युतो वीक्षितो वा मेषादिराशिर्बली स्यात् । तत्रायोगे प्रत्येकं पादबलं ग्राह्यं दर्शनेषु यावद्दर्शनं तच्चतुर्थांशो गृहीतव्यः । तथाच श्रीपतिभट्टः । सौम्यैर्दृष्टे दृष्टितुर्य्यांशयुक्तं वीर्य्यं पापावलोकिते न तद्विहीनमिति। अत्रापि पतितत्प्रियत्वाद्यनेकगुणयुक्तेन एकेन युक्ते दृष्टे वा गुणैकस्यैव बलं ग्राह्यमिति एतदन्यैरुदासीनैः शत्रुभिर्नीचस्थैश्च युतदृष्टोऽल्पबलः स्यात् । अत्र च पादोनबलचतुष्टयं ग्राह्यं तथाच भैरवभट्टः "शत्रौ न भवति षोडशांशकः" इति । मित्रैः पत्यादिभिश्चान्यैर्युतो दृष्टो वा मध्यबलः सर्वेषां पूर्वोक्तक्रमेण बलं ग्राह्यमित्यर्थः । सर्वग्रहैरयुतोऽदृष्टश्चेत्स्यात्तदा अबलो बलरहित इत्यर्थः इति ।

(त) वेश्यादिसंज्ञामाह। वेशिर्द्वीति । सूर्य्याद्द्वितीयग्रहं वेशिः प्लव इति स्वामिनो दिशः संज्ञाप्रयोजनन्तु जन्मलग्नस्य प्लवे पुरुषस्य वृद्धिं जानीयात् यात्रायाश्च यत्र प्लवः स्यात् तस्मिन् लग्ने यात्रा शुभेति । तथाच सारावल्याम् "भवनाधिपदिङ्नामप्लव इति यवनैः प्रयत्नतः कथितः । तत्प्लवगो विनिहन्यादचिरेण महीपतिः शत्रून्" ॥ कश्चित्तु प्लवो जलनिर्गमवर्त्मेति प्रलपति । लग्नं राश्युदयः । होराशब्दो राश्यर्द्धे लग्ने च वर्त्तत इति ।

अर्थ–सूर्य्य जिस राशिमें स्थित हो उसके दूसरे स्थानका नाम वोशि है और उस राशिके अधिपति ग्रहगणका नाम ध्रुव है, मेषादि द्वादश राशिके उदयका नाम लग्न है, राशिका अर्द्ध और लग्नार्द्धको होरा कहतेहैं ॥ १७ ॥

अथ षड्वर्गकथनम् ।

क्षेत्रं होराथ द्रेक्काणो नवांशो द्वादशांशकाः ।
त्रिंशांशकश्च वर्गोऽयं ज्यायैर्यो यस्य तस्य सः ॥१८॥ (थ)

अर्थ–अब षड्वर्गको कहते हैं क्षेत्र, होरा, द्रेष्काण, नवांश, द्वादशांश और त्रिंशांशकको षड्वर्ग कहतेहैं और वर्गशब्दसे उक्त छःको और इन छःके मध्यमें एक२ को षड्वर्ग कहतेहैं अपने क्षेत्रमें स्थित या अपने होरादिस्थानमे स्थित ग्रहवर्गमें स्थित कहेहैं यदि कोई ग्रह त्रिंआदिवर्गमें स्थित होवै तो जीवगणको आत्मसदृश आकृति प्रदानकरता है ॥ १८ ॥

अथ क्षेत्राधिपकथनम् ।

कुजशुक्रबुधेन्द्वर्कसौम्यशुक्रावनीभुवाम् ।
जीवार्किभानुजेज्यानां क्षेत्राणि स्युरजादयः ॥ १९ ॥ (द)

अर्थ–अब क्षेत्राधिपति कीर्त्तनकरतेहैं । मङ्गल, शुक्र, बुध, चन्द्र, सूर्य्य, बुध, शुक्र, मङ्गल, बृहस्पति, शनि, शनि और बृहस्पति इन समस्त ग्रहोंके क्षेत्र (गृह) क्रमानुसार द्वादश राशि हैं, अर्थात् मेषका मालिक मङ्गल, वृषका शुक्र, मिथुनका मालिक बुध इत्यादि ॥ १९ ॥

अथ राशीनां ह्रस्वनादिसंज्ञा ।

ह्रस्वास्तिमिगोऽविघटामिथुनधनुःकर्किमृगमुखाश्च समाः ।
वृश्चिककन्यामृगपतिवणिजो दीर्घाः समाख्याताः ॥ २० ॥

अथ राशीनामधिष्ठातृदेवताकथनम् ।

मत्स्यौ घटी नृमिथुनं सगदं सवीणं
चापी नरोऽश्वजवनोमकरो मृगास्यः ।
तौली सशस्यदहना प्लवगा च कन्या
शेषाः (ध) स्वनामसदृशाः खचराश्च (न) सर्वे ॥ २१॥ (प)

अर्थ–अब राशिगणके अधिष्ठातृदेवताओको वर्णन करतेहै –अन्यान्य पुच्छाभिषक्त परस्पर गात्र निरीक्षक और रक्तमुख मत्स्यद्वय (दोमछलियोंकी) मीनराशि है. स्कन्धमे घट धारण किए मनुष्यकी कुम्भराशि है, स्त्री और पुरुषकी मिथुनराशि है, तिनके बीचमे पुरुष गदाधारी और स्त्री वीणाधारिणी है, अश्वाकृति जंघा और धनुर्धारी पुरुषकी धनराशि है. मृगके समान मुख होनेसे मकरराशि है, तुलाधारी मनुष्यकी तुला राशि है, नौकारूढा शस्याग्निहस्ता कुमारीकी कन्या राशि है, एतद्भिन्न मेषादि जो समस्तराशि हैं उनको स्वनामसदृश जानो अर्थात् मेष मेषाकृति, वृष वृषाकार. सिंह सिंहाकृति, कर्क कर्कटके समान और वृश्चिकको वृश्चिकाकृति (विच्छूके समान) जानो ॥ २१ ॥

अन्यच्च ।

स्वनामरूपा मेषाद्या मिथुनन्तु नृदम्पती ।
कन्या च प्लवगा तौली शस्यामानशिलायुतः ॥ २२ ॥
घटहस्तः पुमान्कुम्भो मीनो मत्स्ययुगः स्मृतः ।
जवनेऽश्वाकृतिर्धन्वी मकरश्च मृगाननः ॥ २३ ॥

पूर्वश्लोकके अनुसार ही इसका अर्थ है अतएव पृथक् अनुवाद नही करते ॥२२॥२३॥

(ध) मेषवृषकर्कटसिंहवृश्चिकाः स्वनामसदृशाइत्यर्थ. ।

(न) खचरा इत्यपि पाठः ।

(प) राशीना देवतास्वरूपमाह–मत्स्याविति। मीनराशिर्मत्स्यद्वयम् अन्योऽन्यपुच्छाभिषक्तं रक्तमुखम् अन्योऽन्यसर्वगात्रनिरीक्षकम् । कुम्भ. स्कन्धासक्तघटो नर. । नृमिथुनं स्त्रीपुसौ तत्र पुमान् गदाहस्त. स्त्री वीणा धारिणी धनु.धनुर्धरो नरः अश्वजघन.अश्वाकृतिजघनः न तु अश्वारूढो जघनः । मकरो मृगमुख । तुलाराशिः तुलाहस्तः पुरुष । कन्या कुमारी शस्याग्निहस्ता प्लवगनौस्था शेषाः मेषवृषसिंहकर्कटवृश्चिका नामानुरूपाकाराः । सर्वे द्वादशराशयः खचरा यथायोग्यस्थाननिवासिनः अन्योऽन्यपुच्छाभिमुखमिति । मेषवृषौ दिवसे अरण्यचरौ रात्रौ ग्राम्यौ मिथुनं ग्राम्य कर्कटमीनौ जलचरौ–सिंहआरण्य. कन्या नौस्था तुला पण्यवीथीस्था वृश्चिकः श्वभ्रवासी धनुःकुम्भौ ग्राम्यौ मकरस्य पूर्वभागो जलचरः प्रयोजनन्तु हृतनष्टद्रव्यस्य स्थाननिर्णयादि । इति ॥

अर्थ—सूर्य्य जिस राशिमें स्थित हो उसके दूसरे स्थानका नाम वेशि है और उस राशिके अधिपति ग्रहगणका नाम प्लव है, मेषादि द्वादश राशिके उदयका नाम लग्न है, राशिका अर्द्ध और लग्नार्द्धको होरा कहतेहैं ॥ १७ ॥

अथ षड्वर्गकथनम् ।

क्षेत्रं होराथ द्रेक्काणो नवांशो द्वादशांशकाः ।
त्रिंशांशकश्च वर्गोऽयं त्र्याद्यैर्यो यस्य तस्य सः ॥१८॥ (थ)

अर्थ—अब षड्वर्गको कहते हैं क्षेत्र, होरा, द्रेक्काण, नवांश, द्वादशांश और त्रिंशांशकको षड्वर्ग कहतेहैं और वर्गशब्दसे उक्त छःको और इन छःके मध्यमें एक२ को षड्वर्ग कहतेहैं अपने क्षेत्रमे स्थित या अपने होरादिस्थानमे स्थित ग्रहवर्गमें स्थित कहेहै यदि कोई ग्रह त्रिआदिवर्गमें स्थित होवै तो जीवगणको आत्मसदृश आकृति प्रदान-करता है ॥ १८ ॥

अथ क्षेत्राधिपकथनम् ।

कुजशुक्रबुधेन्द्वर्कसौम्यशुक्रावनीभुवाम् ।
जीवार्किभानुजेज्यानां क्षेत्राणि स्युरजादयः ॥ १९ ॥ (द)

अर्थ—अब क्षेत्राधिपति कीर्त्तनकरतेहैं । मङ्गल, शुक्र, बुध, चन्द्र, सूर्य्य, बुध, शुक्र, मङ्गल, बृहस्पति, शनि, शनि और बृहस्पति इन समस्त ग्रहोंके क्षेत्र (गृह) क्रमानुसार द्वादश राशि हैं, अर्थात् मेषका मालिक मङ्गल, वृषका शुक्र, मिथुनका मालिक बुध इत्यादि ॥ १९ ॥

अथ राशीनां ह्रस्वतादिसंज्ञा ।

ह्रस्वास्तिमिगोऽविघटामिथुनधनुःकर्किमृगमुखाश्च समाः ।
वृश्चिककन्यामृगपतिवणिजो दीर्घाः समाख्याताः ॥ २० ॥

अथ राशीनामधिष्ठातृदेवताकथनम् ।

मत्स्यौ घटी नृमिथुनं सगदं सवीणं
चापी नरोऽश्वजवनोमकरो मृगास्यः ।
तौली सशस्यदहना प्लवगा च कन्या
शेषाः (ध) स्वनामसदृशाः खचराश्च (न) सर्वे ॥ २१॥ (प)

अर्थ–अब राशिगणके अधिष्ठातृदेवताओंको वर्णन करतेहैं –अन्यान्य पुच्छाभिपक्त परस्पर गात्र निरीक्षक और रक्तमुख मत्स्यद्वय (दोमछलियोंकी) मीनराशि है. स्कन्धमे घट धारण किए मनुष्यकी कुम्भराशि है, स्त्री और पुरुषकी मिथुनराशि है, तिनके बीचमे पुरुष गदाधारी और स्त्री वीणाधारिणी है, अश्वाकृति जंघा और धनुर्धारी पुरुषकी धनराशि है. मृगके समान मुख होनेसे मकरराशि है, तुलाधारी मनुष्यकी तुला राशि है. नौकारूढा शस्याग्निहस्ता कुमारीकी कन्या राशि है, एतद्भिन्न मेषादि जो समस्तराशि हैं उनको स्वनामसदृश जानो अर्थात् मेष मेषाकृति, वृष वृषाकार. सिंह सिंहाकृति, कर्क कर्कटके समान और वृश्चिकको वृश्चिकाकृति (विच्छूके समान) जानो ॥ २१ ॥

अन्यच्च ।

स्वनामरूपा मेषाद्या मिथुनन्तु नृदम्पती ।
कन्या च प्लवगा तौली शस्यामानशिलायुतः ॥ २२ ॥
घटहस्तः पुमान्कुम्भो मीनो मत्स्ययुगः स्मृतः ।
जघनेऽश्वाकृतिर्धन्वी मकरश्च मृगाननः ॥ २३ ॥

पूर्वश्लोकके अनुसार ही इसका अर्थ है अतएव पृथक् अनुवाद नही करते ॥२२॥२३॥

(ध) मेषवृषकर्कटसिंहवृश्चिकाः स्वनामसदृशाइत्यर्थः ।

(न) खचरा इत्यपि पाठः ।

(प) राशीनां देवतास्वरूपमाह–मत्स्याविति। मीनराशिर्मत्स्यद्वयम् अन्योऽन्यपुच्छाभिषक्तं रक्तमुखम् अन्योऽन्यसर्वगात्रनिरीक्षकम् । कुम्भ स्कन्धासक्तघटो नरः । नृमिथुनं स्त्रीपुंसौ तत्र पुमान् गदाहस्तः स्त्री वीणा धारिणी धनु धनुर्धरो नरः अश्वजघन अश्वाकृतिजघनः न तु अश्वारूढो जवनः । मकरो मृगमुख । तुलाराशिः तुलाहस्तः पुरुष । कन्या कुमारी शस्याग्निहस्ता प्लवगनौस्था शेषाः मेषवृषसिंहकर्कटवृश्चिकाः नामानुरूपाकाराः । सर्वे द्वादशराशयः खचरा यथायोग्यस्थाननिवासिनः अन्योऽन्यपुच्छाभिमुखमिति । मेषवृषौ दिवसे अरण्यचरौ रात्रौ ग्राम्यौ मिथुनं ग्राम्यं कर्कटमीनौ जलचरौ सिंहआरण्य. कन्या नौस्था तुला पण्यवीथीस्था वृश्चिकः श्वभ्रवासी धनु कुम्भौ ग्राम्यौ मकरस्य पूर्वभागो जलचर. प्रयोजनन्तु हृतनष्टद्रव्यस्य स्थाननिर्णयादि । इति ॥

अथ राशीनां वश्यावश्यकथनम् ।

द्विपदवशगाः सर्वे सिंहं विहाय चतुष्पदाः
सलिलनिलया भक्ष्या वश्याः सरीसृपजातयः ॥
मृगपतिवशे तिष्ठन्त्येते विहाय सरीसृपान्
अकथितगृहेष्वूह्यं वश्यं जनव्यवहारतः ॥ २४ ॥ (फ)

अर्थ–अब राशिगणके वश्यावश्यको कीर्त्तन करतेहैं, यथा-सिंहराशिके भिन्न समस्त चतुष्पदराशि द्विपदराशिके वशमें हैं, अर्थात् मिथुन, तुला, कुम्भ, कन्या और धन राशिके पूर्वार्द्धके वशीभूत हैं, समस्त जलजराशि द्विपदराशिके भक्ष्य हैं और सरीसृपसंज्ञक राशिको छोड़कर द्विपद और चतुष्पद समस्त राशि सिंहराशिके वशीभूत है । अन्यान्य जो समस्तराशियोंका वश्यावश्य नहीं कहाहै उनका लोकाचारके अनुसार वश्यावश्य जानना, जैसे वृषके वशीभूत मेष राशि है । इत्यादि ॥ २४ ॥

अथ राशीनां जातिकथनम् ।

मीनकर्कटवृश्चिकविप्राःसिंहमेषधनुःक्षत्रियउक्तः ।
कुम्भनरद्वययूकविशः स्युः स्त्रीवृषमकराः कथिताः शूद्राः ॥२५॥

अर्थ–अब राशिगणकी जाति वर्णन करतेहैं । यथा, मीन, कर्क और वृश्चिक ब्राह्मणजाति है, सिंह, मेष और धन इनकी क्षत्रिय जाति है, कुम्भ, मिथुन और तुला इनकी वैश्यजाति है, कन्या, वृष और मकर इनकी शूद्रजाति है ॥ २५ ॥

अथ मेषादीनां वर्णकथनम् ।

अरुणसितहरितपाटलपाण्डुविचित्राः सितेतरपिशङ्गौ ।
पिङ्गलकर्बुरबभ्रुकमलिना रुचयो यथासंख्यम् ॥ २६ ॥ (च)

अर्थ–अब मेषादि द्वादशराशिका वर्ण कीर्त्तन करते हैं । मेषका रक्तवर्ण है वृषका शुक्लवर्ण, मिथुनका हरितवर्ण, कर्कका पाटलवर्ण, सिंहका पाण्डुवर्ण, कन्याका विचित्र-वर्ण, तुलाका कृष्णवर्ण, वृश्चिकका पिङ्गलवर्ण, धनका पिङ्गलवर्ण, मकरका कर्बुरवर्ण, कुम्भका बभ्रुकवर्ण और मीनका मलिनवर्ण है ॥ २६ ॥

अथ नवग्रहसंज्ञाकथनम् ।

रविःसोमो मङ्गलश्च बुधो जीवः सितः शनिः ।
राहुः केतुश्च कथितो मार्कण्डेयादिभिः पुरा ॥ २७ ॥

अर्थ–सूर्य्य, चन्द्र, मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु और केतु यहां नौ ग्रह संज्ञक है, इसप्रकार मार्कण्डेय प्रभृति मुनिगणने कहाहै ॥ २७ ॥

अथ ग्रहाणां विशेषसंज्ञाकथनम् ।

हेलिः सूर्य्यश्चन्द्रमाः शीतरश्मिः
हेम्ना विज्ज्ञो बोधनश्चेन्दुपुत्रः ।
आरो वक्रः क्रूरदृक्चावनेयः
कालो मन्दः सूर्य्यपुत्रोऽसितश्च ॥ २८ ॥
जीवोऽङ्गिराः सुरगुरुर्वचसांपतीज्यौ
शुक्रो भृगुर्भृगुसुतः सित आस्फुजिच्च ॥
राहुस्तमोऽगुरसुरश्च शिखी च केतुः,
पर्य्यायमन्यदुपलभ्य वदेच्च लोकात् ॥ २९ ॥ (भ)

अर्थ–अब ग्रहोंकी विशेषसंज्ञा कहतेहैं, यथा, सूर्य्यका दूसरा नाम हेलि है चन्द्रका नाम शीतरश्मि है बुधके नाम हेमन्, वित्, ज्ञ और इन्दुपुत्रहै.मङ्गलका नाम आर, वक्र, क्रूरदृक् और आवनेय है. शनिका नाम काल, मन्द, सूर्य्यपुत्र, और असित है,बृहस्पतिका नामान्तर जीव, अङ्गिरा, सुरगुरु, वचसांपति, और इज्यहै. शुक्रके नाम भृगु, भृगुसुत, सित और आस्फुजित है, राहुका नामान्तर तमः, अगु और असुर है और केतुका

नानावर्ण सितेतर कृष्णवर्ण. बभ्रुपिङ्गलौ पिशङ्गौ । पिङ्गलश्चाग्निवर्ण. स्वर्णवर्णश्चेति केचित् । कर्बुरः शबलवर्ण बभ्रुक' कपिलवर्ण' 'बभ्रुर्ना कपिले त्रिषु' इत्यमरः । मलिन. कृष्णवर्णः प्रयोजनन्तु हृतनष्टद्रव्यस्य वर्णज्ञानादि । इति ॥

(भ) श्लोकद्वयेन ग्रहसंज्ञामाह । हेलिरिति । हेलि' सूर्य्यस्य सज्ञा हेमन्शब्दो बुधस्य संज्ञा वचसांपतिरिज्यश्च लोकादन्यदपि पर्य्याय ज्ञात्वा वदेदिति ॥

अथ राशीनां वश्यावश्यकथनम् ।

द्विपदवशगाः सर्वे सिंहं विहाय चतुष्पदाः
सलिलनिलया भक्ष्या वश्याः सरीसृपजातयः ॥
मृगपतिवशे तिष्ठन्त्येते विहाय सरीसृपान्
अकथितगृहेषूह्यं वश्यं जनव्यवहारतः ॥ २४ ॥ (फ)

अर्थ–अब राशिगणके वश्यावश्यको कीर्त्तन करतेहैं, यथा-सिंहराशिके भिन्न समस्त चतुष्पदराशि द्विपदराशिके वशमें हैं, अर्थात् मिथुन, तुला, कुम्भ, कन्या और धन राशिके पूर्वार्द्धके वशीभूत हैं, समस्त जलजराशि द्विपदराशिके भक्ष्य हैं और सरीसृपसंज्ञक राशिको छोड़कर द्विपद और चतुष्पद समस्त राशि सिंहराशिके वशीभूत हैं। अन्यान्य जो समस्तराशियोंका वश्यावश्य नहीं कहाहै उनका लोकाचारके अनुसार वश्यावश्य जानना, जैसे वृषके वशीभूत मेष राशि है । इत्यादि ॥ २४ ॥

अथ राशीनां जातिकथनम् ।

मीनकर्कटवृश्चिकविप्राःसिंहमेषधनुःक्षत्रियउक्तः ।
कुम्भनरद्वययूकविशः स्युः स्त्रीवृषमकराः कथिताः शूद्राः ॥२५॥

अर्थ–अब राशिगणकी जाति वर्णन करतेहैं । यथा, मीन, कर्क और वृश्चिक ब्राह्मणजाति हैं, सिंह, मेष और धन इनकी क्षत्रिय जाति है, कुम्भ, मिथुन और तुला इनकी वैश्यजाति है, कन्या, वृष और मकर इनकी शूद्रजाति है ॥ २५ ॥

अथ मेषादीनां वर्णकथनम् ।

अरुणसितहरितपाटलपाण्डुविचित्राः सितेतरपिशङ्गौ ।
पिङ्गलकर्बुरबभ्रुकमलिना रुचयो यथासंख्यम् ॥ २६ ॥ (ब)

अर्थ-अब मेषादि द्वादशराशिका वर्ण कीर्त्तन करते है। मेषका रक्तवर्ण है वृषका शुक्लवर्ण, मिथुनका हरितवर्ण, कर्कका पाटलवर्ण, सिंहका पाण्डुवर्ण, कन्याका विचित्र-वर्ण, तुलाका कृष्णवर्ण, वृश्चिकका पिङ्गलवर्ण, धनका पिङ्गलवर्ण, मकरका कर्बुरवर्ण, कुम्भका बभ्रुकवर्ण और मीनका मलिनवर्ण है ॥ २६ ॥

अथ नवग्रहसंज्ञाकथनम्।

रविःसोमो मङ्गलश्च बुधो जीवः सितः शनिः।
राहुः केतुश्च कथितो मार्कण्डेयादिभिः पुरा ॥ २७ ॥

अर्थ-सूर्य्य, चन्द्र, मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु और केतु यहां नौ ग्रह संज्ञक हैं, इसप्रकार मार्कण्डेय प्रभृति मुनिगणने कहाहै ॥ २७ ॥

अथ ग्रहाणां विशेषसंज्ञाकथनम्।

हेलिः सूर्य्यश्चन्द्रमाः शीतरश्मिः
हेम्ना विज्ज्ञो बोधनश्चेन्दुपुत्रः।
आरो वक्रः क्रूरदृक्चावनेयः
कालो मन्दः सूर्य्यपुत्रोऽसितश्च ॥ २८ ॥
जीवोऽङ्गिराः सुरगुरुर्वचसांपतीज्यौ
शुक्रो भृगुर्भृगुसुतः सित आस्फुजिच्च ॥
राहुस्तमोऽगुरसुरश्च शिखी च केतुः,
पर्य्यायमन्यदुपलभ्य वदेच्च लोकात् ॥ २९ ॥ (भ)

अर्थ-अब ग्रहोंकी विशेषसंज्ञा कहतेहैं. यथा, सूर्य्यका दूसरा नाम हेलि है चन्द्रका नाम शीतरश्मि है बुधके नाम हेमन्, वित, ज्ञ और इन्दुपुत्रहै. मङ्गलका नाम आर, वक्र, क्रूरदृक् और आवनेय है. शनिका नाम काल, मन्द, सूर्य्यपुत्र, और असित है, बृहस्पतिका नामान्तर जीव, अङ्गिरा, सुरगुरु, वचसांपति, और इज्यहै. शुक्रके नाम भृगु, भृगुसुत, सित और आस्फुजिव है. राहुका नामान्तर तमः, अगु और असुर है और केतुका

नानावर्ण. सितेतर. कृष्णवर्ण. बभ्रुपिङ्गलौ पिशङ्गौ। पिङ्गलआभिवर्ण. स्वर्णवर्णश्चेति केचित्। कर्बुरः शबलवर्णः बभ्रुक कपिलवर्णः 'बभ्रुर्ना कपिले त्रिषु' इत्यमर.। मलिन. कृष्णवर्णः प्रयोजनन्तु हृतनष्टद्रव्यस्य वर्णज्ञानादि। इति ॥

(भ) श्लोकद्वयेन ग्रहसंज्ञामाह। हेलिरिति। हेलि सूर्य्यस्य सज्ञा हेमन्शब्दो बुधस्य संज्ञा वचसांपतिरिज्यश्च लोकादन्यदपि पर्य्यायं ज्ञात्वा वदेदिति ॥

नाम शिखी है, इनके सिवाय और जो ग्रहगणके नाम हैं, उनको लोकपरम्पराके अनुसार जानो ॥ २८ ॥ २९ ॥

अथ ग्रहाणां जातिकथनम् ।

ब्राह्मणौ शुक्रवागीशौ क्षत्रियौ भौमभास्करौ ।
वैश्यश्चन्द्रो बुधः शूद्रो म्लेच्छौ राहुशनैश्चरौ ॥ ३० ॥ (म)

अर्थ–अब ग्रहोंकी जाति वर्णन करतेहैं । शुक्र और बृहस्पतिकी ब्राह्मणजाति है, मङ्गल और रविकी क्षत्रियजाति है, चन्द्रकी वैश्य जाति है, बुधकी शूद्रजाति है और राहु शनैश्चरकी म्लेच्छ जाति है ॥ ३० ॥

अथ ग्रहाणां वर्णकथनम् ।

गौरवर्णो दिनाधीशो गौराश्चन्द्रेज्यभूमिजाः ।
श्यामलौ बुधशुक्रौ च कृष्णौ राहुशनैश्चरौ ॥ ३१ ॥

अर्थ–अब ग्रहोंके वर्ण कीर्तन करते हैं–सूर्य्यग्रहका गौर वर्ण है, चन्द्र, गुरु और मङ्गल इनकाभी गौर वर्ण है, इसी प्रकार बुध और शुक्रका श्यामल वर्ण है, राहु और शनैश्चरका कृष्ण वर्ण है और केतुका धूम्रवर्ण है ॥ ३१ ॥

अन्यच्च ।

रक्तश्यामो भास्करो गौर इन्दु-
र्नात्युच्चाङ्गो रक्तगौरश्च वक्रः ।
दूर्वाश्यामो ज्ञो गुरुर्गौरगात्रः
श्यामः शुक्रो भास्करिः कृष्णदेहः ॥ ३२॥ (य)
कृष्णवर्णो भवेद्राहुः केतुश्च धूम्रवर्णकः ॥

अर्थ–ग्रन्थान्तरमे लिखाहै कि, सूर्य्यका रक्त श्याम वर्ण है, चन्द्रका वर्ण गौर है, मङ्गलका अनुच्चाङ्ग और रक्त गौर वर्ण है, बुधका दूर्वाश्याम वर्ण है, बृहस्पतिका गौर वर्ण है, शुक्रका श्याम वर्ण है, राहु और शनैश्चरका कृष्ण वर्ण है ॥ ३२ ॥ और केतुका धूम्रवर्ण है ॥

अथ ग्रहाणां धातुकथनम ।

पित्ते प्रभाकरक्ष्माजौ श्लेष्माणौ चन्द्रभार्गवौ ।

(म) "चन्द्रो वैश्ये बुध. शूद्रे पतिर्मन्दोऽन्त्यजे जने" । इतिदीपिकायाम् । परार्द्धस्य पाठ ।

(य) ग्रहाणां वर्णमाह । रक्तश्याम इति । प्रयोजनन्तु हृतनष्टद्रव्यस्य रूपज्ञानादि इति ।

ज्ञगुरू समधातू च पवनौ राहुमन्दगौ ॥ ३३ ॥

अर्थ-रवि और मङ्गलकी पित्तप्रकृति है, चन्द्र और शुक्रकी श्लेष्मा प्रकृति है बुध और बृहस्पतिकी समधातु प्रकृति है, शनि और राहुकी वायु प्रकृति है ॥ ३३ ॥

मधुपिङ्गलदृक्चतुरस्रतनुः पित्तप्रकृतिः सविताल्पकचः ।
तनुभृत्सुतनुर्बहुवातकफः प्राज्ञःशशी मृदुवाक्छुभदृक् ॥ ३४ ॥
भूमिजस्तरुणमूर्त्तिरुदारः पैत्तिकः सुचपलः कृशमध्यः ।
श्लिष्टवाक्सततहास्यरुचिर्ज्ञः पित्तमारुतकफप्रकृतिः ॥ ३५ ॥
बृहत्तनुः पिङ्गलमूर्द्धजेक्षणो बृहस्पतिःश्रेष्ठमतिः कफात्मकः ।
भृगुः सुखी कान्ततनुः सुलोचनः कफानिलात्मा मितवक्रमूर्द्धजः॥३६॥
मन्दोऽलसः कपिलदृक्कृशदीर्घगात्रः
स्थूलद्विजः परुषलोमकचोऽनिलात्मा ॥ ३७ ॥

अर्थ-सूर्य्यग्रहके पिङ्गल नेत्र हैं, चतुष्कोण है पित्तप्रकृति है और अल्पकेशोंद्वारा युक्त है । चन्द्रग्रह स्त्रीसंज्ञक है, मृदुभाषी, प्राज्ञ है, वातकफाधिक्यप्रकृति है और सुन्दर नेत्र हैं, मङ्गलग्रहका नवीन अङ्ग है, उदार चित्त है, पित्ताधिक्य शरीर है, चपल है, मध्यक्षीण है, श्लिष्टभाषी है और हास्यरस उनके लिये प्रिय है । बुधकी पित्त वायु और श्लेष्मा प्रकृति है, बृहत् शरीर है, पिङ्गल वर्ण नेत्र हैं और पिङ्गलवर्ण केशोको धारण किएहै । बृहस्पतिकी कफ प्रकृति है और सुबुद्धिमान् हैं । शुक्र सुखी है, मनोरम कान्तिविशिष्ट हैं, उनके सुन्दर नेत्र है कफवायुप्रकृति है और ईषत् वक्र केशोको धारण किएहुए हैं । शनैश्चर अलस है, उनके कपिलवर्णके समान नेत्र हैं, कपिलवर्ण केशोको धारण किएहै, कृश है, उनका दीर्घ शरीर है, बड़े २ दांत हैं, वायुप्रकृति है, और वह रोम और केशोकरके युक्त पुरुष हैं ॥३४॥३५॥३६॥३७॥

इति धात्वधिपाः ।

अथ ग्रहाणां सत्त्वादिज्ञानम् ।

चन्द्रार्कजीवा ज्ञसितौ कुजार्की
यथाक्रमं सत्त्वरजस्तमांसि ॥ ३८ ॥

अर्थ-चन्द्र, रवि और बृहस्पति यह सत्त्वगुणयुक्त हैं, बुध और शुक्र रजोगुणविशिष्ट है मङ्गल और शनि तमोगुणयुक्त हैं ॥ ३८ ॥

अथ सामादिज्ञानम् ।

साम्नो जीवः सभृगुतनयो दण्डनाथौ कुजार्कौ
दानेशेन्दुः शिखियमबुधाः सासुराभेदनाथाः ।
वीर्य्योपेतैरुपचयकरैर्लग्नगैः केन्द्रगैर्वा
तद्वात्तिसिद्धिर्भवति तदहस्वांशकैर्वापितेषाम् ॥ ३९ ॥

अर्थ–कौन ग्रह किस नीतिका मालिक है अब उसको कहतेहैं । बृहस्पति और शुक्र सामनीतिके मालिक हैं, मङ्गल और रवि दण्डनीतिके मालिक हैं, चन्द्र दाननीतिका मालिक है, केतु, शनि, बुध और राहु भेदनीतिके मालिक हैं । बलवान् यह समस्त ग्रह जिस बालकके लग्नमें स्थित उपचयमे स्थित (र) या केन्द्रमें स्थित अथवा नवांशमें स्थित होवें तो उसके शरीरमें यह समस्त गुण अधिक होतेहैं अर्थात बृहस्पति या शुक्र लग्नादिमें रहनेसे जातबालक सामगुणविशिष्ट होताहै, मङ्गल और रवि लग्नादि रहनेमे दण्डगुणविशिष्ट होताहै ॥ ३९ ॥

अथ नृपादिज्ञानम् ।

रविचन्द्रौ च राजानौ कुजो नेता बुधः शिशुः ।
सचिवौ गुरुशुक्रौ च प्रेष्यौ शनिभुजङ्गमौ ॥ ४० ॥

अर्थ–रवि और चन्द्र राजा हैं, मङ्गल सेनापति है, बुध राजकुमार है, बृहस्पात और शुक्र राजमन्त्री है, शनि राहु और केतु प्रेष्य हैं ॥ ४० ॥

अथ पुरुषाद्याधिपकथनम् ।

पुंसां सूर्य्यारवागीशा योषितां चन्द्रभार्गवौ ।
क्लीबानां बुधमन्दौ च पतयः परिकीर्त्तिताः ॥ ४१ ॥ (ल)

अर्थ–रवि, मङ्गल और बृहस्पति पुरुषग्रह हैं, चन्द्र और शुक्र स्त्रीग्रह है, बुध और शनैश्चर नपुंसकग्रह हैं ॥ ४१ ॥

अथ वेदाधिपकथनम् ।

ऋग्वेदाधिपतिर्जीवो यजुर्वेदाधिपः सितः ।
सामवेदाधिपो भौमः शशिजोऽथर्ववेदराट् ॥ ४२ ॥ (व)

(र) उपचयसंज्ञा और केन्द्रसंज्ञा यथोचित स्थानमें लिखीगई है ।

(ल) पुरुषाद्यधिपानाह । पुंसामिति । स्पष्टार्थमिति ।

(व) वेदाधिपानाह । ऋग्वेदेति । स्पष्टार्थमिति ।

अर्थ-अब वेदाधिपतिका कीर्त्तनकरतेहैं। बृहस्पति ऋग्वेदका अधिपति है, शुक्र यजुर्वेदका, मङ्गल सामवेदका और बुध अथर्ववेदका अधिपति (मालिक) है ॥ ४१ ॥

अथ रसाधिपज्ञानम्।

कटुलवणतिक्तमिश्रो मधुराम्लौ च कषायकोऽर्कतः।
एते रसाःप्रिया भवन्ति मुखेऽर्काद्या वर्तमानाः सन्तः ॥ ४३ ॥

-रविग्रह कटुरसका अधिपति (मालिक) है, इसीप्रकार चन्द्र लवणरसका, क्तरसका, बुध मिश्ररसका, बृहस्पति मधुर रसका, शुक्र अम्लरसका और ले रसका मालिक है. इन समस्त ग्रहोके मध्यमे अङ्ग (श) विभागकरनेसे . जिस स्थानमें जो ग्रह पतित होवै और उस ग्रहको जो रसका प्रिय है, जात कभी वह रस अधिक प्रिय होताहै; यथा-रवि मुख स्थानमें रहनेसे कटु वस्तु प्रिय ोतीहै और चन्द्र मुख स्थानमें रहनेसे लवणरस आहारमें अधिक प्रिय होताहै ॥४३॥

अथ दिगधिपतिकथनम्।

सूर्य्यःशुक्रः क्षमापुत्रः सैंहिकेयः शनिः शशी।
सौम्यस्त्रिदशमन्त्री च प्राच्यादिदिगधीश्वराः ॥ ४४ ॥ (ष)

अर्थ-अब दिशाओंके अधिपतियोका वर्णनकरतेहैं-रवि पूर्वदिशाका मालिक है, इसी प्रकार शुक्र अग्निकोणका, मङ्गल दक्षिणका, राहु नैर्ऋत कोणका, शनि पश्चिमका, चन्द्र वायुकोणका, बुध उत्तरका और बृहस्पति ईशानकोणका मालिक है ॥ ४४ ॥

अथ ग्रहाणां मित्रादिकथनम्।

मित्राणि सूर्य्याच्छशिभौमजीवाः
सूर्य्येन्दुजौ सूर्यशशाङ्कजीवाः।
आदित्यशुक्रौ रविचन्द्रभौमा
बुधार्कजौ चन्द्रजभार्गवौ च ॥ ४५ ॥ (स)

अर्थ-अब ग्रहोंके मित्रगणको वर्णन करतेहैं। यथा-रविके मित्र चन्द्र,मङ्गल और

(श) मेषादिद्वारा अङ्गविभाग लग्नप्रकरणमे वर्णित है।

(ष) पूर्वाद्यष्टदिशा पतीनाह। सूर्य्य इति। स्पष्टार्थमिति।

(स) ग्रहाणा मित्राण्याह। मित्राणीति। सूर्य्यात्सूर्य्यादित. प्रथमा विभक्तिकथितानि यथाक्रमेण मित्राणि स्यु'। यथा शशिभौमजीवाः रवेर्मित्रं सूर्य्यबुधौ चन्द्रस्य सूर्य्यचन्द्रजीवाः कुजस्य रविशुक्रौ बुधस्य रविचन्द्रकुजाः गुरोः बुधशनी भृगो. बुधशुक्रौ शनेरिति। इति ॥

बृहस्पति है. इसीप्रकार चन्द्रका मित्र रवि और बुध है, मंगलका मित्र रवि, चन्द्र और बृहस्पति है. बुधका मित्र रवि और शुक्र है । बृहस्पतिके मित्र रवि, चन्द्र और मङ्गल हैं, शुक्रके मित्र बुध और शनि हैं । शनिके मित्र बुध और शुक्र हैं ॥ ४५ ॥

सितासितौ चन्द्रमसो न कश्चित्
बुधः शशी सौम्यसितौ रवीन्दू ।
रवीन्दुभौमा रवितस्त्वमित्रा
मित्रारिशेषश्च समः प्रदिष्टः ॥ ४६ ॥ (ह)

इति शत्रुसमकथनम् ।

अर्थ–अब ग्रहोंके शत्रु और सम कहेजातेहैं--रविके शत्रु शुक्र और शनैश्चर हैं, चन्द्रका शत्रु कोई नहीं, मङ्गलका शत्रु बुध है, बुधका शत्रु चन्द्रमा है, बृहस्पतिके शत्रु बुध और शुक्र हैं, शुक्रके शत्रु रवि और चन्द्र हैं और शनिके शत्रु रवि चन्द्र और मङ्गल हैं । मित्र और शत्रुके सिवाय और समस्त ग्रह ग्रहगणके सम कहलातेहैं ॥ ४६ ॥

अथ ग्रहाणां समकथनम् ।

सौम्योऽङ्गिराभौमसितासिताश्च
सितासितौ भूसुतसौरिजीवाः ।
सौरिः कुजेज्यौ वचसांपतिश्च
रव्यादितोऽमी समसंज्ञकाः स्युः ॥ ४७ ॥

अर्थ–रविके सम बुध है इसी प्रकार चन्द्रके सम बृहस्पति मङ्गल,शुक्र और शनि है मङ्गलके सम शुक्र और शनि हैं, बुधके सम मङ्गल शनि और बृहस्पति हैं, बृहस्पतिके सम शनि है,शुक्रके सम मङ्गल और बृहस्पति है और शनिके सम बृहस्पति है ॥ ४७ ॥

(ह) शत्रूनाह । सितासिताविति । रवितो रव्यादित. प्रथमाविभक्त्युदिता यथासङ्ख्येन अमित्राः शत्रवः स्यु. । शत्रुपर्य्यायोऽमित्रशब्द पुंलिङ्ग इति । रवे शुक्रशनी शत्रू चन्द्रस्य न कश्चित शत्रु. कुजस्य बुध. बुधस्य चन्द्रः गुरोर्बुधशक्रौ, भृगोरवीन्दू शने रवीन्दुभौमा इत्यर्थ । मित्रारिणा शेषः समः प्रदिष्टः कथित. । यथा रवेर्बुध. सम. इत्यादि । तथाच लघुजातके " शत्रू मन्दसितौ समश्च शशिजो मित्राणि शेषा रवेस्तीक्ष्णांशुर्हिमरश्मिजश्च सुहृदौ शेषाः समाः शीतगो । जीवेन्दूष्णकराः कुजस्य सुहृदो ज्ञोऽरिः सितार्कौ समौ मित्रे सूर्य्यसितौ बुधस्य हिमगु शत्रुः समाश्चापरे । गुरोः सौम्यसितावरी रविसुतो मध्योऽपरे त्वन्यथा सौम्यार्कौ सुहृदौ समौ कुजगुरू शुक्रस्य शेषावरी । शुक्रज्ञौ सुहृदौ समः सुरगुरुर्मन्दस्य चान्येऽरय तत्काले च दशायबन्धुसहजान्त्यस्थेषु मित्र स्थित ।" इति ॥

अथ तात्कालिकमित्रादिकथनम् ।

चतुर्थदशवित्तान्त्यत्रिलाभस्थाः परस्परम् ।
तत्कालमित्राण्युच्चस्थः कैश्चिदुक्तोऽन्यथा रिपुः ॥ ४८ ॥ (क्ष)

अर्थ—अब ग्रहगणके तात्कालिकमित्र निरूपणकरतेहैं यथा-रविप्रभृति ग्रहगणके मध्यमें इनके चतुर्थ, दशम, द्वितीय, द्वादश, तृतीय और एकादश जो ग्रह होवे तो परस्पर उनकी तात्कालिक मित्रता होतीहै । जैसे कर्कराशिमे यदि रवि होवे तो उसके चतुर्थ तुला, दशम मेष, द्वितीय सिंह, द्वादश मिथुन, तृतीय कन्या और एकादश वृष इन सब राशियोंमें स्थित ग्रहगणकी कर्क स्थानमें स्थित रविके साथ तात्कालिक मित्रता होतीहै तुङ्गस्थानमे स्थित ग्रहकीभी तात्कालिक मित्रता होतीहै इन सब ग्रहोंके सिवाय समस्त ग्रह तात्कालिक शत्रु होतेहैं ॥ ४८ ॥

अथ तात्कालिकशत्रुकथनम् ।

पञ्चाङ्गसप्ताष्टनवमस्थाः परस्परम् ।
कालशत्रवो ज्ञेयास्त्विति ज्योतिर्विदां मतम् ॥ ४९ ॥

ग्रहगणके तात्कालिक शत्रु कीर्त्तनकरतेहैं, यथा—जो ग्रह जिनके प्रथम अथवा पञ्चम, षष्ठ, सप्तम, अष्टम, वा नवम घरमे स्थित हों, उनकी परस्पर तात्कालिक शत्रुता होतीहै, जैसे कर्क राशिमें स्थित सूर्य्य प्रथम घर कर्क, पञ्चम घर वृश्चिक, षष्ठ घर धन, सप्तम घर मकर, अष्टम घर कुम्भ और नवम घर मीन इन सब राशियोमें स्थित ग्रहोकी कर्कराशिमे स्थित सूर्य्यके साथ तात्कालिक शत्रुता होतीहै ज्योतिषशास्त्रके जाननेवाले विद्वानोने इस प्रकारसे कहाहै ॥ ४९ ॥

अथाधिमित्रादिकथनम् ।

हितसमरिपुसंज्ञा ये निसर्गे निरुक्ता
अधिहितहितमध्यास्तेऽपि तत्कालमित्रैः ॥

(क्ष) तत्कालमित्रमाह । चतुर्थेति । चतुर्थदशमस्थौ द्वितीयद्वादशस्थौ तृतीयैकादशस्थौ अन्योऽन्य तत्कालमित्रे भवत. कैश्चिदिति बहुवचनेन बहुसम्मतत्व दर्शितम् । उच्चस्थः स्वतुङ्गस्थो ग्रहः सर्वेषं मित्रमुक्तम् एतद्ग्रन्थकारस्य सम्मतम् । अन्यथा अनिमिषेत्यादिश्लोके उच्चस्थस्य भृगोस्तात्कालिकशत्रुगृहस्थत्वेन त्रिभागहानौ सत्या सम्पूर्णं परमायुर्न स्यादित्यर्थ । अन्यथा चतुर्थदशमाद्युक्तातिरिक्तस्थानस्थः शत्रुरित्यर्थ । इति ॥

बृहस्पति है. इसीप्रकार चन्द्रका मित्र रवि और बुध है, मंगलका मित्र रवि, चन्द्र और बृहस्पाति है. बुधका मित्र रवि और शुक्र है। बृहस्पतिके मित्र रवि, चन्द्र और मङ्गल हैं, शुक्रके मित्र बुध और शनि हैं। शनिके मित्र बुध और शुक्र हैं ॥ ४५ ॥

सितासितौ चन्द्रमसो न कश्चित्
बुधः शशी सौम्यसितौ रवीन्दू ।
रवीन्दुभौमा रवितस्त्वमित्रा
मित्रारिशेषश्च समः प्रदिष्टः ॥ ४६ ॥ (ह)

इति शत्रुसमकथनम् ।

अर्थ–अब ग्रहोंके शत्रु और सम कहेजातेहैं--रविके शत्रु शुक्र और शनैश्चर हैं, चन्द्रका शत्रु कोई नहीं, मङ्गलका शत्रु बुध है, बुधका शत्रु चन्द्रमा है, बृहस्पतिके शत्रु बुध और शुक्र हैं, शुक्रके शत्रु रवि और चन्द्र हैं और शनिके शत्रु रवि चन्द्र और मङ्गल हैं। मित्र और शत्रुके सिवाय और समस्त ग्रह ग्रहगणके सम कहलातेहैं ॥ ४६ ॥

अथ ग्रहाणां समकथनम् ।

सौम्योऽङ्गिराभौमसितासिताश्च
सितासितौ भूसुतसौरिजीवाः ।
सौरिः कुजेज्यौ वचसांपतिश्च
रव्यादितोऽमी समसंज्ञकाः स्युः ॥ ४७ ॥

अर्थ–रविके सम बुध है इसी प्रकार चन्द्रके सम बृहस्पाति मङ्गल,शुक्र और शनि है मङ्गलके सम शुक्र और शनि हैं, बुधके सम मङ्गल शनि और बृहस्पाति है, बृहस्पतिके सम शनि है,शुक्रके सम मङ्गल और बृहस्पाति है और शनिके सम बृहस्पाति है ॥ ४७ ॥

(ह) शत्रूनाह । सितासिताविति । रवितो रव्यादित. प्रथमाविभक्त्युदिता यथासंख्येन अमित्राः शत्रवः स्यु. । शत्रुपर्य्यायोऽमित्रशब्दः पुंलिङ्ग इति । रवे शुक्रशनी शत्रू चन्द्रस्य न कश्चित् शत्रुः कुजस्य बुध. बुधस्य चन्द्रः गुरोर्बुधशुक्रौ, भृगोरवीन्दू शने रवीन्दुभौमा इत्यर्थ । मित्रारिभ्यां शेषः समः प्रदिष्ट' कथित. । यथा रवेर्बुधः समः इत्यादि । तथाच लघुजातके " शत्रू मन्दसितौ समश्च शशिजो मित्राणि शेषा रवेस्तीक्ष्णांशुर्हिमरश्मिजश्च सुहृदौ शेषाः समाः शीतगोः । जीवेन्दूष्णकराः कुजस्य सुहृदो ज्ञोऽरि: सितार्कौ समौ मित्रे सूर्य्यसितौ बुधस्य हिमगु. शत्रु' समाश्चापरे । गुरोः सौम्यसितावरी रविसुतो मध्योऽपरे त्वन्यथा सौम्यार्कौ सुहृदौ समौ कुजगुरू शुक्रस्य शेषावरी । शुक्रज्ञौ सुहृदौ सम. सुरगुरुर्मन्दस्य चान्येऽरय तत्काले च दशायबन्धुसहजस्वान्त्येषु मित्रं स्थित ।" इति ॥

अथ तात्कालिकमित्रादिकथनम् ।

चतुर्थदशवित्तान्त्यत्रिलाभस्थाः परस्परम् ।
तत्कालमित्राण्युच्चस्थः कैश्चिदुक्तोऽन्यथा रिपुः ॥ ४८ ॥ (क्ष)

अर्थ–अब ग्रहगणके तात्कालिकमित्र निरूपणकरतेहैं यथा-रविप्रभृति ग्रहगणके मध्यमे इनके चतुर्थ, दशम, द्वितीय, द्वादश, तृतीय और एकादश जो ग्रह होवे तो परस्पर उनकी तात्कालिक मित्रता होतीहै । जैसे कर्कराशिमे यदि रवि होवे तो उसके चतुर्थ तुला, दशम मेष, द्वितीय सिंह, द्वादश मिथुन, तृतीय कन्या और एकादश वृष इन सब राशियोमें स्थित ग्रहगणकी कर्क स्थानमें स्थित रविके साथ तात्कालिक मित्रता होतीहै और तुङ्गस्थानमे स्थित ग्रहकीभी तात्कालिक मित्रता होतीहै इन सब ग्रहोके सिवाय अपरापर समस्त ग्रह तात्कालिक शत्रु होतेहैं ॥ ४८ ॥

अथ तात्कालिकशत्रुकथनम् ।

जन्मपञ्चाङ्गसप्ताष्टनवमस्थाः परस्परम् ।
तत्कालशत्रवो ज्ञेयास्त्विति ज्योतिर्विदां मतम् ॥ ४९ ॥

अर्थ–अब ग्रहगणके तात्कालिक शत्रु कीर्त्तनकरतेहैं, यथा–जो ग्रह जिनके प्रथम (एकघरमे) अथवा पञ्चम, षष्ठ, सप्तम, अष्टम, वा नवम घरमे स्थित हों, उनकी परस्पर तात्कालिक शत्रुता होतीहै, जैसे कर्क राशिमे स्थित सूर्य्य प्रथम घर कर्क, पञ्चम घर वृश्चिक, षष्ठ घर धन, सप्तम घर मकर, अष्टम घर कुम्भ और नवम घर मीन इन सब राशियोमे स्थित ग्रहोंकी कर्कराशिमे स्थित सूर्य्यके साथ तात्कालिक शत्रुता होतीहै ज्योतिषशास्त्रके जाननेवाले विद्वानोने इस प्रकारसे कहाहै ॥ ४९ ॥

अथाधिमित्रादिकथनम् ।

हितसमरिपुसंज्ञा ये निसर्गे निरुक्ता
अधिहितहितमध्यास्तेऽपि तत्कालमित्रैः ॥

(क्ष) तत्कालमित्रमाह । चतुर्थेति । चतुर्थदशमस्थौ द्वितीयद्वादशस्थौ तृतीयैकादशस्थौ अन्योऽन्यं तत्कालमित्रे भवत. कैश्चिदिति बहुवचनेन बहुसम्मतत्वं दर्शितम् । उच्चस्थ सुतुङ्गस्थो ग्रहः सर्वेषं मित्रमुक्तम् एतद्ग्रन्थकारस्य समतम् । अन्यथा अनिमिषेत्यादिश्लोके उच्चस्थस्य भृगोस्तात्कालिकशत्रुगृहस्थत्वेन त्रिभागहानौ सत्या सम्पूर्णं परमायुर्न स्यादित्यर्थ । अन्यथा चतुर्थदशमाद्युक्तातिरिक्तस्थानस्थः शत्रुरित्यर्थ । इति ॥

रिपुसमसुहृदाख्या ये निसर्गोपदिष्टा अधिरिपुरिपुमध्याः शत्रुभिश्चिन्तनीयाः ॥ ५० ॥ (त्र)

अर्थ–अब अधिमित्रादि कीर्त्तनकरतेहैं–यहांके मध्यमे जो जिसका स्वाभाविक मित्र सम और शत्रु है, वह तात्कालिक मित्र होनेसे क्रमानुसार अधिमित्र, मित्र और सम होजाताहै अर्थात् स्वाभाविक मित्र तात्कालिकमित्र होनेसे अधिमित्र, स्वाभाविक सम तात्कालिक मित्र होनेसे मित्र, और स्वाभाविक शत्रु तात्कालिकमित्र होनेसे सम होताहै और जिनको स्वाभाविक शत्रु सम और मित्र कहाहै, उनके तात्कालिक शत्रु होनेसे क्रमानुसार अधिशत्रु, शत्रु और सम जानेजातेहै अर्थात् स्वाभाविक शत्रु तात्कालिक शत्रु होनेसे अधिशत्रु, स्वाभाविक सम तात्कालिक शत्रु होनेसे शत्रु और स्वाभाविक मित्र तात्कालिक शत्रु होनेसे सम होजातेहै ॥ ५० ॥

अथ राहुकेत्वोर्मित्रादि ।

उच्चं नृयुग्मं घटभं त्रिकोणं कन्यागृहं शुक्रशनी च मित्रे । सूर्य्यः शशाङ्को धरणीसुतश्च राहो रिपुर्विंशतिकः परांशः ॥५१ ॥

अर्थ–अब राहु और केतुके मित्रादि वर्णन करतेहै. यथा– राहुके उच्चस्थानकी मिथुन राशि है, मूलत्रिकोणकी कुम्भ राशि है, क्षेत्रकी कन्या राशि है, शुक्र और शनैश्चर मित्र है, सूर्य्य, चन्द्र और मङ्गल शत्रु हैं मिथुनके बीसभागका उच्चांश और कुम्भके बीसभागमें त्रिकोणांश होताहै ॥ ५१ ॥

सिंहस्त्रिकोणं धनुरुच्चसंज्ञं मीनो गृहं शुक्रशनी विपक्षौ ॥ सूर्य्यारचन्द्राः सुहृदः समानौ जीवेन्दुजौ षड्शिखिनःपरांशाः ॥५२॥

अर्थ–केतुका मूलत्रिकोण सिंहराशि है, उच्चस्थानकी धनराशि है. क्षेत्रकी मीनराशि है, शुक्र और शनि शत्रु है, सूर्य्य, मङ्गल और चन्द्र मित्रहै बृहस्पति और बुध सम है सिंहका षष्ठ भाग त्रिकोणांश और धनुका षष्ठ भाग उच्चांश है ॥ ५२ ॥

(त्र) अधिमित्रादिव्यवस्थामाह । रिप्विति । निसर्गे स्वभावे मित्रसमशत्रवो ये उक्तास्ते तत्काल-मित्रैर्यथासंख्यम् अधिमित्रमित्रसमाः स्युः । यो निसर्गसुहृत् तत्कालमित्रं सोऽधिमित्रं यः समः स मित्रं यः शत्रुः स समः । एवञ्च निसर्गे ये रिपुसमसुहृद उक्तास्ते तत्कालशत्रवश्चेत्तदा [illegible]-रिक्तस्थानस्थैर्यथासंख्यम अधिशत्रुशत्रुसमाः स्युः । यो नैसर्गिक शत्रुः स तत्कालशत्रुश्चेत् अधिशत्रुः यः समः स शत्रुः यः सुहृत्स समः इत्यर्थः । इति ॥

अथ ग्रहाणां पापसौम्यकथनम।

अर्द्धोनेन्द्वर्कसौराराः पापा ज्ञस्तैर्युतोऽपरे।
शुभाःपापौ तमःकेतू विष्णुधर्म्मोत्तरोदितौ ॥ ५३ ॥ (ज्ञ)

अर्थ—अर्द्धचन्द्र, सूर्य्य, शनि, मङ्गल, पापयुक्त बुध, राहु और केतुको पापग्रह कहतेहैं पूर्णचन्द्र, पापरहित बुध, बृहस्पति और शुक्रको शुभग्रह कहतेहैं, विष्णुधर्म्मोत्तरग्रन्थमे इस प्रकार लिखाहै ॥ ५३ ॥

अथ ग्रहाणामृतुबलमाह।

शनिशुक्रकुजेन्दुज्ञगुरवः शिशिरादिषु।
भवन्ति कालबलिनो ग्रीष्मे सूर्य्यस्तथैव च ॥ ५४ ॥ (क)

अर्थ—अब ग्रहोके ऋतुबल कीर्त्तन करतेहै यथा—शनि, शुक्र, मङ्गल, चन्द्र, बुध और बृहस्पति यह ग्रह क्रमानुसार शिशिरादि छहो ऋतुओमे बलवान् होतेहै, अर्थात् शनि शिशिरमे, शुक्र वसन्तमें, मङ्गल ग्रीष्ममे, चन्द्र वर्षामे, बुध शरत्कालमे और बृहस्पति हेमन्तमे बलवान् होतेहै और सूर्य्यभी ग्रीष्मकालमे बलवान् होताहै किन्तु इन समस्त ग्रहोका बल पाद (चौथाई) मात्र होताहै ॥ ५४ ॥

अथ चन्द्रबलकथनम्।

मासे तु शुक्लप्रतिपत्प्रवृत्ते पूर्वं शशी मध्यबलो दशाहे।
श्रेष्ठो द्वितीयेऽल्पबलस्तृतीये सौम्यैस्तु दृष्टो बलवान्सदैव॥५५॥(ख)

इति यवनेश्वरः ॥

अर्थ—शुक्लपक्षकी प्रतिपदासे शुक्ला दशमीपर्य्यन्त चन्द्र मध्यबली होताहै, शुक्लपक्षकी एकादशीसे कृष्णपक्षकी पञ्चमीतक चन्द्र पूर्णबली होताहै, और कृष्णपक्षकी षष्ठीसे अमावस्यातक अल्पबली होताहै, किन्तु शुभग्रहकी दृष्टि होनेसे सर्वदा बलवान् रहताहै॥५५॥

इति चन्द्रबलकथनम्।

(ज्ञ) ग्रहाणां पापशुभव्यवस्थामाह। अर्द्धोनेन्द्विति। अर्द्धोनश्चन्द्रो रवि शनिः कुजश्च पापाः तैः पापैर्युतो ज्ञो बुध पाप इत्यर्थं। एतदितरेऽर्द्धाधिकश्चन्द्रो जीवशुक्रौ शुभयुक्त केवलो वा बुधः शुभः तम केतू विष्णुधर्म्मोत्तरे पापावुक्तौ। अन्येषा मतेन न पापत्व न च शुभत्वमनयोरित्यर्थः। इति ॥

(क) ऋतुबलमाह। शनीति। शिशिरादिषु षट्सु ऋतुषु यथासंख्यं शन्यादयो बलिन सूर्य्यस्तु ग्रीष्मबली एतद्बल तु एकपादमित्यर्थं। इति ॥

(ख) पक्षबले चन्द्रस्य विशेषमाह। मासे त्विति। शुक्लप्रतिपत्प्रवृत्ते चान्द्रे मासे पूर्वदशाहे शुक्लप्रतिपदादित शुक्लदशमीपर्य्यन्त चन्द्रो मध्यबल। द्वितीये दशाहे शुक्लदशम्याः कृष्णापञ्चमीपर्य्यन्त सम्पूर्णबल। तृतीये दशाहे कृष्णषष्ठ्या अमावस्यापर्य्यन्तमल्पबलः। एतेन शुभवदनुपातविधि पूर्वोक्तप्रकारेणेति चन्द्रस्य तु पक्षबल यल्लभ्यते तद्द्विगुण कार्य्यम्। तथाच "द्विघ्न भानोरयनजबल पक्षवीर्य्य तथेन्दो" इति ॥ अत्र च शुभग्रहैर्दृष्टश्चन्द्र सर्वदैव बलवानिति ॥

अथ ग्रहाणां बलविशेषकथनम् ।

स्वोच्चे स्थिताः श्रेष्ठबला भवन्ति मूलत्रिकोणे स्वगृहे च मध्याः ।
इष्टेक्षिता मित्रगृहाश्रिता वा वीर्य्यं कनीयः समुपावहन्ति ॥५६॥ (ग)

अर्थ–ग्रहगण उच्चस्थानमे स्थित होनेसे पूर्णबली होतेहै. मूलत्रिकोणमें रहनेसे त्रिपादबली और अपने गृह (घर) मे रहनेसे अर्द्धबली होताहै, और स्वग्रहकी दृष्टिसे वा मित्रगृहमे स्थित होनेसे पादबली होजाताहै ॥ ५६ ॥

स्वक्षेत्रे च बलं पूर्णं पादोनं मित्रमन्दिरे ।
अर्द्धं समगृहे ज्ञेयं पादं शत्रुगृहे स्थिते ॥ ५७ ॥

अर्थ–ग्रहगण अपने घरमे रहनेसे पूर्णबली होतेहै. मित्रगृहमें स्थित होनेसे त्रिपादबली, समगृहमें रहनेसे अर्द्धबली और शत्रुके गृहमें स्थित होनेसे पादबली रहजातेहै ॥ ५७ ॥

परिपूर्णबलः सूच्चे सुनीचे स्वबलो ग्रहः ।
सूच्चसुनीचयोरन्तर्भागहोरात्फलं वदेत् ॥ ५८ ॥

अर्थ–ग्रह उच्चस्थानमे रहनेसे पूर्णबली होतेहै और नीचस्थानमे रहनेसे बलहीन होजातेहैं, उच्च और नीचस्थानमे स्थित ग्रहोंका बलभाग होरासे जानाजाताहै ॥ ५८ ॥

स्वक्षेत्रतुङ्गांशसुहृद्गृहस्थः स्वोच्चे विलासी सुहृदा समेतः ॥
जीवेन्दुजौ शत्रुनिरीक्षितौ वा ग्रहः स्वकाले शुभमातनोति॥५९॥

अर्थ–ग्रहगण अपने स्थानमे स्थित होवे, तुङ्गस्थानमे स्थित हो मित्रके घरमे स्थित हो, या उच्चस्थानमें स्थित हो अथवा मित्रयुक्त होवें तो शुभफल प्रदान करतेहै. बृहस्पति और बुध शत्रुकी दृष्टि होनेसेभी शुभफल प्रदान करतेहैं ॥ ५९ ॥

गुरुशुक्रौ पूर्णचन्द्रः सुखदाः परिकीर्त्तिताः ।
बुधचन्द्रौ समौ साध्यौ शेषाः शत्रव ईरिताः ॥ ६० ॥

अर्थ–बृहस्पति, शुक्र और चन्द्र अत्यन्त श्रेष्ठ हैं, बुध और चन्द्र सम है और सब ग्रह हीनभावापन्न है ॥ ६० ॥

मूलत्रिकोणे बाणाब्धी तदर्द्धमधिमित्रके ।
स्वगृहे स्याद्दलं त्रिंशत्तदर्द्धं मित्रमन्दिरे ॥ ६१ ॥
तदर्द्धं समराशौ स्यात्तदर्द्धं शत्रुमन्दिरे ।
तदर्द्धमधिशत्रौ स्याद्ग्राह्यं तत्सप्तवर्गजम् ॥ ६२ ॥

अर्थ–मूलत्रिकोणमें ग्रहोके स्थित होनेसे त्रिपाद बली होतेहै, अधिमित्रगृहमें स्थित होनेसे त्रिपादका अर्द्धबल रहताहै । अपने गृहमे रहनेसे अर्द्धबल होताहै और मित्रके गृहमे स्थित होनेसे तदर्द्ध (पाद) बल रहताहै समगृहमें रहनेसे पादार्द्ध बल होताहै. शत्रुके घरमे स्थित होनेसे पादपादबल होताहै और अधिशत्रुके घरमे रहनेसे उसके अर्द्ध बलकी समान बल रहजाताहै इसी प्रकार सप्तवर्गज बलको विचारना चाहिये ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

युग्मभांशगतौ चन्द्रशुक्रौ बाणेन्दुवीर्य्यदौ ।
अयुग्मभांशगा अन्ये तावन्त एव वीर्य्यदाः ॥ ६३ ॥

अर्थ–सम राशिमे स्थित चन्द्र और शुक्र पादबली होतेहैं और विषमराशिमे स्थित अन्य समस्तग्रह भी पादबली होजातेहैं ॥ ६३ ॥

आदिमध्यान्तरामांशैः पुंषण्डस्त्रीग्रहा अपि ।
केन्द्रादिस्थग्रहस्यौजः षष्टित्रिंशत्तिथिक्रमात् ॥ ६४ ॥

अर्थ–राशिको तीनभागकरके प्रथम द्रेक्काणमे पुंग्रह (सूर्य्य, मङ्गल और बृहस्पति) पूर्णबली होतेहै, मध्यद्रेक्काणमे षढ्ग्रह (बुध और शनि) अर्द्धबली और शेष द्रेक्काणमें स्त्रीग्रह (चन्द्र और शुक्र) पादबली होतेहै, केन्द्रादिस्थानमे स्थित ग्रहोकोभी इसी प्रकारसे जानो ॥ ६४ ॥

अथ मूलत्रिकोणकथनम् ।

सिंहो वृषश्च मेषश्च कन्या धन्वी घटो घटः ।

अर्कादीनां त्रिकोणानि मूलानि राशयः क्रमात् ॥ ६५ ॥ (घ)

अर्थ–अब सूर्य्यप्रभृतिके मूलत्रिकोणको कहतेहैं।सूर्य्यकी सिंहराशि,चन्द्रकी वृषराशि, मङ्गलकी मेषराशि, बुधकी कन्याराशि, बृहस्पतिकी धनराशि, शुक्रकी तुलाराशि और शनैश्चरकी कुम्भराशिको मूलत्रिकोण कहाहै ॥ ६५ ॥

अन्यच्च ।

सिंहवृषाजप्रमदाकार्मुकभृत्तौलिकुम्भधराः ।
सूर्य्यादीनां मूलत्रिकोणभवनान्यनुक्रमशः ॥ ६६ ॥

अर्थ–सिंह, वृष, मेष, कन्या, धन, तुला और कुम्भराशिको क्रमानुसार सूर्य्यादि-सप्तग्रहोंके मूलत्रिकोण कहतेहैं ॥ ६६ ॥

अथ मूलत्रिकोणांशकथनम् ।

रविभौमजीवभार्गवशनैश्चराणां त्रिकोणभागाः स्युः ।
नखरविदिक्तिथिनखरा ज्ञेन्द्वोर्दिग्भांशकाः सूच्चात् ॥ ६७ ॥ (ङ)

अर्थ–सूर्य्यादि सप्तग्रहके सिंहादि सप्तराशि मूलत्रिकोण होनेसेभी सिंहराशिके बीस अंश सूर्य्यके, मेष राशिके १२ अंश मङ्गलके, धन राशिके दश अंश बृहस्पतिके, तुला-राशिके पन्द्रह अंश शुक्रके, और कुम्भराशिके बीस अंश शनैश्चरके मूलत्रिकोणांश है, बुध और चन्द्रके मूलत्रिकोणांशमे इतनाही विशेष है कि, बुधके स्वोच्चांश के बाद दश अंश और चन्द्रके सूच्चांशके बाद सत्ताईस अंश मूलत्रिकोणांश है ॥ ६७ ॥

अथ तुङ्गादिकथनम्।

सूर्य्यादुच्चात्क्रियवृषमृगस्त्रीकुलीरान्त्ययूके
दिग्वह्नीन्द्रद्व्यतिथिशरान्सप्तविंशांश्च विंशान्॥
अंशानेतान्वदति यवनश्चान्त्यतुङ्गान्सुतुङ्गान्
तानेवांशान्मदनभवनेष्वाह नीचान्सुनीचान्॥ ६८ ॥ (च)

अथ–सूर्य्यादिग्रहोंके तुङ्गस्थान कहतेहै. मेषादि सप्त राशिके दशमादि अंशको सूर्य्यादि सप्तग्रहोंके उच्च और परमोच्च स्थान यवनमुनिने कहाहै। दशमादिअंशके शेषांशकोही सुतुङ्ग कहतेहैं उसको अब क्रमानुसार कहतेहै. यथा. मेषराशिके दशांशको सूर्य्यका उच्च-स्थान और दशांशके शेषांश (दशमांश) को परमोच्चस्थान कहतेहैं. वृषराशिके तीन अंशको चन्द्रका उच्चस्थान और तृतीयांश अर्थात् परमांशको परमोच्चस्थान सूच्चस्थान कहतेहै। मकरराशिके अठारह अंशको मङ्गलका उच्चस्थान और अठारह अंशके शेषांशको परमोच्च स्थान कहतेहैं। कन्याराशिके पन्द्रह अंशको बुधका उच्चस्थान और पन्द्रह अंशके शेषांशको परमोच्चस्थान कहतेहै कर्कराशिके पांच अंशको बृहस्पतिका उच्चस्थान और पांच अंशके शेषांशको सूच्चस्थान कहतेहै। मीनराशिके सत्ताईस अंशको शुक्रका उच्चस्थान और सत्ताईस अंशके शेषांशको परमोच्चस्थान कहतेहैं. तुलाराशिके बीस अंशको शनैश्चरका उच्चस्थान और बीस अंशके अपरशेषांशको परमोच्चस्थान कहतेहै।

मेषादि सप्त राशियोंकी जो सप्तम राशि है उसके दशमादि अंशको सूर्य्यादि सप्त ग्रहके नीच और सुनीचस्थान कहतेहै अर्थात् मेषकी सप्तम तुला राशि है उसके दश अंशको सूर्य्यका नीचस्थान और दश अंशके अपर शेषांशको सुनीच वा परमनीच स्थान कहतेहैं वृषराशिके सप्तम वृश्चिक राशि है उसके तीन अंशको चन्द्रका नीचस्थान और तीन अंशके अपर शेषांशको सुनीचस्थान कहतेहैं मकरराशिके सप्तम कर्क राशि है उसके अट्ठाईस अंशको मङ्गलका नीचस्थान और अट्ठाईस अंशके अपर शेषांशको परमनीच स्थान कहतेहै कन्याराशिके सप्तम मीन राशि है उसके पन्द्रह अंशको बुधका नीचस्थान

(च) उच्चनीचानाह। सूर्य्यादिति। क्रियादिराशिषु यथासङ्ख्य दिगाद्यंशान्। यवनाचार्य्य. सूर्य्यादीनामुच्चान् उच्चसंज्ञकान वदति अन्त्यतुङ्गांश्च सुतुङ्गान् वदति। तुङ्गांशाना मध्ये योऽन्त्योऽशः स तुङ्ग इत्यर्थ.। एतदुक्तं भवति रवेर्मेषराशौ दशांशा उच्चा दशमांश परमोच्च. चन्द्रस्य वृषे त्रयोऽशा उच्चा तृतीयोऽंश सुच्च मङ्गलस्य मकरे उन्द्रद्वयमष्टाविंशतिरंशा उच्चा अष्टाविंशतिपूर्णोऽशः सुच्च। एवं बुधस्य कन्याया पञ्चदशांशा गुरो कर्कटे पञ्चांशा. शुक्रस्य मीने सप्तविंशतिरंशाः शनेस्तुलाया विंशत्यंशा --सर्वेषामन्त्योऽंश सुतुङ्ग इत्यर्थ। मेषादीना तुङ्गाना मदनभवने सप्तमस्थाने यथाक्रमं तानेव दिगाद्यंशान् सूर्य्यादीना नीचान् सुनीचानाह। यथा–तुलाया दशांशा रवेर्नीचा दशमोऽंश. परमनीच इत्यादि। अंशविभागस्तु त्रिंशांशस्फुटादेव ज्ञातव्य इति।

और पन्द्रह अंशके अपर शेषांशको सुनीचस्थान कहतेहैं कर्कराशिके सप्तम मकर राशि है उसके पांच अंशको बृहस्पतिका नीचस्थान और पांच अंशके अपर शेषांशको सुनीचस्थान कहतेहैं । मीनराशिके सप्तम कन्या राशि है उसके सत्ताईस अंशको शुक्रका नीचस्थान और सत्ताईस अंशके अपर शेषांशको सुनीचस्थान कहतेहै । तुलाराशिके सप्तम मेषराशि है उसके बीस अंशको शनैश्चरका नीचस्थान और बीस अंशके अपर शेषांशको परमनीच स्थान कहतेहैं इस समस्त अंशभागको त्रिशांश कहलेना चाहिये ॥ ६८ ॥

अन्यच्च ।

मेषो वृषो मृगः कन्या कर्किमीनतुलाधराः ।
भास्करादेर्भवन्त्युच्चा राशयः क्रमशास्त्विमे ॥ ६९ ॥

अर्थ–ग्रन्थान्तरमें उच्चसंज्ञा इस प्रकारसे वर्णित है मेष, वृष, मकर, कन्या, कर्क, मीन और तुलाराशिको क्रमानुसार सूर्य्य, चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनैश्चर आदिका उच्चस्थान कहतेहैं ॥ ६९ ॥

त्रिंशद्भागे दिशो रामा अष्टाविंशास्तिथिस्तथा ।
पञ्च वै सप्तविंशच्च विंशतिः सूच्चसंज्ञकाः ॥ ७० ॥

अर्थ--राशिके तीस अंश करके दशमअंश, तृतीयअंश, अट्ठाईस अंश, पन्द्रह अंश, पाच अंश, सत्ताईस अंश और बीस अंशको सूर्य्यादि सप्त ग्रहोंके सूच्चस्थान जानो ॥ ७० ॥

सूच्चाच्च सप्तमं नीचं प्राग्वद्भागैर्विनिर्दिशेत् ।
उच्चान्तः सूच्चसंज्ञः स्यान्नीचान्तस्तु सुनीचकः ॥ ७१ ॥

अर्थ–पूर्वोक्त दशमादि अंशको क्रमानुसार उच्चस्थान और उसके सप्तम राशिको नीच स्थान जानो, और उच्चांशके शेषांशका नाम सूच्चस्थान और नीचांशके शेषांशको सुनीच स्थान कहतेहैं ॥ ७१ ॥

अपरञ्च ।

दशांशके रविर्मेषे त्र्यंशे च चन्द्रमा वृषे ।
अष्टाविंशत्यंशके तु मकरे भूमिनन्दनः ॥ ७२ ॥
बुधः स्त्रियां तिथेर्माने पञ्चांशे कर्कटे गुरुः ।
सप्तविंशत्यंशके तु भृगुर्मीने उदाहृतः ॥ ७३ ॥
विंशत्यंशे शनिर्यूके सुतुङ्गस्तुङ्गसंज्ञकः ।
सप्तमे तु पुनः सर्वे सुनीचनीचसंज्ञकाः ॥ ७४ ॥

अर्थ–ग्रन्थान्तरमे ग्रहोकी सुतुङ्ग, तुङ्ग, सुनीच और नीचसंज्ञा इस प्रकारसे कहीहै यथा, सूर्य्य मेषके दश अंशमे, चन्द्र वृषके तीन अंशमे, मङ्गल मकरके अट्ठाईस अंशमे, बुध कन्याके पन्द्रह अंशमे, बृहस्पति कर्कके पांच अंशमें, शुक्र मीनके सत्ताईस अंशमे और शनैश्चर तुलाके बीस अंशमे सुतुङ्ग और तुङ्गसंज्ञक होतेहै और इन समस्त राशियोंके सप्तमस्थानमे कहेहुए अंशोमे सूर्य्यादि सप्तग्रहोकी सुनीच और नीचसंज्ञा होतीहै ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ ७४ ॥

अथ ग्रहदृष्टिकथनम्।

त्रिदशे च त्रिकोणे च चतुरस्रे च सप्तमे।
पादवृद्ध्या हि सर्वेषां ग्रहाणां दृष्टिरुच्यते ॥ ७५ ॥

इति जातकचंन्द्रिकायाम्।

अर्थ–अब ग्रहोकी दृष्टि कीर्त्तन करतेहैं। जिस स्थानमे ग्रह स्थित हो उसके तृतीयस्थानमे, दशमस्थानमे, नवमस्थानमें, पञ्चमस्थानमे, चतुर्थ स्थानमे, अष्टम स्थानमे और सप्तम स्थानमे क्रमानुसार एक २ पादवृद्धिसे दृष्टि होतीहै ॥ ७५ ॥

पाददृष्टिस्त्रिदशके अर्द्धदृष्टिस्त्रिकोणके ॥
पादोना चतुरस्रे स्यात्पूर्णदृष्टिश्च सप्तमे ॥ ७६ ॥

इति ज्योतिषसारे।

अर्थ–ज्योतिषसारमे लिखाहै कि, तृतीय और दशम स्थानमे ग्रहोंकी पाद(चौथाई) दृष्टि होतीहै। पञ्चम और नवम स्थानमें अर्द्धदृष्टि, चतुर्थ और अष्टम स्थानमें त्रिपाददृष्टि और सप्तमस्थानमे ग्रहोकी पूर्ण दृष्टि होतीहै ॥ ७६ ॥

तृतीये दशमे चैव पाददृष्टिरुदाहृता।
अर्द्धदृष्टिश्च नवमे पञ्चमे परिकीर्त्तिता ॥ ७७ ॥
चतुर्थे चाष्टमे चैव पादोना परिकीर्त्तिता।
सप्तमे परिपूर्णा च फलमेव प्रकल्पयेत् ॥ ७८ ॥

इति जातकचंन्द्रिकायाम्।

अर्थ–साधारणग्रहोकी तृतीय और दशम स्थानमे एकपाददृष्टि होतीहै, नवम और पञ्चम स्थानमे अर्द्धदृष्टि होतीहै, चतुर्थ और अष्टम स्थानमे त्रिपाद दृष्टि होतीहै और सप्तम स्थानमे ग्रहोकी पूर्ण दृष्टि होतीहै. फलाफल इसीप्रकारसे देखना चाहिये ऐसा जातकचन्द्रिकामे लिखाहै ॥ ७७॥७८ ॥

त्रिदशत्रिकोणचतुरस्रसप्तमा-
नवलोकयन्ति चरणाभिवर्द्धिताः ।
रविजामरेज्यरुधिराः परे च ये
क्रमशो भवन्ति किल वीक्षणेऽधिकाः ॥ ७९ ॥ (छ)

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ–तृतीय और दशम स्थानमें नवम और पञ्चम स्थानमे, चतुर्थ और अष्टम स्थानमे और सप्तम स्थानमें एक २ पाद क्रमानुसार वृद्धिसे ग्रहोंकी दृष्टि होतीहै, किन्तु तृतीय और दशमस्थानमे शनैश्चरकी पूर्ण दृष्टि होतीहै, नवम और पञ्चमस्थानमे बृहस्पतिकी पूर्ण दृष्टि होतीहै, चतुर्थ और अष्टमस्थानमे मङ्गलकी पूर्ण दृष्टि होतीहै और सप्तमस्थानमें सूर्य, चन्द्र, बुध, शुक्र, शनि, बृहस्पति और मङ्गलकी भी पूर्ण दृष्टि होतीहै ॥ ७९ ॥

पादं पश्यति खेचरस्त्रिदशभे पञ्चाङ्कभे तु द्वयं
पादोनं चतुरस्रभे मदगृहे पूर्णं विशेषस्त्वयम् ।
पादे पादचतुष्टयं रविसुतः पादद्वये गीष्पतिः
पादोनेऽवनिजः परन्तु परवन्नान्यत्र दृष्टिः क्वचित् ॥ ८० ॥ (ज)

इति जातकचन्द्रिकायाम् ।

अर्थ–जातकचन्द्रिकामे लिखाहै कि, ग्रहोंकी तृतीय और दशमस्थानमें एकपाद दृष्टि होतीहै इसीप्रकार पञ्चम और नवमस्थानमे अर्द्धदृष्टि चतुर्थ और अष्टमस्थानमे त्रिपाद दृष्टि और सप्तमस्थानमें पूर्ण दृष्टि होतीहै, किन्तु इनके मध्यमे विशेष यहीहै कि, तृतीय और दशमस्थानमे शनिकी पूर्ण दृष्टि होतीहै, पाददृष्टि नहीं होती, पञ्चम और नवमस्थानमें बृहस्पतिकी पूर्ण दृष्टि होतीहै, अर्द्धदृष्टि नहीं होती । चतुर्थ और अष्टम स्थानमे

मङ्गलकी पूर्णदृष्टि होतीहै त्रिपाद दृष्टि नही होती.अन्यान्यस्थानोमे अपर ग्रहोकी समान दृष्टि होतीहै किन्तु उपरोक्त स्थानोके सिवाय और स्थानोमे ग्रहोकी दृष्टि नही होतीहै ८०।

तृतीयदशमावार्किः पश्यन्पूर्णफलप्रदः ।
त्रिकोणकान्गुरुश्चैव चतुर्थाष्टमगान्कुजः ॥ ८१ ॥

इति सत्कृत्यमुक्तावल्याम् ।

अर्थ–सत्कृत्यमुक्तावलीमें लिखाहै कि. शनैश्चरकी तृतीय और दशमस्थानमें दृष्टि होनेसे पूर्ण फल होताहै. इसीप्रकार बृहस्पतिकी पञ्चम और नवमस्थानमे दृष्टि होनेसे पूर्ण फल होताहै और मङ्गलकी चतुर्थ और अष्टमस्थानमे दृष्टि होनेसे पूर्णफल होताहै ८१।

अथ ग्रहाणामदृष्टिकथनम् ।

स्वस्थानञ्च द्वितीयञ्च षष्ठमेकादशं तथा ।
द्वादशञ्च न पश्यन्ति शेषान्पश्यन्ति ते ग्रहाः ॥ ८२ ॥

इति जातकचन्द्रिकायाम् ।

अर्थ--जातकचान्द्रिकामे लिखाहै कि. जिस २ स्थानमे ग्रहोंकी दृष्टि नही होतीहै उसको कीर्त्तनकरतेहै जिस स्थानमे ग्रह स्थित हो उस स्थानमें और द्वितीयस्थानमे छठे स्थानमे, एकादश स्थानमे और द्वादश स्थानमें ग्रहोकी कभी भी दृष्टि नही होती और अन्य स्थानोमे पूर्वोक्तके समान दृष्टि होतीहै ॥ ८२ ॥

अथ राहोर्दृष्टिकथनम् ।

सुतमदननवान्त्ये पूर्णदृष्टिः सुरारे-
र्युगलदशमराशौ दृष्टिमात्रत्रयार्हः ।
सहजरिपुचतुर्थेष्वष्टमे चार्द्धदृष्टिः
स्थितिभवनमुपान्त्यं नैव दृश्यं हि राहोः ॥ ८३ ॥

इति सत्कृत्यमुक्तावल्याम् ।

अर्थ–सत्कृत्यमुक्तावलीमे राहुकी दृष्टि इस प्रकारसे कही है कि, राहु जिस स्थानमें स्थित हो उसके वामदिक्से पञ्चम, सप्तम. नवम और द्वादश स्थानमें पूर्णदृष्टि होती-है, द्वितीय और दशम स्थानमे त्रिपाददृष्टि होती है और तृतीय. षष्ठ चतुर्थ और अष्टम स्थानमे अर्द्धदृष्टि होतीहै. किन्तु यह जिस स्थानमे होवे उस स्थानमे और एकादशस्थानमे राहुकी दृष्टि नही होतीहै ॥ ८३ ॥

अथ नक्षत्रकथनम् ।

अश्विनी भरणी चैव कृत्तिका रोहिणी तथा ।
मृगशिरास्तथा चार्द्रा पुनर्वसुकपुष्यकौ ॥ ८४ ॥

आश्लेषा च मघा चैव पूर्वाफाल्गुन्युत्तरफाल्गुनी ।
हस्ता चित्रा तथा स्वाती विशाखा चानुराधिका ॥ ८५॥
ज्येष्ठा मूला पूर्वाषाढोत्तरा च श्रवणा तथा ।
धनिष्ठा शतभिषा चैव पूर्वाभाद्रपदा तथा ॥ ८६ ॥
उत्तरादिभाद्रपदा रेवती भानि च क्रमात् ॥ ८७ ॥

अर्थ—अब सत्ताईस नक्षत्रोंको कीर्त्तनकरतेहै यथा-अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, मृगाशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, (ञ) श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा और रेवती इन्हीको सत्ताईस नक्षत्र कहते हैं ॥ ८४-८७ ॥

अथ नक्षत्राधिपकथनम् ।

अश्वियमदहनकमलजशशिशूलभृददितिजीवफणिपितरः ।
योन्यर्य्यमदिनकृत्त्वष्टृपवनशक्राग्निमित्राश्च ॥ ८८ ॥
शक्रो निर्ऋतिस्तोयंविश्वविरिञ्ची हरिर्वसुर्वरुणः ।
अजपादोऽहिर्बुध्न्यः पूषा चेतीश्वरा भानाम् ॥ ८९ ॥ (ग)

अर्थ—अब नक्षत्रोंके अधिष्ठातृदेवताओंको वर्णन करतेहै यथा—अश्विनीनक्षत्रके स्वामी अश्वि हैं इसी प्रकार भरणीके यम, कृत्तिकाके अग्नि, रोहिणीके ब्रह्मा, मृगशिरके चन्द्र, आर्द्राके शिव, पुनर्वसुके अदिति, पुष्यके बृहस्पति, आश्लेषाके सर्प, मघाके पितृगण, पूर्वाफाल्गुनीके योनि, उत्तराफाल्गुनीके अर्य्यमा, हस्तके सूर्य्य, चित्राके त्वष्टा, स्वातिके पवन, विशाखाके शक्राग्नि, अनुराधाके मित्र, ज्येष्ठाके इन्द्र, मूलके निर्ऋति,

पूर्वाषाढ़के जल, उत्तराषाढके विष्णु, श्रवणके हरि, धनिष्ठाके वसु, शतभिषाके वरुण, पूर्वाभाद्रपदाके अजपाद, उत्तराभाद्रपदाके अहिर्बुध्न्य और रेवतीके पूषा हैं ॥ ८८ ॥ ८९ ॥

अथ गणकथनम्।

उग्रः पूर्वमघान्तका ध्रुवगणस्त्रीण्युत्तराणि स्वभू-
र्वातादित्यहरित्रयं चरगणः पुष्याश्विहस्ता लघुः।
चित्रामित्रमृगान्त्यभं मृदुगणस्तीक्ष्णोऽहिरुद्रेन्द्रयुक्-
मिश्रोऽग्निःसविशाखभः शुभकराः सर्वे स्वकृत्ये गणाः ॥ ९० ॥ ❀

अर्थ-पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वाभाद्रपदा, मघा और भरणी इन कईएक नक्षत्रोंकी उग्रगणसंज्ञा है। उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा और रोहिणी इन नक्षत्रोंकी ध्रुवगण संज्ञा है। स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा और शतभिषा इन समस्त नक्षत्रोंकी चरगण संज्ञा है, पुष्य अश्विनी और हस्त इन नक्षत्रोंकी लघुगण संज्ञा है। चित्रा, अनुराधा, मृगाशिर और रेवती इन नक्षत्रोंकी मृदुगणसंज्ञाहै। आश्लेषा, आर्द्रा, ज्येष्ठा और मूल इन नक्षत्रोंकी तीक्ष्णगणसंज्ञा है कृत्तिका और विशाखानक्षत्रकी मिश्रगणसंज्ञाहै। उक्त समस्त नक्षत्र अपने २ कार्य्यमे शुभकारक होतेहैं ॥९०॥

अथ उग्रनक्षत्रगणकथनम्।

उग्राणि पूर्वभरणीपित्र्याण्युत्सादनादिसाध्येषु योज्यानि।
बन्धनविषदहनशस्त्रसंघातादिषु च संसिद्धौ ॥ ९१ ॥ (अ)

अर्थ- अब उग्रगण कीर्त्तनकरतेहैं-पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा, भरणी और मघा यह कईएक उग्रगण नक्षत्र हैं, इनमें शत्रुउच्चाटन, बन्धन, विषप्रयोग दहन और अस्त्रघातादि कार्य्य करनेसे सिद्ध होतेहैं ॥ ९१ ॥

अथ ध्रुवनक्षत्रगणकथनम्।

त्रीण्युत्तरातेभ्यो रोहिण्यश्च ध्रुवाणिभैः कुर्य्यात्।
अभिषेकशान्तितरुनगरबीजवापध्रुवारम्भान् ॥ ९२ ॥ (आ)

अर्थ—उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा और रोहिणी इन ध्रुवगण नक्षत्रोंमे अभिषेक, शान्ति, तरु, ध्रुव और बीजवपन कर्म्म करना चाहिये। कोई २ मनुष्य कहतेहैं कि, अधोमुखनक्षत्रविहित विद्यारम्भ, अर्घ्यदान और भूमिखननादि-कर्म्मभी इसमें करना चाहिये ॥ ९२ ॥

अथ चरनक्षत्रगणकथनम् ।

श्रवणात्रयमादित्यानिलौ च चरकर्म्मणि हितानि ।
आरामोद्यानानि कर्म्माणि भवन्ति चरवर्गे ॥ ९३ ॥ (इ)

अर्थ—श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पुनर्वसु और स्वाति इन चरगण नक्षत्रोंमे चरकर्म्म, आराम (उपवन) उद्यान (फलान्वित वन) का आरम्भ करना शुभ है ॥ ९३ ॥

अथ लघुगणकथनम् ।

लघुहस्ताश्विनीपुष्याःपुण्यरतिज्ञानभूषणकलासु ।
शिल्पौषधिपण्येषु च सिद्धिकराणि प्रदिष्टानि ॥ ९४ ॥ (ई)

अर्थ—हस्त अश्विनी और पुष्य इन लघुगण नक्षत्रोंमे पुण्यकर्म्म, रतिज्ञान, भूषणकला, शिल्पकर्म्म, औषधिक्रिया और पुण्यकर्म्म करनेसे शुभफल प्राप्त होताहै ॥ ९४ ॥

अथ मृदुगणकथनम् ।

मृदुवर्गस्त्वनुराधाचित्रापौष्णैन्दवानि मित्रार्थे ।
सुरतविधिवस्त्रभूषणमङ्गलगीतेषु च हितानि ॥ ९५ ॥ (उ)

अर्थ—अनुराधा, चित्रा, रेवती और मृगशिर इन मृदुगण नक्षत्रोंमे मित्र, अर्थ, सुरतविधि, वस्त्र भूषण और गीतादिकर्म प्रशस्त है ॥ ९५ ॥

अथ तीक्ष्णगणकथनम् ।

मूलशत्रुशिवभुजगाधिपानि तीक्ष्णानि तेषु सिध्यन्ति ।

क्तविद्यार्घ्यभूमिखननकर्म्मभ्य शस्तानीत्यर्थ । तेश्चाभिषेकादीनि कुर्य्यादिति केचित् । तानितु तेभ्य सप्तविंशतिनक्षत्रेभ्य सकाशात् त्रीण्युत्तराणि रोहिणी च नक्षत्राणि ध्रुवसञ्ज्ञकानीति गणिष्य इति बहुवचन ताराबाहुल्यादिति ॥

(इ) चरनक्षत्राण्याह। श्रवणेति। श्रवणादीनि चराणि एतानि चरकर्म्मण्यस्थिरकर्म्मणि विहितानि अत्र चरवर्गे आरामोद्यानाना कर्म्माणि शुभानि भवन्तीत्यर्थ । आराम पुष्पप्रधान वनम उद्यानन्त फलप्रधानमिति ॥

(ई) लघुनक्षत्राण्याह । लघ्विति । लघुसञ्ज्ञ हस्ताश्विपुष्या. पुण्यादिषु विहिता तानि च नक्षत्राणि शिल्पौषधिपण्येष्वपि सिद्धिकराणीत्यर्थ । अश्विनीति क्वचिद्दीर्घस्यापि ह्रस्व ।

(उ) मृदुनक्षत्राण्याह । मृद्विति । सुगममिति ।

अभिघातमन्त्रवेतालभेदवधबन्धनादिकार्याणि ॥ ९६ ॥ (उ)

अर्थ-मूल, ज्येष्ठा, आर्द्रा और आश्लेषा इन तीक्ष्णगण नक्षत्रोमें अभिघात मन्त्रकर्म्म भूतदानवादिसाधन और वधबन्धनादि कार्य्यका अनुष्ठान करनेसे सिद्ध होतेहैं ॥ ९६ ॥

अथ मृदुतीक्ष्ण (मिश्र) गणकथनम् ।

हौतभुजं सविशाखं मृदुतीक्ष्णं तद्धिमिश्रफलकारि ।
हयवृषभकुञ्जराणां वाहनदमनानि सेतुश्च ॥ ९७ ॥ (ऋ)

अर्थ-कृत्तिका और विशाखा इन मृदुतीक्ष्ण (मिश्र) गण नक्षत्रोमे विहित कर्म्मका मिश्र फल होताहै और अश्व, वृष और हस्त्यादिक वहन दमन और सेतुकर्म प्रशस्त है ॥ ९७ ॥

अथाधोमुखगणकथनम् ।

आश्लेषवह्नियमपित्र्यविशाखयुक्तं
पूर्वात्रयं शतभिषा च नवाप्युडूनि ।
एतान्यधोमुखगणानि शिवानि नित्यं
विद्यार्घ्यभूमिखननेषु च भूषितानि ॥ ९८ ॥ (ऋ)

अर्थ-आश्लेषा, कृत्तिका, भरणी, मघा, विशाखा, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा और शतभिषा इन कई एक नक्षत्रोको अधोमुखगण कहते हैं । विद्यारम्भमे, अर्घ्यदानमे और भूमिखननादि कार्य्यमें शुभकारक हैं ॥ ९८ ॥

अथोर्द्ध्वमुखगणकथनम् ।

रोहिण्यार्द्रसतिष्यमूलवसवो विष्णुस्त्रयोऽप्युत्तरा
एतान्यूर्द्ध्वमुखानि तानि च नव ज्यातिर्विदो मेनिरे ॥
एभिश्छत्रसितातपत्रभवनप्रासादहर्म्याङ्घ्रिप-

(उ) तीक्ष्णगणमाह । मूलेति । वेतालो भूतदानवादिसाधनमिति ॥

(ऋ) मृदुतीक्ष्णनक्षत्राण्याह । हौतभुजमिति । मृदुतीक्ष्णगण. तत्र मृदुगणविहितकर्म्माणि तीक्ष्णगणविहितकर्म्माणि च मिश्रफलं मध्यफलं करोति तत्र च हयादीनां वाहनदमनानि कार्य्याणि सेतुश्च कार्य्यादित्यर्थः ।

प्राकाराट्टविहारतोरणपुरःप्रारम्भणं शस्यते ॥ ९९ ॥ (ल

अर्थ-रोहिणी, आर्द्रा, पुष्य, मूल, धनिष्ठा, श्रवण, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा और उत्तराभाद्रपदा इन समस्त नक्षत्रोको ऊर्द्धमुखगण ज्योतिर्विद् कहतेहैं. चित्रकर्म श्वेतच्छत्रधारणमे, गृहारम्भमे, राजपुरगमनमें और अट्टालिकारम्भमे यह समस्त प्रशस्त हैं और वृक्षारोपणमे, प्राचीरगठनमे, वणिक् गृहारम्भमे, विहारकर्ममें और विदेशयात्रामें और पुरीगठनमेभी उक्त नक्षत्रगण प्रशस्त हैं ॥ ९९ ॥

अथ पार्श्वमुखगणकथनम् ।

मैत्राखण्डलचन्द्रपाणितुरगाश्चित्रास्तथा स्वातयो
रेवत्योऽथ पुनर्वसुश्च कथितः पार्श्वास्यनामा गणः ॥
एभिर्यन्त्ररथादिपोतकरणं वेश्मप्रवेशोऽपि वा
शस्तोऽयं गजवाजिगर्द्दभगवां दामे तथा यन्त्रणे ॥ १०० ॥ (ऌ)

अर्थ-अनुराधा, ज्येष्ठा, मृगशिर, हस्त, अश्विनी, चित्रा, स्वाति, रेवती और पुनर्वसु इन समस्त नक्षत्रोको पार्श्वमुखगण कहतेहैं. उक्त नक्षत्रोमें यन्त्रादिकरण, रथनिर्माण, नौकागठन और गृहप्रवेश प्रशस्त है और हस्ती, अश्व, गर्द्दभ, गोदमन और हलशकटादि योजनकर्म्म प्रशस्त है ॥ १०० ॥

अथ ताराशुद्धिकथनम् ।

तारास्तु जन्मसम्पद्विपत्क्षेमपापशुभकष्टाः ।
मित्रातिमित्रसंज्ञाश्चैताः संज्ञानुरूपफलाः ॥ १०१ ॥ (ए)

(ल) ऊर्द्धमुखनक्षत्राण्याह । रोहिणीति । तिष्य. पुष्या प्रासादो राजगृह हर्म्य सौधगृहम् अट्ट वणिक्पण्यगृहमिति ।

(ऌ) पार्श्वमुखनक्षत्राण्याह । मैत्रेति । एभिर्नक्षत्रैर्यन्त्ररथादिनौकाकरण स्यात्तत्प्रवेश स्यात अयं पार्श्वमुखगण. गजादीनां दामे प्रथमदमने यन्त्रणे प्रथमशकटादियोजने च शस्त इत्यर्थ ।

(ए) ताराशुद्धिमाह । तारास्त्विति । जन्मनक्षत्रतस्त्रिरावृत्तिपरिभ्रमाज्जन्मादयस्तारा स्यु. । एत-स्तारा नामरूपफलदा इत्यर्थ । अतिमित्रः अत्यन्तमित्रमित्यर्थ । तथाच स्वरोदये ॥ जन्मसम्पद्विप-त्क्षेमः प्रत्यरि साधको वध ।मित्र परममित्रश्च जन्मादीनि पुन पुन. ॥ अत्र च केचिदतिमित्रतारा न शुभेति प्रलपन्ति तदशुद्धं वक्ष्यमाणप्रतीकारकथनाभावात । तथाच । यात्राप्रकरणे । "यात्रायां शोभनास्ताराः समा. कर्मान्त्यसयुता." इति लिखितस्वरोदयवचनात । तथाच राजमार्त्तण्डे । [illegible] शुभा प्रतिदायिता व्यस्तरोगारिपुपक्ष" इति । तथाच तत्रैव ताराफलकथनम "रोगो जन्मसु ताराभु कथित कार्य्यप्रणाशोऽचिरादारोग्य द्रविणञ्च वाञ्छितफलावाप्ति सदा सम्पदि । तारया विपदो भवन्ति विपदि प्रारब्धकार्य्यक्षय' क्षेमारोग्यधनप्रमोदमुदितं क्षेमाभिधानेऽपि । [illegible]प्रतितरलं कार्य्यप्रसिद्धि प्रति मद्भ्रद्रविणप्रमोदमतुल प्राप्नोति [illegible]मिति। [illegible] शुभ नानागदव्याहतिश्चाष्टम्यां धनमानसौख्यविजयान्येव नवम्यामपि ॥ " इति ।

अर्थ-अब ताराशुद्धि कीर्त्तन करते है। जन्म, सम्पत, विपत्, क्षेम, पाप, शुभ, कष्ट, मित्र और अतिमित्र इन नौ (९) की तारासंज्ञा है. जन्मनक्षत्रसे गणनाकरके तीनवार सत्ताईस नक्षत्रोको देखना चाहिये। प्रत्येक मनुष्यकेही जन्म ३ सम्पत् ३ विपत्३क्षेम३पाप३शुभ३कष्ट३मित्र३और अतिमित्र ३ तारा होताहै और यह समस्त तारा नामानुरूप फल प्रदानकरतेहै अर्थात् जन्म, विपत्, पाप और कष्ट तारा अशुभ फलके देनेवाले है और सम्पदादि तारा शुभ फलके देनेवाले है ॥ १०१॥

जन्मसम्पाद्विपत्क्षेमप्रत्यरिःसाधको वधः।
मित्रं परममित्रश्च नवताराः प्रकीर्त्तिताः ॥ १०२ ॥

ग्रन्थान्तरे.

अर्थ-ग्रन्थान्तरमेभी कहाहै कि, जन्म, सम्पत्, विपत्, क्षेम, प्रत्यारि, साधक-वध, मित्र और परममित्र यह नौ तारासंज्ञक है ॥ १०२ ॥

अथ पञ्चमादितारानिर्णयः।

पापाख्यास्त्रिविधाःपञ्च चतुर्दशविंशतिस्त्रियुताः।
सिद्धिफला वृद्धिकरी विनाशसंज्ञा क्रमात्कथिताः॥१०३॥(ए)

अर्थ-पापतारा तीन है अर्थात् जन्मनक्षत्रसे पांचो नक्षत्रतक प्रथम, चौदहवॉ नक्षत्र दूसरा और तेईसवे नक्षत्रको तीसरा जानो. इन तीनो ताराके मध्यमे प्रथम पापतारा जन्मनक्षत्रसे पञ्चमतारा सिद्धिफलप्रदान करताहै द्वितीय पापतारा वृद्धिप्रदान करताहै और तृतीय पापतारा विनाशसाधन करता है ॥ १०३ ॥

अथ जन्मताराफलम्।

यात्रायां पथि बन्धनं कृषिविधौ सर्वार्थनाशो भवे-
द्भैषज्ये मरणं तथा सुनियतं दाहो गृहारम्भणे॥
क्षौरे रोगसमागमो बहुविधः श्राद्धेऽर्थनाशस्तथा
वादे बुद्धिविनाशनं त्वरिभयं प्राप्नोत्यसौ जन्मभे ॥ १०४ ॥

अर्थ-अब जन्मताराका फल कहतेहै जन्मतारामे यात्रा करनेसे मार्गमें बन्धन होताहै इसीप्रकार कृषिकार्य्य करनेसे शस्यादिका विनाश होताहै, औषधिके सेवन करनेसे मृत्यु होताहै, गृहारम्भके करनेसे गृहमे दाह होताहै, क्षौरकर्म्म करनेसे रोग होताहै

श्राद्ध करनेसे अर्थनाश होताहै. विवाद करनेसे बुद्धिका नाश होताहै और शत्रुद्वारा भय उपस्थित होताहै ॥ १०४ ॥

सर्वमङ्गलकार्य्याणि त्रिषु जन्मसु कारयेत् ।
विवादश्राद्धभैषज्ययात्राक्षौराणि वर्जयेत् ॥ १०५ ॥

अर्थ–त्रिजन्मतारामे समस्त शुभ कर्म्मका अनुष्ठान करना चाहिये केवल विवाद श्राद्ध, औषधसेवन, यात्रा और क्षौरकर्म्मको वर्जितकरै ॥ १०५ ॥

अथ ताराप्रतीकारः ।

विपत्तारे गुडं दद्यान्निधने तिलकाञ्चनम् ।
प्रत्यरौ लवणं दद्याच्छाकं दद्यात्रिजन्मनि ॥ १०६ ॥ (ओ)

अर्थ--अब तारादोषके प्रतीकारको कहतेहैं । विपत्तारामे गुड दान करनाचाहिये. इसीप्रकार वधतारामें तिलोंके साथ काञ्चनदान करै, प्रत्यरि (पाप) तारामे लवणदान करै और जन्मतारामे शाकदान करनेसे अशुभतारा शुभ फल प्रदान करतेहैं ॥ १०६ ॥

अथ दिवसस्य पञ्चदशमुहूर्त्तकथनम् ।

नक्षत्र

शिवभुजगमित्रपितृवसुजलविश्वविरिञ्चिपङ्कजप्रभवाः ।
इन्द्राग्नीन्द्रनिशाचरवरुणार्य्यमयोनयश्चान्हि ॥ १०७॥ (ओ)

अर्थ- अब दिनके पन्द्रह मुहूर्त्तोंके स्वामी नक्षत्र कीर्त्तनकरतेहैं, दिनमानको [illegible] भागमें विभक्तकरैं उसके एक २ भागका नाम मुहूर्त्त है । प्रथम मुहूर्त्तके [illegible] आर्द्रा नक्षत्र है, इसीप्रकार द्वितीय मुहूर्त्तका स्वामी आश्लेषा नक्षत्र है, तीसरे मुह [illegible]